श्रीमद्भागवत

के

टीकाकार

[आगरा विश्व विद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध प्रबन्ध
श्रीमद्भागवत के वैष्णव टीकाकार एवं उनकी टीकाओं का
विश्लेषणात्मक अध्ययन]

★

डॉ0 वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
एम ए, पी-एच. डी, डी-लिट्

★

PRESENTED BY.
The Ministry of Education & Social Welfare
Government of India

राज्यश्री प्रकाशन
मथुरा
पिन कोड–२८१००१

Copy Right
डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी
१९७६–७७

मूल्य रुपये ४५—००
पुस्तकालय संस्करण

मूल्य : रुपये पैंतालीस मात्र
प्रकाशक : प्रमोद बिहारी सक्सेना, बी० कॉम०
अध्यक्ष, राज्यश्री प्रकाशन,
दलपत स्ट्रीट, तिलक द्वार, मथुरा
मुद्रक . आदर्श प्रिन्टिंग प्रेस, बंगालीघाट, मथुरा फोन . ११२६
नेशनल प्रेस, रामलीला मैदान, रापर
गिरीश प्रिंटिंग प्रेस, चौक, मथुरा

समर्पणम्

नित्यलीलास्थ प्रात: स्मरणीय १०८ श्री पितृचरण गुरुवर

श्री श्रीवर जी चतुर्वेद *चरण कमलेषु सादरम्*

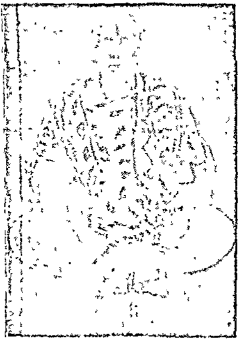

श्री (१०८) महाचार्यवर्याणां श्रीवराणां पदाब्जयोः ।
गुरूणां श्रद्धया भक्त्या शोध ग्रन्थोऽयमर्प्यते ।।

—तच्चरण नलिन मधुपेन वासुदेवकृष्णेन

प्राक्कथन

श्री मद्भागवत संस्कृत साहित्य का एक महनीय ग्रन्थ है। इसकी गरिमा 'विद्यावता भागवते परीक्षा' इस उक्ति से सुतरा सिद्ध है। अतएव श्रीमद्भागवत को लेकर अनेक ग्रथ लिखे गये हैं। श्रीमद्भागवत की अन्य टीकाऐं भी हैं, उनके कर्ताओ मे वैष्णव सम्प्रदायो के प्रवर्तक आचार्य भी हैं। इन सम्प्रदायो को लेकर स्वतत्र रूप से ग्रयों की रचना हुई है, किन्तु श्रीमद्भागवत के सभी टीकाकारो का या सम्प्रदाय विशेप के टीकाकारो का सम्यक् विवरण आज तक किसी ने प्रस्तुत नही किया है। श्रीमद्भागवत के ३० टीकाकार निश्चय रूप से ऐसे हैं जिनकी टीकाऐं सम्पूर्ण भागवत पर या उसके किसी महनीय खण्ड पर आज भी उपलब्ध है। जहाँ तक टीकाओ के अध्ययन अध्यापन का सम्बन्ध है वह तो श्रीधर कृत भावार्थ दीपिका, वल्लभाचार्यकृत सुबोधिनी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती की सारार्थ दर्शिनी तक ही अधिक सीमित है। अतः अन्य टीकाओ का सम्यक् अध्ययन कर उनके वैशिष्ट्य का ऊहापोह करना भी आज एकमात्र अनुसन्धान का विषय है। मेरे इस प्रबन्ध के विवेचन का यही मुख्य विषय है। साथ ही श्री मद्भागवत के प्रतिपाद्य मुख्य विषयों पर तथा उन स्थलो पर जिनकी व्याख्या प्रत्येक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तो के अनुसार भिन्न रूप मे करता है। मैंने प्राय. सभी टीकाकारो के मत-मतान्तरो का एकत्र निरूपण किया है, जो श्रीमद्भागवत पर आज तक के किये हुये कार्यों से सर्वथा विलक्षणा तो है ही, उससे अनेक तथ्यों की स्थिति मानने से

टीकाकारों के व्यक्तिगत ... आचार्य वल्लभ एव किशोरीप्रसाद को एक प्रतीत होता है वस्तुत उत्तर है।

और वृन्दावन की सभी चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्री सनातन गोस्वामी, किसी रूप मे मुझे सुविधा ... चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूपण एव राधारमणदास नही दीखा। यद्यपि मुझे त... बृहत्तोपिणी एव वैष्णवतोपिणी नामक भागवत वाले विद्वान् आचार्यों एव ... है, किन्तु ... के प्रकाशन आदि बाह्य मुझे बहुत आश्चर्य हुआ ...ाग की ... भ्यन्तर साक्ष्य के आधार के विपय मे अपेक्षित जान... ...रण किया, व्यक्तिगत परिचय की ... दाय के आचार्यों को लिखा एकदम निराश होना पडा।

के आचार्य एवं भागवत की 'पदरत्नावली' टीका के कर्ता हो चुके है। इनके सम्बन्ध म उडुपी से पत्र-व्यवहार करने पर असन्तोष-जनक उत्तर प्राप्त हुआ। उडुपी मध्व सम्प्रदाय का प्रमुख गढ है। इसके विपरीत कलकत्ते से स्वर्गीय महेशचन्द्र क बन्धुओ से श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध मे जो विवरण प्राप्त हुआ वह अपने म पर्याप्त तथा अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुआ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के एकमात्र टीकाकार सिद्धान्त प्रदीप के कर्ता शुकसुधी के विषय मे जिनका हस्ताक्षर तक उपलब्ध है उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय म कोई भी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त न हो सकी। फिर भी यथासम्भव मैंने श्रीमद्भागवत के सभी टीकाकारो के व्यक्तिगत जीवन के विषय म प्रकाश डालने का यथासम्भव प्रयास किया है, तथा उनकी टीकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। सफलता कितनी मिली है इसका निर्णय विद्वज्जन ही करेंगे।

प्रकृत प्रबन्ध मे अध्यायों का विभाजन मैंने सम्प्रदायो के अनुसार किया है, एक सम्प्रदाय के टीकाकारो एव उनकी टीकाओ के वैशिष्ट्य का निरूपण एक अध्याय मे हुआ है। चित्सुख, श्रीधर और मधुसूदन ये श्रीमद्भागवत के ऐसे टीकाकार हैं जिनको सम्प्रदाय विशेष की परिधि मे नही रखा जा सकता, चूंकि उत्तरकालीन प्राय सभी टीकाकारो ने इनको अपना उपजीव्य माना है अत इनको 'उपजीव्य टीकाकार' के नाम के निरूपित किया गया है।

अध्याय तृतीय मे विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार—सुदर्शन सूरी, वीर राघवाचार्य, भगवत्प्रसाद, श्रीनिवास सूरी एव रामानुज का परिचय द्वितीयाध्याय की शैली से प्रस्तुत किया है। भगवत्प्रसाद की टीका का सौराष्ट्र मे उसी प्रकार सम्मान है जैसा गुर्जरादि प्रदेशो मे आचार्य श्रीवल्लभ की सुबोधिनी टीका का है। स्वामीनारायण सम्प्रदाय का मूल विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय है, यह सिद्ध किया है।

अध्याय चतुर्थ मे द्वैत सम्प्रदायाचार्य श्री मध्व एव प्रसिद्ध भागवत टीका रचयिता श्री विजयध्वज तीर्थ तथा अन्य टीकाकारों का भी परिचय दिया गया है। इनमे मध्वाचार्य, विजयध्वजतीर्थ, व्यासतत्वज्ञ, लिघेरी श्रीनिवास तीर्थ, पाघरी श्रीनिवासाचार्य, सत्याभिनव, अनन्ततीर्थ, सत्यधर्मयति, छलारी नारायणाचार्य, चेट्टी वेंकटाचार्य, शेषाचार्य, धनपतिसूरी के नाम उल्लेखनीय हैं।

अध्याय पचम मे द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार श्री केशव कश्मीरी भट्ट, शुकसुधी, वशीधर का प्रामाणिक इतिवृत आदि प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत पर शुकसुधी की ही एकमात्र टीका निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व निभाती है, किन्तु इनके जीवन परिचय के बारे मे अभी उक्त सम्प्रदाय के अधिकारी विद्वान भी कुछ निर्णय नहीं कर सके हैं तथापि उपलब्ध सामग्री से कतिपय तथ्य प्रस्तुत किये हैं।

अध्याय षष्ठ म शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार श्री वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथजी, पुरषोत्तमदासजी, गिरधरजी के साथ उक्त सम्प्रदाय स सबधित श्री किशोरीप्रसादजी का परिचयादि प्रस्तुत किया है। यद्यपि किशोरीप्रसाद की सम्प्रदाय वशीअली की सम्प्रदाय है जो वल्लभ सम्प्रदाय से सर्वतोभावेन पृथक है, तथापि विष्णुस्वामी की शाखा मे वशीअलीजी की स्थिति मानने से विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुगामी आचार्य वल्लभ एव किशोरीप्रसाद को एक अध्याय मे रखना अवरुद्ध ही है।

अध्याय सप्तम मे चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी श्री सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूषण एव राधारमणदास पर प्रकाश डाला गया है। बृहत्तोषिणी एव वैष्णवतोषिणी नामक भागवत टीका मे अभेद माना जाता है, किन्तु दोनो टीकाओ के प्रकाशन आदि बाह्य साक्ष्य तथा दोनो के गद्य भाग की तुलना आदि आभ्यन्तर साक्ष्य के आधार पर उक्त भ्रान्ति का निराकरण किया गया है।

अध्याय अष्टम मे लगभग १२० श्लोको का अध्ययन टीकाकारो की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उक्त अध्ययन मे टीकाकारो के परस्पर विरोध का

अनुमोदन का उल्लेख तो किया है, साथ ही कतिपय शङ्काओं का निराकरण भी किया है। यथा परीक्षित की मृत्युकालीन अवस्था का विचार वाराहावतार मत्स्यावतारकालीन प्रलय, कृष्ण के अगन्यास-करन्यास आदि इस कोटि मे रखे हैं। पूतना को देखकर कृष्ण के नेत्र निमीलन की अनेक कल्पनाए तथा रास में चन्द्रोदय की उत्प्रेक्षाए, रास-प्रसग मे गोपियो के नीचे मुख करने के अनेक भाव एव योगमाया के अनेक अर्थ पौराणिक मान्यताओ के साथ प्रस्तुत किये हैं। इस अध्याय में श्रीकृष्ण लीला समय विचार आदि कुछ स्थल बिना श्लोको के भी प्रस्तुत किये हैं। एक भी श्लोक ऐसा नहीं रखा है जिस पर टीकाकारो का कोई अर्थ भेद आदि न हो।

अध्याय नवम मे भगवत्तत्वो का निरूपण किया है। श्रीकृष्ण, श्रीराधा ब्रज, गोवर्धन, वेणु, रासलीला, भक्ति ज्ञान, मुक्ति का विवेचन प्रस्तुत किया है। परिशिष्ट मे सहायक ग्रथ तालिका के साथ शोध प्रबन्ध पूर्ण हुआ है।

प्रबन्ध के पूरा होने का श्रेय निर्देशक डा० ब्रजमोहन चतुर्वेदी को है जिन्होंने आगरा कालेज से दिल्ली विश्वविद्यालय पहुँचकर भी न केवल इस प्रबन्ध का सम्यक् निर्देशन ही किया अपितु समय-समय पर अपनी प्रेरणा से मुझे निरन्तर प्रोत्साहित भी करते रहे हैं। मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हू जिनकी प्रेरणा के फलस्वरूप यह शोध प्रबन्ध इस रूप मे लिखा जा सका है। इनके अतिरिक्त अपने सस्थान के निदेशक विद्वन्मूर्धन्य श्री भक्तिहृदय वन-महाराजजी रेक्टर इन्स्टीट्यूट आफ ओरियन्टल फिलासफी वृन्दावन का अत्यन्त आभारी हू जिनकी प्रेरणा से मेरा शैथिल्य सर्वदा दूर होता रहा। यहा डा० हरिदत्त शास्त्री अध्यक्ष, सस्कृत विभाग, डी० ए० वी० कालेज कानपुर का स्मरण करना भी अत्यन्त आवश्यक है तथा श्री ब्रजवल्लभशरण, श्रीजी कुज, वृन्दावन के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इन सबके अतिरिक्त मैं उन सबके प्रति कृतज्ञ हू जिनकी अनन्त शुभकामनाए इस प्रबन्ध की पूर्ति के साथ जुटी हुई हैं।

प्रकाशक महोदय श्री प्रमोदबिहारी जी सक्सेना, राजश्री प्रकाशन, ने यदि लगन पूर्वक योग न दिया होता तो यह इतनी शीघ्रता मे कभी प्रकाशित न होता अत इन्हें साधुवाद देना परमावश्यक है। मुद्रणकर्ताओं को धन्यवाद देना भी आवश्यक है। इस शोध प्रबन्ध में जो प्रमाद वश त्रुटिया हुई हैं उन्हे विद्वज्जन सुधारकर पढने की कृपा करें। पर्याप्त ध्यान देने पर भी मुद्रण सम्बन्धी विवशता म बाध्य होना पडा है उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हू और भविष्य मे शीघ्र अति शीघ्र इसके अभिनव सस्करण में उनका परिमार्जन करने की पूर्ण चेष्टा करूगा।

—वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

श्रीमद्भागवत—(क) कर्ता-वेद व्यास, व्यक्तिगत परिचय, समय, शिष्य परम्परा, कृतियां। (ख) निर्माण हेतु, रचना काल, परिमाण, स्कन्ध, अध्याय एवं श्लोक संख्या विमर्श। (ग) टीकाएँ एवं टीकाकार-विशिष्ट, सामान्य एवं वैष्णव सम्प्रदाय, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य आदि मत तथा भागवत। ९–४८

द्वितीय अध्याय

उपजीव्य टीकाकार—(१) चित्सुखाचार्य : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल कृतियां, टीका वैशिष्ट्य (२) श्रीधर स्वामी : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल, कृतियां, टीका वैशिष्ट्य (३) मधुसूदन सरस्वती : परिचय, सम्प्रदाय, स्थित काल कृतियां, टीका वैशिष्ट्य। ४९–८४

तृतीय अध्याय

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार—(१) सुदर्शन सूरि (२) वीरराघवाचार्य (३) भगवत्प्रसाद (४) श्रीनिवास सूरि (५) योगी रामानुजाचार्य। ८५–१०२

चतुर्थ अध्याय

हंस सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) मध्वाचार्य (२) विजयध्वज तीर्थ (३) व्यास तत्त्वज्ञ (४) लिपेरी श्रीनिवास (५) श्रीनिवास तीर्थ (६) छलारि नारायणाचार्य (७) भट्टो वेंकटाचार्य (८) यादवाचार्य (९) सत्याभिनव (१०) अनन्ततीर्थ (११) सत्यधर्मयति (१२) वापरी निवासाचार्य (१३) घन-पति मिश्र। १०३–१३८

पंचम अध्याय

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) केशव काश्मीरी भट्ट (२) शुकसुधी (३) भगीधर (४) गंगा सहाय १३९–१६४

षष्ठ अध्याय

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) वल्लभाचार्य (२) विट्ठल नाथ जी (३) पुरुषोत्तम जी (४) गिरधर लाल जी (५) किशोरी प्रसाद।
१६५–२००

सप्तम अध्याय

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार—(१) सनातन गोस्वामी (२) जीव गोस्वामी (३) विश्वनाथ चक्रवर्ती (४) बलदेव विद्याभूषण (५) राधारमण दास गोस्वामी (६) रामनारायण मिश्र। २०१–२४४

अष्टम अध्याय

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल।
२४५–३३६

नवम अध्याय

भगवत्तत्व—(१) श्रीकृष्ण (२) श्री राधा (३) व्रज (४) गोवर्धन (५) वेणु (६) रास (७) भक्ति (८) ज्ञान (९) मुक्ति।
३३७–३६०

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची ३६१–३६६
शुद्धि पत्र — ३६७

प्रथम अध्याय

श्रीमद्भागवत

(क) कर्त्ता-वेदव्यास, व्यक्तिगत परिचय, समय, शिष्य परम्परा, कृतियाँ।

(ख) निर्माण हेतु, रचना काल, परिमाण-स्कन्ध, अध्याय एवम् श्लोक सँख्या विमर्श।

(ग) टीकाएं एवम् टीकाकार-विशिष्ट, सामान्य एवम् वैष्णव सम्प्रदाय, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य आदि मत तथा भागवत।

श्रीमद्भागवत

(क) कर्त्ता-व्यास

वैष्णव सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत पुराण अपौरुषेय माना जाता है। यह चार श्लोको मे ब्रह्मा ने नारायण से प्राप्त किया था। भागवत के द्वितीय स्कन्ध के नवमाध्याय मे "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि चार श्लोक "चतुश्लोकी-भागवत" के नाम से प्रसिद्ध है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने स्पष्ट लिखा है —

"प्रश्नस्य प्रथमस्योक्ताद्द्वितीयस्योत्तर वदन्
चतुश्लोकी भागवतप्रवृत्ति नवमेऽननोत्।"[1]

तथा ३० वें श्लोक की व्याख्या मे—"अत्र परावरे ... एतदेव भगवद्दत्तोत्तर चतुष्टयात्मकमेव श्रीभागवत शास्त्र श्रीभगवत्प्रोक्तत्वेन प्रसिद्धम्" एव ३५ वे श्लोक की टीका के अन्त मे "इति चतुश्लोकी भागवत विवृति सम्पूर्णा" लिखा गया है।

क्रम सन्दर्भकार ने भी इसका निर्देश किया है।[2] निम्बार्क टीकाकार शुकदेव ने इसे सूक्ष्म भागवत कहा है।[3] वर्तमान काल मे उपलब्ध भागवत पुराण अष्टादश सहस्र श्लोको का महाकाय ग्रन्थ है एव इसके रचयिता कृष्ण-द्वैपायन व्यास हैं।

यद्यपि भागवत मूल मे उनकी कृतित्व का पर्याप्त प्रमाण है यथा—नारद व्यास सम्वाद, तथापि टीकाकारो ने प्रथम श्लोक की टीका मे मगला-चरण की सार्थकता सिद्ध करने वाले हेतुओ के साथ कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम का उल्लेख किया है।[4] इनके कर्तृत्व मे सन्देह मैत्रेय की उस परम्परा

---

१. सारार्थ दर्शिनी २।६ प्रथम कारिका।

२ "अयतत्र परमभागवताय ब्रह्मणे श्रीमद्भागवताख्यं निजशास्त्रं उपदेष्टुं तत्प्रतिपाद्यतमं वस्तु चतुष्टय प्रतिजानीते।" (क्रम सन्दर्भ २।६।३०)

३. अधुना राजप्रश्नोत्तरं श्रीमद्भागवताख्यानेनैव वक्तुं तन्मूलमूतं ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं सूक्ष्म भागवतं विवक्षुः .... । (सिद्धान्त प्रदीप २।६।१)

४. (क) सत्यवत्यां भगवद्दर्शनावतीर्णो बादरायणो....... ।
(भाग चं० चं० १।१।१)

(ख) सत्यवत्यां पराशरादवतीर्णो व्यासनामा। (पद रत्नावली)

(ग) इह खलु वेदव्यासः ....। (सिद्धान्त प्रदीप)

(घ) ....वेदव्यासो नारदोपदेशतः ...... (राधामोहन तर्कवाचस्पति)

के द्वारा है जिसमें व्यास का नाम ही उल्लिखित नही है ।[1]

भागवतकर्ता के चार नाम निम्नलिखित है—

(१) व्यास[2] (२) कृष्णद्वैपायन[3]

(३) बादरायण[4] (४) पराशरसूनु यापाराशर[5]

"व्यास" शब्द वेदव्यास का सक्षिप्त रूप है। पुराणो मे अधिकाँश मे यही नाम उपलब्ध होता है वेदो के विस्तार के कारण यह नाम पडा था—यह महाभारत मे लिखा है ।[6] एक वेद के चार वेद का प्रमाण श्रीमद्भागवत मे प्राप्त है—

"व्यदधात् यज्ञ सन्तत्यै वेदमेक चतुर्विधम्" (भागवत १।४।१९)

द्वैपायन नाम द्वीप मे रहने के कारण पडा था एव कृष्ण वर्ण होने के कारण वे कृष्ण द्वैपायन कहलाये थे ।[7]

बादरायण नाम बदरी वृक्षो के आश्रय लेकर निवास करने के कारण प्रसिद्ध हुआ । व्यास के आश्रम मे बदरी वृक्ष बाहुल्य का वर्णन श्रीमद्भागवत मे उल्लिखित है—

"तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते" (भागवत १।७।३)

रासपचाध्यायी के टीकाकार ने 'बादरायण' की व्युत्पत्ति टीकारम्भ मे की है ।[8]

---

१. व्यास की कृति नारायण परम्परा की भागवत है । शुकदेवजी ने दोनो परम्पराओ को मिलाकर राजा को भागवत पुराण सुनाया था । अन्यथा मूल से विरोध पडेगा । (भागवत ३।८।३-७-८-९)

२. भागवत १।४।२४, २।४।६, ३।५।१०, ११।१६।२८, ११।२७।२, २९, १२।१३।१९, १२।६।३६ ।

३ भागवत २।७।१, २।२०।३ ।

४ भागवत ९।२२।२३, २५ ।

५. भागवत १०।८४।५७ ।

६ "विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृतः"
(महाभारत आदि पर्व ६३।८८)

७ "एव द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् ।
न्यस्तो द्वीपे स यद्बालस्तस्माद् द्वैपायन. स्मृतः ।"
(महाभारत, आदिपर्व, ६३।८६)

८. "बदराणा समूहो बादरम् तदयनमाश्रयोयस्यासो बादरायणो व्यासः ।"
(वैष्णव तम दीपिका १०।२९।१)

बदरिकाश्रम भी कहाँ था ? यह निश्चित नही क्योकि श्रीमद्भागवत के सर्व प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी के व्याख्यान "अनेनैव बदरिकाश्रम स्थान सूचितम्"[१] की टिप्पणी करते हुए श्री वशीधर ने स्पष्ट लिखा है कि यह 'गधमादनस्थ' बदरिकाश्रम नही अपितु 'सिन्धुवन स्थित', बदरिकाश्रम है । उनके मत के अनुसार 'सरस्वती नदी' तथा 'बदरी खण्ड' भी सिन्धु देश मे है ।[२]

कतिपय आधुनिक विद्वान् मथुरा स्थित कृष्णगगा घाट पर 'व्यास चबूतरा' को ही व्यास की जन्म स्थली मानते है ।[३] व्रज मे स्थित आदिबद्री का सम्बन्ध भी वे बादरायण नाम से सयुक्त करते है ।[४] किन्तु बहुमत 'बदरिकाश्रम' पर्वतीय प्रदेश मे ही मानता रहा है, यह ठीक भी है ।

पाराशर्य नाम पिता पराशर की प्रसिद्धि के कारण पडा था ।[५]

व्यास जन्म के प्रमुख तीन कारण उपलब्ध है—प्रथम तो यह कि परमेश्वर कारण विशेष से ही महान् विभूतियो मे अंश या कला द्वारा अवतार ग्रहण करता है । भागवत मे विभिन्न अवतारो के विभिन्न कारण निर्दिष्ट किये है उनमे वेद रूपी वृक्ष की शाखा का कार्य सत्रहवे अवतार मे व्यास रूप से किया ।[६] यह अवतार प्रत्येक द्वापर मे माना जाता है ।[७] उक्त श्लोक मे भी वेद विस्तार हेतु स्पष्ट निर्दिष्ट है ।

द्वितीय कारण मे महाभारत की घटना का उल्लेख किया जा सकता है जिसके अनुसार पराशर ने शिव की आराधना से पुराणकर्ता पुत्र की कामना की और वह पूर्ण हुई ।[८]

तृतीय कारण स्कन्द पुराण मे वर्णित उपाख्यान है उसके अनुसार एक समय देवगण धर्म-मार्ग मे किंकर्त्तव्य विमूढ हो गये थे । तब वे नारायण की

---

१. भावार्थ दीपिका १।४।१५ ।

२ भावार्थ दीपिका प्रकाश १।४।१५ ।

३. "वेदव्यास का आश्रम", लेखक बालमुकुन्द, २०२३ वि० ।

४. गत आषाढ़ी पूर्णिमा को उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री जगनप्रसाद जी रावत ने व्यास स्थली जीर्णोद्धार कार्यसमिति का उद्घाटन भी किया है ।

५. "पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना" (भागवत १।५।२)

६. "ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ (भागवत १।३।२१)

७. "आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं-विटपशो-विभजिष्यतिस्म ॥ (भागवत २।७।३६)

८. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय १८ ।

शरण मे गये और उनसे अपना कष्ट निवेदन किया, भगवान ने धर्म संशय निवारणार्थ उन्हे आश्वासन दिया तथा सत्यवती म उनके कार्य की सिद्धि के लिये जन्म ग्रहण किया।[1]

(अ) व्यक्तिगत परिचय :

महर्षि व्यास ईश्वर के सत्रहवे अवतार है, तथापि लोक मर्याद के लिये मानव जाति से सम्बन्ध आवश्यक मानकर हा लोक प्रवृत्ति मान्य होती है।

महर्षि व्यास की माता सत्यवती तथा पिता पराशर मुनि थे।

"जयति पराशर सूनु सत्यवती हृदय-नन्दनो व्यास"[2]

उक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इनके पूर्वजो का सम्बन्ध प्रजा स्रष्टा ब्रह्मा से सीधा था। ब्रह्मा के मानस पुत्र वसिष्ठ थे, वसिष्ठ के पुत्र शक्ति तथा शक्ति के पुत्र पराशर थे जो व्यास जी के पिता थे। इनकी माता के जन्म की विचित्र कथा मिलती है[3] —

'चेदि देश मे एक उपरिचर नामक वसु था, उसकी स्त्री का नाम *गिरिका' था। गिरिका की सुन्दरता अप्सराओ की भी ईर्ष्या बन चुकी थी।* एक समय उपरिचर मृगया करते हुए एक सघन वन म प्रविष्ट ही हुए थे कि कामदेव ने अपना लक्ष्य साधा और उन पर अपना पूर्ण प्रहार किया। उपरिचर कामवेग रोकने मे असमर्थ सिद्ध हुए किन्तु वीर्य के सदुपयोग एव पत्नी के रजोधर्म का काल लक्षित करते हुए उन्हे एक युक्ति सूझ पड़ी, वे उठे और वृक्ष के कोमल पत्रो का एक पुटक (दोना) बनाया उसमे वीर्य स्थापित कर अपनी पत्नी के समीप पहुँचाने के लिये अपने साथ मे स्थित श्येन, पक्षी को

---

१ एतस्मिन्नन्तरे मूढा धर्म मार्गे सुरर्षय
सकीर्ण बुद्धयो देवा ब्रह्म रुद्र पुरोगमा ॥
शरण्य शरण जग्मुर्नारायण मनामयम्
तंविज्ञापितकार्यस्तु भगवान पुरुषोत्तम ॥
अवतीर्णो महायोगीसत्यवत्या पराशरात् ॥

(स्कन्द पुराण, वैष्णव खड, अध्याय ७, पृष्ठ ७८५)

श्रेय—भागवताक पृष्ठ ६८

२ महाभारत आदिपर्व के प्रारम्भ मे—गीता प्रेस गोरखपुर हिन्दी टीका सस्करण, श्लोक १४।

३ महाभारत आदिपर्व, अध्याय ६३।

चोंच मे रखकर अपने देश की ओर भेज दिया। आकाश के सुदूर प्रान्त में उडते हुए श्येन को आकाशचारी 'चील' पक्षी ने देखा और उसके मुख मे मास खण्ड समझ कर वेगपूर्वक प्रहार किया, थोडे सघर्ष के उपरान्त ही श्येन की चोंच से वह पुटक सरिता मे जा पडा, एव नदी मे आते आते उसके दो भाग हो गये। उन दोनो भागो को एक मत्स्य ने आत्मसात कर लिया। द्विधा वीर्य ग्रहण करने के कारण उसके युगल सन्तति उत्पन्न हुई। धीमरो ने मत्स्य के उदर से युगल सन्तति ग्रहण कर पुत्र का मत्स्य एव कन्या का मत्स्य गन्धा नाम रखा।"

यही मत्स्य गन्धा पराशर की गान्धर्व विवाह की पत्नी बनी और उसने विश्व विश्रुत व्यास को जन्म दिया।

महर्षि वेद व्यास का जन्म भागीरथी के तट पर माना जाता रहा है। पुराणो मे गँगा के साथ कालिन्दी का भी उल्लेख है, वाराह पुराण में 'कृष्ण गगा' स्थान व्यास की तपोभूमि कहा है।[1] यह तीर्थ अद्यावधि, सोमतीर्थ तथा वैकुण्ठ तीर्थ के मध्य मे माना जाता है। यहाँ से थोडी दूर ही छादेरी ग्राम है जो मच्छोदरी का निकटतम अपभ्रंश है। मत्स्योदरी यमुना मे रहती थी और वही पराशर मुनि ने उसमे गर्भ स्थापित किया एव उसके प्रतिक्षण निषेध करने पर भी यह कृत्य कर उसे पुन कन्या अवस्था प्राप्त होने का तथा विश्व-विख्यात पुत्र प्राप्त होने का वरदान दिया।[2]

मत्यवती गर्भवती हो गई और उसने यमुना द्वीप मे काम के समान सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, जन्म लेते ही व्यास चल दिये, माता के आग्रह करने पर कहा कि तुम्हे जब भी कोई कार्य हो मेरा स्मरण करना।[3]

१- सोम वैकुण्ठयोर्मध्ये कृष्णगंगेति कथ्यते
तत्रातप्यत्तपो व्यासो मथुरायां स्थितोऽमलः ॥
(वाराह पुराण, अध्याय १७५)

२- एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन् पाराशरो मुनिः
आजगाम महातेजा कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥
कामार्तस्तु मुनिर्जातो... ....
सापि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती
सुषुवे यमुना द्वीपे पुत्रं काममिवापरम् ॥
(देवी भागवत, स्कन्द २, अ० २, श्लोक ३३-३७)

३- स्मर्तव्योऽहं सदा कार्यमागमिष्यामि भामिनि ॥
इत्युक्त्वान्तर्यंयो व्यासः सापि पित्रान्तिके गता ॥
(उपर्युक्त श्लोक ३८)

(आ) व्यास का समय :

श्रीमद्भागवत के रचयिता वेदव्यास का जन्म कब हुआ यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता तथापि यह निश्चित है कि व्यास द्वापर युग मे थे। इस द्वापर युग को व्यतीत हुए ५०६७ वर्ष हुए हैं इसके पूर्व व्यास का जन्म हुआ था। भागवत के टीकाकार भी द्वापर युग मे व्यास का जन्म स्वीकार करते है तथापि कतिपय टीकाकार त्रेता युग मे भी इनका जन्म सिद्ध करते है। त्रेता युग मानने वाले टीकाकार श्री राधारमणदास गोस्वामी हैं। इन्होने 'भावार्थ दीपिका दीपनी' नामक टीका मे त्रेता युग का अवसान काल व्यास जन्म माना है —

"तृतीयत्व कलिमादाय वैंपरीत्येन गणनया त्रेता युगावसाने"[1]

बुधरजनी टीकाकार ने त्रेता तथा द्वापर की सन्धि स्वीकार की है, इनका मत भी दीपिनीकार ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए उद्धृत किया है।[2]

रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार श्री वीर राघव ने एव मध्व सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने द्वापर युग का अन्त व्यास का जन्मकाल माना है।

"द्वापरे समनुप्राप्ते तत्रापि तृतीयेऽस्य युगस्य पर्यायेऽवसाने पराशराद्पेवसिव्यामुपरिचर वसु वीर्य जाताया सत्यवत्या...... व्यास जात ॥"[3]

यह निश्चय आचार्य वल्लभ, आचार्य विश्वनाथ, तथा आचार्य शुकदेव ने भी अपनी अपनी टीकाओ मे किया है।

वस्तुत व्यास का जन्म द्वापर मे ही सगत है, क्योकि धर्म की द्विपरता मे व्यास का जन्म माना जाता है, धर्म की द्विपरता द्वापर मे ही होती है।

---

१. दीपनी १।४।१४.

२ परिवर्त समाप्ति काले सन्धावित्यर्थ : । इति बुधरंजनी (दीपनी—१।३।१४-२१)

३ (क) भागवत चन्द्रचन्द्रिका-१।४।१६.

(ख) "कृतयुगापेक्षया तृतीये द्वापरे-युगे युग पर्यवसाने . ... अतोद्वापरे युगपर्यवसाने भागवत प्रवृत्ति. । (पद रत्नावली १।४।१६)

(ग) ब्रह्म कल्पस्यप्रथममन्वन्तरस्य तृतीय युग पर्यावृत्तौ व्यासस्य जन्म .. .... कृते त्रेतायां न जन्म किन्तु धर्मस्यद्विपरतायां सन्देहे सर्वेषामेव सन्देह। (सुबोधिनी १।४।१६)

इस विभिन्न विवेचन का कारण भागवत का वह श्लोक है जिसमे समास द्वारा कई अर्थ निकाले गये है।[1] देवी भागवत मे भी द्वापर मे व्यास जन्म का उल्लेख है।[2]

त्रेता युग का अवसान माननें से महाभारत के वाक्य से विरोध आकर पडता है, क्योकि ६०० वर्ष के व्यास के द्वारा धृतराष्ट्र का जन्म होना लिखा गया है। अतः द्वापर के ६०० वर्ष पूर्व एवं आज से (स० २०२३ से—६०० + ५०६७)=५६६७ वर्ष पूर्व आषाढ शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को हुआ था, यह निश्चित है। ब्रज मे आषाढी पूर्णिमा को व्यास का जन्म महोत्सव मनाया जाता है।

(इ) शिष्य परम्परा :

महर्षि व्यास के अगणित शिष्य होंगे किन्तु उनके रचित श्रीमद्‌भागवत पुराण के अनुसार उनके वेद विभाग के शिष्य थे—१ पैल, २. जैमिनि, ३ वैशम्पायन, और ४. सुमन्तु। इनमे पैल ऋग्वेद के, जैमिनि सामवेद के, वैशम्पायन यजुर्वेद के, सुमन्तु अथर्ववेद के शिष्य थे। व्यास ने एक वेद की चार शाखाएँ की और उन्हे उक्त विद्वानो को पढाई।[3]

इतिहास एव पुराण के शिष्य रोमहर्षण सूत थे।[4] द्वादश स्कन्ध मे पौराणिक ६ शिष्यो का भी उल्लेख है[5] —

१. त्र्य्यारुणि २ काश्यप ३. सावर्णि ४. अकृतव्रण ५. वैशम्पायन ६ हारीत।

---

१. द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः। (भागवत १।४।१६)

२. द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हित काम्यया ॥ (देवी भागवत १।३।१८)

३. तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कवि।
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥
अथर्वांगिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः।
(भागवत १।४।२१–२३.)

४. इतिहास पुराणानां पितामेरोमहर्षणः। (भागवत १।४।२३)

५. त्र्य्यारुणिः काश्यपश्चसावर्णिरकृतव्रणः।
वैशम्पायनहारीतौषड्वैपौराणिका इमे ॥ (भागवत १२।७।५)

(ई) कृतियां :

महर्षि व्यास ईश्वर के अवतार माने जाते है, अत उनकी रचनाओ के परिमाण को एक व्यक्ति की कृति मानकर सशय करना निर्मूल है। ब्रह्मसूत्र, अष्टादश पुराण और महाभारत उनकी प्रसिद्ध कृति है।

"अष्टादश पुराणाना कर्ता सत्यवती सुत ।"

वाक्य से एव विभिन्न पुराणो मे उपलब्ध उनके नाम से उनका कर्तृत्व सिद्ध है।[1] इनमे न केवल वेदव्यास के नाम अपितु उनके विषय मे भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

देवी भागवत मे २७ व्यासो के नामोल्लेख पूर्वक अट्ठाईसवे द्वापर के व्यास को ही १८ पुराण निर्माता लिखा है। यद्यपि कतिपय उपपुराण भी व्यास की रचना कहे गए हैं तथापि भागवत मे अष्टादश पुराणो का ही उल्लेख है, उपपुराण या अधिपुराणा का नही।

पुराणो के नाम निम्नलिखित है[2] :—

ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, लिंग, गरुण, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कौर्म, ब्रह्माण्ड।

इन पुराणो मे पूर्वापर रचना किसी भी प्रकार निश्चित दिशा या सकेत नही देती क्योंकि सभी पुराण ग्रन्थ सभी पुराणो मे उपलब्ध है। व्यास ने कई बार इनका सशोधन भी किया था।

१९—महाभारत—इसके बारे मे प्रसिद्ध है कि यह 'महाभारत युद्ध'

---

१. पद्मपुराण सृष्टि खण्ड भाग १, पृष्ठ ३,
ब्रह्म पुराण, अध्याय २६, ब्रह्म वैवर्त पुराण १।१०।६,
कूर्म पुराण, अध्याय ५१,
देवी भागवत १।४, सभी मोर प्रकाशन कलकत्ता।
विष्णु पुराण, अंश ३—गीता प्रेस गोरखपुर १९६० ई०।
शिव पुराण, अध्याय ६४—ज्ञान सहिता, मुम्बई।
भविष्य पुराण १।१।१—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।

२. भागवत १२।७।२३-२४
मद्वय-भद्वय-चैव-ब्र-वय-ब-चतुष्टयम्
अना-प-लिंग-कूस्कानि पुराणानिप्रचक्षते। (देवी भागवत १।३।२)

के पश्चात ३ वर्षों मे लिखा गया था ।[1] इस महाभारत के विषय मे भी मतैक्य नही है । 'जयनामेतिहासोऽय'[2] से ज्ञात होता है कि प्रथम जय नामक ग्रन्थ लिखा गया था—

'नारायणं नमस्कृत्य ...... जयमुदीरयेत्' (भागवत १।२।४)

भागवत भी जय की पुष्टि करता है । उसके उपरान्त 'भारत' का उल्लेख है तथा सर्वाधिक गौरवशाली होने के कारण इसका नाम महाभारत पडा—'महत्वाद्भारवत्वाच्चमहाभारतमुच्यते ।' महाभारत का एक अ श ही इतना प्रसिद्ध है कि जिसकी कोटि का भारत मे कोई द्वितीय ग्रन्थ नही ठहरता, वह ग्रन्थ है—श्रीमद्भगवद्गीता, जो उपनिषदो का सार है एव भगवान श्रीकृष्ण के मुख से नि सृत होने के कारण और भी गौरवशाली है ।

२०–ब्रह्मसूत्र—भारतीय वाङ्मय मे ब्रह्मसूत्रो का अपना एक विशिष्ट स्थान है । समस्त सस्कृत साहित्य अध्यात्मपक्ष मे तब तक प्रामाणिक कोटि मे नगण्य है जब तक ब्रह्मसूत्रो से पुष्ट नही होता ।[3]

भारत के प्रसिद्ध सम्प्रदायाचार्य अपनी सम्प्रदाय का महत्व ब्रह्मसूत्र प्रमाण द्वारा ही स्वीकार करते हैं । समस्त दर्शन इनसे अनुप्रमाणित है । इनकी सख्या ५०० से अधिक है । आचार्य विजयध्वज ने वेदार्थ निर्णय के लिए इनकी रचना स्वीकार की है ।[4]

२१-व्यास स्मृति[5]—व्यास के नाम से एक स्मृति भी उपलब्ध है ।

(ख) श्रीमद्भागवत :

(अ) निर्माण हेतु :—

श्रीमद्भागवत वैष्णवो का परम धन है श्रीधर स्वामी इसमे ज्ञान की

---

१ त्रिभिर्वर्षे सदोत्थायीकृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
कृतवान् भारताख्यानं... ... .॥ (महाभारत १।६२।५२)

२. महाभारत उद्योगपर्व १३६।१९

३. वैदिक कोश–ले० भगवद्दत्त, प्रथम भाग (भूमिका) पृष्ठ २५ में व्यास को ब्रह्म सूत्र रचयिता माना है ।
ब्रह्मसूत्रो का तुलनात्मक अध्यन, पृष्ठ १४ में ब्रह्मसूत्रकर्ता तथा पुराण कर्ता व्यास पृथक् लिखा है ।

४. "अथ...............वेदस्तदर्थं निर्णयेच्छुर्विरचित ब्रह्म सूत्रः ।
(पदरत्नावली १।१।१)

५. स्मृति सन्दर्भ—मनसुखराय मोर प्रकाशन, कलकत्ता ।

महत्ता भी स्वीकार करते है।[1] इसकी रचना वेदव्यास की आत्मा को शान्ति प्राप्त करने के हेतु हुई थी।[2] सग्रह पुराण एव महाभारतादि की रचना करने से भी व्यास के चित्त मे अशान्ति ही बनी रही तब उनके समीप देवर्षि नारद आये और उन्होंने श्रीकृष्ण की महिमा का प्रतिपादन किया।[3] इससे यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत आत्म-शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन हैं।

सासारिक बन्धनो से निवृत्त करने वाले अन्य शास्त्र भी अपना महत्व रखते है किन्तु उनके अध्ययन का अधिकार अधिकारी विशेष को दिया गया है, एक भागवत शास्त्र ही सबके लिए समान भाव से सुलभ है, उत्तम, मध्यम अधम त्रिविध प्रकार के अधिकारी इसकी रसमयी, आनन्दमयी कथाओ का पान कर सकते हैं। इस विषय मे नारद द्वारा अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त वर्णन का प्रसग भी महत्व पूर्ण है, क्योकि नारद स्वय पूर्व जन्म मे एक दासी के पुत्र थे केवल भगवान की कृपा के कारण ही वे द्वितीय जन्म मे ब्रह्मा जी के पुत्र बने।[4]

श्रीमद्भागवत के टीकाकार उपर्युक्त मूल प्रसग की प्रमाणिकता स्वीकार करते हुए भी अन्य हेतुओ का उल्लेख करते हैं।

जीवगोस्वामी श्रीमद्भागवत की रचना ब्रह्म सूत्रो का रहस्य स्फोटन के लिए मानते है और व प्रमाण भी प्रस्तुत करते है—'श्री मद्भागवत ब्रह्म-सूत्रो का अर्थ है भारत के अर्थ का निर्णायक है तथा गायत्री का भाष्य एव वेदार्थ का विस्तार है—

"अर्थोऽय ब्रह्मसूत्राणा भारतार्थ विनिर्णय
गायत्री भाष्यरूपोऽसौवेदार्थ परिबृ हित ।"

ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेपामकृत्रिम भाष्य भूत इत्यर्थ । पूर्वं सूक्ष्मत्वेन मनस्याविर्भूत तदेव सक्षिप्य सूत्रत्वेन पुन प्रकटितम् पश्चाद्विस्तीर्णत्वेन साक्षाच्छ्रीभागवत-मिति।[5]

श्री वीरराघवाचार्य ने वेदान्तार्थ उपबृ हणात्मक श्रीमद्भागवत को माना है।[6]

---

१ भावार्थ दीपिका १।१।१। २. भागवत १।४।२७–३१।
३ भागवत १।२।६। ४ भागवत १।५।१०–२७
५ तत्वसन्दर्भ, पृष्ठ ४८।
६. 'वेदान्तार्थोपबृंहणात्मक' श्रीमद्भागवताख्यपुराणमत्र चिकीर्षु'
(भागवत च० च० १।१।१)

मध्व सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने वेदान्तार्थ का विस्तार मानते हुए यह भी लिखा है कि ब्रह्म सूत्रों के अध्ययन का अधिकार सर्वसाधारण को सुलभ नही था, अत इस भागवत पुराण की रचना की गई ।[1]

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य वल्लभ एव गौडीय सम्प्रदायाचार्य विश्वनाथ, निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य शुकसुधी ने 'भक्ति की श्रेष्ठता' ज्ञापन हेतु इस ग्रन्थ रत्न की रचना स्वीकार की है । राधामोहन तर्कवाचस्पति ने श्रीमद्‌भागवत का निर्माण परमार्थ साधन सिद्धि के लिये लिखा है ।[2]

श्रीमद्‌भागवत की रचना के हेतुओ मे यह भी लिखा गया है कि सत्रह पुराण की रचना के उपरान्त भी व्यास महर्षि का चित्त अशान्त बना रहा, यहाँ यह सशय उत्पन्न होता है कि श्रीमद्‌भागवत मे पुराणो की गणना मे इसे दोनो प्रकार से उल्लिखित किया गया है, सत्रहवें के पश्चात् तथा पाँचवे एव आठवें स्थान पर भी । अत यह पुराण गणना क्रमानुसार किस सख्या पर है यह विचार आवश्यक है ।

पद्मपुराण के अनुसार यह अठारहवा पुराण है क्योकि वहा स्पष्ट निर्देश है कि 'सप्ताह पारायण' के समय वहाँ सत्रह पुराण भी आये थे—

वेदान्तानि च वदाश्चमन्त्रास्तन्त्राणि सहिता
दशसप्त पुराणानि षट्शास्त्राणि समाययु ॥[3]

श्रीमद्‌भागवत मे इसके विभिन्न सख्याओ पर उल्लेख उपलब्ध है । इस प्रकार के उल्लेखो से शका होना स्वाभाविक है, एक ही वक्ता के मुख स विभिन्न संख्याओ का निर्देश क्यो ?—

"दश सप्त पुराणानि कृत्वासत्यवती सुत ।"

भागवत के उक्त श्लोक को अधिक महत्व दिया जाता है तथापि भागवत के ही द्वादश स्कन्ध मे इसे पाँचवीं सख्या पर लिखा गया है—ब्रह्म, पद्म,

---

१. "अथ कलिमलापन्नेषु ... . विभक्तवेदस्तदर्थनिर्णयेच्छुर्विरचित ब्रह्मसूत्रः स्तदनधिकारि जनापवर्गायप्रकाशित पुराण सहितो ।"
(पद रत्नावली १।१।१)

२ दीपिका दीपनी १।१।१ मे उद्धृत वाक्य ।

३ पद्मपुराण भागवत माहात्म्य, अध्याय ३, श्लोक १५ ।

वैष्णव, शिव तथा भागवत ।[1] इसे आठवी सख्या पर भी गिना गया है, अत इसकी सख्या के बारे मे निश्चित कहना कठिन है । यदि इसे पाचवा या आठवा पुराण मान भी लिया जाय तो अन्य उन पुराणो की सख्या जो इसके पश्चात् के है किस प्रकार उल्लिखित की गई । केवल ५ या ८ पुराणो की श्लोक सख्या ही इसमे उपलब्ध होती । यदि १८वा पुराण पद्म पुराण के आधार पर मानें तो भागवत के श्लोक प्रमाण से युक्त नही ।[2]

यदि भागवतोक्त द्वादश स्कन्ध मे पुराण क्रम की उक्ति सूत की मान ली जाय तो द्वादश स्कन्ध एव प्रथम स्कन्ध के शतश श्लोक निकल जायगे, फलत अष्टादश सहस्त्र सख्या की पूर्ति नितान्त कठिन हो जायगी ।

व्यास की रचनाओ मे पूर्वापर निर्णय अत्यन्त क्लिष्ट है । सभी पुराणो में प्रायः सभी पुराणो के नाम प्राप्त होने से यह समस्या और भी कठिन बन जाती है ।

ज्ञात होता है कि व्यास एक के साथ अन्य रचना भी प्रारम्भ कर देते थे तथा एक के पश्चात् दूसरी कृति का सशोधन भी करते रहते थे । अत प्रारम्भ मे उन्होने भागवत् निर्माण का विचार किया और उसे सक्षिप्त रूप से बना दिया तदनन्तर अन्य पुराणो मे उसका उल्लेख किया एव अन्य पुराण पूर्ण होने के उपरान्त अठारहवी सख्या वाले इस विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण किया हो । हम इसे व्यास की अन्तिम कृति कह तो कोई विसवाद नही होना चाहिये ।

(आ) रचना काल :

वर्तमान समय मे उपलब्ध श्रीमद्भागवत पुराण अत्यन्त प्राचीन है तथापि कतिपय विद्वान् इसे १३वी शताब्दी के आसपास की रचना मानते है । नीलकण्ठ शास्त्री ने इसे वोपदेव की कृति लिखा है ।[3]

---

१ ब्राह्मं दश सहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टि च ।
श्रीवैष्णव त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥
दशाष्टौ श्रीभागवत नारद पंचविंशति. ... .॥ (भाग० १२।१३। ४-५)

२ एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ८, पृष्ठ ४६७ ।

३ (क) देवीभागवत उपोद्घात मे स्पष्ट लिखा है कि—
"द्वितीयंक पक्षेक देशिनोऽपि विष्णु भागवत वोपदेव कृतमिति वदन्ति ।"
(ख) पुराण विमर्श, पृष्ठ ११६ ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ में न केवल इसे आधुनिक माना है अपितु इसका रचयिता भी प्रसिद्ध विद्वान् वोपदेव को स्वीकार किया है, यह स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रन्थ व्यास की रचना नहीं है।[1]

किन्तु यह निर्मूल है क्योंकि उस ग्रन्थ में वोपदेव को गीतगोविन्दकार जयदेव का भाई माना है। परन्तु वोपदेव के पिता का नाम केशव वैद्य था, जब कि जयदेव के पिता का नाम भोजदेव था। जयदेव बंगाली ब्राह्मण थे। धातु पाठ में वोपदेव ने केशव को वैद्य लिखा है।[2] अत वोपदेव तथा जयदेव कथमपि भाई नहीं थे। वोपदेव हेमाद्रि के समकालीन थे, हेमाद्रि महादेव के मन्त्री थे, इनका राज्य समय १२६०-१२७१ ई० माना गया है।

हेमाद्रि के लिये वोपदेव ने तीन ग्रंथ भी रचे थे —

(१) परमहंस प्रिया (२) हरि लीला (३) मुक्ताफल।
ये तीनों ग्रन्थ भागवत पर लिखे गये हैं। हेमाद्रि ने वोपदेव कृत 'मुक्ताफल' नामक ग्रन्थ की टीका भी की थी जिसे 'कैवल्दीपिका' कहते हैं। हेमाद्रि ने वोपदेव को भागवत का कर्ता नहीं लिखा यदि इन्होंने भागवत का निर्माण किया होता तो अवश्य हेमाद्रि उल्लेख करता। हेमाद्रि ने वोपदेव के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वोपदेव ने व्याकरण के १०, वैद्यक के ९ और तिथि निर्णय का १ तथा साहित्य के ३ एवं भागवत तत्व के ३ ग्रन्थ लिखे थे।[3] उक्त प्रमाण से भागवत की प्राचीनता सिद्ध होती है, क्योंकि हेमाद्रि ने लिखा है कि वोपदेव ने भागवत तत्व बोधनार्थ तीन ग्रन्थों का प्रणयन किया था। अतः बर्नाफ, विलसन आदि पाश्चात्य विद्वान् जो श्रीमद्भागवत पुराण को १३वीं

---

१ सत्यार्थ प्रकाश, उल्लास ११, पृष्ठ ३३५।

२ विद्वद्धनेशशिष्येण-भिषक् केशव-सूनुना।
तेन वेद पदस्थेन वोपदेव द्विजेन च ॥ (पुराण विमर्श, पृष्ठ ११७)

३ यस्य व्याकरणे वरेण्य घटना स्फीताः प्रबन्धादश
प्रख्याता नववैद्यकेऽपि तिथि निर्धारार्थ मेकोऽद्भुतः
साहित्ये त्रय एव भागवततत्वोक्तौ त्रयस्तस्य च
भूगीर्वाण शिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः।
(श्रेय भागवतांक संख्या ७, पृष्ठ ११, वृन्दावन, संवत् १९९२)

शताब्दी की रचना मानते है, उनका मत निर्मूल सिद्ध हो जाता है।[1]

भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी का समय १२००-१२५० विक्रम के मध्य सर्वसम्मत है। इन्होने श्री चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है। चित्सुखाचार्य का समय नवम शताब्दी माना जाता है। चित्सुखाचार्य ने श्रीमद्-भागवत की टीका भी की थी। चित्सुखाचार्य शकर की परम्परा मे थे एव शकराचार्य का समय सप्तम शती का उत्तरार्द्ध है।[2]

शकराचार्य के कतिपय स्त्रोतो पर भागवत का स्पष्ट प्रभाव है, 'प्रबोध सुधाकर' आदि शकराचार्य की कृतियाँ मानी जाती है, उसमे कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन उपलब्ध है जो भागवत से अनुप्रमाणित है।[3] शकराचार्य ने इस लीला-वर्णन मे व्यास का उल्लेख भी किया है —

काऽपि च कृष्णायन्तीकस्याश्चित् पूतनायन्त्या'

अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायण प्राह।"[4] (प्रबोध सुधाकर)

फलत भागवत शकराचार्य से पूर्व रचित है, यह स्वत सिद्ध है।

आचार्य शकर के गुरु गोविन्द पाद थे और उनके गुरु गोडपादाचार्य। गोडपाद ने पचीकरण व्याख्यान मे 'जगृहे पौरुष रूप' इति भागवतमुपन्यस्तम् ऐसा लिखा है। उक्त श्लोक भागवत के १।३। का प्रथम श्लोक है।

गोडपाद ने उत्तर गीता मे भागवत के

'श्रेय सृति भक्तिमुदस्य ते विभो' भागवत १०।३०।१५

के श्लोक को उद्धृत किया है।[5]

अद्वैत सम्प्रदाय की किम्वदन्ती के अनुसार गोडपाद श्री शुकदेव मुनि के शिष्य थे।[6]

भागवत के अन्त साक्ष्य के आधार पर इसका अन्तिम रूप आज से ५०३७ वर्ष पूर्व माना जा सकता है। भागवत के तीन सस्करण हुए है, भागवत मे इन तीनो अधिवेशनो की चर्चा है।

शौनक ने सूत से इसकी चर्चा करते हुए तीन प्रश्न किए—

(१) यह भागवत गोकर्ण ने धुन्धकारी को कब सुनाई ?

---

१ सरस्वती भवन पुस्तकालय (संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी) मे बगाक्षरो मे लिखी हुई भागवत की प्रति विद्यमान है जो दशम शती मे लिखी गई मानी जाती है, यह प्रति बोपदेव से २०० वर्ष प्राचीन है। (पुराण विमर्श, पृष्ठ ११६)

२ पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ११६।

३ वही। ४ वही। ५ उत्तर गीता, अध्याय ३, श्लोक ४८।

६ वेदान्ताक—कल्याण, पृष्ठ ६३८ (भाग ११, अगस्त सन् १९३६)

(२) यह भागवत सनत्कुमार ने नारद को कब सुनाई ? तथा

(३) यह भागवत शुकदेव ने परीक्षित को कब सुनाई थी ?[1]

शुक परीक्षित सम्वाद—कृष्ण के भू-तल त्याग के ३० वर्ष उपरान्त गंगातट पर भाद्र पद नवमी से प्रारम्भ हुआ,[2] वर्तमान कलियुगाब्द ५०६७ है, यही कृष्ण के परम धाम प्रवेश करने की वर्ष संख्या है,[3] कृष्ण के ३० वर्ष उपरान्त यदि मानें तो ५०३७ वर्ष, भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष नवमी (सं०२०३३ में) के दिवस पूर्ण होंगे।[4]

कतिपय विद्वान् कृष्ण का ७५ वर्ष कलि में निवास मानते हैं, उनके अनुसार ५०११ वर्ष हुए।

श्रीमद्भागवत का द्वितीय संस्करण गोकर्ण द्वारा हुआ। यह संस्करण परीक्षित कथा श्रवण के २०० वर्ष उपरान्त हुआ था—

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौवर्षशतद्वये
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत् कथाम्।

(भागवत माहात्म्य ६।९६)

अर्थात् आज से ४८३७ वर्ष पूर्व द्वितीय संस्करण हुआ, इसकी आरम्भ तिथि आषाढ़ शुक्ल नवमी थी।

श्री सनत्कुमार ने गोकर्ण के प्रसंग के ३० वर्ष पश्चात् 'भागवत सप्ताह' नारद के लिए सुनाया था (अर्थात् आज से ४८०७ वर्ष पूर्व)[5]

चतुर्थ संस्करण सूतशौनक प्रसंग के कारण नैमिषारण्य में हुआ।[6] यह प्रसंग अधिक से अधिक १० वर्ष पश्चात् भी मानें तो ४७९३ वर्ष पूर्व और इस कथानक को व्यास जी द्वारा पुनः उपनिबद्ध किया माना जाय और ५ वर्ष का समय अधिक मान लें तो ४७८८ वर्ष पूर्व भागवत का वह रूप निश्चित

---

१ भागवत माहात्म्य ६।९४।

२. आकृष्णनिर्गमात् त्रिंशद्-वर्षाधिके गते कलौ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्। (भागवत माहात्म्य ६।९८)

३. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ (भागवत १२।२।३३)

४. पुराण तत्व समीक्षा—पृष्ठ १६४।

५. तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति
ऊर्जे शुक्ले नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ (भागवत माहात्म्य ६।९९)

६. नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। (भागवत १।१।४)

शताब्दी की रचना मानते हैं, उनका मत निर्मूल सिद्ध हो जाता है ।[1]

भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी का समय १२००-१३५० विक्रम के मध्य सर्वसम्मत है । इन्होंने श्री चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है । चित्सुखाचार्य का समय नवम शताब्दी माना जाता है । चित्सुखाचार्य ने श्रीमद्भागवत की टीका भी की थी । चित्सुखाचार्य शकर की परम्परा मे थे एव शकराचार्य का समय सप्तम शती का उत्तरार्द्ध है ।[2]

शकराचार्य के कतिपय स्त्रोतो पर भागवत का स्पष्ट प्रभाव है, 'प्रबोध सुधाकर' आदि शकराचार्य की कृतियाँ मानी जाती हैं, उसमे कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन उपलब्ध है जो भागवत से अनुप्रमाणित है ।[3] शकराचार्य ने इस लीला-वर्णन मे व्यास का उल्लेख भी किया है —

काऽपि च कृष्णायन्तीकस्याश्चित् पूतनायन्त्या'

अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायण प्राह ।''[4] (प्रबोध सुधाकर)

फलत भागवत शकराचार्य से पूर्व रचित है, यह स्वत सिद्ध है ।

आचार्य शकर के गुरु गोविन्द पाद थे और उनके गुरु गोडपादाचार्य । गोडपाद ने पचीकरण व्याख्यान मे 'जगृहे पौरुष रूप' इति भागवतमुपन्यस्तम् ऐसा लिखा है । उक्त श्लोक भागवत के १।३। का प्रथम श्लोक है ।

गोडपाद ने उत्तर गीता मे भागवत के

'श्रेय सृति भक्तिमुदस्य ते विभो' भागवत १०।३०।१५

के श्लोक को उद्धृत किया है ।[5]

अद्वैत सम्प्रदाय की किम्बदन्ती के अनुसार गोडपाद श्री शुकदेव मुनि के शिष्य थे ।[6]

भागवत के अन्त साक्ष्य के आधार पर इसका अन्तिम रूप आज से ५०३७ वर्ष पूर्व माना जा सकता है । भागवत के तीन सस्करण हुए है, भागवत मे इन तीनो अधिवेशनो की चर्चा है ।

शौनक ने सूत से इसकी चर्चा करते हुए तीन प्रश्न किए—

(१) यह भागवत गोकर्ण ने धुन्धकारी को कब सुनाई ?

---

१ सरस्वती भवन पुस्तकालय (संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी) मे शारदाक्षरों मे लिखी हुई भागवत की प्रति विद्यमान है जो दशम शती मे लिखी गई मानी जाती है, यह प्रति वोपदेव से २०० वर्ष प्राचीन है ।

(पुराण विमर्श, पृष्ठ ११६)

२ पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ११६ ।

३ वही । ४ वही । ५ उत्तर गीता, अध्याय ३, श्लोक ४८ ।

६ वेदान्ताक-कल्याण, पृष्ठ ६३८ (भाग ११, अगस्त सन् १६३६)

(२) यह भागवत सनत्कुमार ने नारद को कब सुनाई ? तथा

(३) यह भागवत शुकदेव ने परीक्षित को कब सुनाई थी ?[1]

शुक परीक्षित सम्वाद—कृष्ण के भू-तल त्याग के ३० वर्ष उपरान्त गंगातट पर भाद्र पद नवमी से प्रारम्भ हुआ,[2] वर्तमान कलियुगाब्द ५०६७ है, यही कृष्ण के परम धाम प्रवेश करने की वर्ष सख्या है,[3] कृष्ण के ३० वर्ष उपरान्त यदि माने तो ५०३७ वर्ष, भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष नवमी (स०२०३३ मे) के दिवस पूर्ण होंगे।[4]

कतिपय विद्वान् कृष्ण का ७५ वर्ष कलि मे निवास मानते है, उनके अनुसार ५०११ वर्ष हुए ।

श्रीमद्भागवत का द्वितीय सस्करण गोकर्ण द्वारा हुआ । यह सस्करण परीक्षित कथा श्रवण के २०० वर्ष उपरान्त हुआ था—

परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौवर्षशतद्वये
शुद्धे शुचौ नवम्या च धेनुजोऽकथयत् कथाम् ।

(भागवत माहात्म्य ६।८६)

अर्थात् आज से ४८३७ वर्ष पूर्व द्वितीय सस्करण हुआ, इसकी आरम्भ तिथि आषाढ शुक्ल नवमी थी ।

श्री सनत्कुमार ने गोकर्ण के प्रसग के ३० वर्ष पश्चात् 'भागवत सप्ताह' नारद के लिए सुनाया था (अर्थात् आज से ४८०७ वर्ष पूर्व)[5]

चतुर्थ सस्करण सूतशौनक प्रसग के कारण नैमिषारण्य मे हुआ ।[6] यह प्रसग अधिक से अधिक १० वर्ष पश्चात् भी मानें तो ४७९३ वर्ष पूर्व और इस कथानक को व्यास जी द्वारा पुनः उपनिबद्ध किया माना जाय और ५ वर्ष का समय अधिक मान लें तो ४७८८ वर्ष पूर्व भागवत का वह रूप निश्चित

---

१. भागवत माहात्म्य ६।८४ ।

२. आकृष्णनिर्गमात् त्रिंशत्-वर्षाधिक गतेकलौ ।
नवमीतो नमस्ये च कथारम्भंशुकोऽकरोत् । (भागवत माहात्म्य ६।८४)

३. यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ।। (भागवत १२।२।३३)

४. पुराण तत्व समीक्षा—पृष्ठ १६४ ।

५. तस्माद्दपिकलौप्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति
ऊर्जे शुक्ले सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ।। (भागवत माहात्म्य ६।८६)

६. नैमिषे निमिषक्षेत्र ऋषयः शौनकादयः । (भागवत १।१।४)

हो चुका था जो अद्यावधि प्राप्त है, इसके आगे भागवत रचना काल कथमपि संगत नही बैठ सकता ।

श्रीमद्भागवत में ही इस ग्रन्थ की दो परम्पराएं उपलब्ध होती है । द्वितीय स्कन्ध के अनुसार यह स्पष्ट है कि नारद ने व्यास को भागवत का उपदेश दिया था । एवं नारद को यह उपदेश ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था, तथा ब्रह्मा को 'भगवान' से ।[1]

तृतीय स्कन्ध के अष्टमाध्याय में संकर्षण ने सनत्कुमार को और उनसे सांख्यायन ने भागवत पुराण ग्रहण किया । सांख्यायन से पराशर ने और उनसे मैत्रेय ने, तब सूत ने । इस परम्परा में कृष्णद्वैपायन का नाम ही नहीं है ।[2]

दोनों परम्पराओं का क्रम निम्नलिखित है :—

प्रथम परम्परा	द्वितीय परम्परा
परमेश्वर	संकर्षण
ब्रह्मा	सनत्कुमार
नारद	सांख्यायन
व्यास	पराशर-वृहस्पतिः
शुकदेव	मैत्रेय
सूत	सूत

१. देवर्षिः परिपप्रच्छ······पुराणं दश लक्षणम् ।
प्रोक्तं भगवताप्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ॥
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामित तेज से ॥ (भागवत २।१०।४४)

२. प्रवर्तये भागवतं पुराणं
आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्वम् ॥ (भागवत ३।८।३)
सनत्कुमाराय स चाह पृष्ठः सांख्यायनायांग धृतव्रताय
जगावसोऽस्मद्गुरवेऽन्वितायपराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥
प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तोमुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यं
सोऽहं तवैतत् कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ (भागवत ३।८।६)

प्रथम परम्परा के वक्ता शुकदेव हैं। द्वितीय परम्परा के वक्ता–मैत्रेय।

दोनो परम्पराओ मे सूत का उल्लेख आवश्यक है क्योकि वे नेमिषारण्य मे शौनको के समक्ष भागवत कथा कह रहे हैं।

(इ) परिमाण

(१) स्कन्ध विमर्श

यद्यपि श्रीमद्भागवत एक अलौकिक महाकाव्य अथवा साहित्य की सुन्दरता का सर्वोच्च आदर्श है तथापि उसके परिणाम के विषय मे विसवाद है। ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रो द्वादश स्कन्ध सम्मित' के अनुसार इसम द्वादश स्कन्ध ३३५ अध्याय एव अष्टादश सहस्र श्लोक सख्या है। श्रीधर स्वामी ने एक श्लोक भागवत के परिमाण के लिये उद्धत किया है[1] —

श्रीमद्भागवतामिध सुरतरूस्ताराकुर सज्जनि
स्कन्धैर्द्वादशमिस्तत प्रविलसद्भक्त यालवालोदय
द्वात्रिंशत् त्रिशतच यस्यविलसच्छाखा सहस्राण्यल
पणा यष्टदशेष्टदोऽति सुलभो वर्वीति सर्वोपरि ॥ (भागवत १२।१३।६)

भी स्पष्ट इसके परिमाण का परिचायक है।

स्कन्ध विचार :—

वतमान श्रीमद्भागवत मे द्वादश स्कन्ध हैं एव उसके द्वादश स्कन्धो का ही उल्लेख सर्वत्र विसवाद रहित है। उसके लिये न तो कोई नियम ही है कि एक स्कन्ध मे कितने अध्याय हो और न यही कि एक महापुराण मे कितने स्कन्ध हो। पद्म पुराण स्कन्द पुराण आदि मे स्कन्धो का कोई महत्व नही वहा खण्डो मे उनका विभाजन किया गया है। अत स्कन्धो का क्रम निर्विरोध ही है। भागवत के स्कन्धो का अपना एक पृथक् वैशिष्ट्य है।

'पुराणर्को धुनोदित'[2] से भागवत को सूय की उपमा दी है, सूय द्वादश राशियो मे भ्रमण करता है भागवत के द्वादश स्कन्ध ही द्वादश राशि है। भागवत मे द्वादश स्कन्ध है और परम पुरुष द्वादशाग है। आचाय वल्लभ ने द्वादशाग भागवत का पुरुषत्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि भगवान की लीला

१. भावार्थ दीपिका १।१।१ मगलाचरण।
२. भागवत १।३।४४।

दशविध है—भागवत मे "अत्र सर्गो विसर्गश्च" द्वारा सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊती, मन्वन्तरेशानुकथा-निरोध मुक्ति तथा आश्रय का निरूपण भी माना गया है।[1] प्रथम स्कन्ध मे अधिकारी का निरूपण है एव द्वितीय स्कन्ध मे साधन का। ये भी लीलाओ मे गिने गये है। तृतीय स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध पर्यन्त सर्गादि लीलाएँ वर्णित की गई है। द्वादश स्कन्ध पुरुष के अङ्गो के कारण है—"द्वादशो वैपुरुष" यह श्रुति प्रमाण है। भागवत के अवयव एव पुरुष के अवयवो मे भेद हैं, क्योकि पाद,सक्थि,कटि,गुह्य, उदर, हृदय, कर, मुख, ललाट एव मूर्धा के क्रम से स्कन्धो का क्रम भिन्न है।

प्रथम स्कन्ध	द्वितीय स्कन्ध	पाद
तृतीय	चतुर्थ	कर
पचम	षष्ठ	सक्थि
सप्तम		एक कर
द्वादश		द्वितीय कर
अष्टम	नवम	स्तन
दशम		मध्य
एकादश		शिर – है।[2]

---

१. आनन्दरूपहरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधाहि सा
अत्रसर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्रहि
निरूप्य तस्मा स्कन्धा हि द्वादशैव न चान्यथा ॥
(तत्त्वदीप निबन्ध, भागवतार्थ, कारिका ३)

२ 'पुरुषे द्वादशार्थंहि तावत्यो बाहू शिरोंतरम्
हस्तोपादो स्तनो चैव पूर्वपादो करो ततः
तथयो हस्तस्तनावंको द्वादशाख्यापरः स्मृतः ॥४॥
वशिष्य हस्तः पुरुषो भक्तमाकारमानुष ।
तत्र भागवतं विकृत भिव भविष्यतोष्माञ्चन (हृष्टात्मेन प्रकृतोपयोगि कप
माह्-वशिष्य हस्त इति)
स्तनोभयं शिरश्चैव द्वादशाग तमूहंति ।
षाड्गो भगवान् भागवत करो भागमाङ्गोऽयं वर्णितः ॥
(तत्त्व दीप, भागवतार्थ ६-७)

आचार्य वल्लभ ने ऊँचे हाथ किये पुरुष के, आकर से भागवत के स्कन्धो का सामजस्य किया है। सुबोधिनी मे आचार्य ने प्रथम स्कन्ध को पीठस्थानीय एव द्वितीय-तृतीय स्कन्ध को चरणयुगल माना है।[1]

(७) अध्याय संख्या विमर्श :

श्रीमद्भागवत मे ३३५ अध्याय हैं। किन्तु टीकाकारो मे यह सख्या अनेक प्रकार से वर्णित है, कोई ३३२ अध्याय प्रामाणिक मानते है, कोई ३३१ कोई इससे भी अधिक।

श्रीधर स्वामी ने "द्वात्रिंशत् त्रिशतचयस्य०" के व्याख्यान में अपना कुछ अभिमत प्रकाशित नही किया। फलत कुछ टीकाकारो ने अपने अनुसार ३३२, कुछ ने ३२५ अध्याय भी इन्हीं वाक्यो से प्रमाणित किए है। श्रीधर स्वामी के पूर्व चित्सुखाचार्य ने भी पुराणार्णव का एक श्लोक उद्धत किया है, उसमे भी 'द्वात्रिंशत् त्रिशत' पद रखा है जो विवाद का विषय है।

स्कन्धा द्वादश एवात्र कृष्णेनविहिता शुभा ।
द्वात्रिंशत् त्रिशतपूर्णमध्याया. परिकीर्तिताः ॥[2]

रामानुज सम्प्रदाय के टीकाकार श्री सुदर्शन सूरी एव श्री वीर राघवाचार्य ने तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु प्रचलित होने के कारण टीका की है। 'कैश्चित् व्याख्यातत्वाच्च व्याख्यायते' यह लिख दिया है।[3]

उक्त टीकाकारो ने इस विषय पर किसी सख्या विशेष का प्रतिपादन नहीं किया। किन्तु ३३२ अध्याय ही माने हैं।

वोपदेव ने तो प्रत्येक स्कन्ध के अध्यायो की एक तालिका भी दी है, उनके अनुसार भागवत मे ३३१ अध्याय हैं —

अष्टादश, दश, त्रिंशतभ्यधिका नव विंशति ।
षड्विंशतिर्दश नव पचर्विंशतिस्त्रिमि.

---

१. प्रथम पीठतां स्कन्ध द्वय चरण युग्मताम्
चतुर्थादि कटौ नाभि वक्षो दोर्युग कण्ठताम् ॥
द्वादशंकादश शीर्ष मात्राविवमगात् क्रमात् ॥
(सुबोधिनी १०।१ कारिका १)

२ चित्रमय जगत- मराठी, मई १९१५ई० भागवत कथा सग्रह का उद्धरण।

३ (क) श्रीरामानुजपादाब्ज कृपासमनुरंजितः
पूर्वैः प्रक्षिप्तमध्यायत्रयमन्वर्थ मुच्यते ॥
(शुक पक्षीया १०।१२ प्रारम्भ)

(ख) भागवत चं० चं० १०।१२।

चतुर्भिश्चाथ नवतिरेकत्रिंशत् त्रयोदश
इति भागवतेऽध्याया एकत्रिंशच्छतत्रयम् ॥[1]

उक्त श्लोक के अनुसार अध्याय संख्या निम्न प्रकार है :

बोपदेव-स्कन्ध	अध्याय	अध्याय भागवतानुसार	अध्याय श्रीनिवासानुसार
प्रथम	१८	१९	२०
द्वितीय	१०	१०	१०
तृतीय	३३	३३	३४
चतुर्थ	२९	३१	३१
पंचम	२६	२६	२४
षष्ठ	१९	१९	१९
सप्तम	१५	१५	१६
अष्टम	२३	२४	२२
नवम	२४	२४	२१
दशम	९०	९०	१०३
एकादश	३१	३१	३१
द्वादश	१३	१३	१३
	३३१	३३५	३४४

अपितु उन्होने प्रक्षिप्तता के हेतु पर विचार किया है। उनकी प्रथम आपत्ति का विषय है—

"एव विहारै कौमारै कुमार जहतुर्व्रजे" (भागवत १०।११।५९)

इसकी कथा समाप्त होने पर अघासुर वध के तीन अध्यायो की कथा पश्चात् जोड दी गई तथा संगति नही बैठती थी, अत तीन अध्यायो के पश्चात् "एव विहारै कौमारै"[1] की पुन आवृत्ति की गई है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि भागवतकार ऐसी भूल नही कर सकते।[2]

गौणीय वैष्णवाचार्य श्री सनातन गोस्वामी ने एक मार्मिक युक्ति दी है, वह यह है कि आचार्य प्रक्षिप्ताध्याय के बाद की चर्चा इसलिए प्रारम्भ करते है कि कृष्ण ने समस्त गोपियो एव गोओ का दुग्धपान कैसे किया ?[3]

उक्त त्रयाध्याय मे जब ब्रह्माजी द्वारा वत्सहरण की मान्यता दी जायगी तो अवश्य ही कृष्ण के अनेक रूप और दुग्ध-पान की बात माननी परमावश्यक होगी। अत आचार्यों ने इस पर खुल कर विवाद किया है। किन्तु मुक्ति को परम पुरुषार्थ मानने वाले वैष्णव ऋजु बुद्धी हैं और इसी भावना से कतिपय टीकाकारो ने—पूतना सद्गति प्रतिपादक छ श्लोक भी अप्रामाणिक माने थे। उक्त अध्यायत्रय प्राय सभी पुस्तको मे उपलब्ध है तथा प्राक्तन एव आधुनिक सत्सम्प्रदायानुयायी श्रीधर स्वामी प्रभृति महानुभावो ने भी इसकी व्याख्या की है, अत प्रक्षिप्त मानना उचित नही है।

---

१. भागवत १०।१४।६१।

२ भागवत दर्शन के लेखक ने दशम स्कन्ध के ८८,८९,९० अध्याय वल्लभ मतानुसार प्रक्षिप्त लिखे हैं, किन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र उपलब्ध नही होती।
(भागवत दर्शन, पृष्ठ ६४)

३ केचित्तत्त्ववादिनो वैष्णवा. मुक्तेरेव परम पुरुषार्थतां मन्यमाना ऋजुबुद्धयोऽत्रासु मुक्ति गोपीस्तन्य पानादिकचासहमाना पूतना सद्गति प्रतिपादकं 'पूतना लोकबालघ्नी' त्यादि श्लोक षटकमिव, यएतत्पूतना मोक्षमिति-श्लोकमिव च विभीतमित्याहुः तच्चासंगतम्। बहु पुस्तकेषु दृश्यमानत्वात् तथा प्राक्तनैराधुनिकैश्च सत्साम्प्रदायिकै. श्रीधरस्वामिमिर्महद्भिरादृतत्वात्। तथा श्रीवृन्दावने 'अघासुरवध' शाद्वलजेमन-ब्रह्म-स्तुत्यादिस्थान-प्रसिद्धेश्च, किञ्च पद्मपुराणादौ तद् व्याख्यानं व्यक्त वर्तत एव, तथा वैष्णवप्रवरगन सिद्धान्तेनापि न विरुध्यत एव।
(बृहद्वैष्णव तोषिणी १०।१२ समा०)

जीव गोस्वामी ने अपने तर्क एव शास्त्रीय प्रमाणो द्वारा ३३५ अध्याय ही सिद्ध किये हैं।

(१) सर्वत्र देश म ३३५ अध्याय प्रसिद्ध हैं।

(२) वासनाभाष्य, सम्बन्धोक्ति, विद्वत्कामधनु शुकमनोहरा, परमहम-प्रिया, आदि भागवत की टीकाओ म तयाकथित अध्यायत्रय की व्याख्या उपलब्ध है।

(३) यदि किसी आचार्य की युक्ति सम्प्रदाय मे रूढ होने के कारण ही इन्हें प्रक्षिप्त सिद्ध करती है तो वे अन्य सम्प्रदायो की स्वीकृति पर स्वीकार क्यो नही कर लेते ?

इस प्रकार जीवगोस्वामी ने प्रबल शब्दो मे प्रक्षिप्त मानने वाले टीकाकारो की समालोचना की है।[१] अत भागवत मे ३३५ अध्याय ही मानने चाहिए।

श्री बलदेव विद्याभूषण ने भी अध्यायत्रय प्रक्षिप्त नहीं माने हैं। 'नवत्यामुनिनाध्यायै साश्चर्य या प्रकीर्तिता'[२] यदि प्रक्षिप्त ही मानते तो ९० अध्यायो का उल्लेख न करते।

(क) 'द्वात्रिंशत् त्रिशत' पद की व्याख्या बडे विस्तार के साथ राधारमणदास ने की है। उनकी टिप्पणी श्रीधर की कुन्जी कही जाती है। उन्होंने इस वाक्य की व्युत्पत्ति के द्वारा ३३५ अध्याय ही घोषित किये है।

"द्वाम्यामधिका त्रिशत् द्वात्रिंशत् शतच शतच शतच शतानि द्वात्रिंशच्च त्रयश्च शतानि च तेषा समाहार द्वात्रिंशत्त्रिशतम् एव सति पचत्रिंशदधिक शतत्रयाध्याया (३३५) भवन्तीति।[३]

(ख) गोस्वामी राधारमणदास ने अपने अर्थ की पुष्टि के लिए महा-महोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य कृत व्याख्या लेश टिप्पणी का उद्धहरण भी दिया है।

---

१. तत्र कारण न पश्याम सर्वत्र देशे प्रसिद्धत्वात् वासनाभाष्य" व्याख्यातत्वात् " तदीय स्वसम्प्रदायानगीकार प्रामाण्येन तस्याप्रामाण्य चेत् अन्यसम्प्रदायांगीकार प्रामाण्येन विपरीत कथ न स्यात ॥

(क्रमसन्दर्भ १०।१२)

२ वैष्णवानन्दिनी १०।१२।

३ दीपिका दीपिनी १।१।१।

(ग) अघासुर वध कथा न मानने वालो को कूप मण्डूक की उपाधि दी है।

"अहोऽस्मिपा मनोराज्य विजृम्भकाणा कूपमण्डूकाना साहस" शकालुओ ने ऋग्वेदीय मन्त्रभागवत, तथा बोपदेव का मुक्ताफल एव हरिलीला आदि ग्रन्थो का अवलोकन नही किया।[1]

(घ) मधुसूदन सरस्वती ने—'वत्सचोरब्रह्ममोहो ब्रह्मणास्तवनहरे' लिखा है। अत अघासुर वध प्रक्षिप्त नही है।

(ङ) नीलकण्ठ विद्वान् ने—'कृण्वति वसुपत्नी वसूनाम्' (ऋग्वेद मन्त्र भागवत १०-१४) मन्त्रो की व्याख्या मे दशम स्कन्ध के चतुर्दशाध्याय के ३०वें श्लोक के आगे के कई श्लोक लिखे है।

(च) 'त्रिशतम्' पद की सिद्धि व्याकरण द्वारा उचित नही बैठती। 'त्रिशती' प्रयोग वैसे बनेगा जैसे कि त्रिलोकी, पचशूली आदि प्रयोग समाहार द्वारा बनाये गये है। 'वस्तुतस्तु द्वात्रिशत्त्रिशतमिति पदान्तर्गत त्रिशतपदमेव न सिद्ध्यत् शतत्रय बोधनाय समाहार द्वन्द्वातिरिक्तान्यसमासाप्राप्त्या .... त्रिशतीति प्रयोगापत्ते।'

(छ) श्रीधर स्वामी को यदि तीन अध्याय प्रक्षिप्त अभीष्ट होते तो दशम स्कन्धीय प्रथमाध्याय मे ९० अध्यायो का उल्लेख न करते।

(ज) परमहस प्रिया आदि प्राचीन टीकाकारो ने तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त नही माना। अत भागवत मे ३३५ अध्याय हैं।

उक्त पक्ष मे दीपनीकार ने अनेक सबल प्रमाण रखे हैं किन्तु आचार्य वल्लभ के तर्क का समाधान इसमे नही हो पाया।

(३) श्लोक संख्या विमर्श :

'दशाष्टौ श्रीभागवतम्'[1] एव 'पर्णान्यष्ट दशेष्टदोऽति'[2] आदि प्रमाणो द्वारा भागवत मे पूर्ण अष्टादश सहस्र श्लोको की सख्या का निर्देश है। किन्तु वर्तमान भागवत पुराण मे कई हजार श्लोक कम हैं। जिनकी पूर्ति अनेक युक्तियो द्वारा की जाती है। अन्वितार्थ प्रकाशिका टीकाकार के अनुसार भागवत मे १४ हजार

---

१ भागवत १२।१३।५

२. भावार्थ बोधिका १।१।१

दो सौ चौसठ गद्य पद्य सख्या है।[1] श्लोक शब्द से ३२ अक्षरो का अनुष्टुप छन्द ग्रहण किया जाता था। हस्तलिखित पुस्तक प्रचार के युग मे लिपिको का पारिश्रमिक इसी गणना द्वारा दिया जाता था। उक्त सख्या को ३२ अक्षर से विभक्त करने पर १६ सहस्र दो सौ उनसठ ।।। सख्या आती है तथा गद्य मे कही कही शत से भी अधिक अक्षर हैं और उसकी सख्या एक है। इसी प्रकार बडे बडे छन्द भी है पर सोलह सहस्र सख्या उनके अक्षरो के जोड एव ३२ के भाग से उपलब्ध की गई है।

श्रीमद्भागवत की सम्प्रदायानुसार गणना से उवाचो को एक एक श्लोक मानकर तथा प्रत्येक अध्याय समाप्ति के गद्य के अक्षरो को आनुमानिक डेढ श्लोक मानकर अठारह सहस्र सख्या पूर्ण की जाती है। कुल योग मे उन्होने डेढ श्लोक कम माना है —

गद्य पद्य[2]	१४ २६४
गद्यपद्य से बने अनुष्टुपो की सख्या	१६,२५६।।।
उवाच सख्या	१,३२०
अध्यायान्त वाक्य (पुष्पिका)	४१८।।।
कुल योग	१७ ६६८।।

आठ टीका सस्करण मे—केवल राधारमणदास गोस्वामी ने श्लोक गणना प्रक्रिया के बारे म विचार किया है उन्होंने लिखा है[3] कि " " अष्टादश सहस्र श्लोक सख्या क्रमोऽय प्रत्येकम् उवाचान्त एकैक श्लोक आर्यादि

१ त्रिभूमिनागा, रसनन्दरामा, सार्द्धान् नृपेन्द्रा, भुजबाणशक्रा।
सार्द्धांगरामादि, मितागजेषु नागोन्मिता, सार्द्धशतकं शैल ॥
गजाग्नि नन्दा, श्चतुरद्रिगाब, स्त्र्यद्यकं रामा, नगशैल विश्वे।
सार्द्धांक षटपच च गद्य पद्य सख्यात् क्रमात् स्कन्धगतावगम्या ॥

स्कन्ध	१	२	३	४	५	६
श्लोक	८१३	३६६	१४७६।।	१४५२	७३६।।	८५८
स्कन्ध	७	८	९	१०	११	१२
श्लोक	७६०।।	९३८	९७४	३९७३	१३७३	५६९।।

कुल योग १४२६४ (अन्वितार्थ प्रकाशिका–भूमिका)

२. भागवत दर्शन, पृष्ठ ६४ मे १४,६१५ श्लोक लिखे हैं।

नानाविधच्छन्दसा गद्याना पुष्पिकाणाच ·· गणनैया ये अनुष्टुप् श्लोका भवन्ति ते प्रसिद्धानुष्टुप् श्लोकाश्चेति । काशीनाथोपाध्यायेन चण्डी सप्तशती पाठ क्रमेणापि सख्या परिगणिता इतितद् व्याख्याने स्पष्टम् ।

उक्त कथन द्वारा स्पष्ट होता है कि भागवत म अष्टादश सहस्र श्लोक सख्या पूर्ण नही है । परन्तु यदि विजयध्वजतीर्थ के पाठ को मिलाकर देखा जाय तो 'इति पुष्पिका के श्लोक बनाने का क्लिष्ट भ्रम स्वत दूर हो सकेगा । क्योकि विजयध्वज के पाठ मे लगभग ४५० श्लोक अधिक है ।[1]

(ग) टीकाये एव टीकाकार

यद्यपि श्रीमद्भागवत की अनेक टीकायें है तथापि कुछ टीकायें अपना विशिष्ट स्थान रखती है उनम से कतिपय टीकाओ का अवलम्बन इस शोध प्रबन्ध क लिय किया गया है ।

(१) विशिष्ट ·

उपजीव्य टीका	टीकाकार
१ भावार्थ दीपिका	श्रीधर स्वामी

विशिष्टाद्वैत मत की टीकायें :

२ शुक पक्षीया	सुदर्शन सूरी
३ भागवत चन्द्रचन्द्रिका	वीरराघव
४ भक्त रजनी	भगवत्प्रसाद

द्वैत मत की टीकायें ·

५ पदरत्नावली	विजयध्वज
६ मन्दनन्दिनी	व्यास तत्वज्ञ
७ पदमुक्तावली	लिंगेरी श्रीनिवास
८ तात्पर्य विवरण	श्रीनिवास तीर्थ
९ भा० ता० नि० प्रबोधिनी	छलारी नारायणाचार्य
१० सज्जन हित	चेट्टी वेंकटाचार्य
११ मन्द बोधिनी	शेषाचार्य
१२ दुर्घट भाव दीपिका	सत्याभिनव
१३ भागवत तात्पर्य दीपिका	अनन्त तीर्थ
१४ भागवत तात्पर्य टिप्पणी	सत्यधर्मयति

१५. टि० विरोधोद्धार	पाथरी श्रीनिवास
१६ गूढार्थ दीपिका	धनपति सूरी

द्वैताद्वैतमत की टीकायें :

१७ (क) सिद्धान्त प्रदीपिका	शुकसुधी
(ख) भावार्थ दीपिका प्रकाश	वंशीधर
(ग) अन्वितार्थ प्रकाशिका	गंगासहाय

शुद्धाद्वैत मत की टीकायें :

१८ सुबोधिनी	वल्लभाचार्य
१९ टिप्पणी	गो० विट्ठलनाथ
२० सुबोधिनी प्रकाश	गो० पुरुषोत्तम
२१ बाल प्रबोधिनी	गो० गिरिधरलाल
२२ विशुद्ध रसदीपिका	किशोरी प्रसाद

अचिन्त्य भेद—मत की टीकायें :

२३ वृहद्वैष्णवतोषिणी	सनातन गोस्वामी
२४ वैष्णवतोषिणी	जीव गोस्वामी
२५ क्रमसन्दर्भ	"
२६ वृहत्क्रमसन्दर्भ	"
२७ सारार्थदर्शिनी	विश्वनाथ चक्रवर्ती
२८ वैष्णवानन्दिनी	बलदेव विद्याभूषण
२९ दीपिका दीपनी	गो० राधारमणदास
३० भाव भाव विभाविका	रामनारायण मिश्र

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त भी चित्सुख, मधुसूदन, केशव काश्मीरी भट्ट आदि के परिचय आदि के बारे में लिखा गया है तथापि उनकी पृथक् टीका प्राप्त न होने के कारण उक्त तालिका में उनका निर्देश नहीं किया है।

(२) सामान्य :

श्रीमद्भागवत की टीकायें एवं टीकाकार।[1]

---

१ उक्त तालिका में कतिपय टीका केवल नाम मात्र है, कतिपयों का उल्लेख कुछ टीकाओं में उपलब्ध है तथा कतिपय विशिष्ट स्थानों में सुरक्षित है। चित्सुखी-हनुमत-[illegible], आदि टीकायें केवल नाम्ना ही [illegible]।

टीका	टीकाकार
१. अन्वय	अप्प जी पंडित
२ अन्वय	चुक्कन पण्डित
३ अन्वय	वेंकट कृष्णा
४. अन्वयबोधिनी	कवि चूडामणि चक्रवर्ती (१५८० शाके)
५ अमृत तरगिणी	लक्ष्मीधर
६ अमृत तरगिणी	ज्ञानपूर्णमनि
७ आत्मप्रिया	नारायण
८. एकादश स्कन्ध सार	ब्रह्मानन्द भारती
९ एकादश स्कन्धसार सग्रह कान्तिमाला	विष्णुपुरी
१० कृष्णपदी	राघवानन्द मुनि
११. कृष्णवल्लभा	आनन्द चट्टोपाध्याय
१२ क्रम भाष्यव्याख्या क्रम सदर्भ	जीव गोस्वामी
१३ क्रोड पत्रराज	केशव भट्ट
१४. गणदीपिका	कृष्णदास
१५ चित्सुखी	चित्सुखाचार्य
१६. चूर्णिका	माधव
१७ चूर्णिका तात्पर्य	माधव
१८ चैतन्य चन्द्रिका	श्रीनाथ पडित
१९ चैतन्य मत चन्द्रिका	"
२० चैतन्य मत मजूषा	श्रीनाथ चक्रवर्ती
२१ जय मगला (रामानुजीय)	श्रीनिवासाचार्य
२२ जयोल्लास निधि	अप्पय दीक्षित
२३ टीकाकार सग्रह	उत्तम बोधपति
२४ तत्व प्रदीपिका	नारायण यति
२५. तत्व बोधिनी	
२६ तत्व बोधिनी तात्पर्य टिप्पणी	जनार्दन भट्ट (माधव)
२७ तामिल टीका	शंकर नारायण शास्त्री
२८. तोषिणी सार संग्रह	काशीनाथ
२९ न्याय मजरी	श्रुतिगीता व्याख्या
३०. पदयोजना (वल्लभीय)	बालकृष्ण दीक्षित

३१ पदयोजना	भवदास या भागवतदास
३२. पद्यत्रयी व्याख्या	सदानन्द विद्वान्
३३. परमहंस प्रिया	बोपदेव
३४. प्रकाश	श्रीनिवास
३५. प्रतिपदार्थ प्रकाशिका	सोमनाद्रि
३६. प्रबोधिनी	प्रहर्षणी
३७. प्रहर्षणी	
३८. प्रेममंजरी	रामकृष्ण मिश्र
३९ भक्त मनोरंजनी (गौडीय)	भगवतप्रसाद आचार्य
४०. भक्त रामा	वेंकटाचार्य
४१. भक्ति दीपिका	जातवेद
४२. भक्तिमनी	
४३. भागवत प्रसाद सार	श्रीहरि सूर
४४ भागवत कौमुदी	रामकृष्ण
४५. भागवत गूढार्थ रहस्य	भागवतानन्द गोस्वामी
४६. भागवत टिप्पणी (गौडीय)	राधामोहन शर्मा गोस्वामी
४७. भागवत तात्पर्य चन्द्रिका	वेंकट कृष्ण (माधव)
४८. भागवत तात्पर्य दीपिका	नृहरि (माधव)
४९. भागवत तात्पर्य निर्णय	श्री माधवाचार्य
५०. भागवत पुराण प्रकाश	प्रियादास
५१ भागवत पुराणार्क प्रभा	हरिभानु शुक्ल
५२. भागवत मंजरी	गौतम मूलचन्द्र शर्मा (मुद्रित)
५३ भागवत विवरण	
५४. भागवत विवृति	यदुपति आचार्य (माधव)
५५. भागवत व्याख्यालेश	गोपाल चक्रवर्ती
५६. भागवत सार	गोविन्द विद्या विनोद
५७ भागवत सारोद्धार	जयतीर्थ अवधूत
५८. भागवतार्थ तत्त्व दीपिका	कौण्डिन्य भाष्यकार सूरि
५९. भागवतार्थ दीपिका	चक्रपाणि
६०. भागवतार्थ रत्नमाला	
६१ भावना मुकुट	गुरु मुनि
६२ भाव प्रकाशिका	नरसिंहाचार्य
६३. भावमंदिरा	रामनारायण मिश्र

६४	भावार्थ दीपिका	ब्रह्मानन्द किंकर
६५,	भावार्थ दीपिका टीका	चैतन्य वन
६६	भावार्थ दीपिका प्रकाश	काशीनाथ उपाध्याय
६७	भावार्थ दीपिका भाव	शिव रमण
६८.	भावार्थ दीपिका स्नेह पूर्खी	केशवदास
६६	भावार्थ प्रदीपिका वा (श्री धरोक्तावशिष्टार्थ)	
७०	मुनि प्रकाश (भागवतात्पर्य टीकार्थ सग्रह)	वेद गर्भ नारायण (माधव)
७१	मुनिभाव प्रकाशिका	कृष्ण शुक (रामानु०)
७२	यादुपत्य विवृति	सत्य धर्मतीर्थ (माधव)
७३	रस मजरी (शेप पूरनी)	
७४	रास क्रीडा व्याख्या	
७५	रास पचाध्यायी प्रकाश	पीताम्बर
७६	वासनाभाष्य	
७७	विद्वत्कामधेनु	
७८	विवरणमणि मजूषा	
७६	विषमपद टीका	
८०	बुधरजिनी	वासुदेव
८१.	बोधसुधा	
८२	बोधिनीसार	
८३	शुक तात्पर्य रत्नावली	वीर राघव
८४	शुक भाव प्रकाशिका	सुन्दर राज सूरि
८५	शुक हृदया	श्रीक्रम सन्दर्भ
८६	शुक हृदय रजिनी	नरसिंह सुरि
८७	श्रुति श्रुति चन्द्रिका	वेंकट
८८	समर्थ प्रकाशिका	शकर
८६.	स्वार्थ प्रकाशिका	
६०.	सर्वोपकारिणी	
६१	सार सग्रह	ब्रह्मानन्द भारती
६२	सिद्धान्तार्थ दीपिका	वैष्णव शरण
६३	हनुमद्भाष्य	

(३) वैष्णव सम्प्रदाय :

आधुनिक इतिहासज्ञों का कथन है कि भागवत धर्म नवीन है। परन्तु

यह कथन अयुक्त है। क्योंकि भारतवर्ष मे यह धर्म गुरु शिष्य परम्परा के द्वारा अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। समस्त देश की जनता पर इसका व्यापक प्रभाव था और अब भी है। गौतम बुद्ध द्वारा प्रभावित भी इसे नही स्वीकार किया जा सकता क्योंकि बुद्ध पर उपरिचर वसु का प्रभाव था। यह भागवत धर्म का अनुयायी था।[1]

गीता जो आधुनिक मत से भी ई० पू० १४०० वर्ष बाद की नही मे भागवत धर्म का ही प्रतिपादन किया है।

भागवत धर्म मे नारायण और विष्णु उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गये, इनकी उपासना के अनुरूप विशिष्ट आचार पद्धति का निर्माण किया, यही पद्धति महाभारत मे सात्वत विधि के नाम से विख्यात हुई। इस विधि का प्रतिपादक शास्त्र पाचरात्र के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

इस पद्धति ने वैदिक विष्णु को उक्त धर्म का उपास्य स्वीकार किया तथा उक्त धर्म वैष्णव मत के नाम से विख्यात हुआ एव उसके अनुयायी वैष्णव कहलाये।

विष्णु परात्पर है, सर्व व्यापक एव वैकुण्ठ लोकवासी हैं। मुक्त जीवो के द्वारा सेव्य हैं, उक्त रूपो मे उनका वासुदेव या पर वासुदेव नाम भी स्वीकृत है, तथापि भागवत धर्म के सस्थापक वासुदेव कृष्ण उनके अवतार माने गये।

राम को भी विष्णु का अवतार माने जाने लगा। अवतारो के चरित्रो का भक्तो के द्वारा दिव्य लीला के रूप मे अनुभव किया जाने लगा। अतएव राम-कृष्ण के बाल्य चरित्रो का विकास हुआ। 'कृष्ण' गोपाल तथा गोपीजन वल्लभ के रूप मे प्रसिद्ध हुए। उक्त रूपो को न्यूनाधिक्य महत्त्व देने के कारण वैष्णव मत मे अनेक भेद हो गये।

एक पक्ष विष्णु को ही परात्पर एव विभिन्न अवतारो का मूल मानता मानता है तो द्वितीय पक्ष कृष्ण एव राम को ही मूल मानते है। इस प्रकार कई अवान्तर भेद हो जाने के कारण वैष्णव मत मे विभिन्न सम्प्रदायो का विकास हुआ, अत सभी सम्प्रदायो के तत्वसम्बन्धी सिद्धान्त तथा भक्ति भाव, दीक्षा, मन्त्र, वेश, क्रिया और पूजा पद्धति आदि आचार एक दूसरे से पर्याप्त भेद रखते हैं।

---

१ महाभारत शान्ति अध्याय ३३६, श्लोक १०।११।

२ 'ब्रह्मसूत्र वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन'—आचार्य रामकृष्ण, पृ० ७८।

चार सम्प्रदाय—वैष्णवों की 'चतु सम्प्रदाय, गद्दी प्रसिद्ध हैं'[1]।

(१) श्री सम्प्रदाय (२) ब्रह्म सम्प्रदाय
(३) रुद्र सम्प्रदाय (४) सनक सम्प्रदाय

श्री सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक रामानुज थे। ब्रह्म सम्प्रदाय के मुख्य मध्व है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी विजयध्वज ने भागवत पर 'पदरत्नावली' नामक टीका की रचना की है। रुद्र सम्प्रदाय में श्री विष्णु स्वामी एवं उनके पश्चात् श्री वल्लभाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। वर्तमान निम्बार्क सम्प्रदाय का सम्बन्ध सनक सम्प्रदाय से है। शुकसुधी ने सिद्धान्त प्रदीप नामक टीका लिखी है, जो निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्वों का निरूपण करती है।

वैष्णव वेदान्तवाद का ऐक्य—वैष्णव धर्म में प्रचलित कुछ ऐसे सिद्धांत हैं जिन्हें समस्त आचार्य स्वीकार करते है—

(१) जगत् की सत्यता और उसके उपादान की सत्यता।
(२) जीव का ज्ञानस्वरूप, जीव का नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व ब्रह्मवश्यत्व एवं बहुत्व।
(३) ब्रह्म सविशेष निर्दोष सकल कल्याण गुण सम्पन्न, परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, मोक्षप्रद, उपास्य, विशिष्ट दिव्यरूप सम्पन्न, दिव्यलोकाधिनायक रूप में वर्णित है।
(४) मोक्ष की प्राप्ति का उपाय भक्ति या शरणागति है, दिव्यलोक में भगवान् के नित्य दासत्व की प्राप्ति ही सर्वोत्तम मुक्ति है।
(५) कर्म, ज्ञान, योग आदि भक्ति के अंग हैं।
(६) माया ब्रह्म की शक्ति है।
(७) 'कार्यकारण सम्बन्ध' में परिणामवाद' की स्वीकृति है। 'विवर्त' को कोई स्थान नहीं है।
(८) उपाधि की स्वीकृति नहीं है।

मध्व के बिना अन्य आचार्यों का सिद्धांत—

(१) 'ब्रह्म का अभिन्ननिमित्तोपादान कारणत्व'

वल्लभ को छोड़कर अन्य सिद्धान्त—

(२) ब्रह्मजीव और जड़त्व का परस्पर स्वरूपतः भेद।

रामानुज वेदान्त.

टीकाकारों के अभिप्राय को जानने के लिए उनके मूल सिद्धान्तों का ज्ञान परमावश्यक है। उनकी टीकाओं में अपनी सम्प्रदाय की छाप पड़ी अस्पष्ट

1. ब्रह्मसूत्र वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २८।

रही अर्द्ध स्पष्ट प्रत्यक्ष भासित होती है। वीर राघवाचार्य ने अपनी टीका मे चिदचिद्विशिष्टवाद की स्थापना की है। रामानुज का वाद विशिष्टाद्वैत है। इस का शाब्दिक अर्थ है 'विशिष्टयोरद्वैत' अर्थात् विशिष्टकारक और विशिष्टकार्य का ऐक्य। 'सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म' कारण है 'स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म' कार्य है। यह वाद 'सत्कार्यवाद' को मानता है तथा तदनुसार कारणावस्थ ब्रह्म तथा कार्यावस्थ ब्रह्म के अद्वैत का प्रतिपादन करता है। ब्रह्म, जीव, जड जगत स्वरूपत परस्पर पृथक् है किन्तु जड चेतनात्मक वस्तु का अस्तित्व स्वतन्त्र नही, वह सर्वदा ब्रह्मायत है। ब्रह्म से पृथक् स्थित न मानकर उसे अपृथक् माना गया है, जड जगत ब्रह्म के द्वारा नियम्य धार्य और उनका शेष होने के कारण उसका शरीर है एव ब्रह्म उसकी आत्मा है। विशिष्ट ब्रह्म एक ही है, जब यह विशिष्ट ब्रह्म ससार रूप मे परिणित हो जाता है तब विशेषण स्थानीय जड और चेतन मे विकार आ जाता है, विकार चेतन मे नही जड मे आ जाता है। चेतन मे आने वाला विकार स्वरूप मे नही गुण से है। परन्तु विशेष्य या ब्रह्म मे स्वरूपत विकार आता है और न गुणत।

भिन्न भिन्न कार्य कारणावस्थाओ को धारण करने वाला ब्रह्म ही जो कि सर्वदा चिदचिद्विशिष्ट है कारण और कार्य है। फलत दोनो अवस्थाओ मे एक होने के कारण 'विशिष्टाद्वैत' है। कारणावस्थ ब्रह्म स्वय इच्छा से ही कार्यावस्था को प्राप्य करता है, अत वह 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' कहा जाता है।

रामानुजमत और भागवत :

स्वय श्री रामानुजाचार्य कृत भागवत टीका का क्वचित् उल्लेख नही मिलता। सम्भव है कि भागवत मे उनके उपास्य विष्णु या लक्ष्मी के स्थान पर श्रीकृष्ण की अतिशयिता के कारण वे टीका न कर सके हो।

भागवत भक्ति साधना की स्पष्ट छाप रामानुजाचार्य के सभी ग्रन्थो पर है। गद्यत्रय, गीताभाष्य तथा श्री भाष्य की शैली भागवत के अनुकूल है। उनके शिष्यो की रचनाओ मे श्रीमद्भागवत का महत्व प्रतिपादन हुआ है। वीरराघवाचार्य कृत टीका मे इस पुराण की अनेक टीकाओ का अस्तित्व स्वीकार किया है।[1]

---

१. श्रीमद्भागवतंपुराणम खिलंव्याख्यातुभिर्व्याकृतम्।
व्यासार्यैर्यतिराजभाष्यवचसामहंबुधानां मुदे॥
मन्दानामपिदृशामयमभाच्चाहृतया दर्शितं।
पन्थानं समुपाश्रितो विवृणुया मत्साहसं क्षम्यताम्॥
(भागवत चं० चं० १।१।१)

मध्व वेदान्त :

इस सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धात निम्नलिखित हैं[1] —

(१) ब्रह्म निमित्तकारण है, उपादान कारण नही है।
(२) इस वेदान्त का वाद 'द्वैत' है।
(३) स्वभावत ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का अद्वैत उक्त सिद्धान्त मे मान्य नही है।
(४) ब्रह्म, जीव और जगत् परस्पर भिन्न है।
(५) जीवो का परस्पर भेद है।
(६) इस सम्प्रदाय का विशिष्ट सिद्धान्त यह है कि मोक्ष मे भी जीवो मे परस्पर तारतम्य रहता है। क्योंकि साधन तारतम्य से मोक्षानन्द के अनुभव मे तारतम्य आवश्यक है।

मध्वाचार्य ने जगत् को स्पष्टतया प्रपच माना है। जगत् के पाच भेद एव उनकी सत्यता भी प्रमाणित की है। पदार्थों की सख्या दस—(द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशिष्ट, विशेष, अशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव) तथा द्रव्य पदार्थों की सख्या बीस—(परमात्मालक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्व, अहकार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माणु अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल, और प्रतिबिम्ब) मानी है।[2]

भगवान की चार शक्ति है—अचिन्त्य शक्ति आधेय शक्ति, पद शक्ति। अचिन्त्य शक्ति पर अधिक बल दिया है। पदरत्नावली टीका मे मध्व सम्प्रदाय व तत्वो का ही विवेचन किया है।

माध्व मत और भागवत :

यह विशुद्ध भक्तिवादी मत है। भागवत तात्पर्य निर्णय ग्रन्थ मे श्री मध्वाचार्य ने भागवत पुराण के रहस्यो का उद्घाटन किया है। मध्वाचार्य ने भागवत की महत्ता सिद्ध की है। इस पुराण को ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गायत्री एव वेद से सम्बन्ध बतलाया है।

मध्व कृत—यह 'तात्पर्य निर्णय' भागवत महत्व का परिचायक सभवत प्रथम ग्रन्थ है। इसमे भागवत के अधिकारी, विषय, प्रयोजन और फल विवेचन के अतिरिक्त उसके वर्ण्य विषय को श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, तथा तन्त्र मे

---

१. 'ब्रह्मसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन'—आचार्य रामकृष्ण, पृष्ठ २८
२ भागवत दर्शन, पृष्ठ १७२

सम्मत माना है।[1] इसी सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज ने 'पदरत्नावली' नामक टीका में भागवत धर्म का गौरव बढ़ाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया। भागवत वेदान्तार्थ प्रकाशिका है, यह सिद्ध किया है।[2]

निम्बार्क मत—

निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित है —

(१) इस सम्प्रदाय के वाद का नाम 'द्वैताद्वैत या स्वाभाविक भेदाभेद है।

(२) ब्रह्म, जीव, जड की स्वरूपतः विभिन्नता है।

(३) ब्रह्म से जीव का भेद अभेद स्वाभाविक है।

(४) ब्रह्म से जड़ का भेद अभेद स्वाभाविक है।

(५) 'कार्य कारण' का अद्वैत नहीं अपितु स्वाभाविक भेदाभेद है।

(६) कारण से कार्य भिन्न है तदापि स्वरूपस्थिति प्रवृत्तिक होने से वह कारण से अभिन्न है।

(७) ब्रह्म कारण है और चिद्चिदात्मक जगत् कार्य है। दोनों की स्वाभाविक भेदाभेद है। ब्रह्म अनन्त शक्ति युक्त है चित् और अचित् उसकी शक्तियाँ हैं। ब्रह्म चिद्चित् शक्तियों का विक्षेप या प्रसार कर अपने को चिद्चिदात्मक जगत् के रूप में परिणत करता है। इस प्रकार वह जगत का निमित्त कारण होने के साथ उपादान कारण भी है। शक्ति विक्षेप लक्षण परिणाम के फल-स्वरूप जो चिदचिदात्मक जगत् रूप कार्य निष्पन्न होता है वह अपने उपादान कारण ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी है। अतः स्वाभाविक भेदाभेद है। सारांश यह है कि निम्बार्क जड़ के समान जीव का भी ब्रह्म से स्वाभाविक भेदाभेद मानते हैं।

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ परिबृंहितः
पुराणानां साररूपः साक्षाद् भगवतोदितः
ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥
(भागवत तात्पर्य निर्णय, पृष्ठ ७८८)

अथ कलि मलापनुत्तये ... वेदान्तार्थ प्रकाशिका द्वादश स्कन्ध सम्मिताम् अष्टादश सहस्रश्लोकैः भागवत पुराण संहिता चिकीर्षुः बादरायण-निर्मितम्, भागवत धर्मार्थविषयोऽविस्तारतरोऽपि ... निस्तारोऽपि ... मारादम्बरम् अनुसरति॥ (पद रत्नावली १।१।१)

निम्बार्क के सिद्धान्तो का विवेचन उनकी दश श्लोकी मे हुआ है, उन का साराश यह है[1] —

(१) जीवात्मा विभिन्न शरीरो मे पृथक है, ज्ञानस्वरूप एव हरि पर आश्रित है।

(२) यह त्रिगुण युक्त तथा मायाबद्ध है, ईश्वर की कृपा से उसे प्रकृति का ज्ञान होता है।

(३) अप्राकृत, प्राकृत, काल ये तीन भेद अचेतन पदार्थो के है।

(४) कृष्ण सर्वदोष विनिमुक्त सर्वगुण सम्पन्न है।

(५) वृषभानुनन्दिनी कामनापूर्ण करने वाली है।

(६) अज्ञान से मुक्ति पाने के लिए भगवान की उपासना करनी चाहिए।

(७) ब्रह्म सत्य है, उसके त्रिविध रूप भी सत्य है।

(८) शिव आदि भी कृष्ण के चरणारविन्दो की उपासना करते है, कृष्ण की शक्ति अचिन्त्य है।

(९) कृष्ण की कृपा का अत्यन्त महत्व है। दैन्य भाव मे प्रेम रूप भक्ति मिलती है, यह दो प्रकार की है—परा तथा साधनरूपा।

(१०) उपास्य का रूप उपासक का रूप, कृपाफल भक्तिफल, तथा फल प्राप्ति के विरोधी ये ५ पदार्थ भक्तो को जानने चाहिए।

निम्बार्क मत तथा भागवत

रामानुज सिद्धान्त का इस सिद्धांत का मूलाधार नही माना जा सकता, रामानुजाचार्य ने प्रपत्ति की विशेषता का निरूपण किया है, निम्बार्क ने परमात्मा की कृपा तथा उसके प्रेम का प्राधान्य स्वीकार किया है।

रामानुज की भक्ति, नारायण, लक्ष्मी एव भू और लीला तक ही सीमित है।[2]

निम्बार्क ने कृष्ण और सखियो द्वारा परिवेष्ठित राधा को ही प्रधानता दी है। अत दोनो के सिद्धान्त मे पर्याप्त भेद है। इस सम्प्रदाय के भागवत टीकाकार शुकसुधी ने उक्त निम्बार्क के सिद्धान्तो को यथावसर भागवत टीका मे स्पष्ट किया है तथा श्रीमद्भागवत की महत्ता का गान भक्ति भाव से प्रेरित होकर किया है।[3]

---

१ दशश्लोकी—निम्बार्काचार्य। २ भागवतदर्शन, पृष्ट १८०।

३. अथ वेदान्तोपबृंहणार्थं ...... परब्रह्म परमात्मादि पदवाच्यस्य भगवतो मगसाधारण ध्यानेन लक्षणं वदन् परपक्षान् निराकरोति जन्माद्यस्येति।

(सिद्धान्त प्रदीप १।१।१)

शुद्धाद्वैत मत :

श्री वल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी टीका के परिपूर्ण ज्ञान प्राप्ति के लिए उनके सिद्धान्तो का ज्ञान परमावश्यक है। यद्यपि उनके सिद्धान्तो का विश्लेषण अणुभाष्य मे उपलब्ध है किन्तु सुबोधिनी टीका मे वे इतस्त निरुपित किए गये है। वल्लभ का मत शकराचार्य के मत से नितान्त भिन्न है तथा मध्व से अधिक साम्य रखता है। इनके मत जीव अणुरूप एव भगवान का सेवक है।

ब्रह्म सगुण है, तथा ब्रह्म ही जगत् का निमित्त कारण एव उपादान कारण है। गोलोकाधिपति कृष्ण ही परब्रह्म हैं एव वही जीव के सव्य है। जीवात्मा तथा परमात्मा दोनो ही शुद्ध हैं। इनके मतानुसार धर्म के दो पक्ष माने जा सकते हैं—(१) सिद्धान्त तथा (२) आचरण।

सिद्धान्त पक्ष मे वल्लभ-शुद्धाद्वैत वादी, ब्रह्मवादी, अविकृत परिणाम-वादी कहे जाते हैं। आचरण पक्ष मे उनका मार्ग कहलाता है।

"माया सम्बन्ध रहितम् शुद्धमित्युच्यते वुध'

यह उनके शुद्ध शब्द की व्याख्या है, इस वाक्य द्वारा ब्रह्म को माया सम्बन्ध रहित कहा है।

'कार्यकारण रूपहि शुद्ध ब्रह्म नमायिकम्'

की विस्तृत व्याख्या मे गिरिधर जी ने शुद्ध का निरुपण किया है।[1] ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया वल्लभ सम्प्रदाय की अपनी विशेपता है।[2] जडतत्व मे चित् और आनन्द दो धर्म तिरोभूत है, केवल सद्धर्म प्रकट है।

जीव—जीव मे सत् और चित् धर्म प्रकट है, 'आनन्द' तिरोभूत है। इस ब्रह्म का आनन्दाश अन्तरात्मा रूप से प्रत्येक जीव मे है।[3]

कृष्ण ही सचिदानन्दात्मक है—

'परब्रह्म तु कृष्णोहिसच्चिदानन्दक बृहत्'[4]

भगवान की इच्छा मे ही 'जीव' के ६ ऐश्वर्यादि गुण हो जाते हैं—

---

१ शुद्धाद्वैतमार्तण्ड, श्लोक २८।

२. 'आविर्भावतिरोभावं. ......' (तत्वदीप निबंध, शास्त्रा० प्रकरण ७२)

३. अत एव निराकारौ पूर्णायानन्द लोपत.
जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधामत. ॥ (उपर्युक्त कारिका ३०)

[illegible] श्लोक ३।

'अस्य जीवस्यैश्वर्यादि तिरोहितम्'[1]

जगत्—जगत् की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के सत् अंश से है, अक्षर ब्रह्म एवं परब्रह्म में भी उन्होंने भेद माना है। परब्रह्म केवल श्रीकृष्ण ही है। सच्चिद् गणितानन्द अक्षर ब्रह्म है।[1] अक्षर ब्रह्म के सदंश से उत्पन्न जगत् अविनाशी है किन्तु संसार नाशवान् है, क्योंकि-अहन्ता ममतात्मक कल्पना का नाम ही संसार है। संसार की रचना जीव करता है, उसका उपादान कारण अविद्या तथा निमित्त कारण जीव होता है।[3] श्रीमद्भागवत में इसी संसार को चक्र कहा है, यह संसार गुणों और कर्मों को होने वाला जन्म मरण का चक्र है। यद्यपि यह अज्ञान मूलक एवं मिथ्या है तथापि जीव को इसकी प्रतीति स्वप्न के समान होती है। विद्या के द्वारा जब अविद्या का नाश हो जाता है तब जीव संसार के दुःख से छूट जाता है।[4] भक्ति के द्वारा ही मुक्ति सरलता में प्राप्त हो सकती है। सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति के अतिरिक्त स्वरूपानन्द की एक और अवस्था मानी है। इस अवस्था में मुक्त जीव भगवान् की लीला का साक्षात् रूप से अनुभव करता है। वल्लभ सम्प्रदाय में इसे अत्यधिक महत्व दिया गया है और गोकुल को वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ माना है।

भागवत की द्विविध मुक्ति सद्योमुक्ति क्रम मुक्ति को भी आचार्य ने स्वीकार किया है। पुष्टिपुष्ट भक्तों की सद्योमुक्ति तथा ज्ञानमार्गियों की क्रम मुक्ति प्राप्त होती है, यह विवेचन अणुभाष्य में चतुर्थाध्याय में विस्तार के साथ किया है। भगवान का अनुग्रह ही जीव की मुक्ति में विशेष कारण बनता है। 'पोषण तदनुग्रह'[5] भागवत श्लोक के आधार पर उनके सम्प्रदाय का नाम भी 'पुष्टि सम्प्रदाय' प्रसिद्ध हुआ है। अतः वल्लभ सम्प्रदाय भागवत में ही अनुप्रमाणित है।

चैतन्य मत

चैतन्य का सम्बन्ध मध्व सम्प्रदाय से है। किन्तु उनके द्वारा एक पृथक सम्प्रदाय का श्री गणेश हुआ। अन्याचार्यों की भांति उन्होंने अपने सम्प्रदाय को व्यवस्थित नहीं किया और न प्रस्थानत्रयी पर ही कोई भाष्य लिखा।

---

१ अणुभाष्य ३।२।५। २. सिद्धान्त मुक्तावली ३।४।५।

३. प्रपंचो भगवत्कार्यं स्तद्रूपोमाययाऽभवत्
तच्छक्त्या विद्ययात्वस्य जीवसंसार उच्यते।
(तत्त्व दीप निबन्ध, कारिका २६)

४. विद्यया विद्यानाशेतु जीवो मुक्तो भविष्यति। (उपर्युक्त कारिका ३६)

ये उच्चकोटि के भक्त थे। उनके जीवन की घटनाओं का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में प्राप्त होता है। उनके अनुयायियों ने सम्प्रदाय का रूप व्यवस्थित किया था। इस सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण ही परम तत्व है वे अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं अनादि है, उपासना भेद से उनके अलग-अलग नाम हो गये है। उनकी शक्ति अचिन्त्य है। परब्रह्म के त्रिविध रूप हैं—स्वयरूप, तदेकात्म्य रूप और आवेशरूप। स्वय रूप कृष्ण है। स्वयं रूप के—द्वारिका रूप, मथुरा रूप, ब्रजलीला रूप त्रिविध है, इनमे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। भगवान के अवतार भी तीन है—

(१) पुरुषावतार (२) गुणावतार (३) लीलावतार

परब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि पुरुषावतार 'वासुदेव' कहलाता है जो तीन प्रकार का माना गया है—[1] सकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। सृष्टि का कारण पुरुषावतार है, गुणावतार मे ही वह विष्णु, ब्रह्म और रुद्र का रूप धारण करता है। लीलावतार मे परब्रह्म का तदेकात्मक रूप और आवेश रूप प्रकट होता है।

भगवान की तीन शक्तिया है—

(१) अन्तरङ्गा शक्ति (२) बहिरङ्गा शक्ति (३) तटस्था शक्ति

अन्तरङ्गा शक्ति ही स्वरूप शक्ति है जिसे सन्धि शक्ति भी कहते है। बहिरङ्गा शक्ति का नाम माया है। इसके दो भेद है—द्रव्यमाया, गुणमाया। द्रव्यमाया जगत् का उपादान कारण है, गुणमाया निमित्त कारण। तटस्था शक्ति जीवो की उत्पत्ति का हेतु है।

जीव—अणुरूप तथा नित्य है यह जडमाया से मुक्त रहता है, उससे मुक्त होने पर ही सायुज्य कैवल्य मुक्ति होती है। मुक्ति की प्राप्ति भक्ति द्वारा सम्भव है। भक्ति भी दो प्रकार की है—(१) वैधी, (२) रागानुगा[2]। इस सम्प्रदाय में तीन प्रभु हैं—(१) कृष्ण चैतन्य, (२) नित्यानन्द, (३) अद्वैतानन्द।

इस सम्प्रदाय मे भागवत का अत्यधिक सम्मान है एव अनेक टीकाएं की गई हैं।

१. भागवत १।१०।६। २ भागवतदर्शन, पृष्ठ १६३।

द्वितीय अध्याय

उपजीव्य टीकाकार

१ चित्सुखाचार्य —परिचय, सम्प्रदाय, स्थितिकाल, कृतिया, टीका वैशिष्ट्य ।

२ श्रीधर स्वामी—परिचय, सम्प्रदाय, स्थितिकाल, कृतिया, टीका वैशिष्ट्य ।

३ मधुसूदन सरस्वती—परिचय, सम्प्रदाय,स्थितिकाल, कृतियाँ,टीका वैशिष्ट्य ।

उपजीव्य टीकाकार

१. चित्सुखाचार्य :

(क) परिचय—'चित्सुखी' टीका के कर्ता चित्सुखाचार्य वेदान्त शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे, इनका 'तत्वप्रदीपिका' नामक ग्रन्थ अद्यावधि इनके नाम से 'चित्सुखी' शब्द द्वारा व्यवहृत होता है। यह ग्रन्थ विद्वानो के अध्ययन अध्यापन का प्रिय विषय एव वेदान्त शास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

चित्सुखाचार्य ने भागवत पर टीका की थी किन्तु वह अब उपलब्ध नही है। उसकी पंक्तियो का यत्र तत्र उल्लेख जीवगोस्वामी ने किया है[1] एव टीकाकारो ने उनके स्वीकृत पाठ की चर्चा की है। इससे ज्ञात होता है कि इन की टीका सम्पूर्ण भागवत पर अवश्य रही होगी। चित्सुख ने विष्णु पुराण पर भी टीका की थी। इसकी पुष्टि श्रीधरस्वामी के वाक्यो द्वारा की जाती है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

"श्रीमत् चित्सुखयोगि मुख्यरचिते……"[2]

श्री चित्सुख कहाँ उत्पन्न हुए ? यह यद्यपि विश्वस्त रूप से नही कहा जा सकता तथापि विद्वानो का मत है कि ये उत्तर भारत मे पर्याप्त रहे थे।[3]

(ख) सम्प्रदाय—इनके गुरु के बारे मे कोई सन्देह नही है, क्योंकि तत्व दीपिका के मगलाचरण मे इन्होंने 'ज्ञानोत्तम' नामक गुरु का उल्लेख किया है। 'चित्सुखी' ग्रन्थ से इन्हे अद्वैत सम्प्रदाय का माना जाना उपयुक्त है।

---

१. क्रमसन्दर्भ ४।१।३८

२. विष्णु पुराण टीका–आत्मप्रकाश १।१ मंगलाचरण।

३. (क) 'ज्ञानोत्तमाख्यं तं वन्दे' (तत्व प्रदीपिका, मंगलाचरण)
(ख) न्यायमत का खण्डन अधिकांश उत्तर भारती विद्वानों ने किया है।
(ग) योगीन्द्रनाथ तीर्थ के कथनानुसार चित्सुख काम कोटि मठ के अध्यक्ष थे। एवं इनके गुरु ज्ञानोत्तम गौड़ देश के थे। चित्सुख के सतीर्थ का नाम विज्ञानात्म था।

(ग) स्थितिकाल—यद्यपि चित्सुखाचार्य का समय संदिग्ध है क्योंकि एस० एन० दास ने इनका समय १२२० ई० (स० १२७७ विक्रम) लिखा है[1]। बलदेव उपाध्याय का भी यही मत है।[2] किन्तु कतिपय विद्वानों का नवम् शताब्दी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3] परन्तु इतना निश्चित है कि श्रीधर स्वामी ने इनका उल्लेख विष्णु पुराण की टीका मे किया है। अत य श्रीधर के पूर्व उत्पन्न हुए थे, यह निर्विवाद है। श्रीधर का समय आगे १३५०–१४५० विक्रम के मध्य स्वीकृत किया जायेगा अत उससे पूर्व इनका होना सिद्ध है। चित्सुखाचार्य ने न्याय लीलावली' ग्रन्थ का खण्डन किया था। इस ग्रन्थ के रचयिता वल्लभ १२ वी शताब्दी मे उत्पन्न हुए थे साथ ही चि सुख ने हर्ष के मता का उल्लेख किया है। हर्ष १२ वी शताब्दी मे हुए थे, अत हर्ष एव वल्लभ के पश्चात् एव श्रीधर स्वामी के पूर्व का समय चित्सुख का निर्विरोध स्वीकार किया जा सकता है। जयतीर्थ ने अपनी वादावली म चित्सुख का उल्लेख किया है। इनका समय १३६५–१३८८ ई० माना गया है।

(घ) कृतिया—'अच्युत' वाराणसी के अनुसार १० ग्रन्थ थे—

१ भाव प्रकाशिका,	६ न्यायमकरन्द टीका
२ अभिप्राय प्रकाशिका	७ प्रमाण रत्नमाला टीका
३ भगवत्तत्व प्रकाशिका	८ विष्णु पुराण टीका
४ अधिकरण सगति	९ भागवत टीका
५ अधिकरण मजरी	१०. खण्डन खण्ड खाद्य व्याख्यान

तत्व प्रदीपिका भूमिका मे—

१ शकर दिग्विजय	३ षट्दर्शन सग्रह
२ विवरण व्याख्या	४ ब्रह्मस्तुति का उल्लेख है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—टीकाकारो ने 'इतिचित्सुख' शब्द का उल्लेख ही अधिक किया है, अत इनकी टीका का नाम अप्रसिद्ध हो गया है। 'चित्सुखी' शब्द का प्रयोग ही इनकी टीका के लिए प्रसिद्ध है।

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर रची गई थी।

प्रकाशन—यह टीका अप्राप्य है, इसका प्रकाशन नही हुआ।

---

१. ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, पृष्ठ १४७।

२ पुराण विमर्श, पृष्ठ ५७०।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ १७२।

उद्देश्य—इस टीका का उद्देश्य अद्वैत सिद्धि रहा होगा, क्योंकि चित्सुख को अद्वैत सम्प्रदाय का स्तम्भ माना जाता है।

इस टीका का सर्वाधिक वैशिष्ट्य यह है कि भागवत के प्राचीन पाठ का निर्धारण चाहने वाले विद्वानों को सन्तुष्टि प्रदान करेगा। जीव गोस्वामी ने कहीं कहीं केवल चित्सुख के पाठ का ही समादर किया है भले ही वह श्रीधर स्वामी के पाठ से असम्बद्ध हो जैसे—तप्यमान त्रिभुवनम् प्राणायामधसाग्निना' यहाँ श्रीधर के इस पाठ का चित्सुख से वैमत्य है, चित्सुख ने 'प्राणायामेन' पाठ माना है। जहाँ श्रीधर ने 'सप्तर्षय' पाठ माना है–चित्सुख ने 'सप्तब्रह्मर्षय'। जीवगोस्वामी ने दोनों पाठों को शुद्ध माना है–सप्त ब्रह्मर्षय इति पाठश्चित्सुख सम्मत। सप्तर्षय इति क्वचित्। टीकानूभयथा लगति।" इसी प्रकार–सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किताभवान्' में परिशङ्किता पाठ श्रीधर ने एवं परिशङ्किनी पाठ चित्सुख ने माना है। जीवगोस्वामी ने लिखा है—परिशङ्किनीति चित्सुख।'

चित्सुख का वैशिष्ट्य उनके पाठ के कारण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी पुष्टि का एक यह भी प्रमाण है कि जीव गोस्वामी ने कहीं कहीं केवल उनके पाठ का उल्लेख ही किया है, अपनी ओर से एक वर्ण भी नहीं लिखा है। यथा, 'न यस्यलोके (भागवत ४।४।११) की टीका में प्रतीपयत्' के स्थान में 'प्रतीयत' पाठ चित्सुख का लिखा है।'

चित्सुख की भाषा अत्यन्त परिमार्जित प्रौढ़ तथा गम्भीरता लिए थी।

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सुमवदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु'

(भागवत ४।४।१३)

२ श्रीधर स्वामी

(क) परिचय—श्रीधर स्वामो भागवत की प्राप्त सर्वप्राचीन टीका 'भावार्थ दीपिका' के रचयिता हैं। भारत में जितनी ख्याति उक्त टीका की हुई उतनी अन्य किसी टीका की नही। समस्त विद्या क्षेत्रो मे इसका पठन पाठन बडे आदर पूर्वक किया जाता रहा है। किन्तु इतने प्रतिभाशाली टीकाकार का विश्वसनीय परिचय उपलब्ध नही होता। यहाँ तक कि उनके माता पिता एव वश तथा शिष्य परम्परा विषयक ज्ञान भी घोर अन्धकार मे है। यहाँ हम यत्र-तत्र से लब्ध सामग्री के आधार पर श्रीधर स्वामी के जीवन वृत के विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

श्रीधर नामक अनेक व्यक्ति साहित्य के क्षेत्र मे आये थे, उनमे कतिपय के नाम एक विश्वकोश मे उपलब्ध हैं जो बगभाषा मे मुद्रित हैं[1] एव गौणीय वैष्णव समाज मे आदर प्राप्त है। इस ग्रन्थ मे—

१, श्रीधर कोशकार,	२ श्रीधर ज्योतिर्विद	३ श्रीधर आचार्य
४ श्रीधर कवि	५ श्रीधर यति	६ श्रीधर सरस्वती

के नाम उल्लेखनीय है। इनमे केवल श्रीधर यति का उल्लेख भागवत टीकाकार के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है किन्तु एक कोशकार ने इन्हें 'दान चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ का रचयिता लिखा है तथा इनका समय ६८६ई० (सम्वत् १०४६) लिखा है। प्रसिद्ध भागवत टीकाकार का न तो १०४६ विक्रम समय ही माना जा सकता है और न दान चन्द्रिका' का रचयिता। प्रसिद्ध श्रीधर स्वामी ने चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है जो शकराचार्य की शिष्य परम्परा के महान् स्तम्भ थे एव उनका समय १२वी शताब्दी के समीप माना जाता है। अत श्रीधर स्वामी उक्त श्रीधर यति से भिन्न हैं। विख्यात श्रीधर स्वामी के परिचय के सम्बन्ध मे यह भी निश्चित नही कहा जा सकता कि ये किस देश के निवासी थे। उसका कारण है कि गुर्जर देशीय विद्वान् एव बग देशीय विद्वानो के विभिन्न वाद जो श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध मे प्रचलित किए गए हैं।

श्रीधर महाराष्ट्र निवासी तथा गुजरात प्रवासी ब्राह्मण थे एव काशी मे अधिक समय पर्यन्त परमानन्द नामक गुरु के समीप रहे थे। 'वेणी माधव का धरहरा' उनकी निवास स्थली था। यह गुजरात प्रदेश के विद्वानो का कथन

---

१ विश्व कोश (बगाक्षर) अतीन्द्रिय वेदान्त वाचस्पति, खण्ड २०पृष्ठ, ६६६, माध्व गौडीय प्रकाशन, कलकत्ता।

है। इस पक्ष की पुष्टि गुजराती भाषा भागवत मे सशक्त रूप से की गई है।[1]

बग देशीय विद्वान् इन्हे सुरेश्वर के वश मे उत्पन्न वगदेशीय गौड ब्राह्मण मानते हैं, उनका समर्थन है कि सस्कृत कालेज कालिकाता के अध्यक्ष स्व० महेशचन्द्र न्यायरत्न श्रीधर स्वामी की चौदहवी अघस्तन पीढी मे थे।[2] इस पत्रिका मे इन्हे वगाल के नन्दा ग्राम का निवासी माना है। किन्तु इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कोश मे इन्हे महाराष्ट्र निवासी माना है।[3]

श्रीधर गुजरात प्रवासी महाराष्ट्र निवासी थे या बगदेश निवासी यह तो निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता तथापि यह तो निश्चित है कि ये काशी मे निवास करते थे—'माघवो माधवावीशौ' मगलाचरण मे उमामाधव का उल्लेख 'वेणीमाधव के धुरंरा' से सम्बन्धित है।[4]

गुजरात प्रदेशीय किम्बदन्ती के अनुसार श्रीधर स्वामी के एक पत्नी एव एक पुत्र भी था, राजाश्रय प्राप्त होने के कारण ये गृहस्थ की आर्थिक चिन्ताओ से भी मुक्त थे।[5]

श्रीधर स्वामी की चित्त वृत्ति गृहस्थ मे नही रमी। वे विरक्त होने का स्वप्न देखा करते थे। दैवयोग से उनकी कल्पना मूर्तिमती बनी, उनकी पत्नी की अकाल मृत्यु हो गई। यद्यपि वे इस घटना से प्रसन्न हुए तथापि शिशु की ममता उन्हे गृहस्थ मे और भी अधिक जकड बैठी। गीता के पाठक होने के कारण उन्हे सन्यास ग्रहण की प्रेरणा प्रबल वेग से उठती किन्तु शिशु के मोह बन्धन से वे छूट नही सकते, उनका अन्तर्द्वन्द्व उत्तरोत्तर वृद्धि पर था। एक दिन उनकी दृष्टि गीता के—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते
तेषानित्याभियुक्ताना योग क्षेम वहाम्यहम्।'[6]

'अनन्य भाव से मेरा चितन करने वाला मेरे आधीन है उसका योग क्षेम मैं वहन करता हूं।' श्रीधर ने मन मे विचार कर दृढ निश्चय किया कि मैं प्रभु की वाणी पर दृढ विश्वास नही करता अन्यथा मुझे योग क्षेम की चिन्ता क्यो?

---

१. गुजराती भाषा भागवत-इच्छाराम, भूमिका, बम्बई, पृष्ठ १६।
२. प्रवासी पत्रिका माघ १३५८ बंगाब्द, पृष्ठ ४११।
३. गौड़ीय वैष्णव अभिधान कोश (बंगाक्षर), पृष्ठ १३६०।
४. भागवत १।१।१ मंगलाचरण पद्य २।
५. भागवत गुजराती भाषा, पृष्ठ १६। ६. गीता ९।२२

इस चिन्तवन के प्रवाह मे प्रवाहित श्रीधर स्वामी अपने घर आ पहुँचे, देहली मे प्रवेश किया ही था कि सामने छत पर से एक अ ग पृथ्वी पर गिर पडा । गिरते ही एक पक्षी शावक निकला । वह क्षुधार्त्तथा किन्तु दैवयोग से उस द्रव पर एव मक्षिका बैठी, उसे पक्षि शावक ने आत्मसात कर लिया और चेतना प्राप्त की ।

श्रीधर स्वामी बडे ध्यान से देख रहे थे कि इसकी रक्षा प्रभु किस प्रकार करेंगे । किन्तु यह घटना देखकर उन्हे भगवान पर पूर्ण विश्वास हो गया था । ईश्वर एक क्षुद्र जीव का पोषण करता है तो क्या मेरे पुत्र का नहीं करेगा ? श्रीधर ने विचार किया कि मैं विद्वानो की कोटि मे गिना जाता हूँ एव ईश्वर ज्ञान के सम्बन्ध में अभिमान करता हूँ, उनका यशोगान भी करता हूँ, तथापि ईश्वर की कर्तृत्व शक्ति पर विश्वासहीन हूँ । गीता के श्लोको का अर्थ अनेक व्यक्तियो को सुनाता हूँ पर उन पर मेरा कितना विश्वास है ? मुझे केवल अपने शिशु की चिन्ता है पर दीनबन्धु जगतरक्षक को सब जीवो की चिन्ता है । श्रीधर स्वामी के मन का समाधान हो गया और वह गृहस्थ को त्यागकर काशी म आकर रहने लगे ।

सन्यास ग्रहण के उपरान्त श्रीधर के पुत्र का पोषण राजा ने किया ।[1] गीता की निम्नलिखित पंक्तियाँ उक्त किम्वदन्ती का आधार कही जा सकती है—

'नमे भक्त प्रणश्यति' (गीता ९।३१)

"पटहादि घोषपूर्वक विवद मानाना सतागत्वावाहुमुत्क्षिप्य नि शक प्रति जानीहि प्रतिज्ञा कुरुच मे परमेश्वरस्य भक्त सुदुराचारोऽपि न प्रणश्यति अपितु कृतार्थ एव भवतीति । सुबोधिनी टीका गीता ९।३१

'पटह घोषपूर्वक विवादशील विद्वानो के मध्य मे बाहु उठाकर प्रतिज्ञा कर कि मुझ परमेश्वर का भक्त दुराचारी होने पर भी कृतार्थ हो जाता है ।

द्वितीय किम्वदन्ती के आधार पर श्रीधर बाल्यावस्था मे महान मूर्ख थे ।[2] एक समय एक नृपति और उनके मन्त्री वर्ग भ्रमण के लिए निकले, उनकी दृष्टि अपवित्र पात्र मे तेल लेकर आने वाले श्रीधर पर पड़ी । उस समय राजा और मन्त्री दानो मे ईश्वर की सामर्थ्य को लेकर विवाद चल रहा था । मन्त्री का कथन था कि कि ईश्वर की उपासना से मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान बन सकता है । राजा ने श्रीधर का तदय करते हुए एव इनकी चेष्टा तथा आकृति आदि से महामूर्ख समझकर कहा कि यदि यह व्यक्ति योग्य बने तो तुम्हारे कथन की

१ गुजराती भाषा भागवत, पृष्ठ १६ (भूमिका)

२. कल्याण, सन्त अंक, पृष्ठ ४७३ ।

पुष्टि सम्भव है, मन्त्री ने उक्त कथन सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की और श्रीधर को अपने साथ में लाकर देवालय में ठहरा दिया तथा दैनिक शिक्षा एवं ईश्वर की आराधना प्रारम्भ करवा दी गई। यही श्रीधर कालान्तर में अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं भागवत की भावार्थ दीपिका टीका के निर्माता बन गए।

तृतीय किम्वदन्ती है कि श्रीधर स्वामी गोवर्द्धन मठ के अधिपति थे। किन्तु अनेक प्रमाणों से यह निर्णय किया जा चुका है कि गोवर्द्धन पीठ के अधिपति का नाम श्रीधरारण्य था। श्रीधरारण्य का उल्लेख—भागवत टीका गीता टीका एवं विष्णु पुराण टीका आदि में कहीं उपलब्ध नहीं है, इन दोनों व्यक्तियों के गुरु नाम स्पष्ट है, श्रीधरारण्य के गुरु का नाम गोविन्दारण्य था, किन्तु भागवत टीकाकार श्रीधर स्वामी के गुरु का नाम 'परमानन्द' था।[1]

'यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्'

अतः श्रीधर स्वामी को गोवर्द्धन पीठ का अधिपति नहीं माना जा सकता।[2]

चतुर्थ किम्वदन्ती बंगदेशस्थ कतिपय विद्वानों द्वारा प्रसारित की गई है, उसके अनुसार श्रीधर स्वामी का जन्म नान्दा ग्राम में सुरेश्वर के वंश में हुआ था, ये शाण्डिल्य गोत्री ब्राह्मण थे एवं इनके सन्यास पूर्व का नाम श्रीधराचार्य था। श्रीधर के पुत्र का नाम शंकर विद्यार्णव था, महेशचन्द्र न्याय रत्न इनके १४वें वंशज थे।

'जनमेजय घटक'[3], प्रवासी पत्रिका[4] एवं 'हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री सिद्धेश्वर भट्टाचार्य'[5] इस पक्ष के प्रबल समर्थकों में हैं। श्री भट्टाचार्य ने प्रमाणित किया है कि—'नारायणाय' में आये पदच्छेद का अर्थ बंगदेश की मान्यता का द्योतक है।

उक्त मत में श्रीधर को बंगदेश निवासी मानने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। किन्तु बहुधा विद्वान् इस मत के समर्थक नहीं। व्रजदेश की मान्यता के अनुसार तो महाराष्ट्र ब्राह्मण ही थे और वहीं इनका जन्म—स्वाध्याय आदि हुआ था।

१, भावार्थ दीपिका १।१।१ मंगलाचरण श्लोक ३।
२ गौड़ियार तिन ठाकुर (बंगाक्षर) ८ माधुरी, पृष्ठ २४५।
३ कुलतत्त्व दर्शन—सं० जनमेजयघटक (बंगाक्षर) यशोहर, १२६५ बंगाब्द।
४ प्रवासी पत्रिका माघ १३५८ बंगाब्द (बंगाक्षर) श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य लिखित-"श्रीधर स्वामीर कुल परिचय और कालनिर्णय", पृष्ठ ४११-४१४
५ पत्र द्वारा प्राप्त मत दिनांक १२-९-६६, हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी।

श्रीमद्भागवत मे भावार्थ दीपिका मे द्वादश स्कन्ध मे एक कल्पित चित्र—श्रीधर स्वामी का बनाया गया है, यह चित्र प्राय सभी सस्करणो मे एक-सा ही है जिसमे महाराष्ट्र की पगडी एव 'अँगरखा' पहने हुए उन्हे चित्रित किया है, इससे यह विचार किया जा सकता है कि आज से ८० वर्ष पूर्व की प्रति मे उपस्थित यह चित्र अवश्य ही कुछ विचार धाराओ के साथ बनाया गया होगा[1] एव अन्य प्रतियो मे भी इसका अन्वेषण किया जा सकता है। अत श्रीधर स्वामी को महाराष्ट्र देश का निवासी मानना उचित है।

श्रीधर अनेक शास्त्रो के पारगत विद्वान थे जैसा कि उनकी टीका परिशीलन द्वारा प्रमाणित होता है तथापि उनकी इस अनुपम विद्या का स्रोत कौन है यह ज्ञात नही। अन्त साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित है कि इनके गुरु परमानन्द थे। गीता के प्रत्येक अध्याय एव भागवत के प्रत्येक स्कन्ध मे एव अधिकाश अध्यायो मे परमानन्द का उल्लेख किया गया है।
सुबोधिनी टीका मे—

'दधानमद्भुत वन्दे परमानन्द माधवम्'[2]।
'न कृष्ण परमानन्द तोषयेत् सर्व कर्मभि'[3]।
'त वन्दे परमानन्द माधव भक्तशेवधिम्'[4]।
'त वन्दे परमानन्द नन्दनन्दनमीश्वरम्'[5]।

गीता के अठारहवे अध्याय मे इन्होने अपने गुरु के साथ अपना भी उल्लेख किया है।[6] श्रीमद्भागवत की भावार्थ दीपिका टीका की रचना भी अपने गुरु परमानन्द की प्रीति के लिये ही की गयी थी, जैसा कि उनके वाक्य द्वारा सिद्ध है —

'श्री परमानन्दसम्प्रीत्यै गुह्य भागवत मया
तन्मेतेनेदमाख्यात न तु मन्मति वैभवात्।'[7]

---

१ भावार्थ दीपिका, सम्वत् १६५८ विक्रम, मुम्बई प्रकाशन।
२ सुबोधिनी टीका गीता १।१।१ मग० १।
३ वही अध्याय ३ मग० १।   ४ वही अध्याय ६ अन्त।
५ वही अध्याय १३ अन्त।
६ परमानन्द श्रीपाद रज. श्रीधारिणा धुना।
श्रीधर स्वामियतिना कृतागीता सुबोधिनी।
(सुबो० गीता अध्याय १८ - अन्त मे)
७. भावार्थ दीपिका १२।१३ मगलाचरण अन्तिम श्लोक।

इस विशेषण से श्रीधर के भक्त हृदय का भान सम्यक् परिलक्षित है। अद्वैत वेदान्त के 'विद्वान्' मङ्गलाचरणों में प्रायः सच्चिदानन्द घन ब्रह्म की वन्दना करते है। किन्तु श्रीधर स्वामी ने जो रामकृष्णपरक मङ्गलाचरण किये हैं उनसे उनके भक्ति क्षेत्र के रसरूप की सत्ता सिद्ध होती है।

श्रीधर नृसिंहोपासक थे, उन्होंने नृसिंह की वन्दना बड़ी तन्मयता के साथ की है :—

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि
यस्यास्ते हृदये संवित्त नृसिंहमहभजे ॥

(भावार्थ दी० १।१।१ मङ्गला०)

'अहं भजे' पद उनकी इस गाढानुरागिता के द्योतक है। कतिपय विद्वान् तो उक्त मङ्गलाचरण के आधार पर एवं भगवान् रामचन्द्र का प्रत्येक स्कन्ध मे ध्यान करने के कारण उन्हे विशिष्टाद्वैतवाद का अनुयायी सिद्ध करते है।[1] किन्तु मध्व सम्प्रदाय मे भी नृसिंह की स्तुति की गई है,[2] अतः रामानुज मे इन्हे किस प्रकार माना जाय साथ ही वे कही श्रीरामानुजाचार्य यामुनाचार्य आदि का उल्लेख अवश्य करते, जैसा कि अन्य सम्प्रदायानुगामी टीकाकारो ने किया है। किन्तु रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान् ने इनकी टीका का खण्डन किया है।[3] गौडीय चैतन्य मत की झलक देखकर उन्हे कुछ विद्वान् उक्त सम्प्रदाय का मान्य विद्वान् मानते है। चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीधर स्वामी का अत्यधिक मान है, श्रीधर की वाणी न मानने वाले को चैतन्य ने वेश्या पुत्र जैसे शब्दो से अभिहित किया है —

'श्रीधर न माने तेहि वेश्याकरि जान'[4]
श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन
सब लोक मान्य करि करिबे ग्रहन।

श्रीधर को इस सम्प्रदाय का कथन करने के लिये एक और युक्ति कही गई है वह है—विष्णु पुराण की टीका मे—'अर्थापति प्रमाणमूलक' अचिन्त्य शब्द का प्रयोग किया है। जीवगोस्वामी ने इसे अचिन्त्य भेदाभेद की सूचना के रूप मे माना है।[5] एकादश स्कन्ध मे श्रीधर ने जीव को अल्पज्ञ एवं परमेश्वर को

---

१. १०८ श्री कमलनयनाचार्य जी, वृन्दावन।
२. मध्व तात्पर्य निर्णय मंगलाचरण। ३. भागवतचन्द्र चन्द्रिका ४।२।१६.
४. चैतन्य चरितामृत १।१२६-१३७
५. गौड़ियेर तिन ठाकुर (बंगा०) पृष्ठ २५२।

सर्वज्ञ लिखकर यह भी लिखा है कि 'जीव, परमेश्वर के आधीन है, परमेश्वर की सर्वज्ञता नित्य सिद्ध है, चिद्रूपत्व मे दोनो अभिन्न हैं। अतएव जीव और परमेश्वर के मध्य अत्यन्त भेद नहीं अपितु भेदाभेद है।'[1]

'जीवेश्वरयोस्तुकथ भेदाभेदविवक्षया अत आह अनादि इति वैलक्षण्य विसदृशत्व नास्ति द्वयोरपि चिद्रूपत्वात्।'

'अतस्तयोरत्यन्तमन्यत्वकल्पना अपार्था व्यथा'।

गीता मे यह भाव देखा जाता है—परमेश्वर रूपी समुद्र से जीव रूपी फेन पृथक नही कहा जा सकता, जैसे फेन का पृथक् नाम रूप कल्पित भी है और वस्तुत वह समुद्र ही है। इसी प्रकार जीव का भेद भी है और वस्तुत वह परमेश्वर से अभिन्न है।

'भूतेषु स्थावर जङ्गमात्मकेष्वविभक्त कारणात्मनाभिन्न कार्यात्मना भिन्नमिव स्थित च विभक्तम्, समुद्राज्जात फेनादि समुद्रादन्यन्न भवति'।[2]

श्री धर स्वामी के उपर्युक्त 'पद' कदम्ब को व्याकरण व्युत्पत्ति के आधार पर इस सम्प्रदाय की ओर मान भी लिया जाय तो भी यह तो निर्विवाद है कि श्रीधर स्वामी के समय मे इस सम्प्रदाय का उल्लेख कही भी उपलब्ध नही था, यह अचिन्त्य भेदवाद चैतन्य स्वामी के पश्चात् प्रचलित हुआ।

अद्वैतवाद—श्रीधर स्वामी मायावाद के प्रबल समर्थक थे, शुद्धाद्वैत जगत् की किम्वदन्ती के अनुसार श्री वल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका का प्रणयन श्री स्वामी कृत भावार्थ दीपिका के खण्डन के लिये ही किया था। यदि श्रीधर स्वामी ने वैष्णव अभिमत पक्ष ग्रहण किया होता तो वल्लभाचार्य उनके खण्डन की चर्चा क्या करते। अन्य किम्वदन्ती है कि श्री वल्लभाचार्य एव चैतन्य महाप्रभु की भेट जब श्री जगन्नाथ क्षेत्र मे हुई तो वल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका प्रदर्शित करते हुए चैतन्य महाप्रभु से कहा कि मैने इस टीका मे श्रीधर स्वामी की टीका का खण्डन किया है—इस पर चैतन्य क्षुब्ध हुए और उन्होने श्रीधर को न मानने वाले को उचित नही ठहराया। इससे यह तो सिद्ध होता है कि वल्लभाचार्य ने मायावाद की गन्ध के कारण ही श्रीधर स्वामी की टीका के खण्डन की चर्चा की थी। परन्तु महाप्रभु चैतन्य ने श्रीधर स्वामी की इतनी प्रशसा क्या की? यह एक विचारणीय प्रश्न है। एक चैतन्य महाप्रभु ने ही नही अपितु उनके अनुगामी सभी विद्वान् श्रीधर का गुणगान

---

१ भा० टी० ११।२८।१०   २. सुबोधिनी गीता १३।१६

करते हैं। सनातन गोस्वामी, जीवगोस्वामी एवं विश्वनाथ चक्रवर्ती जैसे भागवत के टीकाकारों ने न केवल उन्हें 'स्वामिचरणाः' शब्द से अभिहित किया अपितु उनका उच्छिष्ट ग्रहण हमने किया है—यह स्पष्ट लिखा है।[1]

यदि उक्त 'आचार्य' श्रीधर स्वामी को मायावाद का प्रबल समर्थक मानते तो अपनी टीकाओं में अवश्य उनका खण्डन प्रस्तुत करते, उच्छिष्ट ग्रहण करने वाला व्यक्ति किस प्रकार अपने श्रद्धेय के मत का खण्डन कर सकता है, साथ ही उनके उपास्य चैतन्य ने जिसे प्रामाणिक माना है वह निन्दित नहीं कहा जा सकता। अतः श्रीधर में कोई ऐसा गुण विशेष अवश्य था जिसके कारण उन्हें भारतीय सम्प्रदायाचार्यों ने सम्मान दिया। श्रीविष्णु स्वामि सम्प्रदाय में श्रीधर स्वामी का अत्यन्त गुणगान किया गया है एवं उन्हें सिद्ध किया है कि वे विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के थे, उन्होंने मध्व, रामानुज, शंकर प्रभृति आचार्यों का कहीं उल्लेख भी नहीं किया केवल 'विष्णु स्वामी' का बहुवचन में प्रयोग किया है, उनके ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। अतः इस सम्प्रदाय का वैष्णव मानना उपयुक्त है, वेदान्त के मर्मज्ञ विद्वान् एवं परमानन्द के शिष्यत्व के कारण उनका अद्वैत पक्ष अत्यधिक सबल रूप में दृष्टिगोचर होना है किन्तु वे इसका निर्देश 'स्वोपनिर्वर्ण्यमन्वित' तथा 'परमानन्द सम्प्रीत्यै' आदि शब्दों के द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं, अतः अद्वैत का उल्लेख प्राप्त भी हो तो उसे उनके गुरु के आग्रह का सूचक माना जा सकता है, उनका नहीं। वे तो परम वैष्णव एवं भावुक भक्त थे यह उनकी टीका रचना से स्पष्ट है। श्रीधर स्वामी केवल मायावादी नहीं थे अतः उनका समस्त वैष्णवों ने समादर किया। मायावादी पथ केवलाद्वैतवादी माना जाता है, इसके अनुसार निर्विशेष ब्रह्म ही परतत्व है, जबकि श्रीधर स्वामी ने श्रीकृष्ण को ही घनीभूत ब्रह्म नित्य गुण सम्पन्न माना है।

'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' की व्याख्या में स्पष्ट लिखा है —

'प्रतिष्ठा प्रतिमा घनीभूत ब्रह्मैवाहम्'[2]

श्रीधर स्वामी ने भगवद्विग्रह, नाम, रूप, गुण, विभूति, धाम तथा परिकर को नित्य

---

१. शीलं श्री गौरिका गीत गुणासार महात्मनाम्
श्रीधर स्वामिनां विविधवर्णितविवर्णिते ॥
(सनातन, श्रीवगो० विष्ण० १०।१।१)

२. सुबोधिनी टीका - गीता १८।२७

माना है।[1] जबकि मायावाद मे सब कुछ माया ही माया है। मायावाद मे उपाधि विशिष्ट सगुण ब्रह्म ईश्वर है, किन्तु श्रीधर प्राकृत गुण अनभिभूत को ईश्वर मानते हैं। ब्रह्मज्ञान मात्र ही नही अपितु ज्ञाता एव सम्पूर्ण कल्याण गुणो का आश्रय स्थान है :—

'प्रभुरितीश्वरस्योपाधिवशता भावेन नित्यमुक्तता दर्शयति' अयमभिप्राय—सगुणमेव गुणैरनभिभूतम् सर्वज्ञ. सर्वशक्ति सर्वेश्वर सर्व नियन्तार सर्वोपास्यम् सर्व कर्मफलप्रदातारम् समस्त कल्याणगुण निलय सच्चिदानन्द भगवन्त श्रुतय. प्रतिपादयन्ति'।[2]

माया के सम्बन्ध मे श्रीधर स्वामी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि माया ब्रह्म की स्वरूपानुबन्धिनी स्वभाव सिद्धा शक्ति है—परमेश्वरस्य शक्तिर्माया सत्व गुणविकारात्मिका सत्वादि गुणरहितस्य ब्रह्मणोऽपि स्वभाव सिद्धाः शक्तय. सन्त्येवपावकस्य दाहकत्वादि शक्तिवत्।[3]

मायावाद मे मायाअविर्वचनीय है।[4] वह न सत् है न असत्।

'सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिकानो'

मायावाद मे मुक्ति का परत्व तथा भक्ति का नित्यत्व नही माना जाता—किन्तु श्रीधर स्वामी ने स्पष्ट भक्ति की श्रेष्ठता मुक्ति से भी बढकर मानी है—

'श्रुतिश्च मुक्तेष्व्याधिक्य भक्तेर्दर्शयति 'यथाह'—य सर्व देवानमन्ति' इति भाष्य वृद्धि मुक्ता अपि लीलयाविग्रह कृत्वा भगवत ग्रजन्त इति।' वे चतुर्वर्ग को भी भक्ति के समान मानते है।[5] पद्यावली मे श्रीधर स्वामी का एक पद्य है जिसमे स्पष्ट लिखा है कि—यदि श्रवण-कीर्तन तथा श्रीकृष्ण की

---

१. सन्मूर्तः सनातनायमपरिमेयतत्त्वमुपमाद्यति हर्षमिति।

(भावार्थ दी० ८।६।७-६.)

२ भा० दी० १०।८७।२ एवं विष्णु० टीका ३।१-२.

३. सुबोधिनी टीका (गीता) ७।१८.

४. वेदान्त सार-ले० सदानन्द, पृष्ठ १७। ५ भा० दी० १०।८१।२१.

६. स्वरूपामृत पाथोधोविहरन्तो महामुदः।

कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम्।"

(भा० दी० १०।८१।२१)

सन्निधि प्राप्त है तो मुक्ति का प्रयोजन ही क्या ?[1] अतः श्रीधर स्वामी को अद्वैतवाद की कतिपय मान्यताओं को समकोटि में रखने के साथ उनको वैष्णव कोटि में रखना उचित ही होगा। कतिपय मङ्गलाचरण के श्लोकों के आधार पर उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध करना उचित नहीं। क्योंकि उन्होंने हरिहर की भी वन्दना की है तो शैव पन्थी अपना कहे तो अत्युक्ति न होगी।[2]

विष्णु पुराण की टीका में विन्दु माधव का स्पष्ट निर्देश है—

'अथातः पंचमांशे श्रीकृष्णलीला महोदयः
विन्दु माधवतोपाय यथामति वितन्यते ॥'[3]

स्पष्ट रूपेण यदि किसी सम्प्रदायाचार्य का उल्लेख किया है तो वे विष्णु स्वामी हैं इनके नाम निर्देश में श्रीधर ने संकोच नहीं किया। इतना ही नहीं श्रीधर स्वामी ने विष्णु स्वामी के वचन भी उद्धृत किये हैं[4] और उनका नाम निर्देश भी किया है। अतः उन्हें विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ति मानना चाहिये।

(ग) स्थितिकाल—श्रीधर स्वामी के समय का अभी तक कोई प्रामाणिक निर्णय नहीं है। उसका मूल कारण यह है कि इन्होंने अपने जन्म सम्वत् आदि के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। बाह्य साक्ष्य एवं अन्तः साक्ष्य के आधार पर साथ ही टीकाकारों को प्राधान्य देते हुए हम इनका काल निर्णय करने का प्रयत्न करेंगे।

आठ टीकाओं के साथ मुद्रित टीकाओं में सिद्धान्त प्रदीप के टीकाकार अर्वाचीन हैं। इस टीका के रचयिता 'शुक सुधी' सम्वत् १८२६ में विद्यमान थे—इन्होंने श्रीधर की टीका की, अक्षर सम्पत्ति के ग्रहण के साथ उसका उल्लेख भी किया है।[5] शुक सुधी ने भागवत टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती

---

१ पद्यावली - श्लो० १५-२८-४३ संख्या।

२ माधवौ माधवावीशौ सर्वसिद्धि विधायिनौ
वन्दे परस्परात्मानौ परस्पर नुति प्रियौ ॥

(भावा० टी० १।१।१ मंग०)

३ आत्मप्रकाश टीका (विष्णु पु०) टीकारम्भ मंगला०।

४ (क) भा० टी० १।७।६ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभि'
(ख) भा० टी० ३।१२।२ 'तदुक्तं विष्णु स्वामिभि'

५ सिद्धान्त प्रदीप ३।५।३८

का उल्लेख भी किया है।[1] विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सम्वत् १७६३ (ई० १७०६) में सारार्थदर्शिनी टीका लिखी। इन्होंने श्रीधर स्वामी का अनेक स्थलों पर नाम्ना निर्देश किया है।[2]

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्री जीवगोस्वामी का एवं सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है।[3] जीवगोस्वामी ने भागवत पर क्रम सन्दर्भ नामक ग्रन्थ रचा। इसके आरम्भ में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है —

'श्रीधरस्वामिभिर्व्यक्त
यद्व्यक्त चास्फुट क्वचित्
तत्रतत्रैव विज्ञय
सन्दर्भ क्रम सज्ञक ॥'[4]

जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी का उल्लेख किया है। ये समकालीन थे एवं सनातन के भ्राता वल्लभ के पुत्र थे। सनातन गोस्वामी ने अपनी टीका वृहद्वैष्णवतोषिणी में श्रीधर स्वामी के उच्छिष्ट ग्रहण का सकेत दिया है।[5] सनातन १६४३ में हुए थे। सनातन गोस्वामी ने चैतन्य महाप्रभु का अपने इष्टदेव के रूप में मानकर वन्दन किया है। चैतन्य महाप्रभु ने स्पष्ट श्रीधर स्वामी की टीका की महत्ता प्रकाशित करते हुए एक स्थल पर कहा था—

श्रीधरर अनुगत ये करेलिखन
सब लोर मान्य करि करिवे ग्रहन।[6]

चैतन्य महाप्रभु का जन्म समय १५४२ माना जाता है इन्ही के समकालीन आचार्य वल्लभ थे। आचार्य वल्लभ ने भी श्रीधर स्वामी की टीका का अवलोकन एवं खण्डन किया था।

मध्व सम्प्रदाय के टीकाकार श्री विजयध्वज ने भी श्रीधरी टीका का अनुसरण किया किन्तु स्पष्ट नाम निर्देश नही किया। विजयध्वज से पूर्व रामानुज सम्प्रदाय के टीकाकार वीर राघव का नामोल्लेख किया जा सकता है वीर राघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी का स्पष्ट निर्देश तो नही किया तथापि चतुर्थ स्कन्ध में वर्णित दक्ष यज्ञ विध्वस प्रसङ्ग मे श्रीधर स्वामी ने शिव के स्तुति पक्ष

---

१ सिद्धान्त प्रदीप २।५।३८।
२ सा० द० मे १।१।१, ३।२५।३५, १०।१।१।
३ सा० द० ३।२५।३५। ४ क्र० स० १।१।१ मगलाचरण।
५ वृहद्वैष्णवतो० १०।१।१ मगला० ४ श्लोक।
६ चैतन्य चरितामृत २४।८६।

पर विशेष बल दिया है, उस अंश को पूर्व पक्ष में रखकर उसका अक्षरश खण्डन अपनी भागवतचन्द्रचन्द्रिका मे प्रस्तुत किया है।[1] यह टीकावलोकन से स्पष्ट ज्ञात होता है। वीर राघव का समय १४वीं शताब्दी माना जाता है, उन्होंने श्री रामानुजाचार्य का उल्लेख किया है —

'श्रीरामानुजयोगिपूर्णकरुणापात्रं महान्तं गतम्।'[2]

वीर राघव के पूर्व अन्य ऐसे टीकाकार का उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ जिसने श्रीधर स्वामी का उल्लेख किया हो, अत श्रीधर के परवर्ती टीकाकारो में सर्वप्रथम वीर राघव का उल्लेख किया जा सकता है। इनका समय १४वीं शती का उत्तरार्ध है, यह इनके परिचय में स्पष्ट देखा जा सकता है। अत श्रीधर १४५० के पूर्व विद्यमान थे यह निश्चित है।

एक अन्य विद्वान् ने जो भाण्डारकर प्राच्य गवेषणा अधिष्ठान के क्यूरेटर थे उन्होंने भी श्रीधर स्वामी का समय १३५०-१४५०ई० के मध्य (सम्वत् १४०७-१५०७) माना है।[3]

अन्त साक्ष्य—श्रीधर स्वामी ने अनेक विद्वानों का, ग्रन्थकारों का उल्लेख अपनी भावार्थ दीपिका टीका मे किया है, उनमें कतिपय तो अत्यन्त प्राचीन हैं अत उनका तो केवल नाम सकेत देना ही पर्याप्त है, शेष विद्वानो एवं ग्रन्थों पर सक्षेप में विवेचन करता श्रीधर स्वामी के काल निर्णय में एक प्रमाण काटि निर्धारित कर सकगा। प्राचीन विद्वानो मे—मनु[4], याज्ञवल्क्य[5], आश्वलायन[6], पातञ्जल[7], अक्षपाद[8], जैमिनि[9], शबर स्वामी[10], लौगाक्षि[11], बृहस्पति[12], यास्क[13]—ये निश्चित रूपेण विक्रमादित्य के पूर्व उत्पन्न हुए थे। श्रीधर स्वामी ने 'मूल प्रकृति' वाली जिस कारिका का उल्लेख किया है[14] वह ईश्वर कृष्ण विरचित सांख्य कारिका में तृतीय संख्या की है। ईश्वर कृष्ण छठी शताब्दी के आसपास हुए थे, यह माना गया है। अमरसिंह[15], भट्ट[16],

---

१ भाग० च० च० ८।२।२६। २. वही १।१।१ मङ्गलाचरण।
३. 'डेट आफ श्रीधर स्वामी' (इंगलिश) परिवरड पी० ओ० आर० इन्स्टी०, वाल्यूम ३०, पार्ट ३, ४ पेज २७१, पूना १९५०।
४ भा० टी० ७।११।७। ५. वही १।११।२१। ६. वही ३।२३।८८।
७ वही ४।२३।६३। ८ वही ८।२०।६३। ९ वही ४।२७।१७।
१० वही ३।१०।१९। ११. वही ११।७।१९। १२ वही ४।१८।२१।
१३. वही १।७।१६। १४ वही ११।१९।२७।
१५. वही ४।१२।१९, ६।३।२४। १६ वही ६।१।४०।

त्रिकाण्ड कोश[1], सर्वज्ञ सूक्त[2], वाच कूट सग्रह[3] के उल्लेख भी टीका म उपलब्ध ह । अमरसिंह का अमरकोश एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । किंवदन्ती है कि य विक्रमादित्य के नवरत्नो म स थे । विक्रमादित्य भी अनेक हुए हैं अत यह अभी विवादपूण है कि य किस विक्रमादित्य के समकालीन थे । किन्तु य विक्रम के आसपास हुए होगे, यह निश्चय है ।

सवज्ञ सूक्त के रचयिता विष्णु स्वामी थ किन्तु विष्णु स्वामी नामक अनेक व्यक्ति हुए हैं इनम आदि विष्णु स्वामी ही सवज्ञ सूक्त के रचयिता थे यह बहुधा कहा जाता है । किम्वदन्ती के अनुसार रुद्र न बालखिल्य ऋषियो को उपदेश दिया था वही उपदश शिष्य परम्परा द्वारा विष्णु स्वामी को प्राप्त हुआ था ।[4] यह विष्णु स्वामी पाण्ड्य विजय राज्य क गुरु देवश्वर क पुत्र थे, इनका पूर्वाश्रम का नाम देवतनु था ।

द्वितीय विष्णु स्वामी नवा शताब्दी म हुए थे । उन्होने काची म भगवान वरद राज और राजगोपाल देव की प्रतिष्ठा की थी एव द्वारकापुरी स्थित रणछोड जी की स्थापना भी इनके सान्निध्य मे हुइ थी । बिल्वमगल इन्ही के प्रशिष्यो म थे ।

तृतीय विष्णु स्वामी आन्ध्र प्रदेश म हुए थ । वल्लभाचाय क पिता लक्ष्मण भटट इन्ही की शिष्य परम्परा म थे । सवदशन रचयिता माधव ने विष्णु स्वामी को अपना गुरु माना है ।[5]

सवज्ञ विष्णुगुरुमन्वहमाश्रयऽहम्

माधव का समय १२९८ १३३३ ई० के मध्य था उन्ह शृगेरी मठ का अध्यक्ष भी कहा जाता है ।

मेधातिथि न कावर विष्णु स्वामी का उल्लेख किया है मधनिधि का

---

१. वही ७।१४।२२ । २ वही ७।१५।३ । ३ वही ६।५।२० ।

४ कल्याण, वेदान्तांक, पृष्ठ ७०० ।

५ 'विष्णुस्वामिमतानुयायिभि नृपचास्यशरीरस्य नित्यत्वोपपादना ।'—तदुक्त साकार सिद्धौ
'सच्चिन्नित्यनिजाचिन्त्यपूर्णानन्दैक विग्रहम
नृपचास्यमह वन्दे श्रीविष्णुस्वामिसम्मतम ॥'
(सर्वदशन सग्रह, रसेश्वर० पृष्ठ २५)

समय ८०५-९०० ई० का मध्य भाग है[1], अत विष्णु स्वामी इससे प्राचीन है, यह निश्चित है। श्रीधर स्वामी ने 'भट्ट' के नाम से कतिपय वाक्य उद्धृत किये हैं 'तदुक्त भट्टै'। किन्तु उनका पूर्ण निर्देश न होने से निश्चित नही कि ये कौन भट्ट हैं। प्रसिद्धि है कि कुमारिल भट्ट ही भट्ट नाम से अभिहित किये जाते थे, इनका समय १००० ई० के आसपास माना जाता है।

अत यह श्रीधर की पूर्व सीमा मानी जा सकती है, किन्तु अधिक प्रामाणिक न होने के कारण उक्त आचार्यों की अवधि की अनिश्चितता है। केवल एक ऐसा प्रमाण उपलब्ध है जिसके आधार पर श्रीधर स्वामी की पूर्व अवधि का निश्चय किया जा सकता है, वह है—चित्सुख का उल्लेख। श्रीधर ने अपनी टीका मे अनेक स्थानो पर चित्सुख का नाम निर्देश किया है,[2] उन्हे अपना निर्देशक माना है।

चित्सुख (१२२० ई०) सम्वत १२७७ विक्रम मे हुए थे, यह डा० एम० एन० दास गुप्ता का मत है।[3] इस मत की पुष्टि प्रसिद्ध भारतीय प्राच्य प्रतीच्य विद्याओ के मर्मज्ञ बलदेव उपाध्याय ने की है।[4]

स्वय चित्सुख ने अपने ग्रन्थ 'तत्वप्रदीपिका' मे न्याय लीलावतीकार वल्लभ के मत का खण्डन किया है। वल्लभ ने श्री हर्ष के मत का खण्डन किया था। हर्ष १२ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे हुए थे। अत इस आधार पर भी चित्सुख १३ वी शताब्दी मे माने जाते हैं। चित्सुखाचार्य शकराचार्य के प्रशिष्यो मे प्रमुख थे। शकराचार्य के जन्म सम्वत् को लेकर विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। केरलोत्पत्ति के अनुसार इनका समय चतुर्थ शताब्दी है, बर्नेल ने छठी शताब्दी लिखी है।[5] लिवेल ने 'शकर' को ७ वी शताब्दी का माना है।[6] आचार्य बलदेव उपाध्याय ने "आचार्य शकर" नामक ग्रन्थ म बडे श्रम एव विद्वत्ता से शकर का समय ७वी शताब्दी निर्धारित किया है।[7]

---

१ धर्मशास्त्र का इतिहास—पी० वी० काने, पृष्ठ ६८, राजकीय प्रकाशन, उ० प्र०।

२ 'श्रीमत्चित्सुखयोगिमुख्यरचिते' (आत्म० विष्णु टीका १।१)

३ हिस्ट्री आफ इन्डियन फिलासफी, पृष्ठ १४७-४८ (कॅम्ब्रिज, १९३२ ई०)।

४. पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५७० (चौखम्बा १९६५)।

५ साउथ इण्डिया पॅलेओग्राफी, पृष्ठ ३७, १११।

६ लिस्ट आफ एन्टी क्यूटिस्क मद्रास, पृष्ठ १७१।

७ आचार्य शकर— बलदेव उपाध्याय।

राजेन्द्रनाथ घोष ने शकर का जन्म ६८६ ई० लिखा है ।[1] चतुर्थ शतक से नवम् शतक तक के उल्लेखो से यह सिद्ध है कि चित्सुख इनके उपरान्त हुए थे। चित्सुख ने श्रीमद्भागवत पुराण की टीका की थी।[2] श्रीधर स्वामी ने उनका स्मरण किया है । अतः उनका समय १२७७ सम्वत् माना जाय तो 'श्रीधर का समय' वीर राघव (१४वी शताब्दी) एव चित्सुख का (१३ वी शताब्दी) के मध्य भाग मे है, यह निश्चित है । श्रीधर ने वोपदेव का उल्लेख भी किया है । वोपदेव का समय १२६० ई० माना है[3] । अत वोपदेव भी इनकी पूर्व सीमा माना जा सकता है । श्रीधर ने ब्रह्म सम्बोधिनी-टीका मे परिचयात्मक एक श्लोक दिया है जिसके आधार पर विद्वानो ने उस कृति को १४३२ विक्रम की रचना कहा है ।[4] वह श्लोक है—

> 'ससारेऽस्मिन् तत्व तात्पर्य तृप्त्यै—टीका ख्याता ब्रह्म सम्बोधिनीयम्
> आचार्येण श्रीधरेण त्रिवेणी सङ्ग स्नान क्षालितान्तर्मलेन
> रागाविष्टे विक्रमादित्य शोके, माघे दिलष्टे सोमवारेण दर्शे
> सिद्धे योगे विष्णु नक्षत्र क्रृप्ते सिद्धक्षेत्रे माधवास्या विशिष्टे ।।'

इसमे टीका का नाम, अपना नाम, त्रिवेणी माघमास, सोमवार, अमावस्या, सिद्धयोग, विष्णु नक्षत्र, सिद्ध क्षेत्र तथा 'रागाविष्ट' से अकाना वामतोगति के आधार पर 'क ट प' आदि वर्णों के सकेत से १४३२ सख्या का निर्देश है । यदि यह श्लोक भागवत टीकाकार श्रीधर स्वामी का है तब नि सन्देह उनके बारे मे बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है तथा इससे एक निश्चित दिशा का बोध होता है ।

सशय का कारण यह है कि—इस प्रकार विष्णु पुराण, भागवत पुराण, सुबोधिनी गीता टीका आदि मे परिचयात्मक श्लोक नही है और न उनमे किसी सख्या का उल्लेख है जिससे यह ज्ञात हो सके कि यह कृति किस सम्वत् की है । द्वितीय यह कि श्रीधर ने अपने लिये उक्त कृतियो मे आचार्य शब्द का प्रयोग नही किया और न अन्य परवर्ती किसी टीकाकार ने ही इस विषय मे कुछ लिखा । केवल 'स्वामी' या 'यति' शब्द के प्रयोग ही उक्त ग्रन्थो मे प्राप्त है । सम्भव है यह कृति सन्यास ग्रहण के पूर्व बन चुकी हो । यदि यह प्रामाणिक है तो उनका काल भी स्पष्ट है, क्योंकि १४३२ वि० में इसकी रचना

---

१ आचार्य शंकर और रामानुज (वंगाक्षर), पृष्ठ ७८७ ।
२. अच्युत, पृष्ठ १० । ३. श्रेय—ले० उदयनारायण, पृष्ठ १०५ ।
४. गीतासार ब्रह्म सम्बोधिनी—पी० के० गोंडे ।

५ वर्ष की अवस्था में भी मान ली जाय तो १३८२ वि० के आसपास उनका जन्म समय मानना उपयुक्त होगा। अतः सर्वसम्मति से इन्हे १३५०–१४०० विक्रम के मध्य का माना जा सकता है।

(घ) कृतियाँ—निम्नलिखित ग्रन्थ एवं टीकाएँ श्रीधर कृत मानी गयी है—

१ ब्रह्म सम्बोधिनी—गीता टीका
२ सुबोधिनी टीका—गीता टीका
३ भावार्थ दीपिका टीका—भा० पु०
४ बालबोधिनी टीका—सनत्सुजातीय
५ आत्मप्रकाश टीका—विष्णु पुराण
६ श्री ब्रजविहार काव्य

(१) 'ब्रह्मसम्बोधिनी' गीता का सार है। यह कृति सन्यास पूर्व काल मे लिखी गई थी, क्योंकि इसके अन्तिम भाग मे एक श्लोक प्राप्त हुआ है जिसमे 'श्रीधराचार्य' नाम लिखा है,[1] अन्य ग्रन्थों मे श्रीधराचार्य नाम नही मिलता। सन्यास ग्रहण के पश्चात् पूर्व प्रसिद्ध नाम लिखने का कोई प्रश्न भी नही।[2] अतः वे कृति जिनमे स्वामी शब्द या यति-शब्द का उल्लेख है, उनके सन्यास ग्रहण की अवस्था की कृतियाँ है। इसे सन्यास पूर्व की अवस्था की कृति तो माना जा सकता है किन्तु सुबोधिनी टीका का सार नही। क्योंकि सुबोधिनी टीका प्रणयन के समय श्रीधर सन्यास ग्रहण कर चुके थे, जैसा कि सुबोधिनी टीका के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है —

परमानन्दपादाब्जरज श्रीधारिणाधुना
श्रीधरस्वामि यतिना कृतागीता सुबोधिनी ॥[2]

गोभे महोदय ने परमानन्द गुरु का स्पष्ट उल्लेख नही किया, अतः अभी इस पर इतना ही कहा जा सकता है कि यदि यह श्रीधर स्वामी की कृति है तो निश्चित उनके सन्यास ग्रहण के पूर्व की है। यह टीका अमुद्रित है।[3]

(२) सुबोधिनी टीका—यह श्रीमद्भगवतगीता की प्रसिद्ध टीका है।[4] श्रीधर की शैली 'गागर में सागर' वाली उक्ति को चरितार्थ करती है। विशेष

---

१ 'आचार्येण श्रीधरेण त्रिवेणी सगस्नान शान्तितान्तर्मनेन।'
(ब्रह्मसम्बोधिनी गीता सार, उप० – पी० के० गोभे)

२ सुबोधिनी टीका-गीता, अध्याय १८ अन्तिम पद्य।

३ गौड़ियर निन ठाकुर (धनाक्षर)–ले० सुन्दरानन्द।

४ 'श्रीधरस्वामियतिना कृता गीता सुबोधिनी'
(सुबोधिनी टीका—उपसंहार)।

विस्तार की भावना श्रीधर स्वामी की नही थी, अपना मन्तव्य, स्वल्पातिस्वल्प शब्दो म व्यक्त कर देना उचित समझते थे। गीता की यह टीका उसके गूढ स्थलो का रहस्योद्घाटन करने मे पूर्ण सफल हुई है। इसमे भी भक्ति की श्रेष्ठता का पक्ष ही अनुमोदित किया है।[१] 'यमेवैषवृणुते' श्रुति का अर्थ है जिसे परमेश्वर चाहे वही उसे प्राप्त कर सकता है। इसका उल्लेख करते हुए भक्ति ही मोक्ष हेतु है यह स्पष्ट लिखा है —

'यस्य देवे पराभक्ति', 'देहान्ते देव पर ब्रह्म तारक व्याचष्टे' 'यमेवैषवृणुते' 'इत्यादि श्रुति–स्मृति–पुराणवचनान्येव सतिसमजमानि भवन्ति तस्माद्भक्तिरेव मोक्षहेतुरिति सिद्धम्'[२]

(३) आत्मप्रकाश टीका—यह टीका श्री विष्णु पुराण पर लिखी गई है।[३]

(४) व्रजविहार काव्य—यह संस्कृत छन्दो मे ब्रजलीला विषयक २० श्लोको का काव्य है।[४] भागवत टीका के कृष्णपरक पद्य भी १०० से अधिक बैठेगे अत विश्वास नही होता कि इतने बडे विद्वान् श्रीधर ने केवल २० श्लोको का ही काव्य बनाया हो। यह सम्भव है कि इस काव्य की रचना के पूर्व ही श्रीधर चल बसे हो या यह काव्य कालान्तर म नष्ट हो गया हो?

(५) बालबोधिनी टीका—यह सनत्सुजातीय ग्रन्थ की टीका है।

(६) भावार्थ दीपिका—श्रीधर स्वामी का उच्च साहित्यिको एव मूर्धन्य टीकाकारो की कोटि मे पहुँचाने का श्रेय इस भावार्थ दीपिका नामक भागवत की टीका को दिया जाना उचित है। इस टीका को भागवत मन्दिर के जीर्णोद्धार की आधार शिला भी कहे तो कोई अत्युक्ति नही होगी। श्रीधर स्वामी का पाण्डित्य भी इस टीका म निरभित हो उठा है। यह टीका उनके विद्या-जीवन का सार है व्यास रचित मूल भागवत को भी एक प्रकार से इस

---

१ 'भक्त्ययान्तर व्यापारत्वाज्ज्ञानस्य' (सुबोधिनी १८।७८)

२ सुबोधिनी टीका, १८।७८।

३ आत्म प्रकाश (विष्णु पुराण) मगलाचरण।

४ (क) व्रजविहार काव्य—'जीवानन्द विद्यासागर' द्वारा सम्पादित काव्य सग्रह मे प्रकाशित है, पृष्ठ ५८-६३।

(ख) 'रूप कृत पद्यावली मे इसके ३ श्लोक प्राप्त नहीं हैं।'

(गौडीय वैष्णव अभिधान कोश, पृष्ठ ७३५)

टीका ने अपनी गरिमा से तिरोहित किया है। क्योंकि पिछली शताब्दियो मे और वर्तमान युग मे भी जितनी विवादपूर्ण यह टीका रही है उतना मूल ग्रन्थ मैं नही। यह इसकी सर्वाधिक महत्ता का द्योतक है। श्रीमद्भागवत पर शतश टीकाये निर्मित हुई उनमे अधिकाश टीकाओ की जीवनदायिनी सरिता भावार्थ दीपिका टीका ही रही है। आश्चर्य तो यह है कि जिन विद्वानो ने इस टीका का खण्डन अपना लक्ष्य बनाया था वे भी इसके भावो के ही नही अपितु इसकी अक्षर सम्पत्ति के भी ऋणी बने है।[1] अनेक टीकाकारो ने यदि इस टीका का नाम्ना निर्देश कर आदर भाव प्रदर्शित किया है तो अनेक इसकी पद व्युत्पत्ति से खीज कर अपना पक्ष समर्थन करते है, फलत दोनो के ही श्रीधर उपजीव्य रहे है। यह निश्चित कहा जा सकता है। इसका विशेष पर्यालोचन टीका वैशिष्ट्य मे किया गया है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य —नाम—श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी कृत भागवत टीका का नाम 'भावार्थ दीपिका' है।[2] अध्यायारम्भ म एव स्कन्ध एव अध्याय की पुष्पिकाओ मे भी यह नाम लिखा गया है।[3] इन पुष्पिकाओ मे उनका नाम भी लिखा गया है —

'इति श्रीमद्भागवते भावार्थदीपिकाया श्रीधर स्वामि विरचिताया प्रथमस्कन्ध टीकाया प्रथमोऽध्याय।'

'भावार्थ दीपिका' नाम लोक मे इतना प्रसिद्ध नही जितना लेखक के नाम से यह टीका श्रीधरी नाम से विख्यात है। पदो के भावार्थ दीपन के उद्देश्य से इस टीका का नामकरण हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

> द्वितीय स्कन्धसम्बन्धि पद भावार्थ दीपिका
> उद्दीप्यतामिय सद्भिर्यथा स्यात्तत्वदीपिकम्।[4]

---

१ भागवत च० चक्रकार वीर राघव ने श्रीधर द्वारा लिखित पक्तियां निम्नलिखित श्लोको मे ज्यो की त्यो ली हैं —
१।६।२५, २६, १।८।२६, ३।६।१८, ३।२६।२१, २२ आदि।

२ 'श्री भागवतभावार्थदीपिकेय वितन्यते।' (भा० दी० १।१)

३ 'श्रीमद्भागवतभावार्थदीपिकोपेत प्रथमस्कन्ध प्रथमाध्याय।'
(भा० दी० १।१ पुष्पिका)

४ भावा० दी० २।१।१ मगलाचरण।

वस्तुत भागवत के पद और भाव दोनो ही अति गूढ है, उनका अर्थ स्पष्ट करना साधारण कार्य नही है अत यह नाम सार्थक ही रखा गया है। उक्त श्लोक के अन्तिम चरण का 'तत्वदीपकम्' पद एक विशेष दिशा की ओर सकेत देता है। 'भागवत' केवल कथाओ का भण्डार नही है अपितु—उसमे आध्यात्मिक तत्व भरे पडे हैं, ब्रह्म-जीव माया जैसे जटिल विषयो का भी रूपक-मय वर्णन भागवत मे उपलब्ध है। ऐसी परिस्थिति मे यहाँ 'तत्व दीपक' द्वारा यह सूचना दी गई है कि उन जटिल तत्व सम्बन्धी विषयो का यहा स्पष्ट अर्थ देखने को मिलेगा। श्रीधर स्वामी का विश्वास है कि भागवत पाठ से अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है—

'स्वाज्ञानाध्यान्त भीतेन श्रीधरेण प्रकाशिता'।[1]

परिमाण—भावार्थ दीपिका टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है, टीका सूत्र शैली मे लिखी गई है तथापि आवश्यक स्थलो पर विस्तृत विचार किये गये हैं, यही स्थल वे है जिनके अर्थ प्रथम श्रीधर ने स्पष्ट किये अन्यथा उनकी सगति भी बडी दुष्कर थी एक प्रकार से श्रीधर ने भागवत की दुर्भेद्य भित्ति मे ऐसा द्वार स्थापित किया है जिससे भावी भागवत रस लुब्धक सरलता पूर्वक प्रवेश कर सके।

उद्देश्य—एक स्थल पर उन्होने अपने गुरु परमानन्द की सन्तुष्टि के लिये टीका निर्माण का प्रयोजन लिखा है —

'श्री परानन्द सम्प्रीत्यै गुह्य भागवतमया
तन्मतेनेदमाख्यात न तु मन्मति वैभवात्।'[2]
'ईशान्तामिच्छयासन्त क्षमन्ता मम साहसम्' (भा० टी० २।१०)

उक्त श्लोक के 'साहसम्' पद द्वारा भागवत पर टीका करना वे अपना साहस मानते है। साहस अनुचित कर्म की परिधि मे माना जाता था। यहाँ श्रीधर ने अपने को अति विनम्र दिखलाया है, क्योकि भागवत शास्त्र अति-निगूढ है, उन्होने स्पष्ट लिखा है कि मेरी सामर्थ्य नही थी किन्तु प्रेम बडी वस्तु है उसी की प्रेरणा से यह कार्य पूर्ण हुआ है।—

'क्वेद नानानिगूढार्थ श्रीमद्भागवत क्व नु
मन्द बुद्धिरह कृष्ण प्रेम किन्न कारयेत् ॥' (भा० टी० १२।१३)

---

१ भावा० दी० ११।३१ अन्त मे। २. भावा० १०।१३ मगल पद्य सं० ३।

प्रकाशन—यह टीका देश के विभिन्न भागों मे विभिन्न लिपियों मे प्रकाशित होती रही है, अपने शोध प्रबन्ध मे आठ टीका संस्करण एवं खेमराज बम्बई संस्करण से सहायता ली है, तथापि इसके कतिपय विभिन्न संस्करणों की तालिका दी जाती है —

ईस्वी सन्	स्थान	सम्पादक
१८२३	कलकत्ता	भवानी चरण
१८४५	कलकत्ता	नन्दकुमार कृत व्याख्या के साथ
१८५८	कलकत्ता	सुखा शास्त्री
१८६०	मुम्बई	हरिजोत महादेव
१८६२	मन्द्राज	तेलगु टीका
१८६२	मुम्बई	काशीनाथ कृत वेदस्तुति टीका सहित
१८७०	कलकत्ता	दुर्गाचरण बंघोपाध्याय
१८७१	बरहमपुर	रामनारायण विद्यारत्न
१८७२	मुर्शिदाबाद	रामनारायण विद्यारत्न
१८७७	कलकत्ता	ब्रह्मव्रत भट्टाचार्य
१८८०	कलकत्ता	ब्रह्मव्रत भट्टाचार्य (बङ्गला)
१८८२	बम्बई	मराठी व्याख्या सहित
१९०१	बम्बई	गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस
१९०२	कलकत्ता	पचानन तर्करत्न (बंगाक्षर)
१९०७	कलकत्ता	पचानन तर्करत्न (बंगाक्षर)
१९०८	वृन्दावन	नित्यस्वरूप (आठ टीको पत)
१९०८	बम्बई	पचानन तर्करत्न
१९०९	मद्रास	द्राविणी भाष्य
१९०८	बम्बई	जी० पी० बंशीधर शर्मा
१९१०	मद्रास	तामिल
१९१०	मुम्बई	वासुदेव शर्मा
१९११	कलकत्ता	राजेन्द्रनाथ
१९१२	कलकत्ता	शीतलप्रसाद
१९१४	मुम्बई	निर्णय सागर प्रेस
१९२०	कलकत्ता	पचानन तर्क रत्न
१९२१	कलकत्ता	नीलकान्त कृत रास पचाध्यायी सहित

१६२५	कलकत्ता	हरीशाद चट्टोपाध्याय
१६४०	मुम्बई	निर्णयसागर प्रेस

शैली—भावार्थ दीपिका अन्वय मुख टीका है, किन्तु भूमिका की शैली का प्राधान्य है। यथा—

'व्यत्यस्तवस्नाभरणा'

श्लोक की व्याख्या में भूमिका—

'कृष्ण तुष्ट्यर्थं कर्म तदासक्तमनसामन्यथा कृतमपि फलत्येवेति-द्योतयन्नाहव्यत्यस्तेति'।[1]

शकराचार्य की भी यही प्रणाली थी—

'इद तु ते गुह्यतमम्' (गीता ६।१)

की व्याख्या में—'अष्टमे नाडी द्वारेण धारणायोग सगुण उक्त ·····   ···
तस्यानेनैव प्रकारेण मोक्ष प्राप्तिफलमधिगम्यते नान्यथेति तदाशङ्का व्याविवृत्स्या भगवानुवाच—इदमिति।'[2]

इस टीका में कहीं कहीं कुछ चुने हुए शब्दों की व्याख्या मात्र की गई है।[3] यह टीका समास शैली व गद्य में लिखी गई है। प्रकृति प्रत्यय के विवेचन पर अधिक ध्यान दिया है, आवश्यकतानुसार पाणिनीय सूत्रों का भी उल्लेख किया है। किन्तु १५ बार से अधिक सूत्रावृत्ति नहीं है, केवल सूत्रानुसारी विवेचन ही लिखा गया है। उन्होंने अपनी व्याख्यापद्धति के विषय में नवम् स्कन्ध में लिखा है कि तत शब्द अनन्तर का वाची है, मूल में जहाँ भी आधिक्य हो वहाँ अनन्तर जहाँ न्यून हो वहाँ पूर्व या पर से भी सम्बन्धित किया जाय। यथा 'अजस्ततो महाराज' में तत का अर्थ बतलाता है, अर्थात् अज के पश्चात् दशरथ।[4]

श्रीधर ने अन्वय योजना में बड़ी सावधानी से कार्य किया है क्योंकि भागवत में श्लोकों का अन्वय कभी आगे वाले श्लोकों से कभी पूर्व श्लोकों से सम्बद्ध होता है। उन्हें श्रीधर ने प्रथम ही निर्दिष्ट किया है पश्चात् टीका की

---

१ भावा० दी० १०।२६।७।   २ शांकर भाष्य गीता ६।१।

३. 'अनुक्रम्यचारमकम्' की व्याख्या में अनुक्रम का अर्थ शोधयित्वा मात्र लिखा गया है। (भा० दी० ११।७।८)

४. 'तत इत्यादेर्यत्राधिक्य स्यात्तत्रानन्तर्ये तत इत्यादि पदं व्याख्येयं यत्र तु न्यूनत्वं तत्रपूर्वस्य परस्यवानुषंगादिति व्याख्येयम्।' (भा० दी० ६।१०।२६)

है। अन्वय प्रसङ्ग मे इन्होने लिखा है कि 'पूर्वेणान्वय'[1] कही उत्तरेणान्वय'[2]। भागवत मे ऐसे किसी स्थल को श्रीधर स्वामी ने नही छोडा जिसका अन्वय पूर्वापर श्लोको से सम्बद्ध हो। उपमा वाक्यो को प्राय. पृथक् रखा है। यथा—'निष्कृपत्वे दृष्टान्त —पशु यथा'[3] शङ्का का द्योतन ननु शब्द से किया गया है—

'ननुत्वगष्ट्यादिक विहाय फलाद्रस पीयते .... तत्राह रसरूपम् ।'[4]

'स्वर्ण धर्मानुवाक' आदि स्थलो पर मन्त्रो के सकेत लिखे हैं जो अत्यन्त उपादेय हैं[5]। अथर्ववेद की श्रुति का दो वार उल्लेख किया है।[6] उपनिषद् वाक्यो द्वारा अपने पक्ष का प्रतिपादन विशेषत किया है। श्रुतियो व उपनिषदो के वाक्यो का ५०० वार से अधिक उपयोग किया है, केवल वेदस्तुति मे ६० श्रुत्यश रखे गये है। ये इनके वेद सम्बन्धी मान्यता के परिचायक है। ब्रह्म सूत्रो का उल्लेख २० वार से अधिक नही हुआ है। स्मृतियो मे सर्वाधिक गीता के वाक्यो को उद्धृत किया हैं। लगभग ३० स्थलो पर गीता के वचनो द्वारा स्वपक्ष का समर्थन किया है।[8] यथा—

'सपदि सखि वचो निशम्य' (भाग० १।६।३५)

के साथ 'सेनयोरुभयोर्मध्ये' गीता के श्लोक को रखा है, यह गीता द्वारा भागवत कथन की पुष्टि के लिए है।

'आत्मा नित्योऽव्यय शुद्ध' (भाग० ७।७।१६)

की टीका मे 'त्रैगुण्य विषया वेदानिस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' गीता का श्लोक अपने पक्ष की पुष्टि के लिये उद्धृत किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति का लगभग ८ वार उल्लेख धर्मशास्त्र प्रसङ्गो पर किया है।[9] बृहस्पति[10], भृगु[11] तथा मनु[12], पराशर[13], व्यास[14] के उल्लेख भी किये

---

१. भा० दी० १।१५।१४। २. वही १।६।२६, १०।२६।२६।
३. वही १।७।३३। ४. वही १।१।३। ५. वही ११।२७।३१।
६. वही २।२।१८, ७।६।१८। ७ वही १।५।१४, १।६।३५. २।१।६।
८. वही १।११।३१, ७।१।१३, ७।११।२४, ७।१५।२४, ८।१६।४३, ८।२०।४३, १०।५६।३८, ११।११।४०।
९. वही ४।१८।३१। १०. वही १।६।१७, ६।३।१६।
११. वही ६।५।३७, ७।११।१३–१४, १०।८४।३६।
१२. वही ८।२४।१८, २६ ; ८।२४।२७, १०।५६।३३, १०।६०।६-३८ ; १२।१।१४। १३. वही १।८।४८।

गये है, आश्वलायन का उल्लेख ३।१३।४५ मे है। अन्तर्कथाओ के प्रसङ्ग मे पुराणो के नाम भी उद्धृत किये है, उनमे वायुपुराण[1], वराह पुराण[2], कौर्मपुराण[3], विष्णु पुराण[4], वैष्णव पुराण[5], विष्णु धर्म[6], मार्कण्डेय पुराण[7], पद्म पुराण[8], वामन पुराण[9], नारद पुराण[10] के नाम उल्लेखनीय है। भारत[11] तथा महाभारत[12] एव इतिहास समुच्य[13] का भी उल्लेख प्राप्त है। शैवतन्त्र का उल्लेख २ बार हुआ है। ५।२०।३५ मे तथा १०।४५।३६ मे ६४ कलाओ के नाम है।

तन्त्र का उल्लेख ३।२०।१२, ११।३।३६ ; तन्त्रवार्तिक का ११।४।१७ सात्वत तन्त्र का ३।५।२७ मे एव तन्त्र वार्तिककार भट्ट का ७।५।६१ मे उल्लेख है। सनत्सुजातोक्त—धर्मश्चसत्यच दमस्तपश्च की व्याख्या ७।६।१८ मे व्याख्या भी की है। यास्क-निरुक्त का ८।१६।३१, ६।६।४५ मे एव सांख्य-कारिका की मूल प्रकृति कारिका का उल्लेख ११।१६।३७ मे किया है। सग्रह का १।१।१२ वाच कूट सग्रह का ६।५।३० मे उल्लेख है। कोशो मे त्रिकाण्ड का ७।१४।२२ मे, अभिधान का ६।१०।२३ मे, अमरसिंह का ४।१६।१२, ४।२२।२८, ६।३।२४ मे उल्लेख है। मापाबन्ध समय का ३।२२।१६ मे एव अभियुक्त श्लोक का ११।१२।१७ मे है। शिक्षा का उल्लेख ३।१।३३, ६।६।१२ मे है। यह पाणिनीय शिक्षा है। क्योकि प्रथम मे पाणिनीय शिक्षा के आत्मा बुद्ध या समेत्यार्थान०।[14] का द्वितीय मे मन्त्रोहीन स्वरतोवर्णतोवा[15] का रखा है।

इनके अतिरिक्त १०।८।५ मे जातक का, १०।४०।३ मे हस गुह्य का ३।१७।१८ मे पिण्डसिद्धि का, १।७।६, ३।१२।२, ७।१५।६ मे सर्वज्ञसूक्त का, ६।१६।४१ मे शबरभाष्य का उल्लेख है। १।२।३३ मे पाणिनीय भुजोऽनवने[16] का ४।२८।४५ म उपोऽधिश्चे[17], ६।६।१२ मे बहुव्रीहौ प्रकृत्यापूर्वपदम् का[18] उल्लेख किया गया है। १।३।२६ मे दसु उपक्षेय तथा, दशत्तम मे वश कान्तौ धातु का भी उल्लेख किया है। आर्ष प्रयोगो की सिद्धि नही की गई केवल आर्ष लिखा गया है।

---

१ भा० टी० १।१।४, ५।१६।३६। २ वही १।१।४। ३ वही १।६।३०,१२
४ वही २।७।२६, ५।१६।८। ५. वही ५।२१।८ ६. वही ६।२।१६।
७ वही ३।३१।५। ८. वही १।१।१ ६ वही १।७।१८।
१०. वही ११।१८।१६ ११. वही २।७।२६। १२ वही ३।२६।२८।
१३ वही ३।१५।१२। १४. पाणिनीय शिक्षा, श्लोक ६। १५. वही, श्लोक ५२
१६ अष्टाध्यायी १।३।६६। १७. वही १।४।२८७। १८. वही ६।२।१।

'य प्रव्रजन्तमनुपेत·······पुत्रे ति ।' (भा० टीका १।२।१)
श्लोक मे पुत्रे ति मे आर्षत्वात् सन्धि है ।[1]

टीकाकार का ज्योतिष विषयक ज्ञान पचम स्कन्ध के विवेचन से स्पष्ट है । शकुन शास्त्र की भी चर्चा की गई है—

गज-वाजि रथास्त्रेषु निधि मालाम्बरद्रुमा
शक्तिपाश मणिच्छत्र विमानानि चतुर्दश ।[2]

ये विशिष्ट चिन्ह विभिन्न आकृति एवं अवस्थाओ के परिचायक हैं । इसी प्रकार गणित के प्रसङ्ग मे भी वे उतनी ही रुचि लेते हैं जितनी अन्य प्रकरणो मे ।

भगवान श्रीकृष्ण प्रतिदिन वद्व सख्या गौ दान किया करते थे, वद्व का अर्थ स्पष्ट लिखते हुए उसका प्रमाण भी लिखा है :—"चौदह लक्ष त्रयोदश सहस्र चौरासी" सख्या को वद्व कहते हैं ।[3]

छन्द-शास्त्र का यथावसर निरूपण किया है, भागवत मे ऐसे श्लोक हैं जिन्हे पद्य की मान्यताओ के कारण व्याकरण से पुष्ट होने पर भी स्वीकार क्या है । यथा 'विंशतिमे' का प्रयोग । किन्तु व्याकरणानुसार शुद्ध रूप 'विंशति तमे' ही रखा जाय तो श्लोक का उच्चारण ढङ्ग से न होगा—'स्कोनविंशे विंशति तमे' के स्थान पर 'स्कोनविंशेविंशतिमे' पाठ उच्चारण मे सौकर्य स्पष्ट है । श्लोको का अन्वय ५-५ ११-११ श्लोको से जहाँ सम्बन्धित है वहाँ २ के साथ होने से युग्मक, कुलक आदि का उलेख किया है जिसमे भागवत के अन्वय मे पर्याप्त साहाय्य मिलता है, ये भी छन्दोविधान के अन्तर्गत आते है जिन्हे श्रीधर ने सर्वत्र बडे सूक्ष्म निरीक्षण से देखा है । इस प्रसङ्ग मे श्रीधर स्वामी ने कही प्रमाद नही किया । एक स्थल पर श्रीधर स्वामी वैशेषिक मत का खण्डन करते देखे गये हैं ।

'वास्तव परमार्थ भूत वस्तुवेद्य नतु वैशेषिकाणामिव द्रव्यगुणादि रूपम् ।' इससे उनका उक्त शास्त्र का ज्ञान सिद्ध है ।

---

१. यहा सन्धि होना व्याकरण विरुद्ध है । पुत्र शब्द दूर से उच्चरित हैं अतः लुप्त होना चाहिये ।
२. भावा० ६।२१।२५ ।
३. चतुर्दशाना लक्षाणां सप्ताधिक शतात्मकः
वद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश: । (भा० टी० १०।१०।८)
४ वही १।१।२

मीमांसा—अपनी शैली की प्रौढता के लिए वे मीमांसा को नही अपनाते किन्तु वेद स्तुति के प्रकरण मे इसके ज्ञान के अभाव मे वह प्रसग ही सम्बद्ध नही बैठ सकेगा, इस विचार से मीमांसा पर विचार किया है। वैश्व देवी आमिक्षा की भांति सामानाधिकरण्य का खण्डन किया है।[1]

वेदान्त—ब्रह्म जीव, जगत्, माया आदि के सरल व्याख्यान इस टीका मे देखने को उपलब्ध होगे। जहा भी वेदान्त की परिधि है वहा अनेक श्रुत्यंशो से अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया गया है। वस्तु (ब्रह्म) की प्रधानता बतलाते हुए उन्होने लिखा है—

"वस्तुनोऽशो जीवो वस्तुनः शक्तिर्माया ।
वस्तुनः कार्यं जगत् तत्सर्वं वस्त्वेव नततः पृथक्" ।[2]

जीव परतन्त्र है ईश्वर स्वतन्त्र है—'स्वातन्त्र्यमेव विशेषः' तत्वमसि मे भाग लक्षणा द्वारा अभिन्नार्थ है।[3] भक्ति का निरूपण भी बड़े सुन्दर शब्दो मे करते है। भक्ति के विना मोक्ष भी नही तथा सत्सग विना भक्ति नही मिलती, अतः दास्ययोग ही प्राप्त करना चाहिए—

"एव भक्ति विना न मोक्षो न च भक्तिः ससेवया विनाऽतः प्राक्प्रार्थित त्वद्दास्ययोग मेव देहीति" ।[4]

स्कन्ध के प्रारम्भ मे लिखित मगल पद्य स्तोत्र साहित्य मे अपना उच्च स्थान रखने योग्य है। इन स्तोत्रगत श्लोको द्वारा उनके साहित्य क्षेत्र के गम्भीर अध्ययन का ज्ञान होता है, लक्षण ग्रन्थो की आलोचना से उन्हे प्रयोजन नही था वे तो रचनात्मक वस्तु के पक्षपाती थे सुन्दर श्लोक इसके प्रमाण है[5]—

---

१. 'तथाहि न तावद्वैश्वदेव्यामिक्षेतिवदुभयो रेकार्थाभिधानेन सामानाधिकरण्य दर्शोक्तं आमिक्षा देवता युक्ता यदत्येवैव तद्धितः ।'
(भा० दी० १०।८७ उपक्रम)

२. वही० १।१।१

३ 'तात्पर्यवयोः सामानाधिकरण्यं प्रतीयते तच्च प्रकारान्तरेणाघटमानं ब्रह्मणि पर्यवसानं गमयति अतो बृहद्बृहत् स्वार्थं लक्षणया सोऽयं देवदत्त इतिवद्विरुद्धांशत्यागेनानुगत चिदंशेनैकार्थ्येन सामानाधिकरण्येन निर्गुणे पर्यवसानाम् ।"
(भा० दी० १०।८७)

४ भा० दी० १०।१४।४

५ मुंचन्नग तरंग संगमनिशं त्वामेव सचिन्तयन्
संतः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्
नित्यं तन्मुख पंकजाद्विगलितावाग्पुष्पवाणामृत-
स्रोतः सप्तव संप्लुतो मरहरे न स्यामहं देहभृत् । (भा० दी० १०।८७।२८)

प्रत्येक अध्याय के आरम्भ मे सारूप मे एक श्लोक रखा है, लगभग ५०० श्लोक समग्र भागवत मे उपलब्ध है। वेद स्तुति के प्रत्येक श्लोक पर अपना एक श्लोक बना कर रखा है, ये श्लोक शब्द अर्थ दोनो दृष्टियो से भाव भक्ति से पूर्ण हैं।

टीका मे शका समाधान भी सरल ढग से रखे हैं, मत्स्यावतार के समय प्रलय का निरूपण, दक्षिणायन भाई बहिन का विवाह। शिव के प्रति श्रीधर स्वामी ने अपनी विनम्रता सर्वत्र प्रकट की है। जहाँ मूल मे शिव निन्दा भी है वहा पदच्छेद पूर्वक स्तुति पक्ष निकाला है। 'माधवोमाधवावीक्षो' मे भी शिव वन्दना का सकेत है।

महत्व—भावार्थ दीपिका मे मूल के विवेचन पर अधिक बल दिया गया है, मूलानुसारी अर्थ निष्पक्ष भाव से करना उनका उद्देश्य है।[1]

'यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै'

की व्याख्या मे केवल ७ विभक्तियो के अर्थ मात्र दिखलाये है, अन्य टीकाकारो ने स्व-सम्प्रदायानुसारी व्याख्या मे खीचातानी की है।

श्रीधर भागवतकार की आत्मा को पहचानते थे, यह कहा जा सकता है। टीकाकार रूपी नक्षत्र पुज वे हैं तो श्रीधर ताराधिप है। यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नही है। ऐसा कोई टीकाकार नही जिसने प्रथम श्रीधर की कृति का मनन न किया हो। अत लोकप्रचलित उक्ति की चरितार्थता सिद्ध होती है कि, व्यास तथा शुक भागवत का मर्म जानते है, राजा भी सम्भवत जानता है किन्तु नृसिंह के प्रसाद से श्रीधर सम्पूर्ण रूप से भागवत का अर्थ जानते है—

'व्यासो वेत्ति शुकोवेत्ति राजा वेत्ति नवेत्तिवा
श्रीधर सकल वेत्ति श्रीनृसिंह प्रसादत।'[1]

भारत के विभिन्न क्षेत्रो म श्रीधर कृत टीका मे अनेक सम्वतो मे अनेक भाषाओं के सस्करण उसकी गरिमा के द्योतक हैं। भक्तिमाल मे श्रीधर की प्रशसा अन्वर्थ की है।

छप्पय— 'तीन काण्ड एकत्व सानि कोउ अज्ञ बखानत

श्रीधर श्रीभागौत मे परम धर्म निरनै कियो।'[2]

१. पुराण विमर्श, पृष्ठ २७१।

२. नाभादास कृत, 'भक्तमाल'—छप्पय ४४०।

३. मधुसूदन सरस्वती

(क) परिचय—अद्वैत वेदान्त का पाठक जब तक सरस्वती के ग्रन्थों का पठन पाठन नहीं करता तब तक उसका अद्वैत शास्त्र का स्वाध्याय पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सरस्वती के पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दराचार्य था। यवनाक्रान्त काल में इनके पूर्वज कन्नौज परित्याग कर बंगाल की ओर भाग गये थे। सरस्वती के ज्येष्ठ बन्धु श्रीनाथ चूडामणि तथा यादवानन्द थे, लघु भ्राता का नाम वागीश था। उच्चकोटि के अद्वैत वेदान्त के विद्वान् होते हुए भी भगवत्प्रेम की धारा नैसर्गिक रूप से इनके जीवन में प्रवाहित हुई थी। एक प्रसंग में श्रीकृष्ण को परमतत्व लिखकर उन्होंने अपने मृदुभावों को व्यक्त किया है।

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुण बिम्ब फलाधरोष्ठात्
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ॥[1]

जिसकी भक्ति के बिना मुक्ति ही नहीं होती, उन नन्द नन्दन को प्रणाम करते हुए लिखा है कि—

यद् भक्तिं न विना मुक्तिर्यः सेव्यः सर्वयोगिनाम्।
तं वन्देपरमानन्दघनं श्री नन्दनन्दनम् ॥[2]

मधुसूदन सरस्वती ने अपने पिता के चरणों में बैठकर व्याकरण, काव्य-कोश आदि शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन किया था। नवद्वीप में इन्होंने वल्लभाचार्य कृत 'न्याय लीलावती' का तथा गंगेशोपाध्याय कृत 'न्याय तत्व चिन्तामणि' का स्वाध्याय भी किया था।

(ख) सम्प्रदाय—'सरस्वती' ने काशी में श्री रामतीर्थ जी से अद्वैत-शास्त्र का तथा माधव सरस्वती से मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया था, तत्पश्चात् इन्होंने सुप्रसिद्ध विद्वान विश्वेश्वर सरस्वती के निर्देश से गीता की 'गूढार्थ दीपिका' नामक टीका की रचना की थी। यह टीका सरस्वती ने एक वर्ष में पूर्ण की थी। 'मधुसूदन सरस्वती' अद्वैतवाद के अनुयायी मात्र ही नहीं अपितु अद्वैतवाद रूपी प्रासाद के महान स्तम्भ थे। ग्रन्थ के अन्त में इन्होंने अपने गुरु वर्ग का स्मरण किया है—

---

1 मधुसूदनी गीता-भूमिका, पृष्ठ ५। 2 वही ७।१ मंगलाचरण।

श्री राम विश्वेश्वर माधवाना
प्रमादमासाद्य मया गुरुणाम्
व्याख्यानमेतद् विहित सुबोध
समर्पित तच्चरणाम्बुजेषु ॥[1]

मधुसूदन सरस्वती शास्त्रार्थ मे सर्वत्र विजयी होते थे किन्तु इनके चित्त मे शान्ति प्राप्त न हुई, एक बार एक परमहस से इनकी भेट हो गई, उनके उपदेश से ये कृष्णोपासना में प्रवृत्त हुए, इन्हे कृष्ण के दर्शन का साक्षात् अनुभव भी हुआ था। तत्वनिष्ठा और भगवत्प्रेम का सामजस्य जैसा सरस्वती मे है अन्यत्र दुर्लभ है।[2]

(ग) स्थितिकाल—मधुसूदन सरस्वती दीर्घजीवी थे, किम्वदन्ती के अनुसार इन्होने १०७ वर्ष भूतल पर निवास किया था। सम्वत् १५६० से १६६७ पर्यन्त इनका इस लोक मे निवास माना जाता है।[3] गोस्वामी जी इनके समकालीन थे, उन्होंने एक दोहा उनके समीप भेजा था—

हरि हर यश सुर नर गिरा वरनहिं सन्त समाज।
हाडी हाटक चारु रुचि राधे स्वाद समान ॥

उत्तर मे मधुसूदन सरस्वती ने निम्न श्लोक लिखा—

आनन्द कानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरु ।
कविता मजरीयस्य रामभ्रमर भूषिता ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी का समय १५६० विक्रम से १६८० माना जाता है। अत इन दोनो का समय भी एक था, यह कथन उचित ही है। अकबर सम्राट के दरबार में इन्होंने टोडरमल का क्षत्रियत्व सिद्ध किया था। अकबर का शासन १६१३ विक्रम से १६६२ विक्रम माना जाता है। अत इससे भी इनका होना सिद्ध है। मधुसूदन वस्तुत सरस्वती थे। मधुसूदन सरस्वती के बारे मे निम्न श्लोक है —

---

१ गूढार्थ दीपिका गीता टीका, उपसहार।

२ अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्या
स्वाराज्य सिंहासन लब्ध दीक्षाः
शठेन केनापि वय हठेन
दासी कृता गोपवधू विटेन ॥ (गूढार्थ दीपिका)

३. गूढार्थ दीपिका (भूमिका), पृष्ठ ५।

मधुसूदन सरस्वत्या' पार वेत्ति सरस्वती ।
पार वेत्ति सरस्वत्या मधुसूदन सरस्वती ।।

एक बार मधुसूदन के नवद्वीप पहुँचने पर पण्डितो मे भगदड मच गई थी ।

नवद्वीपे समायाते मधुसूदन वाक्पतौ ।
चकम्पे तर्क वागीश कातरोऽभूद् गदाधर' ।।

यदि सम्पूर्ण भागवत पर मधुसूदन सरस्वती की टीका होती तो टीका जगत् मे एक गौरव वृद्धि होती ।

(घ) कृतिया—१. अद्वैत रक्षण, २. गूढार्थ दीपिका, ३ भागवत आद्य पद्य व्याख्या, ४. भक्ति रसायन ।[1]

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—श्री मधुसूदन सरस्वती कृत आद्य पद्य व्याख्या बडे विस्तार के साथ आठ टीका सस्करण मे मुद्रित हुई है । अत इसका नामकरण सम्पूर्ण टीका पर न होने के कारण नही किया होगा । इस सस्करण के पूर्ण साढे चार पृष्ठो मे यह टीका उपलब्ध हैं ।

उद्देश्य—इस टीका की रचना का उद्देश्य अपनी आयु की सफलता प्राप्त करना है। इन्होंने स्पष्ट लिखा है —

अनुदिनमिदमायु सर्वदासतप्रसगै····

क्षणमपि सफल स्यादित्यय मे श्रमोऽत्र ।।[2]

शैली—मधुसूदन सरस्वती सकल शास्त्रो के उद्भट विद्वान् थे । श्लोक का सम्बन्ध पहले लिखा है, इसके उपरान्त टीका भाग रखा है, यथा—

'त पर सत्य वय धीमहि' इति सम्बन्ध ।

तदुपरान्त प्रत्येक पद की व्याख्या की है—'तत् किंस्विद् व्यावहारमात्राबाध्य तद्व्यावर्त्तनायाह परमिति' । प्रथम पक्ष अद्वैतवादी सिद्धान्तो के आधार पर लिखा है—'मुमुक्षवो ध्यायेम निदिध्यासेम' । निदिध्यासन आदि की विस्तृत व्याख्या भी की है । 'पूर्वार्द्ध' से 'जन्माद्यस्ययत', अन्वयात् पद से 'तत्तु समन्वयात्', 'अर्थेष्वभिज्ञ', से 'ईक्षतेर्नाशब्दम्', 'तेने ब्रह्म हृदा' से 'शास्त्र योनित्वात्', 'मुह्यन्तियत्सूरय' से 'एतेनसर्वे व्याख्याता व्याख्याता' पर्यन्त का न्यायकलाप सूचित किया है, तथा समन्वयाध्याय व्याख्यात है । 'तेजो वारि मृदा' से 'अविरोधाध्याय', 'धीमहि' से 'साधनाध्यायार्थ', 'धाम्ना स्वेन' से 'फलाध्यायार्थ' की प्रतीति करायी गई है । भागवत के पारमहसी नामकरण का हेतु भी लिखा है —

१. 'भक्तिरसानुभवश्च सर्वोप्यरमाभिर्भक्तिरसायने-अभिहित'
(भाग॰ आद्य पद्य व्याख्या १।१।१)

२. भाग॰—आद्य पद्य व्याख्या १।१।१ मगलाचरण कारिका २ ।

'अविद्या तत् कार्यं निवृत्युपलक्षितपरमानन्दरूपा विशेषात् । एव–सति पारमहंसीसंहितेति समाख्योपपद्यते परमहंसाना वेदान्तवाक्यार्थ निदिध्यासन रूपत्वात् अत्रैत्योपाख्यानाना तत्रातपर्यकत्वात् ।'[1]

मधुसूदन सरस्वती ने टीकारम्भे मे श्रीकृष्ण को नमस्कार किया है—

श्रीकृष्ण परम तत्व नत्वा तस्य प्रसादत

श्री भागवतपद्याना कश्चिद् भाव प्रकाश्यते ।[2]

इससे यह स्पष्ट है कि ये भागवत के पद्यो का भाव प्रकाशित करना चाहते थे, अवश्य ही इन्हाने विभिन्न स्थलों की टीका की होगी, परन्तु अब वह अप्राप्य है। विशालकाय पृष्ठ की २५० पंक्तियों मे आद्य पद्य की व्याख्या द्वारा इनके भागवत के गम्भीर अध्ययन का पता लगता है। इन्होंने देख लिया था कि आयु अनुदित व्यतीत हो रही है किन्तु सत्प्रसङ्ग विचार का अवसर ही नही मिलता। अत हरि चरित सुधा से मेरा जीवन सफल होगा।[3] 'सात्वतास्तु वर्णयन्ति' से पाचरात्रागम के प्रभाव का निरूपण तथा उसके अनुसार जन्माद्यस्य श्लोक की व्याख्या की है।

केवल भक्तिरसिकास्तु—से 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' आदि वाक्य द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के पक्ष मे जन्माद्यस्य का अर्थ घटित किया है। इस प्रकार मधुसूदन सरस्वती ने प्रत्येक पक्ष की व्याख्या मे सकल श्रुति पुराण-व्याकरण मीमांसा आदि शास्त्रो का निर्वाह किया है। अन्तिम पक्ष का विशेष विस्तार से यहा नही कर सके, उसके लिये अपने ग्रन्थ 'हरभक्ति रसायन' का उल्लेख किया है। इस भक्तिरस पक्ष में उनकी विशेष रुचि थी, इसमे उन्होने सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण हैं, यह सिद्ध किया है।[4]

—०—

१. आद्य पद्य व्याख्या १।१।१। २. मधु० सरस्वती १।१।१ मंग० १।

३ अनुदिनमिदमायु सर्वदाऽसत् प्रसगै–
बहुविध परितापै. क्षीयते व्यर्थमेव
हरि चरित सुधाभि सिच्यमानं तदेतत्
क्षणमपि सफलं स्यादित्यय मे श्रमोऽत्र ॥
(भाग० आद्य पद्य व्याख्या, मंगलाचरण, कारिका २)

४. एव च सर्वं प्रियत्वेन परमानन्द रूप. सर्वज्ञ सर्वशक्ति सर्वमोहनः सर्व-सुखप्रद सर्वापराध सहिष्णु. परम कारुणि को विदग्धतरश्च श्रीकृष्णो भक्तिरसालम्बनत्वेन सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रतिपाद्य इति ध्वनितम्।
(भागवत आद्य पद्य व्याख्या १।१।१)

तृतीय अध्याय

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार

१ सुदर्शन सूरि
२. वीर राघवाचार्य
३. भगवत्प्रसाद
४ श्रीनिवास सूरि
५. योगी रामानुजाचार्य

विशिष्टाद्वैत मत के टीकाकार

१. सुदर्शन सूरि

(क) परिचय—रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य सुदर्शन सूरी प्रतिभा-शाली विद्वान एवं भगवद्भक्तों में मूर्धन्य थे, अपना अमूल्य जीवन भारती की सेवा में व्यतीत करने वाले सुदर्शन को भट्टाचार्य के नाम से भी अभिहित किया जाता था। ये तामिल देश के निवासी थे एवं हारीत गोत्र के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जैसा कि श्रीमद्भागवत की पुष्पिका द्वारा ज्ञात होता है—

इति श्री हारीतकुलतिलक वाग्विजयसूनुना श्रीरंगराजदिव्याज्ञा लब्ध वेद व्यासापरनामधेय श्रीसुदर्शन सूरिणाभिहिते श्रीमद्भागवत पुराणे व्याख्याने श्री शुक पक्षीये दशम स्कन्धे नवतितमोऽध्याय। (शुक पक्षीया १०।९०)

इस पुष्पिका से यह भी ज्ञात होता है इनके पिता का नाम 'वाग्विजय' या विश्वजयी था एवं इनके गुरु का वरदार्य या वरदाचार्य था। सुदर्शन के पितामह रामपिल्लाई एवं प्रपितामह का नाम कुरेश था।[1]

(ख) सम्प्रदाय—'वेदव्यासापरनामधेय' से स्पष्ट है कि श्री रंगराज की आज्ञा से इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई थी। प्रसिद्ध रामानुजाचार्य के ये भागिनेय एवं शिष्य थे। सुदर्शन ने अपने गुरु श्री वरदाचार्य से श्री भाष्य की व्याख्या सुनकर 'श्रुति प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। श्रीरामानुज भाष्य के समझने के लिये 'श्रुति प्रकाशिका' का पठन अत्यन्त आवश्यक है। श्री रामानुज के वेदार्थ संग्रह की 'तात्पर्य दीपिका' लिखी थी एवं ब्रह्म सूत्र पर 'श्रुति प्रदीपिका' नामक टीका लिखी। सम्प्रदाय के प्रति यह भाव मातुल श्रीरामानुज के स्नेह की प्रेरणा से और भी पल्लवित हुआ था।[2] अतः ये विशिष्टाद्वैतवादी थे।

---

१. श्रीरंगाचार्य-रंग मंदिर, वृन्दावनधाम।

२. कल्याण-वेदान्तांक-गीताप्रेस, पृष्ठ ६३८।

(ग) स्थिति काल—सुदर्शन सूरी का मृत्यु समय निश्चित माना जाता है, इनकी मृत्यु के बारे मे यह निश्चयपूर्वक कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने सन् १३६७ मे मदुरा पर आक्रमण के समय श्रीरंगम् पर भी आक्रमण किया, उस समय सुदर्शन सूरी भी यवनो के चंगुल में फस कर मारे गए।[1] अत १३६७ मे इनकी मृत्यु यदि मानी जाय तो १२५०–१२७० ई० के मध्य इनका जन्मकाल माना जा सकता है।

विशिष्टाद्वैत के अनुयायी उनकी मृत्यु का यह समय नही मानते। वे आक्रमण के १०-१२ वर्ष पश्चात् उनका परम पद स्वीकार करते हैं।[2]

(घ) कृतिया—१ श्रुति प्रकाशिका, २ तात्पर्य दीपिका
३ श्रुति प्रदीपिका, ४. शुक पक्षीया

शुक पक्षीया श्रीमद्भागवत की टीका है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—विशिष्टाद्वैत के प्रथम भागवत टीकाकार श्री सुदर्शनाचार्य सूरी की टीका शुक पक्षीया नाम से विख्यात है।[3]

परिमाण—शुक पक्षीया नामक टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—यह टीका शुकदेव के भी अभीष्ट को लेकर लिखी गई है अथवा शुकदेव का मन्तव्य इस टीका मे ही खोला गया है, अत यह नामकरण किया गया प्रतीत होता है।

प्रकाशन—यह टीका आठ टीका के साथ् वृन्दावन से प्रकाशित हुई है।

शैली—यह टीका महत्वपूर्ण होने पर भी स्वल्प परिमाण मे है, न तो इसमें अन्वय मुख शैली को प्राधान्य दिया है न भूमिका शैली को। मूल के कतिपय पद उठाकर उनकी व्याख्या ही अधिकतर की गई है। साहित्य की छटा कहीं देखने को भी नही मिलेगी।

मूल श्लोक विवरण में भी इस टीका का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। यथा—

---

१ (क) पुराण विमर्श–बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५७३।
(ख) कल्याण–वेदान्तांक, पृष्ठ ६७८।
२ श्रीरंगाचार्य (रंग मन्दिर, वृन्दावन)
३ इति श्री ' ' सुदर्शनसूरि कृत व्याख्याने शुक पक्षीये प्रथम.।

शैली—यह टीका अन्वय-मुखी व्यारया है। भूमिका बाधने का उपक्रम किया गया है किन्तु उनकी अभिरुचि अन्वय योजना के साथ विस्तृत व्याख्या मे लगी है। टीका के वैशिष्ट्य द्योतन के लिए ब्रह्मसूत्रो को कही मूल रूप में रखा है, कही तदनुसारी प्रक्रिया द्वारा पक्ष की सिद्धि की है। साथ मे पुराण एव स्मृति के वाक्यो को भी रखा है। अन्तर्कथाएँ मूल श्लोको के साथ रखी है। जिन वाक्यो को अद्वैत परक समझा जाता है उन्हें भी विशिष्टाद्वैत के अनुसार सिद्ध किया है। यह इनका टीकाकारो मे प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है, इस शैली से परवर्ती टीकाकारो को एक दिशा मिली एव उन्होंने उसी प्रकार अपन अपने सम्प्रदाय के अनुसार उन वाक्यो का अर्थ प्रकट किया। जैसे—सर्वं खल्विद ब्रह्म, सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मय, रसौ वैस आदि वाक्यो का अर्थ टीका मे अद्वैतपरक नही किया।[1]

व्याकरण मे टीकाकार ने अत्यधिक रुचि ली है, जहां भी व्याकरण की कोई बात उन्हें विचार योग्य दिखलाई देती है वे नव्य न्याय की शैली मे उसके समाधान की ओर सचेष्ट देखे जाते हैं।[2]

"स प्रकारक पट्करूप सम्बन्धिरूप कालरूपश्च यो पदार्थ पृथक् स्वभाव प्रविभक्त स्वभावो यस्य स कर्त्तृ कर्म द्वारा तन्निष्ठ क्रियाश्रयत्वमधिकरणत्व द्रव्यगुण क्रियान्वितमनि रूपितत्वेतत्कारणत्वे च सति स व्यापार निर्व्यापार निष्ठत्व हेतुत्वम्। धातूपात्त व्यापार जन्य फलाव्यवहित पूर्व व्यापाराश्रयत्व करणत्वम्।"

साहित्य की ओर इनकी अधिक रुचि नही, शब्दानुप्रास की छटा इनकी टीका मे न के तुल्य है, अर्थालकारो में ध्वनि के विवेचन एव अलकारो के निरूपण मे भी इनकी चित्तवृत्ति नही रमी है। भाषा में क्लिष्टता है, व्याकरण, कोश के अप्रचलित शब्दो तथा वेदान्त मीमासा आदि के प्रौढ विवेचन के कारण इस टीका का स्वारस्य सहज बुद्धिगम्य नही है। सम्प्रदाय की भावना के कारण वे अन्य आवश्यक तथ्यो पर मौलिकता से विचार नही कर सके। षष्ठ स्कन्ध के नवमाध्याय में साधारण बात कही गई है कि 'परमात्मा ही जगदाकार रूप में परिणित है।" इसकी टीका में आत्मा का चित् तथा अचित् लिखते हुए जगत् को भी चिदचिद् विशिष्ट अवस्था में लिखा है जो इन पर अतिशय युक्त सम्प्रदाय भावना का प्रमाण है—

---

१ भा० ष० स्कं० १०।८७।१ २ वही ६।८।१२.

का प्रयोग किया है। यह खण्डन श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध मे दक्षकृत शिवनिन्दा के पक्ष का स्तुतिपरक अर्थ करने के कारण किया है। यद्यपि श्रीधर स्वामी ने निन्दा पक्ष तथा स्तुति पक्ष दोनो ही लिखे है किन्तु वीरराघव केवल निन्दा अर्थ ही उचित मानते है, क्योंकि अग्रिम प्रसग मे निन्दा की पुष्टि ही होती है, स्तुति पक्ष की नही। उन्होंने 'लुप्त क्रियायाऽशुचये' भावार्थ दीपिका की पक्तियो को उद्धृत करते हुए लिखा है कि—

'केचिदत्र लुप्तक्रियाया शुचये इत्यादि ग्रन्थ रुद्रनिन्दापर यथा श्रुत व्याख्याय वास्तवस्वयमर्थ इत्युपक्रम्य लुप्त क्रिया यस्मिन् परब्रह्मरूपत्वात् अत एव शुचिर्यस्मात्, इत्यादि।'[1]

इस प्रकार इन्होंने श्रीधर स्वामी को आडे हाथो लिया है, इतना ही नही 'आत्मा नित्योऽव्यय' श्लोक की व्याख्या मे श्रीधर ने जिन श्रुति वाक्यो को उद्धृत करते हुए अद्वैत सम्प्रदाय की पुष्टि की है वहा वीर राघवाचार्य ने उनका अर्थ विशिष्टाद्वैतपरक किया है।[2] निर्गुणवाद के प्रति उन्हे अति घृणा है, वे स्पष्ट लिखते हैं कि यह वाद भ्रममूलक ही है क्योकि भिन्न वस्तुओ के अधिकरण भी भिन्न होंगे। अत – निर्गुणवादा निरीश्वर वादश्च भ्रममूलक एव।[3] वीर राघव की टीका मे व्रज के एव भागवत के प्रमुख अश राधा-कृष्ण-मुरली आदि की कोई चर्चा नही की गई है। ग्रन्था मे महाभाष्य[4], अष्टाध्यायी[5] विष्णु पुराण[6] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थकारो म श्री वत्सांकमिश्र[7], वरद गुरु[8], रामानुज[9] आदि क उल्लेख प्राप्त होते है।

३. श्रीभगवत्प्रसाद

(क) परिचय—श्री भगवत्प्रसाद ने भागवत की भक्तरजनी नामक टीका का प्रणयन किया था। ये छुप्पय ग्राम (कौशल देश) के निवासी थे। इनका जन्म सामवदीय सारख जातीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री रघुवीराचार्य था एव पितामह का सहजानन्द[10]—

'इति श्री धर्म धुरन्धर श्री धर्मात्मज प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम सहजानन्द स्वामि गुरु श्री रघुवीराचार्य सूनू भगवत्प्रसाद विरचितायामन्वर्थ बोधिन्या भक्तमनोरजन्याख्याया श्रीमद्भागवत टीकायां प्रथम स्कन्ध।'

---

१ भाग० स्क० सं ४।२।१२-२६. २ वही ७।७।१६ ३. वही ६।४।३२.
४ वही १।२।२ ५. वही १।२।४. ६ वही ५।२१।५.
७ वही ५।१४।२७. ८. वही ७।३।८. ९. वही १।१।१.
१० भक्तरजनी, प्रथमस्कन्धान्त, पृ०

'' इनके पितामह हरिप्रसाद जी उद्धवावतार माने जाते थे। इनका जन्म सौराष्ट्र देश के लोज नामक ग्राम में हुआ था। हरिप्रसाद ने रामानन्द स्वामी से दीक्षा ली, दीक्षा के उपरान्त इनका नाम सहजानन्द रखा गया और इसी नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। भगवत्प्रसाद स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अनुयायी थे। स्वामी नारायण के सम्बन्ध में एक और उल्लेख मिलता है —"अहमदाबाद में एक नारायण नाम का चर्मकार रहता था, एक वैष्णव साधु उसके पास आकर कुछ दिवस विश्राम कर परलोक सिधार गया। उस साधु के पास एक धर्मग्रन्थ था। चर्मकार ने उसे सम्हाल कर रखा। किन्तु उसका मर्म वह कुछ भी न समझ सका। छापिया (गोंडा यू पी) का निवासी स्वामी नामक ब्राह्मण तीर्थयात्रा प्रसग से अहमदाबाद आया, वहाँ उस चर्मकार से उसका समागम हुआ। नारायण ने वार्ता प्रसग में उस साधु का वृत्तान्त भी सुनाया एव उसका ग्रन्थ भी दिखलाया। स्वामी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने उस ग्रन्थ को भलीभाँति समझा और अपना पथ चला दिया। दोनो के नाम से यह पथ "स्वामी नारायण" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।"[1]

उक्त कथन जनश्रुति के आधार पर ही कहा जा सकता है, अन्य प्रमाण अभी इस विषय की पुष्टि नही करते। इस मत में ग्रन्थ की पूजा प्रधान धर्म है। इसमे देवमूर्ति उपासना की विधि को प्राधान्य नही दिया गया। ग्रन्थ पूजा से ही भगवान की प्राप्ति हो जाती है। अहमदाबाद-जामनगर-जूनागढ-भाव नगर, इन चार स्थानो में इनके देवालय हैं। वर्णाश्रम का प्रभाव इन पर पड ही गया जब कि ये वर्णाश्रम के पक्षपाती नही थे। उक्त जनश्रुति में जो कुछ सत्य हो किन्तु भक्तजनों के अनुसार सहजानन्द ने ११ वर्ष की अवस्था से ही सिद्धियों के चमत्कार दिखलाना प्रारम्भ कर दिया था। रामानन्द के देह त्याग के पश्चात् इन्होंने उस स्थान को सम्हाला एव अपनी तपश्चर्या द्वारा जनता पर प्रभाव भी डाला। शतानन्द एव मुक्तानन्द नामक दो शिष्य इनके समीप ही रहते थे। कालान्तर में सहजानन्द ने अपने ज्येष्ठ भ्रातृ पुत्र अयोध्या प्रसाद एव कनिष्ठ भ्रातृ पुत्र रघुवीर को धर्माचार्य का कार्य सौंप कर १८८६ विक्रम मे दुगपुर मे शरीर त्याग दिया था।

वीरराघव ने अपने भाई रघुवीराचार्य के पुत्र भगवत्प्रसाद को अपना शिष्य बनाया एव गद्दी का अधिकार भी दिया। वीरराघव ने विशिष्टाद्वैत मतोद्बोध सम्प्रदायानुसारिणी भागवत की टीका लिखने के लिये भगवत्प्रसाद

---

१ धर्मकल्पद्रुम, षष्ठ खण्ड-सं० स्वामी दयानन्द, पृष्ठ २४७।

तुभ्य नमस्तेऽस्त्वविपक्त दृष्टये
गुण प्रवाहोऽयमविद्ययाकृत । (भागवत १०।४०।१२)

टीका—यदविद्यया यदीयया प्रकृत्या मम मायादुरत्ययेति ।[1]

'अप्यडध्रिमूले' की टीका म 'वीतशक' का अथ 'गत शक' इतना ही लिखा गया है। यद्यपि इस प्रकार की शैली अय टीकाकारो की भी ह पर वह कही कही है इनकी टीका मे यह शैली सवत्र है। सम्प्रदाय के तत्व निरूपण प्रसग अवश्य सक्त के रूप म हैं जिनके कारण इसका अत्यधिक सम्मान है। प्राचीन उपलब्ध टीकाआ म श्रीधर स्वामी की टीका के पश्चात् सुदशन सूरी की टीका प्राप्त ह। सम्भव है इस टीका मे किसी परिस्थिति वश इतना सकोच किया गया हो। अयथा टीका म उनका अपना व्यक्तित्व भी दिखलाई देता।

२ वीरराघवाचार्य

(क) परिचय—विशिष्टाद्वैतवादी वीर राघवाचाय अपने समय के विद्वान् थे। उनके समय श्रीमद्भागवत शास्त्र का अनुशीलन एव प्रामाण्य वृद्धि पथ पर था। प्रत्येक आचाय अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिये भागवत के प्रमाण उद्धत किया करते थे। रामानुज सम्प्रदाय के श्री सुदशन सूरी ने शुक पक्षीया टीका की रचना की थी। किन्तु यह सक्षिप्त होने के कारण विद्वत्ता पूण होने पर भी सवसाधारण की पिपासा तृप्त करने मे असमथ थी। साथ ही स्व सम्प्रदायानुसार तत्वो का निरूपण भी बडे सकोच के साथ किया गया था इसे ध्यान मे रखते हुए वीर राघवाचाय ने भागवत पर टीका करना आवश्यक माना तथा भागवत चद्र चद्रिका नामक टीका का प्रणयन किया।

वीरराघव दक्षिण देश के निवासी थे इनका जमस्थान 'वह्निवेलि लक्ष्मक्कपाल्यम्' कहा जाता ह टीका मे ऐसा कोई सकेत नही है। इनके पिता का नाम श्री शैल गुरु था। इनका जम वत्स गोत्र म हुआ था। यह तो निश्चित नही कहा जा सकता। तथापि प्रौढ ग्रथा का अध्ययन इन्होंने अपने पिता से ही पूण किया था। ये अपने पिता के अनय भक्त थे। इन्होंने प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका म उनका तथा अपने गोत्र का उल्लेख किया है।[2] इन्होने

---

१ शुक पक्षिया १०।२८।१९

२ इति श्रीवत्सान्वय पय पारावारराकासुधाकरस्य श्रीशैलगुरोस्तनयेन तच्चरण परिचर्या प्रसन तत्सूक्तिसमधिगत श्रीमदभागवतायहृदयेन श्रीवैष्णव दासेन श्री वीरराघव विदुषा विलिखितायां श्रीमदभागवत चद्र चद्रिकायां प्रथम स्कधे प्रथमोऽध्याय । (भाग० च०च० १।१)

श्री शैल को शैलदेशिक के नाम से अभिहित किया है उनकी महिमा का भाव भरे शब्दो मे उल्लेख उनकी स्नेह भावना का द्योतक है—

चिकीर्षा मोघा सा निरवधि कृपा लोक कलिता
यया यस्यास्यान्त विवृति रचनाया समगमम् ।
स एष श्री शैलो गुरुरखिल विद्या जलनिधि
ममस्याता स्वान्तश्चरण कमल सम्प्रकटयन् ॥

अवेद गभीर निगमान्तरहस्य सार
ववाह सुमन्द मतिरत्रपर निदानम् ।
वीक्षा यदीय करुणा कलिता तमेव
श्री शैल देशिक वर शरण गतोऽस्मि ॥

इनके पितामह का नाम अहोवल था—

वन्दे वात्स्यमहोवलार्य तनय वात्सल्य वारानिधि
श्री शैलेश गुरु प्रिय पतिमपि प्राचार्य पारपरीम् ।
तुर्य व्यूहमशेषहेतुमजितस्याजतदुस्मगजम्
देवर्षि प्रवर पराशरसुत व्यास च वैयासकिम्[1] ॥

श्रीमद्भागवत शास्त्र का अध्ययन इन्हे पिता शैल गुरु ने ही कराया था ।

श्री शैलपूर्णादखिलेतिहास पुराण जाल समवाप्ययेन ।
प्रावर्ति सन्दर्शयतेव शिष्यं भाव मुनि लक्ष्मणमाश्रयेऽहम् ।[2]

इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि इन्होंने पुराणो का एव महाभारत का अध्ययन भी उनसे किया था ।

(ख) सम्प्रदाय—'श्री विष्णु चित गुरु से ज्ञान होता कि वे इनके गुरु थे । एक श्लोक म श्री रामानुजाचार्य-गुरुलेश्वर, गुणनिधि, वात्स्य (मेघ) *वरदाचार्य, यतिविजयज (गुरुर्गाचार्य) व्यास आदि को नमस्कार किया है*—

श्री रामानुज योगि पूर्ण करुणा पात्र महान् तत
सम्प्राप्याखिल वेदविद्यमखिलान् योगविदात् व्याकरोत् ।

---

१. भाग० च० चं० १।१ मगलाचरण ।   २. वही १।१ मगलाचरण ।

वेदान्तान् कुरुकेश्वरं गुणनिधिं श्रीविष्णु चित्तं गुरुं
वात्स्य त वरद च वाग्विजयजं व्यासार्यमीडीमहि ॥[1]

अतः ये विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

वीरराघव ने लिखा है कि "श्रीमद्भागवत एक अपूर्व ग्रन्थ है, यह पुराण तिलक कहा जाता है, अनेक विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है, इस पर टीका करने का साहस गुरुजनों के आर्शीवाद से कर रहा हूँ, विद्वान् मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

श्रीमद्भागवत पुराण तिलक व्याख्यातृभिर्व्याकृतम्
व्यासार्यैयतिराजमाप्यवचसामर्हैर्बुधाना मुदे।
मन्दानामपिमादृशामवगमाच्चाहृतया दर्शितम्
पन्थान समुपाश्रितो विवृणुया मत्साहस क्षम्यताम् ॥[2]

वीर राघव का विश्वास है कि इस प्रकार की सुन्दर टीका भगवत्कृपा बिना सम्भव नही है।

योऽसौ तुरग वदनो हृदि सन्निविष्ट
सचोय दुद्धिमसकृत् कृपया स्वया मे।
आलोलिखत् करतलेन्द्रिय दैवतेन्द्र
मूर्तिस्तमेनमनघ मनवै परशम् ॥[3]

(ग) स्थितिकाल—वीरराघव के जन्म के समय के बारे में प्रामाणिकता के प्रभाव मे प्रमाणो के आधार पर उनका समय निर्धारित किया जा रहा है। इन्होने 'श्रीरामानुज योगि' श्लोक द्वारा रामानुज का उल्लेख किया है, इससे इन्हें रामानुजाचार्य के पश्चात् ही मानना होगा। श्री रामानुजाचार्य का समय सम्वत् १०७४ विक्रम माना गया है। 'तत्रत्यश्रुत प्रकाशिकाया च' इस पद द्वारा इन्होंने सुदर्शन सूरी के ग्रन्थ का निर्देश किया है, सुदर्शन सूरी १३६७ ई० [सम्वत् १४२४] में विद्यमान थे। अतः ये उनके पश्चात् उत्पन्न हुए होंगे। श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका टीका में चतुर्थ स्कन्ध के द्वितीयाध्याय में शिव की स्तुति की गई है, जबकि मूल भागवत में उनकी निन्दा का पक्ष स्पष्ट दिखलाई देता है। इन पंक्तियो को वीर राघवाचार्य ने 'केचित्' कहकर पूर्व पक्ष में रखकर उनका खण्डन किया है एवं 'त्वादृशं' का प्रयोग भी श्रीधर के लिये किया है। अतः ये श्रीधर स्वामी के पश्चात् हुए थे श्रीधर का समय

१. भाग० चं० चं० १।१।१. २. वही १।१।१. ३. वही १२।१३ उपसंहार।

१४५० विक्रम पर्यन्त माना गया है। सप्तम स्कन्ध मे वीर राघवाचार्य ने वरद गुरु का उल्लेख किया है। वरद गुरु रामानुजाचार्य के भागिनेय थे एव शिष्य भी। सुदर्शनाचार्य भी वरद गुरु के शिष्य थे, वरद गुरु का समय १२वी शताब्दी के अन्त से तथा तेरहवी का प्रारम्भ माना गया है।[1] इससे भी वीर राघवाचार्य का समय १४वी शताब्दी के पश्चात् सिद्ध होता है। चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि की टीकाओ मे वीर राघवके मत की समालोचना है, अत श्रीधर से पश्चात् तथा विश्वनाथ से पूर्व इनका स्थितिकाल माना जा सकता है। श्री बलदेव उपाध्याय ने इनका समय १४वी शती लिखा है।[2]

वरदाचार्य के प्रधान शिष्य—वाधूलवशीय वीरराघवदासाचार्य का भी यही समय है, भ्रान्तिवश इन दोनो को एक ही समझा जाने लगा है, किन्तु यह भारी भूल है। भागवत टीकाकार के पिता शैल गुरु थे तथा वीर राघवदास के पिता का नाम नरसिंह गुरु था।

(घ) कृतिया—वीरराघवाचार्य बहुश्रुत विद्वान् एव षट्शास्त्र के मर्मज्ञ पण्डित थे, इनकी एक कृति से ही इनके अगाध पाण्डित्य का प्रकाश हो जाता है, वह कृति है—'भागवत चन्द्र चन्द्रिका'।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य नाम—भागवत चन्द्र चन्द्रिका। इस टीका के रचयिता श्री वीर राघवाचार्य हैं। पुष्पिका मे स्पष्ट लिखा है—

'इति श्री वीरराघवाचार्य कृत भागवत चन्द्र चन्द्रिकाया प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः। (भाग० च०च०१।१)

यह टीका भागवत को चन्द्र मानकर लिखी गई है, अत इसका अन्वर्थ नाम है।

परिमाण–यह टीका सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखी गई है। परिणाम मे यह मूल से द्विगुणित ही होगी कम नही।

उद्देश्य–विशिष्टाद्वैत पक्ष का प्राधान्यत्व सिद्ध करना।

प्रकाशन–इसका प्रकाशन आठ टीकाओ के साथ वृन्दावन से स०१९६४ मे हुआ था तब से उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत मे अनेक सस्करण हो चुके है।

---

१. कल्याण—वेदान्ताक, पृष्ठ ६७८। २. पुराण विमर्श, पृष्ठ ५७३।

को प्रोत्साहित भी किया एवं भगवत्प्रसाद ने उनके लक्ष्य की पूर्ति टीका रचना कर पूर्ण की।

(ख) **सम्प्रदाय**—भगवत्प्रसाद यद्यपि स्वामिनारायण सम्प्रदाय के वंश-क्रम में थे किन्तु इस सम्प्रदाय का विकास विशिष्टाद्वैत की धारा से ही है। चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का निरूपण ही उक्त सम्प्रदाय का परम लक्ष्य है। सामान्य रूपेण इस सम्प्रदाय की अनेक बातें विशिष्टाद्वैत मत से भिन्न है तथापि विशिष्टाद्वैत-मतोद्भवीय सम्प्रदायानुसारिणी भागवत टीका लिखने के लिये वीर राघव ने भगवत प्रसाद को प्रोत्साहित किया था, ऐसा भागवत भूमिका में स्पष्ट निर्देश उपलब्ध होता है, अतः इन्हे विशिष्टाद्वैत मत में माना गया है।[1]

(ग) **स्थितिकाल** – सहजानन्द जी का जन्म १८३७ विक्रम माघ मास शुक्ल पक्ष नवमी को एवं परलोक गमन १८८६ वि० में हुआ था। इन्होंने अपने भ्रातृ पुत्र रघुवीर को अपनी गद्दी का अधिकारी बनाया था। और उनके पुत्र श्रीभगवत प्रसाद जी थे, अतः उनका जन्म १८८६ के उपरान्त एवं १९०० के मध्य मानना उपयुक्त होगा। १९४५ विक्रम में भगवत प्रसाद के पुत्र विहारीलाल ने इस टीका के प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी। इस घटना से यह निश्चित है कि भगवत प्रसाद उस समय नहीं रहे थे। १९४० के पूर्व ही भगवत प्रसाद जी का देह त्याग मानें तो इनकी लघु अवस्था में ही मृत्यु माननी होगी।[2]

(घ) **कृतियां**—भगवत प्रसाद की सुप्रसिद्ध कृति 'भक्त रजनी' टीका ही उपलब्ध है, अनुमान है कि इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी रचे होंगे।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य : नाम**[3]—भक्त रजनी टीका के रचयिता भगवत प्रसाद अपनी सम्प्रदाय के प्रथम टीकाकार हैं, क्योंकि उनका मत विशिष्टाद्वैत में भी विशेषता लिये हुए है। अतः इसे विशिष्ट विशिष्टाद्वैत के नाम से भी अभिहित करने में कोई दोष नहीं है। क्योंकि विशिष्टाद्वैत मत के साथ उद्बोध शब्द भी सयुक्त है, अतः यह स्वामी नारायण पथ की प्रथम टीका कही जा सकती है।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखी गई है। इसमें विस्तार शैली को अपनाया है प्रत्येक श्लोक का अन्वयार्थ तो किया ही है उसका

---

१ भक्तरंजनी (भूमिका)।

२. भक्तरंजनी उपक्रम। ३. श्रीमद्भागवत भक्तरंजनी टीकयायुतम्।
(भक्तरंजनी १२।१३)

भावार्थ एव अनेकार्थ करने की भी शैली रही है, फलत प्राप्त टीकाओ मे आकार मे समकोटि की एव कतिपय टीकाओं से आकार मे वृहद् भी कही जा सकती है।

उद्देश्य—टीका रचना का हेतु उपक्रम मे लिख दिया है कि हरि (सहजानन्द) ने आठ सत् शास्त्र माने है, उनमे एकान्तिक धर्म जानने के लिये भागवत पुराण का प्रतिपादन किया है। अत विशिष्टाद्वैत मतोद्भवीय सम्प्रदायानुसारिणी टीका की आवश्यकता की पूर्ति के लिये इसका प्रयास और भी सराहनीय कहा जा सकता है।

प्रकाशन—मूल सहित यह टीका १९४५ विक्रम मे गणपति कृष्णा जी ने मुम्बई से प्रकाशित की।

वैशिष्ट्य—टीका की प्रथम विशेषता यह है कि इसमे अन्वयपूर्वक समस्त पदो का अर्थ सरल सस्कृत मे लिखा गया है। इससे भागवत के कठिन स्थलो का भय दूर हो गया है। द्वितीय वैशिष्ट्य यह है कि इसमे एक एक श्लोक के अनेकानेक अर्थ किये हैं, पाठक का चित्त उन स्थलो से आगे ही नही बढता और टीकाकार की विद्वता से वह प्रतिक्षण प्रभावित रहता है। तृतीय विशेषता यह है कि व्याकरण के प्रत्येक पद की व्युत्पत्ति एव शास्त्रो का विवेचन प्रस्तुत किया। व्याकरणलभ्य अर्थ को प्रधानता दी है साथ ही 'कोशो' के आधार पर भी अनेकार्थ प्रस्तुत किये है। भाषा मे प्रवाह, लालित्य एव सजीवता है। अन्तर्कथायें विस्तार के साथ लिखी गई हैं। श्रुतियो के उद्धरणो को स्वसम्प्रदाय मत के अनुसार व्याख्या मे उपनिबद्ध किया है। मूलार्थ सगति नाना शकासमाधान एव गूढ तात्पर्य खोलने मे टीकाकार का परिश्रम देखते ही बनता है। टीकाकार का कथन है कि [उस समय भागवत की अन्वर्थ बोध कराने वाली कोई टीका प्राप्त नही थी और जो टीकाए थी वे ब्रह्म के विषय मे अनेक मतवादो मे व्यस्त थी। भक्त जनता को उनसे सन्तोष लाभ न देखकर मैंने इस टीका का प्रणयन किया—

व्यासार्यं प्रकटी कृत बुधजनैर्व्याख्यातृभिर्व्याहृतम्
श्रीमद्भागवत पुराणमखिल श्रीकृष्णलीलापरम्।
द्वैताद्वैतमतानुगैरपि यथा बुद्धिप्रवादान्वितं
स्वीकृत्या च यमत्र भक्तजन सतोपाय न व्याहृतम्॥[1]

१. भक्तरजनी १।१।१ मंगलाचरण।

भगवत प्रसाद के समय मे अनेक टीकायें थी परन्तु वे अन्वर्थ बोध कराने मे असमर्थ थी। उन्होने अपनी टीका मे इसको स्पष्ट घोषणा की है-—

टीका सन्ति यदप्यमुष्य सुधिया बोधायनानाविधा
नैकार्था प्रति शब्दमेव विगुण ब्रह्म प्रतिष्ठापिका ।
विद्वत्तागमका विदा च सगुण ब्रह्म प्रवादैर्युता
नैकास्वन्वय बोधिकास्ति तत एषाप्यस्तु तद्बुद्धये ।।[1]

टीकारम्भ मे स्वामी नारायण की वन्दना भी की है—

स्वामिनारायण नत्वा धर्म पुत्र मुनीश्वरम्
स्वभक्तानन्द छृन्मूर्ति स्वान्तेध्यायामि सिद्धये ।[2]
हरे सता च सम्प्रीत्यै टीका तेषा प्रसादत
सान्वयार्धेन सयुक्ता क्रियते भक्तरजनी ।।[3]

तत्व विवेचन मे विशिष्टाद्वैत मत को ही स्वीकार किया है । चिद-चिद्विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का रचयिता है । सौराष्ट्र देश मे इस टीका का अत्यधिक आदर है। भगवत प्रसाद के पुत्र विहारीलाल ने प्रथम स्कन्ध के आद्य दो पद्यो की टीका भी की है। यह टीका स्वामी नारायण के पक्ष मे लिखी गई है। इन्होने अर्थ करते हुए स्पष्ट लिख दिया है कि यह टीका स्थानपूर्ति हेतु लिखी है --

अथ रामकृष्णयो पक्षे प्रसिद्धार्थत्वात्तृतीयस्य श्री सहजानन्दस्वामिन पक्षेऽनयो श्लोकयोर्व्याख्या केवलमत्रस्थानपूर्त्यर्थ प्रदर्शयामि ।[4]

४—श्री निवास सूरि

(क) परिचय--ये गोवर्द्धन पीठ (जिला मथुरा) के प्रमुख महन्त थे। वृन्दावनस्थ रगमन्दिर के प्रधान महन्त श्री रगदेशिक थे ये गुरु थे। उत्तर भारत मे श्रीनिवास सूरि ने दक्षिण की परम्परा एव शिष्टाचार का प्रचार किया था। गोवर्द्धन मे प्रथम श्रीवेंकटाचार्य ने अपना प्रभुत्व सस्थापित किया था, वेंकटाचार्य के शिष्य का नाम कृष्णाचार्य था। कृष्णाचार्य के शिष्य का नाम शेषाचार्य था। श्रीनिवास सूरि इन्ही शेषाचार्य के प्रधान शिष्य थे । अपनी टीका मे श्रीनिवास ने वेंकट का उल्लेख किया है—

श्रीगोवर्द्धन वासिनो गुणनिधेर्मूर्निहि साक्षाद्धरे
श्रीमद्वेंकटदेशिकस्यकरुणापीयूषतत्वार्थवित् ।

---

१. भक्त रजनी १।१ मंगलाचरण । २. वही ३ वही ४. भक्त रंजनी उपक्रम ।

श्रीरगाधिक-पाद-पद्म-मधुप नयावासदासाभिघ
तेनेय रचिता हरेर्गुण-युता व्याख्या-हि वेद स्तुते ॥ (भा०च०च० १०।८७)

वेंकटाचार्य वाधूल गोत्री थे —

वाधूलान्वयक्षीराब्धि चन्द्रमा निष्कलकक
सोऽय श्रीवेंकटाचार्य सन्निघत्ता सदा हृदि ॥ (वही)

वेंकटाचार्य के दासदास का उल्लेख भी अपने लिए किया है—इति श्रीगोवर्द्धन कृतवास श्रीवेंकटाचार्य दास दासेन श्रीनिवास दासेन विरचितायां....

श्रीनिवास सूरि के जन्म स्थान व माता-पिता आदि का विवरण इस टीका मे उपलब्ध नही है।

(ख) सम्प्रदाय—श्रीनिवास सूरि विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे, रामानुज की परम्परा मे इनके गुरू एव शिष्य का सम्बन्ध भी रहा है, तथा इनके मगल पद्य से भी इनका रामानुज मत का अनुयायी होना सिद्ध है —

श्री श्रीनिवासदासाढ्यो नत्वा श्री यति शेखरम् ।
रामानुज करोत्याढ्या व्याख्या वेदस्तुतेर्गुणे ॥[1]

(ग) स्थिति काल—रगदेशिक गोवर्द्धन स्थित मठ के अधिपति थे, इनके आदेश से सेठ राधाकृष्ण ने वृन्दावन मे रग मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस मन्दिर का आरम्भ स० १९०२ मे हुआ था, अत १९०२ से पूर्व तथा १८५० के पश्चात् श्रीनिवास की स्थिति मानी जा सकती है[2] क्योंकि रग-देशिक श्रीनिवास की गद्दी पर बैठे थे।

(घ) कृतिया—तत्वदीपिका (भागवत टीका)

(ङ) टीका वैशिष्टय—नाम—श्रीनिवास रचित भागवत की टीका का नाम 'तत्व दीपिका' है। वेदस्तुति के प्रारम्भ मे स्पष्ट लिखा है—'श्री श्रीनिवास सूरि कृत तत्व दीपिका'[3]।

परिमाण—यह टीका ब्रह्म स्तुति एव वेद स्तुति (१०।८७) अध्याय पर है, किन्तु बडे विस्तार के साथ लिखी गयी है।

उद्देश्य—विशिष्टाद्वैत मतानुसारी व्याख्या करना।

प्रकाशन—आठ टीका सस्करण वृन्दावन मे प्रकाशित।

शैली—भूमिका प्रणाली से यह टीका लिखी गयी है—तत्र एव स्वभक्तयो राजन्.... ... मन्वान .... पृच्छति ब्रह्मन्निति'। (८७।१) १

१ तत्व दीपिका १०।८७।१। २. कांकरोली का इतिहास, प्रकरण८, पृष्ठ ३८।
३. तत्व दीपिका १०।८७ प्रारम्भ।

टीका मे श्रुतिवाक्य-'अणो रणीयान्' आदि एव 'सर्वभूतान्तरात्मा' आदि स्मृति वाक्यो के उदाहरण दिये है। निर्विशेष ब्रह्म का खण्डन किया है। भाषा मे प्रवाह है तथा प्रौढता से पुष्ट है—

"..." पुन कीदृशे सदसत परे चिदचिद्विलक्षणे तयोर्यन्तरीत्यर्थ तदनप्रविश्य। सच्चत्यच्चाभवत्। (तत्वदीपिका ८।७।१)

सुदर्शन सूरि ने भागवत की व्याख्या सक्षेप मे की थी, उसका विस्तार श्रीनिवास ने किया है—

वेदवेदान्त तत्वज्ञे श्री सुदर्शन सूरिभि
शुक्र पक्षानुसारेण कृतव्याख्यान मुत्तमम्।
तद्वाक्यान्येव सगृह्य मया तत्करणेक्षणात्
अन्यायापि प्रमाणानि क्रियते तत्सविस्तरम् (तत्व दी० १०।८७।१)

५. योगि रामानुजाचार्य

(क) परिचय—रामानुजाचार्य वृन्दावन वास्तव्य थे, इन्होने अपने माता-पिता, देश आदि के बारे मे कोई सकेत नही दिया। वृन्दावनवास का प्रमाण इनके विरचित एक श्लोक से किया जाता है— (सरला १०।८७।१ स)

श्रीवृन्दावनमाधवाङ्घ्रि सुरज कु जालि ससेविना—
रम्या योगि समाह्वयेन रचिता रामानुजार्येण सा।
सद् गूढार्थ विबोधिनी सुललिता वेद स्तुतर्भावुक
श्रीकृष्णस्य समर्पिताङ्घ्रि कमले व्याम्प्रोत्तमाराजते॥ (मगलाचरण)

वृन्दावनस्थ श्रीरग मन्दिर के ट्रस्टी एव प्रसिद्ध विद्वान् १०८ श्री कमलनयनाचार्य जी के कथनानुसार 'योगी रामानुज' दाक्षिणात्य विद्वान् थे।

(ख) सम्प्रदाय—ये विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी थे, इनके नाम से ही इनके सम्प्रदाय का पता लग जाता है।

(ग) स्थिति काल—रामानुजाचार्य रगदेशिक के उपरान्त वृन्दावन मे आकर निवास करने लगे थे। रगदेशिक के स० १६०२ मे विद्यमान थे। अत उसके पश्चात् १६०२-१६५० स० के मध्य इनकी स्थिति मानी जा सकती है।

(घ) कृतियां—सरला टीका (भागवत)

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—रामानुज कृत टीका का नाम 'सरला' है। पुष्पिका मे इसका स्पष्ट निर्देश है—

'इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे योगिरामानुजाचार्य कृत सरला व्याख्याया सप्ताशीतितमोऽध्याय'। (सरला १०।८७ पुष्पिका)

परिमाण—यह टीका वेदस्तुति १०।८७ अध्याय पर एव ब्रह्म स्तुति पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—रामानुज के छिपे हुए भावो को भागवत के इस वेदस्तुति के अ श से प्रकाशित करना।

प्रकाशन—आठ टीका सस्करण—वृन्दावन।

शैली—प्रथम टीकाकार ने श्रीकृष्ण की वन्दना की है। यद्यपि श्री रामानुज मत के अन्य टीकाकारो ने भी श्रीकृष्ण के वन्दन मे आलस्य प्रकट नही किया तथापि रामानुज योगि ने प्रारम्भ मे भागवत के प्रतिपाद्य की वन्दना भावपूर्ण शब्दो म की है –

> श्रीकृष्ण शिरसा नत्वा व्याख्या वेदस्तुतेरिमाम्
> योगिरामानुजार्योय तनोति महताम्मुदे ॥[1]

यह टीका सद् गूढार्थ वोधिनी एव ललित है। अनेक श्रुति-स्मृति वाक्यो द्वारा विशिष्टाद्वैत के अनुकूल व्याख्या की गयी है। श्लोको के अन्वय मे अधिक ध्यान दिया है, यथा—

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये ·········· ·। (सरला १०।८७।१)

'हे ब्रह्मन्। गुणवृत्तय श्रुतय सदसत परे निर्गुणे अनिर्देश्ये ब्रह्मणि साक्षात् कथ चरन्तीत्यन्वय।'

यह अन्वय श्लोक के प्रारम्भ मे होने से अधिक उपयुक्त होता है जैसा कि चूडामणि ने अपनी टीका म रखा है, इन्होने अन्वय विवेचन के पश्चात् लिखा है। प्रत्येक श्लोक के पूर्व विशाल भूमिका बाधी गयी है तथा विस्तार-पूर्वक प्रौढ भाषा मे टीका की रचना की है।

इस सम्प्रदाय म अन्य अनक टीकायें भागवत पर लिखी गयीं हैं उनम भारद्वाज कृष्ण गुरु कृत 'मुनिभावप्रकाशिका' टीका भी महत्वपूर्ण है। यह टीका दशम स्कन्ध पर लिखी गयी है, कृष्ण गुरु रामदेशिक के शिष्य तथा नृसिंह गुरु के पुत्र थे। इनकी टीका वेंकटेश्वर (मद्रास) से १६१० ई० मे प्रकाशित हुई है।

—*—

---

१ सरला १०।८७।१।

अध्याय चतुर्थ

द्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. मध्वाचार्य
२. विजयध्वजतीर्थ
३. व्यास तत्वज्ञ
४. लिघेरी श्रीनिवास
५. श्रीनिवास तीर्थ
६ छलारि नारायणाचार्य
७. चेट्टी वेंकटाचार्य
८. शेपाचार्य
९. सत्याभिनव
१० अनन्त तीर्थ
११. सत्यधर्म यति
१२. पाधरी श्रीनिवासाचार्य
१३. धनपति मिश्र

द्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. मध्वाचार्य

(क) परिचय—द्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य का परिचय श्रीनारायण कृत 'मध्वाचार्य विजय' मे वर्णित है, इसके अनुसार इनका जन्म दक्षिण मे तुलुव देश के वेलिग्राम मे हुआ था।[1] इनके पिता का नाम मधि जी भट्ट एव माता का नाम वेदवती था। दम्पति ने अपने दो पुत्रो के नष्ट होन के पश्चात् नारायण की उपासना की। फलत एक बालक का जन्म हुआ, उस बालक का नाम 'वासुदेव' रखा गया। यही आगे मध्वाचार्य के नाम से विख्यात हुआ। ग्राम पाठशाला में बालक वासुदेव अध्ययन करने के लिय भेजा गया किन्तु व्यायाम मे अभिरुचि होने के कारण ये मल्लो को परास्त करने लगा, अत इसका नाम 'भीम' पड गया था। किम्बदन्ती के अनुसार मध्वाचार्य के रूप मे वायु देवता ही प्रकट हुए थे। ११ वर्ष की अवस्था में वैराग्य की तीव्र भावना से प्रेरित होकर इन्होंने सन्यास ग्रहण किया।[2] इनके दीक्षा गुरू का नाम अच्युत पक्षाचार्य (शुद्धानन्द) था। सन्यासावस्था मे इन्हे पूण प्रज्ञ नाम दिया गया। शास्त्र मे पारगत होने के पश्चात् गुरू ने आनन्द तीर्थ नाम दिया, साथ ही आनन्द ज्ञान, आनन्दगिरि, ज्ञानानन्द नाम भी प्रसिद्ध हुए।

मध्वाचार्य ने त्रिवेन्द्रम् आदि स्थानो मे शास्त्रार्थ किये। उडुपी मे बैठकर गीता तात्पर्य की रचना की। वेदान्त सूत्र की व्याख्या करके आचार्य वदरिकाश्रम गये और श्री व्यासदेव के प्रत्यक्ष दर्शन करने के पश्चात् उक्त ग्रन्थ उन्हे समर्पित भी किया। व्यास जी ने इन्हे शालग्राम की तीन मूर्तियां दी, जिन्हे आचार्य ने सुब्रह्मण्य, उदीपि, और मध्यतल मे प्रतिष्ठित किया। चालुक्य साम्राज्य की राजधानी कल्याण में शोमन भट्ट ने दीक्षा ग्रहण की, यही शोमन भट्ट अपने गुरू के पश्चात् मठाधीश हुए और उन्हे पद्मनाथ तीर्थ नाम मिला। उदीपि मे कृष्ण मन्दिर के अतिरिक्त श्रीराम-सीता, लक्ष्मण-सीता, द्विभुजकालिय दमन, चतुर्भुज कालिय दमन, विट्ठल इन आठ मूर्तियो की

---

१. सर्वेश्वर वृन्दावनाक, पृष्ठ २५५ में कल्याणपुर का उल्लेख है।

२ कल्याण-वेदान्ताक, भाग ११, पृष्ठ ६६०।

प्रतिष्ठा की। पण्डित त्रिविक्रम ने मध्वाचार्य से दीक्षा ग्रहण की एव एक कृष्ण-मूर्ति गुरू को भेंट दी जो अद्यापि कोचीन म विद्यमान है। 'सरिदन्तर' स्थान म मध्व ने अपनी इह लीला का सवरण किया था।

(ख) सम्प्रदाय—मध्वाचार्य न द्वैतवाद का समर्थन किया, ये स्वय उसके प्रधानाचार्य एव सम्प्रदाय प्रवर्तक हुए। इनके सम्प्रदाय का नाम 'मध्व' सम्प्रदाय पड गया। द्वैत सम्प्रदाय के नाम से भी इसकी सर्वत्र ख्याति है। प्रकृति तथा जड जगत् मे भेदाभेद स्वीकार किया गया है।[1]

(ग) स्थिति काल—सम्प्रदाय के अनुसार इनका समय सम्वत १०४० स ११२६ पर्यन्त माना जाता है। भागवतदर्शनकार न भाण्डारकर के अनुसार १२५४ विक्रम से १३३३ सम्वत् पर्यन्त समय भी लिखा है।[2] यह तो निश्चित है कि मध्वाचार्य न रामानुज के विशिष्टाद्वैत के विरोध म अपने मतवाद की प्रतिष्ठा की थी।

(घ) कृतिया श्रीमध्वाचार्य ने अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया, उनमे कतिपय के नाम उल्लेखनीय है–

१ गीताभाष्य २ ब्रह्मसूत्र भाष्य ३ अनुभाष्य ४ दशोपनिषद् ५ यमक भारत ६ भारत तात्पर्यनिर्णय[3] ७ भागवत तात्पर्य निर्णय ८ तन्त्रसार सग्रह ९ द्वादश स्तोत्र १० सदाचार स्मृति आदि।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य नाम—मध्वाचार्य कृत भागवत की टीका का नाम 'भागवत तात्पय निर्णय' है।

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—भागवतकार के अभिप्राय का द्वैतपरक अर्थ करना ही उद्देश्य है।

---

१ वेदान्त सिद्धान्त सग्रह-वनमाली मिश्र, पृष्ठ ६२, श्लोक ५।१४

२ (क) भागवत दर्शन, पृष्ठ १७७।

(ख) वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म-आर०जी० भाण्डारकर, पृष्ठ ८७, ८३।

(ग) कल्याण वेदान्ताक पृष्ठ ६६० मे ११९९ ई० आश्विन शुक्ल दशमी लिखा है जिसके अनुसार सम्वत् १२५६ विक्रम आता है।

(घ) भक्ति अक, पृष्ठ १८८ मे स० १२६५ का उल्लेख है।

३ व्यासाततया भाष्यवरविधाय

पृथक् पृथक् चापनियत्सु भाष्य

कृत्वाखिलाय पुरुषोत्तमच

हरि वदन्तीति समर्पयित्वा। (भारत तात्पर्य निर्णय ७।३२)

प्रकाशन—निर्णय सागर प्रेस बम्बई, शाके १८३२ ।

शैली—भागवत के श्लोकों की संख्या क्वचित् क्वचित् देते हुए अपनी भाषा मे उनका अर्थ किया है । कही मूल श्लोक भी दिये गये हैं । जैसे —'जन्माद्यस्य' श्लोक की व्याख्या—जन्माद्यस्येत्यादि । त पर धीमहि । अन्वयात् । यतो वा० । इतरत । स्वत चेतनार्द्धेति ।[1] व्यास का राम से पूर्व अस्तित्व सिद्ध करते हुए लिखा है—'रामात्पूर्वमप्यस्ति व्यासवतारः तृतीययुगमारभ्य व्यासो बहुषु जनिवानिति कौर्मे ।' अन्य टीकाकारो ने व्यास को द्वापर के अन्त मे स्वीकार किया है, मध्व ने अनेक व्यासों का अस्तित्व स्वीकार किया है ।

तात्पर्य निर्णय मे प्रथम स्कन्ध मे २० अध्याय माने हैं । इस प्रकार एक विचित्र संख्या भागवत के अध्यायों की सर्वप्रथम इनकी टीका मे दर्शित होती है ।[3] मध्व सम्प्रदाय के अन्य टीकाकारो ने इस सारणी का पालन किया किन्तु अध्याय संख्या के विषय मे उनमे मतैक्य नही पाया जाता, किसी-किसी टीकाकार ने दशमस्कन्ध मे १०४ अध्याय भी माने हैं । इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय के टीकाकारो ने भागवत के अध्यायो की संख्या मे इतना भेद नही माना । तात्पर्य निर्णय से मूल भागवत के श्लोक की टीका का प्रकाशन सिद्ध नही, तथापि सम्प्रदाय की अन्य टीकाओ का ज्ञान समुचित रूपेण तात्पर्य निर्णय के अनुशीलन से अधिक सरल सिद्ध हो सकता है ।

२ विजयध्वजतीर्थ

(क) परिचय—मध्व सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर टीकाए लिखी हैं जिनमे अनेक अपूर्ण टीकाए आज भी उपलब्ध हैं । किन्तु विजयध्वजाचार्य कृत पद रत्नावली नामक टीका सम्पूर्ण भागवतपर उपलब्ध है जो सम्प्रदाय की टीकाओ का प्रतिनिधित्व करती है । अपने जीवन के विषय मे कुछ नहीं लिखा है । सम्प्रदायज्ञों के कथनानुसार ये पेजावर मठ के अध्यक्ष

---

१. भागवत तात्पर्य निर्णय १।२।१ — २. वही २।१।३७

३

स्कन्ध —	१	२	३	४	५	६
अध्याय—	२०	१०	३४	३१	२६	१९
स्कन्ध —	७	८	९	१०	११	१२
अध्याय—	१५	२३	१९	९४	३१	१३=३३५

थे। माध्व सम्प्रदाय के मठो मे यह सातवी सख्या का मठ कहा जाता है।[1] विजयध्वजतीर्थ व्याकरण, साहित्य एव वेदान्तशास्त्र के पारगत थे। पुराण एव भक्तिशास्त्र के महान् स्तम्भ थे। महेन्द्र तीर्थ नामक विद्वान् के ये शिष्य थे। यह इनकी पुष्पिका से पुष्ट होता है—

'इति श्रीमन्महेन्द्रतीर्थ पूज्यपाद शिष्यविजयध्वज तीर्थ भट्टारकस्य कृतौश्रीभागवत टीकाया पद रत्नावल्याम् प्रथमस्कधे प्रथमोऽध्याय । (१।१।१)

(ख) सम्प्रदाय—महेन्द्र तीर्थ इनके दीक्षा गुरु अवश्य रहे होगे क्योकि वे मठ के महन्त पद पर आसीन थे, टीकाकार ने मगलाचरण मे उनका उल्लेख किया है—

चरणनलिने दैत्यारातेर्भवार्णवमतरीन्
दिशतु विशदा भक्ति मह्य महेन्द्रतीर्थयतीश्वर ॥ (१।१।१)

महेन्द्रतीर्थ द्वैतवादी आचार्य थे अत ये भी इस सम्प्रदाय के सिद्ध होते हैं। श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त गौरवपूर्ण ग्रन्थ है, इसके शब्दार्थ का ज्ञान भी अत्यन्त क्लिष्ट है, केवल गुरु की अनुकम्पा द्वारा उसे समझा जा सकता है। पद रत्नावली के मगलाचरण म वे लिखते हैं—

क्व शब्द क्वाभ्यास श्रुतिरपि गुरो क्वाप्रसरणी
समीक्षा पौराणी क्व खलु विबुधामतृसरधिय ।
तथापिव्यामोहाद् गुरु गुरू कटाक्षैक शरणो
मनाग् व्याकुर्वेहं भागवत पुराण प्रगहनम् ॥

आनन्दतीर्थ एव विजयतीर्थ कृत भागवत टीकाओ का इन्होंने स्वाध्याय किया था। एव उनके अवलम्बन पर ही अपनी टीका निर्माण किया था, इस विषय मे उन्होंने लिखा है—

आनन्दतीर्थ विजयतीर्थप्रणम्य मस्करि वरवन्धो
तया कृति स्फुटमुपजीव्यप्रवच्मि भागवत पुराणम् ॥

माध्वाचार्य का नाम आनन्दतीर्थ था, प्राय उनका सर्वत्र यह नाम ही इन्होने लिया है। इनकी कृति 'भागवत तात्पर्य' है किन्तु विजयतीर्थ की टीका का कहीं पता नही लगता। उक्त मगलाचरण से यह स्पष्ट है कि विजयतीर्थ ने भी भागवत पर अवश्य कोई टीका लिखी होगी, किन्तु अब वह उपलब्ध

---

१. मध्य सम्प्रदायाचार्य विद्यामान्य का पत्र, उडुपी मैसूर, १९६६ ई० ।

नही है । आद्य पद्य व्यारया मे लिखित वृतान्त के अनुसार विजयध्वज ने भागवत टीका की रचना समुद्र के मध्य किसी स्थल विशेष पर की थी'—

इह हि नाना विध-व्यसन-सागर-मग्नान्-अज्ञानुद्दिधीर्पु करुणा करो भगवान्वादरायणानुग्रह–मुख्यपात्रश्रीमत्सुख तीर्थान्तर्हृदय कृपा पात्र भूतो विजयध्वज भट्टारक कैश्चिद्रजत पीठ पुर वासिमि स्व समान सस्थानाधिपतिभि कैश्चिद्भिक्षुभिर्ग्रहस्थाश्रमिभि सहसूर्योपराग महापर्वणिस्नात्वा सिन्धु-समीपे तपश्चरण समये केनचित्सार्थेनबहुजनै सह बलात्कारेण नाविकायामारोपित धर्म ह्रासप्रयुक्त किंचिद्द्वीपपरिशोधनव्याजेनगुर्वज्ञया पूर्वजन्माचरित पुण्यफल परिमाक वशात्–श्रीमद्भागवत व्याख्यार्यमाज्ञनो बहुश्रुत्यादिसम्मततया-तात्पर्यानुरोधेनापि बहु प्रौढेकतयैकवार व्याख्याचकार । तद् दृष्ट्वैतत्-व्याख्यान नर लोक योग्य नेनि नारदादिभिर्नीतमित्यैतिह्यम् । पुनरेकवारमृष्यादि मण्डल प्रतिनीतम् । पुनरप्येक वार कर्त्तव्यमित्याज्ञप्तस्तृतीय वार भूलोके स्थापितमिति पूर्वाचार्यै श्रुतमिति ।

उक्त गद्य मे विजयध्वज के विषय मे पर्याप्त लिखा है । आशय यह है कि श्री विजयध्वज श्रीसुखतीर्थ के कृपापात्र शिष्य थे । एक समय रजतपीठ पुरवासी एव अपने समान अन्य सस्थानो के अधिपतियो के साथ ये सूर्योपराग म स्नान करने गये । इस यात्रा मे इनके साथ गृहस्थी जनवर्ग एव कतिपय भिक्षुक गण भी थे । समुद्र म स्नान करने के उपरान्त वहा से थोडी दूर चलकर ये एकान्त स्थल मे तपस्या करने के विचार से बैठ गये । थोडे समय उपरान्त किसी सामुद्रिक व्यापारी की दृष्टि इन पर पडी और इन्हे अपने सहयोगी नाविको के सहयोग से बलपूर्वक पकडकर अपनी नौका मे चढा लिया । थोडी देर म वह नौका समुद्र के एक द्वीप मे पहुँच गई । वहा उस व्यापारी ने इन्हे उसी द्वीप मे रख दिया । इस स्थल पर विजयध्वजाचाय ने भागवत की टीका लिखी । इस व्याख्या मे श्रुति प्रमाण तथा माध्व कृत तात्पर्य की सगति बैठाकर ग्रन्थ का मर्म बडी विद्वता से प्रकाशित किया था । उस व्याख्यान की महत्ता देखकर एव उसे नरलोक के उचित न मानकर नारदादि मुनि उसे दिव्य लोको को ले गये । द्वितीय बार बडे प्रयत्न पूवक रची गयी कृति को इसी प्रकार ऋषि-मुनि अपन साथ ले गये । तृतीय बार गुरु की आज्ञा से इन्होन पुन टीका लिखी जो 'पदरत्नावली' नाम से प्रसिद्ध है ।

---

१ आद्यपद्य व्याख्या–सत्यधर्म कृत टिप्पणी के साथ प्रकाशित–धारवाड ग्राम, गोविन्द वण्णूर ।

इस वृत्तान्त का उल्लेख आद्यपद्य व्याख्या मे वेंकटाचार्य के शिष्य अहोबल नृसिह ने किया है । उन्हे यह वृत्तान्त अपने पूर्वाचार्यों के मुख से सुनने को मिला था । इस वृत्तान्त के लेखक नृसिहाचार्य एक प्रामाणिक विद्वान् हैं । वे वेंकटाचार्य के पौत्र तथा वासुदेवाचार्य के पुत्र थे ।[१]

इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य विजयध्वज एक उच्चकोटि के विद्वान् थे एव दैवी आज्ञा से इस ग्रन्थ की टीका मे सलग्न हुए थे। विजयध्वज के उपास्य श्री विठ्ठल ही परमतत्व हैं, सृष्टि स्थिति एव सहारकर्ता भी वही हैं—

यल्लीला जलराशि लोल लहरी स्नान क्षमाणा नृणा
ससारोदधिराशुशुष्यतितरामग्न्युप्तशुष्कैधवत् ।
यस्माद्विश्वमशेषमुद्भवतियस्तत्व पर योगिनाम्
श्रीमन्त तमुपास्महे सुमनसामिष्टप्रद विठ्ठलम् ॥ (प र ३।१।१)

सुनील नीरद श्याम सच्चिदानन्द विग्रहम्
रमारमणमीशेप विठ्ठल समुपास्महे ॥ (प र उप कारिका १)

विजयध्वज के अक्षर सश्लिष्ट एव विद्वता पूर्ण हैं कविता पर इनका अधिकार है, प्राय दीर्घाक्षर छन्द ही इन्हें सुन्दर लगते हैं—

अगाध श्रीमद्भागवत जलराशौ मणिगण
तृतीयस्कन्धोदभ्रमनवगाह् मृगयति ।
निमज्योन्मज्यार्थेऽनप्रदमनुरक्तं ऽमलधिय
कृपा लेश मत खलु विदधता मय्यनुपदम् ॥ (प र ३।१ कारिका ३)

अद्वैतवाद स इन्हें चिढ थी । फलत भागवत टीका मे वे अद्वैतपरक पक्ष का प्रबल शब्दो म खण्डन करते थे ।[२] अद्वैत को वे 'पाखण्ड वाद' शब्द का प्रयाग भी कर गय हैं ।[३]

---

१ श्रीमद्वेंकटवर्याणा पौत्रेणाल्प बुद्धिना
अहोबल नृसिहेन वासुदेवार्यसूनुना ॥ (आद्य पद्य व्याख्या)

२ अत्र अद्वैत वादिनो निर्गुण वाङमनसागोचर जगत्कारण सगुणमिति द्विविध कल्पयन्ति तन्मत निराकरणायाह । (प०र० ६।४।४७)

३ पाखण्डशास्त्रेण अद्वैत विषयेण विभिन्न चेतस व्यामोहिम चित्ता । (पदरत्नावली १०।८७।१)

(ग) स्थिति काल—विषय मे कही कुछ नही लिखा तथापि बाह्य साक्ष्य एवं अन्त. साक्ष्य के आधार पर इनका काल १५०० विक्रम के पूर्व सिद्ध होता है क्योकि मध्य सम्प्रदाय के पाँधरी श्री निवास ने, सत्यधर्म-शेषाचार्य, चेट्टी-वेंकटाद्रि लिघेरी श्रीनिवास एव व्यास तत्वज्ञ ने विजयध्वज का उल्लेख किया है। उक्त विद्वानो का समय 'गौड़ीय दर्शनेर इतिहास' के पृष्ठ १६८ के अनुसार निम्नलिखित है—

शेषाचार्य[1] — १६१० ई० चेट्टीवेंकटाद्रि[2] — १६१० ई०
लिघेरी श्रीनिवास[3]—१४८० ई० व्यासतत्वज्ञ[4] — १४६० ई०

अतः विजयध्वज की स्थिति बाह् साक्ष्य के आधार पर १४६० ई० से पूर्व मानी जा सकती है। विजयध्वज ने जयतीर्थ १४वी शताब्दी के है विजयध्वज का समय ई० १४०० से १४५० या विक्रम सम्वत् १४५७ से १५०७ के मध्य माना जा सकता है।

(घ) कृतियां—विजयध्वज कृत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१ यमक भारत टीका
२. पदरत्नावली
३ दशावतार हरिगाथा स्तोत्र
४ श्रीकृष्णाष्टक।

यमक भारत–महाभारत का सार मात्र है। दशावतार मे भगवान् के प्रमुख दशावतारो की स्तुति है। श्रीकृष्णाष्टक मे ८ श्लोक कृष्ण की महिमा के है। पदरत्नावली भागवत की टीका है इस ग्रन्थ मे बड़ी विद्वता-पूर्वक अन्य सम्प्रदायो से अपनी सम्प्रदाय की उत्कृष्टता एव वेद सम्मत। दिखलाने का यत्न किया है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य नाम—विजयध्वज कृत भागवत टीका का नाम पदरत्नावली है। यद्यपि इसे तात्पर्य व्याख्या के नाम से भी सम्प्रदाय मे पुकारा जाता है किन्तु इसका नाम भागवत टीका मे पदरत्नावली ही है—

'श्रीमद्भागवत टीकाया पदरत्नावल्यां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्याय.।

---

१ ····" विजयध्वज पूर्वकान्। (मन्दबोधिनी, अष्टम स्कन्ध, मंगलाचरण)
२. विजयध्वज तीर्थादीन् गुरुन्·······। (सज्जनहित टीका – षष्ठ स्कन्ध, मंगलाचरण)।
३. '·······विजयध्वज पूर्वकान्।' (पदमुक्तावली, मंगलाचरण)
४. 'विजयध्वज तीर्थानां कृते स्तुकृतिमंम।' (मन्दनन्दनी, उपसंहार)
५. 'आनन्दतीर्थ विजयतीर्थप्रणम्य।' (पदरत्नावली १।१।१ मंगलाचरण)

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर की गई है, यह टीका न तो सुबोधिनी जैसी विस्तृत शैली मे लिखी गई है न शुक पक्षीया जैसी सक्षिप्त शैली मे ।

उद्देश्य—टीकाकार का मुख्य उद्देश्य द्वैत सम्प्रदाय के तत्वो का भागवत मे अन्वेषण एव उनका प्रतिपादन है ।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से आठ टीकाओ के साथ प्रकाशित हुई है एव इसके विभिन्न सस्करण भी विभिन्न स्थानों से हो चुके है ।

शैली—विजयध्वजकृत पदरत्नावली की भाषा सुसस्कृत, सानुप्रास एव सौष्ठव युक्त है । जहा तक मूल स्पष्ट करना आवश्यक है ये शब्द सृष्टि मे सकोचशील नही है किन्तु अनावश्यक शब्दावली का प्रयोग नही करते । भूमिका मी कतिपय शब्दो मे वे बाध देते हैं—

'अत्राद्वैत वादिनो निर्गुण वाड्मनसागोचर जगत्कारण सगुणमिति द्विविध कल्पयन्तितन्मतनिराकरणायाह ।' (प र ६।४।४७)

उनकी शैली मे कही कही व्यग्य भी देखा गया है । यथा,

'देहीति वचन श्रुत्वा देहस्था पचदेवता····· । वही ७।१०।४)

'देही' अर्थात् 'दो' इस शब्द को सुनते ही कृपण व्यक्ति के घी, श्री, ह्री आदि ५ देवता निकल जाते हैं, तथा कही कही सरस उक्तिया भी लिखी है, जिससे टीका मे एक विशेष सौन्दर्य दिखलाई पडता है । यथा लक्ष्मी का स्वयवर होने जा रहा है, सरस्वती उनके साथ है, वह परिचय करा रही है । लक्ष्मी ने सोचा यह ब्रह्मा अति वृद्ध है, सूर्य मे अत्यधिक ताप है, पवन चचल है, शिव नग्न है, इन्द्र महाअभिमानी है, चन्द्रमा क्षीणता दोष से युक्त है, अत निर्गुण विष्णु भगवान के गले मे वरमाला डालना उचित है—

'एव ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चचलोमातरिश्वा
दिग्वासानीलकण्ठ स्त्रिदशपतिरसौ गर्वित क्षीयतेऽब्ज ।
इत्थ देव्या विचिन्त्य भ्रमर कुल कलागीत शब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारे सुरतरु कुसुमालकृता पातु युष्मान् ।। (८।८।२३)

सम्प्रदाय का पक्ष कही-कही अखरने वाला भी है । गोपीगण कृत कृष्ण रक्षार्थन्यास मे मूल मे अज आदि भगवान के नामो का 'न्यास' श्रीकृष्ण के अ ग मे करने का विधान है, वहाँ टीकाकार ने 'ओनमोनारायणाय' अष्टाक्षर का न्यास विधान किया है— (प र १०।६।२१)

'नमः नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि' (वही २।५।१२)

उक्त श्लोक मध्व सम्प्रदाय का मन्त्र है।

'एकाऽयनो सौ द्विफलस्त्रिमूल (वही १०।२।२७)

उक्त श्लोक मे द्वैतवाद का निरूपण स्पष्ट शब्दो मे किया है तथा एकादश स्कन्ध के–'सुपर्णावितौ ....' (वही ११।११।६) श्लोक मे भी जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद स्पष्ट लिखा है। टीकाकार ने कही अपनी सूझबूझ का भी परिचय दिया है, यथा चतुर्थ स्कन्ध म विष्णु भगवान् के आठ आयुधो मे पद्म भी गिनाया गया है—

'अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभि सुरेन्द्रै' (भागवत ४।३०।७)

परन्तु विजयध्वज का कथन है कि पद्म से किसी प्रकार किसी पर प्रहार नही किया जा सकता, अत यह आयुधो मे रखना उचित नही है। यहाँ अष्टायुधो मे पद्म के स्थान पर परशु पाश अ कुश मे से कोई एक मानना उपयुक्त है। श्रीधर स्वामी की टीका का कहीं खण्डन है और कही समादर। इस टीका का सर्वाधिक वैशिष्ट्य है भागवत का पाठ भेद प्रस्तुत करना। न केवल श्लोक सख्या मे अपितु अध्याय सख्या मे भी पर्याप्त भेद है, यथा दशम स्कन्ध मे ही इनके अनुसार १०४ अध्याय हैं जबकि वर्तमान पाठ के अनुसार ९० अध्याय हैं। कतिपय ऐसे अध्याय हैं जो भागवत कथा से सम्बद्ध है किन्तु उन्हे अन्य किसी टीकाकार ने नही ढूढा। विजयध्वज ने शतश श्लोक प्रचलित भागवत से भिन्न लिखे हैं, अत भागवत पुराण के स्वरूप का विचार तब तक अपूर्ण ही रह जायगा जब तक विजयध्वज की टीका न देखी जाय। ग्रन्थादि के अधिक उल्लेख इस टीका मे नही हैं, विशेषत गौतम सूत्र,[1] यादव,[2] वागुरी,[3] तथा वायु पुराण[4] आदि के उल्लेख अधिक सख्या मे किये हैं। वायु पुराण के अधिक उल्लेख देने का कारण यह है कि विजयध्वज के पूर्व गुरु श्रीमध्वाचार्य वायु के अवतार माने गये हैं।

विजयध्वज ने भागवत मे समागत मूल श्लोको को श्रुतियो से सम्बधित किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भागवतकार ने किन-किन उपनिषद् वाक्यो का अधिक समादर किया था। श्रुतिव्याख्यारम्भ मे इन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि यह मूल श्रुतियो से सम्बन्धित श्लोक हैं, जैसे 'जय जय जह्यजा' श्लोक 'अस्यसृजतो हिन' इस मूल श्रुति से सम्बद्ध है। इन श्रुतियो मे पूर्वापर सम्बन्ध नही है[5]—

---

१ पदरत्नावली १।२।२. २. वही १।६।१२. ३. वही ५।६।२
४. वही ५।२१।५ ५ वही १०।८७।१.

हन् हिंसायामिति धातु पृथक् श्रुतित्वान्न पूर्वापर सम्बन्ध उपलक्षणत्वादनन्तत्वाच्छ्रतीना सर्वं श्रुत्यर्थोपबृंहितत्वाच्च तेपा श्लोकाना न सर्वं श्रुतीनापृथगुक्ति—

सर्वं श्रुत्यर्थसम्पन्नान् श्लोकान् सत्यवती सुत
एकैक शाखा श्रुत्यर्थान् जगौ सर्वोपलक्षणान् ।
बबन्धतान् भागवते प्रतिश्लोक पृथक् श्रुती ॥
'इत्याचार्यैरेव उक्तत्वात् नास्माभिमिय सम्बन्धार्थं' प्रपच्यते ।

(प० र० १०।८७।१४)

भागवतकार ने प्रतिशाखा की श्रुतिया पृथक् पृथक् श्लोको मे उपनिवद्ध की है—

'वृहदुपलब्ध मेतवशेपतया·····।' (भाग १०।८७।१५)

इस श्लोक को औद्दालकायन श्रुति का अर्थ लिखा है, जिसका स्वरूप है—

'वृहद्धिद्दष्टमशेपित यत्स्वरूपमीशस्य··· ··· · विवुधा यथाऽसु ।'

वेदस्तुति के–इतिनव सूरय	श्लोक १६ मे इन्द्रद्युम्न श्रुति का अर्थ है ।
द्रतय इव०–	श्लोक १७ मे पैंगी श्रुति है ।
उदर मुपासते०–	श्लोक १८ मे हिरण्यनाम श्रुति है ।
स्वकृत विचित्र०	श्लोक १९ मे कमठ श्रुति है ।
स्वकृत पुरेपु०–	श्लोक २० मे निपुसीदगणपने श्रुति है ।
दुरव गमात्म०–	श्लोक २१ मे कुशिक श्रुति है ।
क इह नु वेद०–	श्लोक २४ मे साकृति श्रुति है ।
मघटत०–	श्लोक ३२ मे कलाप श्रुति है ।

इन श्रुतियो मे न केवल नाम ही लिखे है अपितु उनके पूर्ण उल्लेख किये है । वैष्णव टीकाओ मे यह शैली अन्य किसी टीका मे प्राप्त नही ।

३. व्यास तत्वज्ञ

(क) परिचय–श्रीमद्भागवत की 'मन्दनन्दिनी' टीका के रचियता व्यास तत्वज्ञ का विशेष परिचय प्राप्त नही होता, इन्होने भुवेन्द्र की आज्ञा से भागवत के सप्तम स्कन्ध की टीका की थी ।

सप्तमस्कन्ध पद्याना श्रीमद्भागवते शुभे
भुवनेन्द्राज्ञया कुर्वे योजना मन्दमन्दिनीम् ॥ (मगलाचरण)

(ख) सम्प्रदाय—व्यास तत्वज्ञ सम्प्रदाय के स्तम्भ माने गये हैं। वे नृसिंहोपासक थे, जैसा कि इनके मंगल पद्य से स्पष्ट होता है—

चरण स्मरणात्सर्वं दुरितस्य विदारणम्
शरण नृ हरिं वन्दे करुणा वरुणालयम् ॥ (वही)

'चरण स्मरण से दुरितो का नाश करने वाले करुणा के शेवधि रक्षक नृसिंह की वन्दना करता हूँ' तत्वज्ञ मुनि का स्मरण भी परमावश्यक है—

आपाततोऽन्यथा भात भाग भागवत सताम्
तात्पर्यतोऽज्ति पद्य त तत्वज्ञमुनि भजे ॥ (वही)

जय मुनि का समाश्रय बुद्धि के लिये परमावश्यक है। इस श्लोक का अर्द्धभाग अशुद्ध है जो लिपिकर्त्ता अथवा मुद्रण कर्त्ता का प्रमाद प्रतीत होता है।

............जयमुनीन् गुरून्
अस्मद्देशिकपर्यन्तान् बुद्धि शुद्धये समाश्रये ॥ (मगलाचरण।३)

विना आचार्य की कृपा से हृदयान्धकार नही मिटता। सप्तम् स्कन्ध के उपसहार मे स्पष्ट है—

योऽतनोत्प्रभया विष्णु तत्व कर्म विनिर्णयो
तमो निरास्यच्च तमाचार्य सूर्यमह भजे ॥

भुवनेन्द्र ने इनका अत्यन्त उपकार किया था। इसका उल्लेख करते हुए वे लिखते है—

सृष्टि कूपे निपतित द्विजमुद्धत्युमापते
पदाम्बुजे जिहमन्त भुवनेन्द्रमह भजे ॥ (७।उपसहार)

(ग) स्थितिकाल—गौडीदर्शनेर इतिहास के लेखक सुन्दरानन्द ने इनका समय १४६०-१५३८ ई० लिखा है।

(घ) कृतियां—मन्द नन्दिनी (भागवत टीका)

*(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—व्यास तत्वज्ञ कृत टीका का नाम 'मन्द-*नन्दिनी' है। मन्द बुद्धि व्यक्तियो को आनन्ददायनी होने के कारण इसका नाम 'मन्दनन्दिनी' रखा गया प्रतीत होता है। सप्तम स्कन्ध मे रसमयी भगवद्भक्त प्रह्लाद की कथा का वर्णन है।

परिमाण—सप्तम स्कन्ध पर ही यह टीका रची गयी है—

सप्तमस्कन्धगपने अतिस्वादविष्टे रस
गुरुानुकम्पया व्यासस्तत्वज्ञ कश्चन द्विज।

उद्देश्य—केवल भुवनेन्द्र की इच्छापूर्ति ही इनका उद्देश्य है।
प्रकाशन—मध्व गौडीय पर साहित्य, कलकत्ता

टीका—अनुमान प्रकारश्च तट्टीकाया न्यायामृते च व्यक्त ।

अनुमान प्रकार टीका मे एँव न्यायामृत मे स्पष्ट है, विजयध्वज कृत 'पदरत्नावली' का प्रभाव इनकी टीका पर स्पष्ट है, विजयध्वज का उल्लेख भी इस टीका के उपसहार श्लोक ७ मे किया गया है—

'विजयध्वज तीर्थाना कृतेरनुकृतिर्मम
शिशोरिच कृति पित्रोर्हास हर्षावहासिताम् ।।'

व्यासदेवा कृत भागवत का प्रकाशन श्रीमध्वाचार्य ने किया मेरी टीका भी भगवान्पर दूर्वा की भाति शोभित होवे—

'व्यास प्रोक्त भागवत पूर्ण प्रज्ञप्रकाशितम्
अत्र टीका मदीयापि तुष्ट्यै दूर्वेव भापतो ।।' (मा श्लोक १)

ग्रन्थ मे अनेक प्रमाद हो जाते है किन्तु गुणान्वेषण ही करना चाहिय, शतश पाषाणो से व्याप्त पर्वत मे हीरक का अन्वेषक उसे ढूढ ही लेता है। इसी प्रकार गुणग्राही मेरी टीका मे भी गुण ग्रहण कर ही लेते है—

प्रमाद वहुले ग्रन्थे गुणानेवान्ववेषयेत्
ग्रावग्रामयुतेह् यद्वावन्वेषयति हीरक ।। (वही श्लो ३)

नम कृष्णभवाष्टम्या
दृष्ट्वै वामद नन्दिनी
स्मयन्नानन्द सान्द्रोऽय
नन्दयेन्नन्द नन्दन ।। (उपसहार पद्य)

४. लिघेरी श्रीनिवास

(क) परिचय—लिघेरी श्रीनिवासाचार्य व्यास तत्वज्ञ के प्रधान शिष्य थे। श्रीनिवासाचार्य के पिता का नाम 'रुक्मिणीश' था जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

'लिघेरी श्रीनिवासेन रुक्मिणीशार्यसूनुना'

रुक्मिणीशार्य का अन्य कोई वैशिष्ट्य प्रसिद्ध नहीं है । पुष्पिका मे उनके वैशिष्ट्य का थोडा सकेत विशेषणों द्वारा ज्ञात होता है।[1] लिघेरी इनका

---

१ इति कवि मुक्ता मालनायकरत्नायितशभार पुर रुक्मिणीशाचार्य सुत लिघेरी श्रीनिवास कृतायां पद मुक्तावल्यां प्रथम स्कन्ध ।

उपनाम था ये दक्षिण प्रदेश के निवासी थे।[1]

(ख)-सम्प्रदाय—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे जैसा कि मंगल पद्य से स्पष्ट है—

'प्रणम्य मध्व हृत्कज संस्थव्यास तथा गुरून्
पूर्व टीका कृतश्चाथ विजयध्वजपूर्वकान् ॥

उक्त श्लोक मे श्रीमध्वाचार्य व्यास तथा विजयध्वज का उल्लेख किया है।

(ग) स्थितिकाल—इनके समय का कोई निश्चित उल्लेख नही है, यदि व्यासतत्वज्ञ के शिष्य माने जाते है तो इनका समय १४८० ई० के लगभग माना जा सकता है।

(घ) कृतियां—इनकी भागवत की अष्टमस्कन्ध की टीका उपलब्ध है जिसका नाम 'पदमुक्तावली' है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—श्री निवासाचार्य कृत भागवत टीका का नाम 'पदमुक्तावली' है।

'पदमुक्तावली भूयात्…………प्रीत्यैहरेः'

पुष्पिका मे भी इसका उल्लेख है—

'इति कवि मुक्तामालानायक रत्नायितैशमार…………………श्रीनिवास कृताया पदमुक्तावल्या…………।'

इससे पदमुक्तावली नाम सुस्पष्ट है। आचार्य विजयध्वज इसके पूर्व अपनी 'पदरत्नावली' टीका का प्रणयन कर चुके थे, सम्भव है उसी साम्य पर इन्होंने अपनी टीका का नाम 'पदमुक्तावली' रखा हो।

परिमाण—यह टीका भागवत के अष्टम स्कन्ध पर ही उपलब्ध है।[2]

उद्देश्य—भगवान की सन्तुष्टि ही एकमात्र प्रयोज्य है, 'हरितुष्टये' द्वारा यह स्पष्ट है।

प्रकाशन—मध्व गौडीय पर साहित्य मन्दिर, कलकत्ता।

शैली—इस टीका से मन्द बुद्धियो को अधिक लाभ होगा, यह उन्हे विश्वास है—

---

१. कन्नड़ भाषा के विशेष शब्द यह सिद्ध करते हैं कि ये कन्नड़ प्रान्तीय थे।
२. 'अष्टम स्कन्ध सद्व्याख्या क्रियते हरि तुष्टये'। (पदमुक्तावली उपक्रम)

'लिघेरी श्रीनिवासेन कृता मन्दोपकारिणी ।'

उक्त पद्य के 'मन्दोपकारिणी' पद से स्पष्ट है, कि इस स्कन्ध के मर्म का अवगाहन सहज नही था, अत इन्होंने टीका रूपी सोपान से उसे सहज गम्य बनाने का प्रयत्न किया है। सम्भव है इन्होंने अन्य स्कन्धो पर भी टीका की होगी। कन्नड के अनेक शब्दों को पर्यायवाची शब्दो के स्थान पर सन्निविष्ट किया है जिससे इनकी मातृभाषा प्रेम का दिग्दर्शन होता है, यथा—

बीजापुर	दालिग (कन्नड भाषितै)
सालै	कन्सतोति (कन्नड भाषितै)
कटक वृक्ष	पोकल्लविदह (कन्नड भाषितै)

न केवल वृक्ष अपितु पशुओ के नाम भी कन्नड भाषा मे हैं—

वृका—तोव्वा, हरिणा—परव्वा (प० मु ८।२)

श्रीनिवासतीर्थ

(क) परिचय—'भागवत मूल तात्पर्य विवरण' के रचयिता श्रीनिवासतीर्थ मध्व सम्प्रदाय के महादेशिक श्री 'यदुपति' आचार्य के पुत्र थे।[1] यदुपति से ही समग्र शास्त्रो का स्वाध्याय करने के कारण यदुपति श्रीनिवास तीर्थ के गुरु भी थे।

(ख) सम्प्रदाय—मध्व सम्प्रदाय के अनुगामित्व की पुष्टि इनके मगलाचरण द्वारा की जा सकती है—

श्रीराम हनुमत्सेव्य मध्वेष्ट बादरायणम्
श्रीकृष्ण भीमसेनेष्ट भजेऽहं बुद्धि शुद्धये।
प्रणम्य यादवाचार्य गुरुणा पादपङ्कजे
एकादशस्कन्धमूल तात्पर्यं विवृणोऽम्यहम् ॥

मगलाचरण मे श्रीराम, हनूमान, बादरायण, श्रीकृष्ण आदि की वन्दना की है। श्रीनिवास को तीर्थ की उपाधि श्री राघवेन्द्र ने इनकी विद्वता पर मुग्ध होकर दी थी। यह गौडीय दर्शनेर इतिहास मे लिखा है।

(ग) स्थितिकाल—गौडीयदर्शनेर इतिहास के अनुसार इनका आचायत्व

---

१ 'इति श्रीमद्भागवत मूल तात्पर्य विवरणे श्रीमद्यदुपत्याचार्य पूज्य पादाराधकेन श्रीनिवासतीर्थेन विरचित ...।' (टिप्पणी ११ उपसहार)

१५६०-१६४० ई० माना है, अतः १५७० ई० के आस-पास इनका जन्म माना जा सकता है।[1]

(घ) कृतियां--१. तात्पर्य विवरण (भागवत टीका) २. न्यायामृत[2] ३. न्यायामृत प्रकाश ४. तत्वोद्योत टीका की वृत्ति ५. कृष्णामृत महार्णव की टीका ६. तैत्तिरीय, माण्डूक्योपनिपद् वृत्ति।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—'तात्पर्य विवरण' के रचयिता श्रीनिवासतीर्थ की टीका के नाम का उल्लेख एकादश स्कन्ध के प्रारम्भ मे उपलब्ध है—

'एकादशस्कन्ध मूलतात्पर्यं विवृणोऽम्यहम्

परिमाण--यह टीका केवल एकादश स्कन्ध पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—मध्व सम्प्रदाय के अनुसार भागवत की व्याख्या करना।

प्रकाशन—मध्य गौडीय पर साहित्य, कलकत्ता।

शैली—एकादशस्कन्ध भागवत का गूढतम स्कन्ध है, इसका विवेचन विद्वता की कसोटी माना जाता है। इसी कारण इस स्कन्ध पर टीका की गई। अपनी टीका मे विशेपतः तात्पर्य निर्णय का उल्लेख किया है,[3] भूमिका नाममात्र है। भाषा सरल है तथा विशिष्ट स्थलो पर स्वसम्प्रदाय के अनुसार विवरण प्रस्तुत किया है।

६. छलारि नारायणाचार्य

(क) परिचय—भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी के निर्माता छलारि नारायाणाचार्य थे।[4] इनके माता-पिता आदि के बारे मे कुछ ज्ञात नही होता, किन्तु ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होने मगलाचरण के श्लोक ३ मे मध्वाचार्य को आदि गुरु लिखा है—

> योऽकरोद्ब्रह्म सूत्रादि भाष्य तात्पर्य निर्णय
> भारतादेश्च त मध्व मजाम्यादि गुरू मम॥ (भा ता. टि.)

(ख) सम्प्रदाय—इन्होने मध्व सम्प्रदाय के उद्भट्विद्वान् जयतीर्थ को नमस्कार किया है—

---

१. कल्याण वेदान्तांक, पृष्ठ ६६४ में इन्हें १८ वीं शताब्दी का लिखा है।
२ वही।
३. यथोक्त निर्णये-विवरण ११।१
४. 'इति श्रीमत्भगवत्पादाचार्य विरचित.......... तात्पर्यस्य टीकायां प्रबोधिन्यां छलारी नारायणाचार्य विरचितायां प्रथम स्कन्धः।'

अनुव्याख्यामृताधेर्यो बुद्धमद्रिमथत भजे
निष्कास्यापायय न्याय सुधा त जय सज्जकम् ॥ (वही)

इन्हे विश्वास है कि गुरुजनो की वाणी रूपी गगा मे मेरी वाणी भी पवित्र हो जायगी–

गगा सगेन नैर्मल्य रथ्यापिर्लभ्यते यथा
तथा मद्वाग्विशुद्धयर्थं सगम्यते गुरोर्गिर ॥ (वही)

इससे इन्हे मध्व सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है।

(ग) स्थिति काल—इनकी न तो अन्य कृतियो का पता लगा है और न निश्चिय समय का किन्तु जयतीर्थ के उल्लेख से ये निश्चित ही उनके पश्चात् हुए हैं। छलारि नृसिहाचार्य इनके पुत्र थे, इनका उत्तरादि मठ स्थितिकाल सत्यनाथ तीर्थ (१६४८-१६७४ ई०) के समय माना जाता है"।[1] १६४८ यदि पुत्र आचायसीन काल माना है तो इनका समय १६०० ई० के आसपास मानना उपयुक्त है।

(घ) कृतियां—भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—भागवत का प्रबोध कराने के कारण इसका नाम भागवत तात्पर्य निर्णय प्रबोधिनी रक्खा गया है, जैसा कि मगलाचरण से स्पष्ट है—

'श्रीभागवत तात्पर्य निर्णयस्यप्रबोधिनीम्'

परिमाण—मध्वाचार्य कृत तात्पर्य मे भागवत के अध्याओ का सार है, यह उस पर लिखी गई निर्णय की भी प्रबोधिनी नामक टिप्पणी है। इसमे मूल श्लोक के स्थान पर तात्पर्य के प्रतीक शब्द रखे हैं।

उद्देश्य—मध्व कृत तात्पय का बोध कराना एव माध्व सिद्धान्तो की भागवत द्वारा पुष्टि करना ही उद्देश्य है।

प्रकाशन—मध्व गौडीय पर साहित्य, कलकत्ता।

शैली—भाषा म प्रवाह है। समास लम्बे हैं। यथा 'इष्टानिष्ट प्राप्ति परिहार साधनाज्ञेषु कृपालुभि ब्रह्म रुद्रेंद्रादिभि प्रार्थितो नारायणो व्यासरूपेणावितीर्य तथा सज्जनानामिष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहार साधन ज्ञापनाय वेद विभाग पूर्वक ब्रह्म सूत्रादिक कृत्वा भागवत सहिता चकार।'

मगलाचरण के श्लोक २ मे वेद व्यास को ब्रह्मसूत्र, महाभारत, वेद एव भागवत पुराण का रचयिता लिखा है—

---

१ गौडीय वसंनेर इतिहास (बगाक्षर), पृष्ठ १७०।

'विदान् यो व्यभजद्विष्णुर्भारत ब्रह्म सूत्रकृत्
कर्ता भागवतादेश्च वेदव्यास नमामितत् ।।'

जीव एव ईश्वर मे वास्तविक भेद को छाया-आतप के दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया है–'छायातपाविति वाक्य जीवेश्वरयोरज्ञानाश्रयत्वानाश्रयत्वाभ्या भेद-प्रतिपादक शाखान्तरस्थ ज्ञेयम् ।' (१।१।२)

केवल वसुदेव सुत ही विष्णु स्वरूपाश हैं नन्द सुत नही ।[1] नन्द सुत को गौडीय समाज मे विष्णु स्वरूपाश माना गया है । व्यास और व्यासाचार्य मे भेद है, किन्तु २८वें युग मे व्यास और आचार्य दोनो रूप प्रकट हुआ था ।

'पूर्वेपु तृतीयादि चतुर्महायुगेपुव्यासाचार्यस्तु व्यासाना द्रोणादीनामाचार्य एव भविष्यति न तु व्यास । चरमेतु अष्टाविंशे महायुगे तु व्यासश्चाचार्यश्च भविष्यतिनत्वन्यव्यास नामा आचार्य ।' (२।७।३६)

ये प्रतिकल्प मे अवतार मानते हैं । श्रीमद्भागवत वाराहकल्पानुसारी है—'तत्र भागवत तु वाराह कल्पानुसारेण प्रवृत्तम्।' (५।१७।१)

दशम स्कन्ध का प्रारम्भ 'स्वप्ने यथापश्यति' श्लोक से है । दशम स्कन्ध के ८४ अध्यायो की व्याख्या की है । इससे यह स्पष्ट है कि इसका पर्याप्त अ श नष्ट हो गया । एकादश स्कन्ध मे कृष्ण की पत्नियो के दग्ध होने का उल्लेख किया है । मध्वाचार्य कृत सकेतो का विशद व्याख्यान इस टीका द्वारा किया गया है, स्थल विशिष्ट पर उनका स्मरण भी किया है, एकादश स्कन्ध के अन्त मे लिखा है कि दशम एकादश स्कन्ध की टीका मध्व की तुष्टि करे–

'दशैकादश तात्पर्य प्रवोधिन्यल्पचित्प्राया
छलारि नारायणजा भूयान्मध्वेश तुष्टये ।।'

उक्त श्लोक मे 'चित्प्राया' शब्द अशुद्ध है । यह मुद्रण दोप है, ऐसा प्रतीत होता है । अनुष्टुप् मे द्वितीय पाद का सप्तम अक्षर ह्रस्व होना चाहिये, यहाँ दीर्घ है ।

७. चैट्टी वेंकटाचार्य

(क) परिचय—चेट्टी वेंकटाचार्य मध्व सम्प्रदाय के मान्यतम विद्वान थे ।[2] सुप्रसिद्ध श्री नरसिंहाचार्य नामक विद्वान इनके पितृव्य थे । मध्वशास्त्र,

---

१ इत्येकस्य वसुदेव सुतस्य कृष्णस्यैव विष्णुस्वरूपांशत्वमुच्यते ।' (१।३।२७)

२. वाकप्रसून कृता चेट्टी वेंकटाद्रि विपश्चिता
म्रियता हृदये माला सद्‌ये प्रमुणाश्रितः ।। (सज्जन हित स्कन्ध ६ उप)

क्षीर पयोधि है, उसमे से श्री निवास शास्त्री ने रत्नो का अन्वेषण किया है, यह उनके मगल पद्य से स्पष्ट है—

'श्री मध्व शास्त्र दुग्धाब्धिविक्रीडनविशारदान्
नरसिंहाचार्य सज्ञाश्च पितृव्यान्निश मजे ॥' (स हि मगला ४)

(ख) सम्प्रदाय—वेंकटाचार्य इनके गुरु थे, समस्त शास्त्रो की शिक्षा एव मध्व शास्त्रो का परिपूर्णतन ज्ञान इन्हीं वेंकटाचार्य जी से इन्हे उपलब्ध हुआ था, निम्नलिखित मगलाचरण पद्य म वेंकटाचाय का उल्लेख उपलब्ध है—

नत्वा श्रीमद्वेंकटाचार्य सज्ञ न् विद्यागुरुननिश बुद्धि शुद्धयै ।
कुर्वे चेट्टी वेंकटाह् वयोऽह् सदयुय षष्ठ स्कन्ध टीका हिताय ॥

इस पद्य के अतिरिक्त स्कन्ध की अन्तिम पुष्पिका मे भी गुरु श्री वेंकटाचार्य के नाम का उल्लेख है—

'इति श्री वेंकटाचार्याणा शिष्येण चेट्टी वेंकटाद्रिणा विरचिताया षष्ठ स्कन्ध ।'

सम्प्रदाय का उल्लेख 'मध्व शास्त्र' के कथन से स्पष्ट है तथापि अन्य टीकाकारो की भाँति चेट्टी वेंकटाचार्य ने भी आनन्द तीर्थ की वन्दना सज्जन हित के मगलाचरण मे की है—

'आनन्द तीर्थ गुरुमादरतो मजामि
स्वानन्दद म्व चरणौ मजता जनानाम् ।
यद्वक्त्र निगलितवागमृतप्रपूर-
स्तापत्रय शममुपेतिविनाति यत्नात् ॥

'मैं आनन्द तीर्थ के चरणो की वन्दना करता हूँ जिनके वदनार विन्द से नि सृत वाग् लहरी मनुष्यो के तापत्रय का विनाश करती है ।' इसी प्रसग मे वे कहते है मध्व सम्प्रदाय के जयतीर्थ नामक विद्वान् का एव इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भागवत टीकाकार विजयध्वज का निर्देश भी उपलब्ध होता है—

'जयतीर्थ गुरुन् वन्दे सर्वाभीष्ट प्रदान्मम
विजयध्वज तीर्थादीन् गुरुन्म्याश्च भक्तित ।

(ग) स्थितिकाल—नरसिंहाचार्य चेट्टी वेंकटाचार्य के पितृव्य थे, इनका आचार्य पद १६४८ ई० में था, अत चेट्टी वेंकटाचार्य का समय १६१० के आसपास माना जा सकता है ।

(घ) कृतियाँ—सज्जनहित (भागवत टिप्पणी)

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—चेट्टी वेंकटाचार्य कृत भागवत टीका का नाम 'सज्जनहित' है, जैसाकि स्कन्धान्त की पुष्पिका से ज्ञात होता है–

'इति भागवत टिप्पणिया 'सज्जनहिताख्याया'· षष्ठ स्कन्ध '
सज्जनो को हितदायिनी हो, अत सज्जनहित नाम रखा गया है ।

परिमाण—*यह टीका केवल षष्ठ स्कन्ध पर है । कहीं-कहीं व्याख्यान अति विस्तृत है,* अधिकाश भाग मे मूल के शब्दो का अर्थ मात्र लिखा गया है ।

उद्देश्य—*मध्व सम्प्रदाय के अनेक विद्वानो ने भागवत का गम्भीर अध्ययन किया और उनमे विभिन्न स्कन्धो की व्याख्या भी अनेको ने की अत* षष्ठ स्कन्ध की पूर्ति चेट्टी वेंकटाचार्य ने की ।

प्रकाशन –मध्व गोडीय पर साहित्य मन्दिर, कलकत्ता ।

शैली– निवृत्ति मार्ग कथित ' (भागवत ६।१।१)

इसकी व्याख्या मे विवृत्ति धर्म से प्राप्य मार्ग अर्चिरादि मार्ग है । यह लिखा गया है–

'निवृत्ति धर्मेण प्राप्यो मार्गोऽर्चिरादि मार्ग '

भूमिका शैली इस टीका मे न के बराबर है, अन्वय रूपेण भी श्लोक की सम्पूर्णता पर ध्यान नही रखा गया, भाषा सरल है । यथा सज्जनहित मे यह श्लोक है–

'ज्ञानिनो द्विविधा यमादि योग प्रचुरा भक्ति प्रचुराश्च' (६।१।१५)

षष्ठ स्कन्ध म नारायण कवच का विशेष विधान है, नारायण इस सम्प्रदाय के *उपास्य हैं । अत वेंकटाचार्य ने इसकी व्याख्या की है । करन्यास विधि* म विद्वानो का मतैक्य नही है अत उसे वे अपने शब्दो मे स्पष्ट करते हुए लिखते है– दश अ गुलि तथा दो अगुष्ठ पर्व' इन द्वादश स्थानो पर भगवान के द्वादशाक्षर 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय' का न्यास करे । एक एक अक्षर दक्षिणागुष्ठ से न्यास करता हुआ वामागुष्ठ पर्यन्त अ गुलिया पर अवशिष्ठ दो अगुष्ठ पर्व मे न्यास करे । यह सज्जनहित मे उन्होंने लिखा है–

'प्रणवादिनि,अ गुल्योर्दश,अ गुष्ठयो पर्वणि द्वे, एव द्वादशस्थानानि । तत्र प्रणव सपुटितमेकैकाक्षर दक्षिणागुष्ठ मारभ्यवामागुष्ठ पर्यन्तमगुलिषु । अवशिष्ट वर्णद्वयमगुष्ठ पर्वणोश्च क्रमेण न्यसेदित्यर्थ । केचित्‌-एकैकमक्षर दक्षिणतर्जनीमारभ्य वामतर्जनी पर्यन्त मगुलिषु परिशिष्टमक्षर चतुष्टय अगुष्ठयोराद्यन्तपर्वसुन्यसेदिति ।'

चेट्टी के समय अन्य विधि भी प्रचलित थी जिसके अनुसार दक्षिण

पिताजी ने टीका मे उन्हें अत्यन्त सहयोग दिया था। यह निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है —

'तेषामेव प्रसादेन तत्प्रसादैक लिप्सया।

श्रीमद्भागवतस्याह भाववक्ष्यामि शक्तित. ॥' (दु० भा० १।१।१)

सत्यनाथ तीर्थ ने अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया था, और उन्ही के अमोघ सकल्प से यह टीका रची गई थी —'इति श्रीमदश्रुत पद-वाक्य-व्याख्यातृणामभिनव चन्द्रिका, अभिनव ताण्डव, अभिनवगदा, अभिनवामृतादि बहुग्रन्थ कर्त्तृणा जगत्पूज्यपादुकाना श्री सत्यनाथ तीर्थ श्रीपादाना शिष्येण सत्याभिनवयतिना त्वया भागवत टिप्पणी करिष्यामिति तदीयामोघ सकल्प मात्रमवलम्व्य कृताया दुर्घटभाव दीपिकाया प्रथमः स्कन्धः।' (प्रथम स्कन्धान्त)

इनकी पुष्पिका क्रम सन्दर्भ की शैली पर विस्तारपूर्वक लिखी है, इससे केवल पितृ नत भावो को स्पष्ट किया गया है, इन्होंने अपने पिता के विषय मे यह लिखा है कि वे व्याकरण, न्याय, मीमासा-शास्त्र के पारङ्गत विद्वान् थे—

पद-वाक्य-प्रमाणज्ञा कल्याण गुण शालिनः

नूतन ग्रन्थ कर्तारः पितरो गुरवश्चमे ॥ (दु० भा० अन्त मे)

इनके पिता सत्यनाथ एक सिद्ध पुरुष थे एव जगत्पूज्य पादुक थे —

'मातर सुहृदो नित्यमिच्छादिक फल प्रदा.।

श्री सत्यनाथ गुरवोजगत्पूजित पादुकाः ॥

इन पर अनेक आपत्तियाँ आई उनमे म्लेच्छ भय, राजभय, चोरभय एव अग्निभय प्रमुख थे —

म्लेच्छ राज महाचोर महाग्निभ्योमहद्भयम्

यत्कृपालेशमात्रेण गत नैव विचारणा ॥

चोर भय, राज भय की घटना से इनका वैभव पड़ा घड़ा था। यह प्रतीत होता है। यह समस्त भयचक्र उनके पिता के आशीर्वाद से दूर हो गये थे —

तेषा श्रीगुरु राजाना पादपीठगमाश्रयात्

तेषा सकल्प मात्रेण जाता टीका न चान्यथा ॥

उक्त श्लोक से यह स्पष्ट है कि उनके ही समक्ष वे गद्दी पर बैठे थे, वे उनके अनन्य भक्त थे, और जो कुछ अच्छा कार्य करते थे, वे उनके सकल्प से ही पूर्ण होते थे —

श्रीमद्भागवतस्येव दुर्घटार्थ प्रबोधिनी

इव रामार्पणं सर्वं लगद्रुम्नादि जायते।

अतस्तज्जनित पुण्य तेपामेव न सशय
अथापि ते दयालुत्वात्प्रीता एव न सशय ।
सत्याभिनव शब्देन वाच्येऽस्मिन्नमयिसर्वदा
अत सर्वेऽपि गुरवो जगद्गुरु पदाश्रया ॥

गुरु परम्परा मे जयतीर्थ आदि का उल्लेख किया है —

जयतीर्थ गुरु प्राज्ञ पूर्ण प्रज्ञस्तथा गुरु
वलित्थेत्यादिमिर्वेदैर्वायोरश इति श्रुत ।
तदन्तास्थो हरिर्नित्य सीतामा सहित प्रभु
श्रीरामचन्द्रोव्यासश्च प्रीतासनेभ्यो नमो नम. ॥ (दु० भा० १।१

(ख) सम्प्रदाय —दुर्घट भावदीपिका के मङ्गलाचरण मे— प्रज्ञस्तथागुरु' मे पूर्ण प्रज्ञ (मध्व) का स्पष्ट उल्लेख है ।

(ग) स्थितिकाल-सम्वत् १७६१ मे इनका जन्म हुआ था तथा ४७ पर्यन्त ये जीवित रहे । गौडीय दर्शनेर इतिहास मे सुन्दरानन्द नामक वि ने (१६७५ से १७०६ ईस्वी) पर्यन्त इनका मठ आचार्यत्व स्वीकार किया

(घ) कृतियां—१. महाभारत तात्पर्य निर्णय २ दुर्घट भावदीपिक

(ङ) टीका वशिष्ट्-नाम—दुर्घट भावो के प्रकाश करने के कारण टीका का नाम दुर्घट भावदीपिका है । 'श्रीमद्भागवतस्येय दुर्घटार्थ प्रवोधिनं

परिमाण—यह टीका समस्त भागवत पर है, इसका प्रकाशन मूल साथ नही हुआ है, मूल श्लोको के केवल अक दिये गये हैं ।

उद्देश्य—इस टीका का मुख्य उद्देश्य भागवत के अनेक क्लिष्ट वि का समाधान करना है । पदरत्नावली मे जिन भावो का स्पष्टीकरण नहीं भी स्पष्ट किया है ।

प्रकाशन—गौडीय मध्व पर साहित्य, कलकत्ता ।

शैली—टीका अत्यन्त सरल भाषा मे लिखी गई है । यह टीका प्र श्लोक पर नही लिखी गई अपितु आवश्यक स्थलो पर लिखी गयी है । पू चार्यों की शका का-'दूषण परिहृत' शब्द के द्वारा परिहार किया है । यथा-शृ वासुदेव का उल्लेख प्राप्त होता है तो शृगाल का अर्थ वन्य जन्तु नही । 'ए वासुदेवाख्य इति वक्तव्य शृगालो वासुदेवाख्य इति वचनमयुक्त इति दू परिहृतम्' । व्याकरण के द्वारा अनेक पदों का अर्थ स्पष्ट किया—'द्रो प्रहृतमर्द' साहित्य गच्छत इति व्यादेन' यह उदाहरण परिभाषा अविवा की व्युत्पत्ति में लिखी गई है । 'तत्त्वमसि' में जीवात्मा-परमात्मा का स्पष्ट है—

'तत्वमस्यादि वाक्येषु जीवेश्वराभेदस्योक्तत्वात् जीवेश्वरत्व नास्तीति कथमुच्यतइत्याशका परिहारार्थ' तत्वमसीत्यादि वाक्येषु 'भेद एवोच्यते।' (दुर्घट भाव० १०) शका समाधान की दृष्टि से भागवत पढने वाले व्यक्तियो को यह अत्यन्त लाभप्रद है।

१०. अनन्त तीर्थ

(क) परिचय—इन्होंने 'भागवत तात्पर्य दीपिका' की रचना की थी। एक मगल पद्य मे इन्होंने 'श्रीनाथ' को नमस्कार किया है। सम्भव है ये इनके गुरु हो— 'त श्रीनाथमह भजे' (मगलाचरण)

(ख) सम्प्रदाय—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। आनन्दतीर्थ एव जयतीर्थ का इन्होंने भी उल्लेख किया है—

'आनन्द तीर्थो लसताद् गुरुश्च
प्रसीदतु श्री जयतीर्थ वर्य ।' तथा—
'श्रीमहानन्दतीर्थाना केवल करुणा बलात्
श्रीभागवत तात्पर्य दीपिका क्रियते मया ।'

(ग) स्थिति काल—विजयध्वज तीर्थ का समय १६वी शती माना गया है, फलत अनन्त तीर्थ १७वी शती के पश्चात् ही माने जाने चाहिये, क्योकि ये विजयध्वज से प्राचीन नही।

(घ) कृतियां—भागवत तात्पर्य दीपिका।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—यह टीका अनन्ततीर्थ द्वारा विरचित है। प्रारम्भ मे इस टीका का नाम इन्होंने 'भागवत तात्पर्य दीपिका' लिखा है—

'श्रीभागवततात्पर्य दीपिका क्रियतेमया'। 'भागवत तात्पर्य' की रचना श्रीमध्वाचार्य ने की थी, यह उसी के भाव एव तात्पर्य दीपन कराने के हेतु रची गई है।

परिमाण—टीका 'तात्पर्य' के साराश रूप मे लिखी गयी है। दीपिका मे तात्पर्य के आवश्यक अ शो का विवेचन किया गया है।

अस्य श्री ब्रह्म रुद प्रभृति सुर नर दनीश शत्र्वात्माकस्य ।
विष्णोर्य्यस्ता समस्ता सकल गुणनिधि सर्वदोष · · ··
पूर्णानन्दोऽव्ययोयो गुरुरपि परमश्चिन्त्ये त महान्तम् ॥[1]

टीका मे श्रुतियो के अनेक उद्धरण दिये हैं यथा—गविष्ठ शब्द का अर्थ सूर्य है, उसके भी श्रुति प्रसारण प्रस्तुत किया है ।[1] सकावो के समाधान मे विशेष रुचि ली है । वामन ने ऊपर के लोको की ओर वाम पाद ऊचा किया किया था या दक्षिण ? वारह कल्प मे वाम एव अन्य कल्प मे दक्षिणा ।[2] श्री वत्स का चिन्ह 'प्रकृति' स्वरूप है तथा कौस्तुभ ब्रह्मा है, भगवान् उनसे सयुक्त है—

'श्री वत्स प्रकृतिर्ज्ञेया ब्रह्माख्य कौस्तुभ पुमान्
तदतीतं पेडशभि स्वरूपैरप्युपास्यत इति ॥' (वही ६।२५)

भागवत की उक्ति के पुष्टयर्थ अन्य पुराणो के अनेक प्रमाण इसमे लिखे गये हैं । इसमे पद्यो की सख्या अधिक है, गद्य भाग स्वल्प मात्रा मे है, तात्पर्य जानने के लिये यह अत्यन्त उपयोगी है ।

११ सत्यधर्म यति

(क) परिचय—भागवत तात्पर्य टिप्पणी के रचयिता सत्यधर्मयति हैं । सत्यबोध, सत्यसन्ध एव सत्यवर से इनका निकटतम सम्बन्ध है—

'श्री सत्यबोध श्री सत्यसन्ध सत्य वरावरा
मस्तकन्यस्त हस्ताय यद्दयां कुर्यु सहोदयाम् ॥'

ये कोपीनधारी सन्यासी थे—

'एतत्तात्पर्य तात्पर्य भाष्य टीकान्तरानुगाम्
व्याचिततनोति विवृति कोऽपि कोपीन भाग्यभाक् ॥'

इनके पिता सत्यवर तीर्थ थे, किन्तु साधारण बालको की भाँति ये माता की कुक्षि से उत्पन्न नही हुए थे अपितु पिता की अजलि से उनका जन्म हुआ था । पुष्पिका मे इसका स्पष्ट सकेत है—'इतिश्रीमत्परमहमपरिव्राजका-चार्यत्वाद्यनेक गुणगणसम्पन्नपद वाक्य पारावार पारगत सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्तप्रतिष्ठापनाचार्य श्रीमत्सत्वर तीर्थकर कमल सजात श्रीमत्स-त्यधर्म यतिना कृते श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टम स्कन्ध ।

---

१. 'असौ वाव गवि.' भागवत तात्पर्य दीपिका ११२७ मगलाचरण

२ वाराहे वाम पाद तु तत्न्येषु तु दक्षिणम् ।
पाद कल्पेषु भगवानुज्जहार त्रिविक्रम ॥ (वही ५।१७।१)

(ख) सम्प्रदाय—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुयायी विद्वान् थे। मध्व कृत तात्पर्य की व्याख्या से भी यह मध्व सम्प्रदाय के सिद्ध किये जा सकते है।[1]

(ग) स्थितिकाल—सत्यधर्म यतिः ने सत्य बोध का स्मरण किया है, अत ये सत्यबोध के पश्चात् हुए। सत्यबोध का जन्म १६ वी शताब्दी के उपरान्त हुआ था। भानुदीक्षित प्रसिद्ध वैयाकरण का उन्होंने स्मरण भी किया है,[2] भानुदीक्षित का समय सत्रहवी शती है अत ये इनके पश्चात् हुए। ६।३।२८ मे आचार्य विजयध्वज का उल्लेख किया है। इनका समय १७६८ १८३० ई० निश्चित माना जाता है।[3] इन्हे द्वितीय पेशवा बाजिराव का समसामयिक भी लिखा गया है। उनका समय १७६५-१८१८ ई० के मध्य माना है। अत १७६८ मे इनका मठाधिपत्य मानें तो लगभग १७५० के आसपास जन्म मानना चाहिये।

(घ) कृतिया—भागवत तात्पर्य टिप्पणी।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—भागवत तात्पर्य टिप्पणी के रचयिता श्री सत्यधर्म यति है। मध्वाचार्य कृत तात्पर्य की यह व्याख्या है—

'नत्वा गुरून्भागवत षष्ठ स्कन्धस्यकाश्यते
तात्पर्य व्याकृति मिषाद्भावो भावुक मोदद ॥ (मगला०)

तात्पर्य टिप्पणी म भाष्य एव अन्य भागवत टीकाओ से भी सहयोग लिया है—

'एततात्पर्यतात्पर्य भाष्य टीकान्तरानुगाम्
याचितनोति विवृति कोऽपि कोपीन भाग्यमात् ॥ (मगला २४)

परिमाण—यह दो खण्डो मे है। इस टीका की पूर्णता के लिय पुरस्कार रखा गया था, किन्तु मुद्रण के समय दशमस्कन्ध प्राप्त हुआ अन्य स्कन्ध प्राप्त नही हुए। अत यह अपूर्ण है।

उद्देश्य—टिप्पणी द्वारा माध्वाचार्य के तात्पर्य का मर्म प्रकाशन करना ही मुख्य उद्देश्य है।

प्रकाशन—शाके १८५८ मे वणूर गोविन्द ने इस टीका का प्रकाशन पूना से करवाया था।

शैली—लम्बे-लम्बे समासा मे इस टीका का गद्य कादम्बरी की छटा

---

१ गौडीय दर्शनेर इतिहास।

२ 'निद्योधरतु' ... इतिभानुदीक्षित।' (भा ता टि. ६।८।२८)

३ गौडीय दर्शनेर इतिहास।

का प्रतिनिधित्व करता है–'इह खलु नानाविध व्यसन सम्भृत ससारासार कान्तारसन्तप्त ससरण नि सारणोपाय दानव्यापार दीनजननिभालन करुणा-परवशा पराशर शरीराजो जननीतन् अनुपमिवो द्वि द्वीपु रनकूरित धरान्तरस्थ निरूपरि सरण करण बीजवदकिंचिन कर ज्ञानाकुर तिनिरजननानामेतहि गहिताचार · ·· प्रवृत्तानुपपते ।' (स्कन्ध ६, उपक्रम) । आधुनिक व्याकरण ग्रन्थो का प्रमाण भी पर्याप्त रूप मे लिखा गया है, मनोरमा एव शेखर के प्रमाण टीकाकारो ने कही भी उल्लिखित नही किये किन्तु सत्यधर्म ने उन्हे स्थान-स्थान पर लिखा है ।[१] नारायणाय–इति मे प्रकृति भाव द्वारा नारायणा होना चाहिये, पर यह आर्ष प्रयोग नही है जैसा कि श्रीधर स्वामी ने माना है ।[२] साहित्य शास्त्र पर इनका असाधारण अधिकार था, एक श्लोक द्वारा इसका आभास मिलता है ।

'अनेनान्येनसानाथोदययेदुदयेपण
रामो रामारमोऽम्माव्यासोव्यासादृशदिशन् ।।'

व्याकरण के ये पूर्ण पक्षपाती थे–पदो की भी व्युत्पत्ति वडे मनायोग के साथ की है । नारिकेल पद की व्युत्पत्ति–'नलति, नल्यतेवा, इण् केन=वायुना ईल्यते ईर्यंत इति=नारिकेल ।' पुष्प फल तथा वृक्षो की व्युत्पत्ति अन्य टीका म प्राप्त नही है जैसी इसमे है ।

भगवान् ६।४।१४ के २७ अर्थ किये हैं, यह अर्थ उडुपी के हृषीकेश जी ने मध्वाचार्य के मुख से श्रवण किया था, परम्परा द्वारा इन्होंने सुना–श्री मदुडुपी श्रीकृष्णपादपद्माराधक हृषीकेश श्रीमच्चरणै श्रीमध्वराजमुखकमलाच्छ्रुत्वा लिखितमेतत् धातुव्याख्यानमिति तत्सम्प्रदाया भिक्षोकमुखाच्छ्रुत्वा कृतोऽत्र लवति · ·· मोऽयास्तीति भवान् ।

इनकी उत्प्रेक्षा वडी ही सुन्दर है—

'नील नैव नभ सुलज्जित शची भर्त्तुर्मुखे नीलिमा
मेघा क्वापि न सन्ति सन्ति दिविजभ्राजद्विमानाम्बुदा ।
तामिस्र न हि दिश्ययापि च दर्शितवा मानुपमन्वता

---

१ तात्पर्य टिप्पणी ६।१।२३

२ 'न च भविनव्य प्लुनमाश्रय वैकल्पिकत्वात् मनोरमायां च ······ ' इति हरदत्त । एव च चतुर्थी निर्वाहे स्वरऽआर्षप्रयोग इति श्रीधरोक्तिर्नादरणीयेति । (तात्पर्य टिप्पणी ६।२।८)

वित्तं क्वस्ति नवेपधुनिजजने मीतेन्द्रगात्रेयदम् ॥"

यह टीका सर्वतोभावेन सुन्दर कही जा सकती है।

१२. पांधरी श्रीनिवासाचार्य

(क) परिचय—भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार के रचयिता पांधरी श्रीनिवासाचार्य उच्चकोटि के विद्वान् थे। आपके पिता का नाम नरहरि एवं गुरु का नाम प्राणार्य था—

'मुख्य प्राणार्य शिष्येण नरहर्याख्यसूनुना
विद्यार्थाशाभिधेयेनाद्यस्कन्धपद्य विरोधिता।
साधिता श्रीनिवासार्येर्लिख्यते हरिसिद्धये ॥ (स्क ७ पृ १०)

(ख) सम्प्रदाय—ये मध्व सम्प्रदाय के अनुगामी थे।

(ग) स्थिति काल—विजयध्वज का उल्लेख टीका मे किया है। अतः यह उनके उपरान्त ही उत्पन्न हुए। विजयध्वज का समय १६वी शताब्दी है, अतः ये १७वी शताब्दी के मध्य हुए होंगे।

(घ) कृतियां—भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार ही इनकी विशिष्ट कृति है।

(ड) टीका वैशिष्ट्-नाम—ऐसा ज्ञात होता है कि किसी विद्वान ने भागवत टिप्पणी का विरोध किया था। उसके निराकरण हेतु भागवत टिप्पणी विरोधोद्धार की इन्होंने रचना की है। इस ग्रन्थ मे विशेषतः विरोधों का ही उद्धार है, किन्तु पूर्वपक्षी का उल्लेख प्राप्त नही, अतः विरोधोद्धार नाम सार्थक ही है।

परिमाण—यह टीका 'मण्डूक प्लुतिन्याय' से समस्त भागवत पर लिखी गई है। प्रत्येक श्लोक या अध्याय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उद्देश्य—माध्व सिद्धान्तो का मण्डन एवं विभिन्न शङ्काओं का परिहार करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है।

प्रकाशन—यह टीका मध्व गौडीय पर साहित्य कलकत्ता से खुले १२८ पृष्ठो म प्रकाशित हुई है।

शैली—यद्यपि यह टीका अत्यन्त सरल संस्कृत मे लिखी गई है तथापि

---

१. 'धारानैवपयोमुचां पदुपते प्रेमाप्य धारा पर
स्वानां नो परिगर्जित स्तुनि कृतां सिद्धेश्वराणां ध्वनिम्।
विद्युन्नामरनलंकोकरचपालकारकान्ति' प्रभो
मोबायुः सुर मृष्ट दुष्प सहगामात्पालि पर्श मंडल् ॥
(तात्पर्य टिप्पणी १०।२३।२५)

मूल न होने के कारण है, यदि यह मूल श्लोको के साथ प्रकाशित होती तो अवश्य ही इसका अधिक प्रसार होता । प्रारम्भ मे नृसिंह की वन्दना तो सभी टीकाकारो ने की है[1] किन्तु देवी, गणेश आदि की स्तुति केवल इस टीका मे ही दृष्टिगोचर होती है—

'श्रीमन्मृगेन्द्रास्यमनन्तवास
....
साम्बा गणेश...............
प्राणेन्दिरोरु भगवन्तमीडे ॥ (वही मगला०)

भागवत के विरोध निराकरण का सकेत मङ्गलाचरण मे उपलब्ध है—

'श्रीमन्नृसिंह चरणार्पित चित्त योगा
दूरीकृताखिल सुसशयात्मभूत्य ।
नत्वा गुरुं च तदनुग्रह तोऽस्य तुष्ट्यै
ससाधयाम्यखिल भागवताविरोधम् ।'

इस कार्य मे माधव हरि उनके सहायक बने—

'श्रीभागवत भूयिष्ठान् विरोधाद्रीन् प्रतीयत
स्वदत्त बुद्धिवज्रेणछिनत्तु माधवो हरि ॥'

अध्याय की शङ्का का निराकरण करते हुए इस टीकाकार ने ३३५, ३३२ अध्याय सख्या पर पानी फेरते हुए ३४४ सख्या सिद्ध की है[2]—'शतानि च विंचविच वि वि 'वितिवर्णस्यान्तस्थ वर्णेषु चतुर्थत्वेन' चतुर्था को लक्ष्यते एव वि वि इत्यस्य चतुर्विशत्' सख्यार्थकत्व सिद्धयति ।'

जन्माद्यस्य श्लोक की व्याख्या बडे विस्तारपूर्वक लिखी है । पचम स्कन्ध के भूगोल खगोल का विवेचन पठनीय है । षष्ठ स्कन्ध केवल ३१ पक्तियो मे ही लिखा गया है । कलियुगारम्भ द्वापर मे ही मान लिया था, इनके अनुसार द्वापर मान ८ लाख ६४ हजार है, इसमे द्वापर के जब ३६ सहस्र वर्ष शेष थे तब से ही कलियुग ने प्रवेश कर लिया था । इनके अनुसार कलियुग मे ७२ सहस्र वर्ष पर्यन्त द्वापर युग ही माना जायगा, कलियुग मे १ लाख ४४ सहस्र वर्ष जब शेष रह जायेंगे तब सत्ययुग का प्रारम्भ होगा । 'इदानी कृष्णता गत' उक्ति मे जो भगवान् के कृष्ण वर्ण का हेतु है वह कलियुग ही है । (७।६)

---

१ 'द्वात्रिंशत् त्रिशतं' की व्याख्या- (भा० टि० वि०)
२. 'चतुश्चत्वारिंशत्' होना चाहिए ।

कतिपय महत्वपूर्ण विरोधो का समाधान द्रष्टव्य है—रेणुका का परपुरुष दर्शन निषिद्ध होते हुए भी युक्त है। 'एक बार रेणुका अपने पति के लिये जल लेने के लिये गयी थी, वहा उसने जलक्रीडा मे रत चित्ररथ को देखा और उसकी क्रीडा मे अपनी अभिरुचि प्रकट की। समय अतिक्रमण होने का उसे स्मरण ही न रहा।' यह वर्णन भागवत मे है। टीकाकार का कथन है कि चित्ररथ साक्षात् शिव का अ श था और रेणुका पार्वती का अ श थी, अत परपुरुष दर्शन का कोई दोष नही लगा। (९।१४।

कुछ विद्वानो ने अजामिल प्रसङ्ग के ३ अध्याय, द्वादश स्कन्ध के अन्तिम ३ अध्याय तथा आचार्य वल्लभ ने दशम स्कन्ध के ३ अध्याय प्रक्षिप्त माने थे। टीकाकार ने उक्त सभी मतो का खण्डन करते हुए केवल अघासुर प्रकरण को ही क्षेपक मे गिनाया है। आश्चर्य है कि टीकाकार ने द्वात्रिंशत् के अनुसार ३३२ अध्याय ही लिखे है जबकि प्रारम्भ मे ३४८ अध्यायो का उल्लेख उसन स्वय किया है। पूतना को पूर्व जन्म की उर्वशी अप्सरा सिद्ध करते हुए, भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म भी गोकुल-मथुरा के मध्य सिद्ध किया है। वह लिखता है कि नन्द एव यशोदा कस को वार्षिक कर देने के लिए मथुरा जा रहे थे। मार्ग मे प्रसव हुआ और वही पूतना भी आई। यदि पूतना गोकुल मे मरी होती तो समस्त गोकुल नष्ट हो जाता। (१०।६) किन्तु भागवत मे मार्ग मे जन्म होने का उल्लेख नहीं है।

राम और कृष्ण दोनो मे केवल ३ मास का अ तर है। देवकी के छठा गर्भ आश्विन कृष्ण षष्ठी के दिन स्थित हुआ,तथा वैशाख मास मे सतमासा शिशु दक्ष नाम का उत्पन्न हुआ था। आषाढ मास मे बलराम गर्भ म आए तथा तीन मास पश्चात अर्थात् आश्विन मास मे उन्हे रोहिणी के गर्भ मे योगमाया द्वारा पहुँचा दिया गया। इनका सातवें मास मे अर्थात् वैशाख मास म जन्म हुआ था। देवकी का गर्भ माघ आश्विन मास मे हुआ था, अत पौष शुक्ल पक्ष में देवकी के गर्भ मे भगवान् कृष्ण का प्रवेश एव सात मास १५ दिन पश्चात् श्रावण कृष्ण अष्टमी को उनका प्रादुर्भाव हुआ—

'देवीमुवासात्र च सप्त मासात्
सार्धास्ततश्चाविरभूदजोऽपि ॥ (इत्युक्ते १०।७)

इनके अनुसार कृष्ण का भूलोक वास १०० वर्ष ही था। किन्तु भागवत—म १२५ वर्ष का उल्लेख है। देवकी के गर्भ मे ८६ वर्ष ८ मास की अवस्था म देवगणो न स्तुति की थी—ऐसा इस टीकाकार ने अपना अभिमत व्यक्त किया

है। भागवत के अनेक दुरूह स्थलों का समाधान व्याकरण व्युत्पत्ति, मौलिक सूझ, पुराण सङ्गति आदि द्रष्टव्य हैं। यह टीका भागवत मर्म-जिज्ञासुओं को अति उपादेय है।

१३. धनपति मिश्र

(क) परिचय—'गूढार्थ दीपिका' भागवत टीका के रचियता धनपति सूरि एक प्रतिभावान् विद्वान् परम वैरागी एवं भागवतपान रसिक भक्त थे। आपके पिता का नाम रामकुमार था। 'मिश्र' शब्द के उल्लेख से इनको ब्राह्मण माना जा सकता है। धनपति ने अपने परिचय में कुछ भी नहीं लिखा है। पुष्पिका के आधार पर इनके पिता का परिचय प्राप्त होता है—'इति श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य्य बालगोपाल तीर्थ श्रीपाद शिष्य दत्तवंशावतंस रामकुमार सूनु धनपतिमिश्र सूरि कृतायां भागवत गूढार्थ दीपिकायां दशमस्कन्धे एकोन त्रिंशोऽध्याय.।' (१०।२९)

(ख) सम्प्रदाय—बालगोपालतीर्थ वीतराग सन्यासी थे, ये धनपति के गुरु थे। यह भी उक्त पुष्पिका द्वारा निश्चित है। ये द्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मंगलाचरण में भी इन्होंने बालगोपाल की वन्दना की है—

'उमा श्रीबालगोपाल तीर्थान् ध्यामगुणान्मुनीन्।' बालकृष्ण की प्रशंसा से स्पष्ट है कि ये बालकृष्ण भगवान् के उपासक थे। यथा—

> 'गोपाङ्गना गुणाकृष्ट चेतोऽखिल अनाश्रय
> तस्य कृष्णस्य पादाब्जमाश्रयेऽभीष्ट सिद्धये ॥' (१०।२९)

(ग) स्थितिकाल—धनपतिकृत गीता टीका में एक श्लोक उपलब्ध है जिसके अनुसार १८५३ विक्रम में उक्त टीका के लिखे जाने का उल्लेख है, अतः इन्हें १८ विक्रम के लगभग माना जा सकता है।[1]

(घ) कृतियां—(१) भाष्योत्कर्षदीपिका (गीता टीका) (२) गूढार्थ दीपिका (भागवत टीका)।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—धनपति सूरि की टीका का नाम 'गूढार्थ दीपिका' है, जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—'इति.........गूढार्थदीपिकायां

---

१. रामेषुवस्विन्दु संख्याते प्रभवसंज्ञिनः
   मासाभे शुक्ल पंचम्यां कृष्णे तिथा पुर्तिमिदम् ॥
   (भाष्योत्कर्ष दीपिका उपसंहार)

सूरि हृतायां गूढार्थ दीपिकाया, स्कोनत्रिंशो ध्याय ।' 'गूढार्थ दीपिका—गीता की प्रसिद्ध टीका है, इसके रचयिता मधुसूदन सरस्वती थे। उनका खण्डन धनपति सूरी ने 'भाष्योत्कर्ष दीपिका' नामक अपनी गीता की टीका मे प्रस्तुत किया है। सम्भव है मधुसूदन की 'गूढार्थ दीपिका' टीका नाम की प्रेरणा से अपनी भागवत टीका का नाम 'गूढार्थ दीपिका' रखा हो।

परिमाण—'गूढार्थ दीपिका' भागवत दशम स्कन्ध के २९ से ३३ अध्यायो पर एव भ्रमर गीत ४७ वें अध्याय पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—रासलीला का अध्यात्मपरक अर्थ करना एव कृष्ण का ब्रह्मत्व सिद्ध करना ही उद्देश्य है।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से आठ टीका सस्करण मे प्रकाशित है।

शैली—श्रीमद्भागवत की रासपचाध्यायी की यह टीका निवृत्तिपरक अर्थ मे सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। यद्यपि कतिपय टीकाकारो ने श्रीधर स्वामी की भावार्थ दीपिका टीका निवृत्तिपरक लिखी है, किन्तु अधिक विश्लेषण धनपति सूरी की टीका मे है भृङ्गार पक्ष एव निवृत्तिपरक पक्ष दोनो मे यह टीका सफल है—पचाध्यायात्मोय सर्वशास्त्रसारसर्वस्वभूतो ग्रन्थ इतिसूचयितु मङ्गलाचरणार्थमादौ भगवानिति पद प्रयुक्तम्। अत्र भक्ति शान्ति रस प्रधाने श्रीमद्भागवते पारमहस्या सहिताया प्रसङ्गात् पर शास्त्रार्थ भृगार रस मनुवदता मुनीन्द्रेण स्वसिद्धान्तोऽपिगूढतयानिर्दिष्ट अतएव भृङ्गार कथापदेशेन विशेषतो निवृत्ति परेय पचाध्यायीति श्रीधर स्वामिभिरप्युक्तम्।' (२९।१)

श्लोको की व्याख्या के पूर्व बडी-बडी भूमिकाए बाँधी गई हैं, यथा —

'भगवानपिता रात्री ' (भागवत १०।२९।१)

'इन्द्र वरुणादि विजये किं चित्र ब्रह्मादि जय सरूढ़ दर्प कामोऽपि भगवतापराजित इतिख्यापनाय क्रमप्राप्ता भगवत्कृता रासक्रीडा वर्णयितु मुपक्रमते भगवानपीति।

श्लोक का अन्वय सार रूप मे रखा है यथा—'भगवानपि रन्तु मनश्चक्रे'। किन्तु प्रत्येक पद की विशेष व्याख्या की गई है।

धनपति उच्चकोटि के विद्वान् थे। गीता की 'भाष्योत्कर्ष दीपिका' इनकी प्रौढ़ कृति है, इसमे श्री शङ्कराचार्य के भाष्य का उत्कर्ष तो सिद्ध किया

ही है साथ ही मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् की टीका का खण्डन भी किया है। यथा—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव' (गीता १।१) की टीका मे मधुसूदन सरस्वती ने लिखा है—'अथवा धर्मक्षेत्र माहात्म्येन पापानामपि मत्पुत्राणा............महातुद्वेग एव प्रश्न बीजम्।'

इसका खण्डन भाष्योत्कर्ष मे धनपति ने किया है—'अथवा धर्म क्षेत्र माहात्म्येन......... ... प्रश्न बीजम्' इति केचिद्वर्णयन्ति। तदुपेक्ष्यम्। (१।१)

'यदिमामप्रतीकारम्........... ....।' (गीता १।४५) की टीका मे—मधुसूदन सरस्वती ने लिखा है—'ननुतववैराग्येऽपि भीम सेनादीना........ .... किंविधेयम्।'

इस टीका को भाष्योत्कर्ष मे ज्यो की त्यो रखकर खण्डित किया है। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ की टीका का खण्डन भी इस टीका मे दृष्टिगोचर होता है। 'धर्मक्षेत्रे' की व्याख्या मे—'यत्वन्ये—धर्मक्षेत्रपद कुरुक्षेत्रपदादविमुक्तक्षेत्र प्रतिपत्तिर्माभूदित्येतदर्थमिति। तन्न।' (१।१)

यहाँ 'यत्तु' पद नीलकण्ठ के लिये है क्योकि उन्होने कुरुक्षेत्र पद से युद्धभूमि का कुरुक्षेत्र पृथक् लिखा है जिसका खण्डन धनपति सूरि ने किया है। धनपति ने गीता की टीका मे जो मङ्गलाचरण लिखा है वह भागवत टीका में भी उपलब्ध है—

'बालस्वामिनमाचार्यं नुमोव्यासमुखान्मुनीन्
विघ्नहर्तॄन् गणेशादीन्पण्डिताश्चविमत्सरान्।' (मङ्गला० ५)

महेश्वर शङ्कर की वन्दना की है तथा श्रीकृष्ण एव शङ्कर की एक श्लोक में एक रूप में स्तुति भी की है, जैसी अन्यत्र सुलभ नही—

'ईशावेकात्मकौलोके सम्प्रदायप्रवर्तकौ
गीताभाष्यप्रकाशेन वन्दे श्रीकृष्ण शङ्करौ।' (मङ्गला० ४) तथा
'कृष्णात्मनाशिवेनादौ व्याख्याता पदश स्फुटम्।' (मगल० ६)

भागवत टीका में इतने मगल पद्य नही हैं जितने गीता टीका में। सत्य, परम् की वन्दना भी गीता में है।

प्रमाणार्थ अनेक श्लोकों के उद्धरण दिये गये हैं—भागवत के श्लोक 'भगवानपि' के भग पद की व्याख्या निम्नलिखित रूप मे की है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रिय
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीगना॥'

श्लोक तीन मे भजनानन्द पक्ष, शृ गाररस पक्ष, बसन्त पक्ष, चन्द्र पक्ष, प्रियामुख पक्ष, समूह पक्ष की व्याख्या रामनारायण ने की है। जिन पर धनपति का अधिक प्रभाव है। धनपति ने चतुर्थ श्लोक से 'निवृति पक्षो प्येव' निवृति पक्ष का पृथक् उल्लेख किया है।

'रजन्येपाघोर रूपा घोर सत्व निषेविता' (भागवत १०।२६।१६)

'प्रेमाद्दीपनार्थ मीषत् कर्ण कठोर वाक्यमाह रजन्येवेति। निवृत्त पक्षोऽ-एपा अहेतुवाद्यभिमत निर्विशेषा चित्त रजनी रात्रितुल्या सर्वस्यापि तत्राध्या-सात्'' '' तथा हि ब्रह्म मानान्तर गम्य न भवति।

इस प्रकार समस्त रासक्रीडा की व्याख्या की गई है। कतिपय श्लोको की एक पक्ष मे ही व्याख्या की है। इनकी भाषा मे प्रौढ़ता एव प्रवाह है।

—•—

अध्याय पंचम

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१ केशव कश्मीरी भट्ट
२ शुक सुधी
३ वंशीधर
४. गंगा सहाय

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. केशव कश्मीरी भट्ट

(क) परिचय—केशव कश्मीरी भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के विद्वानो मे मूर्धन्य थे। इन्होने श्रीमद्भागवत की टीका की रचना की थी किन्तु दुर्भाग्यवश अब वह उपलब्ध नही है केवल दशम स्कन्ध की वेदस्तुति की व्याख्या ही उपलब्ध है।

भट्ट जी निम्बार्काचार्य के वंश मे उत्पन्न हुए, आपको भी जगगुरू की उपाधि से भूषित किया गया था। आपका जन्म तैलग देश मे वैदूर्य पत्तन नामक स्थान मे हुआ था। आपने भारत भ्रमण किया और वैष्णव धर्म की पताका फहराई। श्रीमद्भागवत की टीका उज्जैन मे की थी। शख चक्र आदि धारण की विधि देश से लुप्त होती जा रही थी, इन्होने उसे फिर से प्रचलित किया।[1] ऐसा कहा जाता है कि यात्रा मे भट्ट जी के साथ १४००० शिष्य थे। काश्मीर मे मासाहारी दल बहुत बढा हुआ था एव वे अनेक माया भी जानते थे। कश्मीरी भट्ट के वहाँ पहुँचते ही शख ध्वनि हुई उसे सुनते ही यवन दल ने आक्रमण किया और अपने तान्त्रिक प्रयोगो से भट्ट जी के शिष्यो को व्याकुल कर दिया। किन्तु आचार्य जी के आते ही यवन भस्म होने लगे, यवनो का दल भी भाग खडा हुआ। यवन पति के मुख से रुधिर की धारा निकलने लगी। उक्त समाचार सुनते ही उसका छोटा भाई जो दुर्धर्ष शासक था आया, उसने अपने प्रभाव से चारो ओर अन्धकार फैला दिया। उसी क्षण आचार्य ने सूर्य का आवाहन किया तथा समस्त अधकार नष्ट हो गया। वह यवन अपने साथियो सहित इनकी शरण मे आ पडा।[2] काश्मीर मे ही भट्ट जी ने वेदान्त सूत्रो पर 'कौस्तुम प्रभावृत्ति' लिखी और वही से हिमालय की यात्रा करने चल पडे। वहां भी नारद आदि की प्रतिमाओ की स्थापना की एव ११० वर्ष पर्यन्त समाधि लगाकर रहे—

---

१. सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनांक, पृष्ठ २१४।
२. सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनांक, पृष्ठ २१५।

दशोत्तर शत वर्ष गिरिदर्य्यां महामना
ध्यानयोगरतोवासीत् यत्र सन्निहितोहरि ॥'

काशी मे साख्यवा–कणाद–गौतम एव वैशेषिक न्याय मे ही अनेक विद्वान् उलझे हुए थे । सत् शास्त्र की अवहेलना साधारण बात हो रही थी, भट्ट जी ने उन्हें पराजित किया था तथा भगवद्भक्ति करने का उपदेश दिया–

'ये वै कापिल साख्यवाद निरता काणादि नैयायिका
येऽन्येऽद्वैतमतान्धकारपतिता शैवाश्च बौद्धादय ।
नाना तर्क वितर्क कर्कश धिय सच्छास्त्रविप्लावका–
स्तान्निर्जित्य पदाम्बुजे भगवतो भक्तिपरा प्रादिशत् ॥'

काशी से पालकी वाहन द्वारा ये गगासागर सगम गये । बगाल मे शाक्त मत जोर पर था, कौल मत के अनुयायी अधिक होने जा रहे थे । ऐसे समय भट्ट जी ने उन्हें शास्त्रीय प्रमाणो से पराजित किया था । इस यात्रा प्रसग मे नैमिषारण्य मे उन्हे यवनो के आक्रमण द्वारा मथुरावासियो के कष्ट का समाचार प्राप्त हुआ, वे वहा से चल लिये और मथुरा मे 'ध्रुव टीला' नामक स्थान पर निवास किया । विश्रान्त घाट पर यवनो ने एक ऐसा यन्त्र लगा दिया था जिसके नीचे निकलने वाले व्यक्तियो की शिखा उड जाया करती थी । आचार्य विश्रान्त घाट पर स्नान करने गये उनके पदार्पण के समय ही यवनो की माया विलीन हो गई, उन्होंने स्नान के उपरान्त एक ऐसा यन्त्र लगाया था जिसके प्रभाव से उनके पुरुषतत्व के चिह्न नष्ट हो गये एव स्त्रीत्व विशिष्ट चिह्न प्रकट हुए, जब समस्त यवन उनके चरणो मे आकर पडे तब उन्होंने यमुना जल के मार्जन से उन्हें शुद्ध बना दिया ।

(ख) सम्प्रदाय––निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी श्रीभट्ट देव जी से आपने दीक्षा ली थी, अत आप द्वैताद्वैतमत के अनुयायी थे । आप दर्शनशास्त्र–भक्ति तन्त्र पुराण- काव्य आदि शास्त्रो के प्रकाण्ड विद्वान् थे । आपने अनेक संस्कृत पद्यो की रचना की थी, यमुना स्तोत्र के श्लोक देखिये––

त्वत्तीरस्य कदम्ब कानन लता छाया कुटी वासिभिः
सद्भि सार्धमहर्निशं हरिकथा शृण्वन् ब्रुवन् वैमुदा
कालिन्दि तव तीर सेवन परस्त्वन्नीर पानै रतिम्
स्त्वद्धीचो क्षण भूतल त्वयिमन स्यान्ये शरीर क्षय ॥

वृन्दावन आपका प्रमुख केन्द्र बन गया था एव आप यहीं अधिकतर

' ––निम्ब ? विश्राम ४६ ।

रहे। श्री भट्टदेवाचार्य इनके प्रधान शिष्य थे। इनके वशज अधापि ध्रुव टीला मथुरा मे निवास करते है।

(ग) स्थिति काल—आपका जन्मोत्सव ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता है।[1] इनके शिष्य श्री भट्टदेवाचार्य की कृति 'युगल शतक' की रचना स० १३५२ विक्रम मानी जाती है,[2] अत केशव काश्मीरी का समय इससे पूर्व १२००–१३०० के मध्य माना जा सकता है।

(घ) कृतिया—(१) वेदान्त सूत्र व्याख्या (२) कौस्तुभ प्रभावृत्ति
(३) तत्व प्रकाशिका–भागवत टीका (४) यमुना स्तोत्र

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—केशव काश्मीरी भट्ट कृत टीका का नाम 'तत्व प्रकाशिका' है।

परिमाण—यह टीका भागवत के ८७ वें अध्याय पर उपलब्ध है, ज्ञात होता है कि भट्ट जी ने सम्पूर्ण भागवत पर टीका की होगी किन्तु वर्तमान मे अनुपलब्ध है।

उद्देश्य—भागवत के तत्वो का प्रदर्शन निम्बार्क सम्प्रदाय के आधार पर किया गया है।

प्रकाशन—आठ टीका सस्करण वृन्दावन से प्रकाशित शुक सुधी कृत 'सिद्धान्त प्रदीप' म यह वेदस्तुति की टीका प्रकाशित है।[3]

शैली—केशव काश्मीरी भट्ट ने इस टीका के आरम्भ मे सनन्दन की वन्दना की है, सनक सनन्दन ब्रह्माजी के मानस पुत्र थे, यही द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक मान जाते है—

सनन्दन पद द्वन्द्व भक्तिनम्र के चेतसा
प्रणम्य क्रियतेव्याख्या ब्रह्मायौपनिषदी मया ॥

श्लोको के सम्बन्ध बैठाने के लिए विशाल भूमिकाये उपनिबद्ध की है जिनमे ब्रह्मसूत्र, श्रुति–स्मृति–पुराण आदि के वाक्या रत्नो की भाति जटित कर दिये है। कही बडे-बडे समास भी रखे है-श्री कृष्णस्येव ज्ञानान्मुक्ति

---

१ आचार्य चरित्र-श्रीनारायणदेवाचार्य द्वारा संग्रहीत।
'ज्येष्ठे शुक्ले चतुर्थ्या यो काश्मीरी केशव प्रभु'
अयतीर्ग दिग्विजयेयेनयवनेशः निराकृत ॥

२ सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृष्ठ २१७।

३ 'अत्र मायावाद ध्वान्त भास्करः श्री काश्मीरि केशव भट्ट कृता व्याख्या कात्स्र्येनोपन्यस्यते।' (सिद्धान्त प्रदीप ८७।१)

प्रतिपादिता चतुर्थाये वशावल्या 'तच्च रूपमुत्फुल्लदलामलामलक्षमत्युज्जवल पीत वस्त्र धार्य्यमल किरीट केयूर कटकोपशोभितमुदारपीवर चतुर्बाहुशख चक्र गदाधर मति स्त्वगेरानुभवेन '.....तत्र पृच्छति ब्रह्मन् इति ।'

'अस्मत्पक्षेनु' लिखकर अपना मत भी उद्धृत किया है, 'तत्तु समन्वयाधिकरणं व्याख्यातम्' लिखकर ब्रह्म सूत्रों का समन्वय किया है। (८७।१५) टीका मे सर्वत्र द्वैताद्वैत का निरूपण किया है।

२. शुक सुधी

(क) परिचय—निम्बार्क सम्प्रदाय मे भागवत ग्रन्थ का अत्यन्त आदर है, किन्तु इस ग्रन्थ पर टीका रूप मे कोई प्रशसनीय कार्य नही हुआ। किसी समय केशव काश्मीरी ने अवश्य इसकी टीका की थी, किन्तु अब वह थोडे अश पर ही उपलब्ध होती है। वर्तमान युग मे इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार शुक सुधी हैं। इनके वैयक्तिक जीवन के बारे मे अधिक पता नही लगा। किन्तु यह निश्चित है कि ये मथुरा के 'परशुराम द्वार' नामक स्थान मे निवास करते थे।[1] यह स्थान निम्बार्क सम्प्रदाय के आधिपत्य मे था। श्री जी की कुज वृन्दावन मे है इसके स्वामी सनेमाबाद गद्दी के महन्त रहे हैं। इस स्थान से इन्हे २०० रुपये मासिक भी मिलते थे। ये विरक्त वैष्णव थे।

(ख) सम्प्रदाय—इनके गुरु का नाम श्री सर्वेश्वर दास था। उनका ध्यान भी इन्होने किया है—

> सर्वेश्वर गुरु चैवप्रणमामिह्यहर्निशम्
> तद्दत्तेन कृतोयोऽस्मिनद्भृत्यत्वेन सर्वश.।।[2]

आपको निम्बार्क शरण देवाचार्य जी के कृपापात्र शिष्य होने का सकेत वृन्दावनाक (सर्वेश्वर) मासिक मे किया गया है।[3] इस पत्र के अनुसार यह भी कहा जाता है कि विक्रम सम्वत् १९८१ मे जगद्गुरु पीठासीन होने के लिए शुक सुधी से अनुरोध किया गया था किन्तु परम विरक्तता के कारण उस पद को अस्वीकार कर दिया था। तब ब्रजराज शरणदेव को इस गद्दी का अधिकार दिया गया।

---

१. अधिकारी श्री ब्रजवल्लभ शरण देव जी श्रीजी कुञ्ज वृन्दावन के पास सुरक्षित प्राचीन पट्टी के अनुसार।   २. सिद्धान्त प्रदीप, मगलाचरण।

३ सर्वेश्वर पत्र-वृन्दावनाक (वर्ष ५, अक १-५, स० २०२१), पृष्ठ २८८।

(ग) स्थितिकाल—शुकसुधी के जन्म के बारे मे निश्चित नही कहा जा सकता कि ये किस सम्वत् मे उत्पन्न हुए, किन्तु निश्चित रूप से सम्वत् १९२६ विक्रम मे इनका गोलोक वास माना गया है। देहत्याग की अवस्था का अनुमान ७०-७५ वर्ष के लगभग बतलाया गया है। अत आपका जन्म सम्वत् १८५० के आसपास मानना होगा। स० १८४०-१८६० के मध्य मानने मे कोई आपत्ति नही है। १८९७ विक्रम मे आपके अध्ययन के लिए सिद्धान्त कौमुदी, महाभारत आदि ग्रन्थ लिखवाये गये थे, वे आज भी श्रीजी कुंज में उपलब्ध है, उनमे 'शुक सुधी पठनार्थ' लिखा है। (स्वधर्मामृत सिन्धु मङ्गलाचरण १)

(घ) कृतियां—१ 'सिद्धान्त प्रदीप' यह श्रीमद्भागवत की टीका है। २ 'स्वधर्मामृत सिन्धु—३९२ पृष्ठो के इस ग्रन्थ मे २५ तरङ्ग हैं। यह सम्वत् १९८१ मे वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बन्धित व्यक्तियो को यह ग्रन्थ अत्यन्त लाभकारी है—

'श्री निम्बार्कं नमस्कृत्य सम्प्रदायानुसारतः
स्वधर्मामृत सिन्धुर्वै क्रियते शास्त्रमानत ।'

(३) विष्णु सहस्र नाम टीका (४) महाभारत टिप्पणी (अप्रकाशित) श्रीजी कुंज वृन्दावन मे सुरक्षित है। शुक सुधी की प्रतिमा सर्वतोमुखी थी। निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट विद्वान् और भावुक महानुभावो मे आपकी शुकदेव जी जैसी प्रतिष्ठा है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—सिद्धान्त प्रदीप। निम्बार्क सम्प्रदाय में भागवत के प्रकाण्ड विद्वान् 'शुक सुधी' सिद्धान्त प्रदीप के रचयिता है—'इति श्री मद्भागवते ....सिद्धान्त प्रदीपे प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्याय ।'

परिमाण—यह श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धो पर लिखी गई है। टीका सम्पत्ति मूल के लगभग है, न विस्तार शैली है एव न लम्बी चौड़ी भूमिका ही बांधी गई है। अत इसका परिमाण स्वल्प ही है।

उद्देश्य—निम्बार्क सम्प्रदाय मे शुक सुधी के अतिरिक्त अन्य कोई टीका सम्प्रति उपलब्ध नही हैं। सम्प्रदाय के विद्वान् एव भावुको को स्वसम्प्रदायोक्त भाव भागवत मे देखने की एक जिज्ञासा चिरकाल से चली आ रही थी, उसे शुक सुधी ने पूर्ण किया। यह टीका सम्प्रदाय के भावो को हृदय मे रख कर की गई है। 'सिद्धान्तो का दीपक' नाम इस टीका को सार्थक ही दिया गया है।

प्रकाशन—'आठ टीका के साथ' वृन्दावन से प्रकाशित सं० १९६० विक्रम।

शैली—अन्वय मुखी यह टीका संक्षेप मे अपने भावो को व्यक्त कर देती है। भूमिका का विस्तार इसमे न के बराबर है। उदाहरणार्थ—

'मा शोचत महाभागावात्मजान् स्वकृत भुज
जन्तवोन सदैकत्र दैवाधीनास्त दासते।' (भागवत १०।४।१८)

सिद्धान्त प्रदीप—'जन्तव -प्राणित सदा एकत्र नासते यतो दैवाधीना स्वकृतकर्मतन्त्रा अत स्वकृत भुज स्वकृत कर्मफलभोक्तृन् मा शोचतम्।' इस टीका मे मूल के महाभागावात्मजान् आदिपद त्याग दिये गये हैं। अन्वय अवश्य किया गया है किन्तु अन्वय पदो के द्वारा मूल श्लोक की सगति नही बैठ सकती उसके लिये मूल पद देखना भी आवश्यक है। भूमिका अत्यन्त सक्षेप मे बाँधी गई है—

'भुवि-भौमानि भूतानि'

सि० प्र०—'देहानामेव' जन्ममरणे नात्मन इत्याह—भुवि' इति। (१०।४।१९) यही एक शब्द लिख कर ही टीकाकार आगे बढ गये है यथा—

'सपत्नी दीनवदना वृतासन परिग्रह' (भा० ८।१६।३) की टीका मे 'स कश्यप' लिखकर न० ३ डाल दिया है। किन्तु सम्प्रदाय के जहाँ भाव अव्यक्त रूप मे भागवत म बिखरे पडे हैं उन्हे विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया है, यथा—

'त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्व सोमो ज्योतिषापति'

इसमे टीकाकार ने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का निरूपण किया है—'सर्वस्य-चिदचिदात्मकस्य भगवतो भिन्नस्यापि तदात्मकत्वात्तदभिन्नत्व ऐतदात्म्यमिद सर्वं 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्य २।१।१५ इत्यादि श्रुति सूत्र प्रसिद्धम् भगवच्चक्र तु सुतरा भगवदभिन्नमिति सिद्धान्त विद्धाअपि भगवच्चक्र भगवत्तया भगवत्प्रियायुधतया च स्तौति।' (सिद्धान्त प्रदीप ९।५।३) एव यह भी स्पष्ट किया है कि राजर्षि अम्बरीष द्वैताद्वैतसिद्धान्त से पूर्ण परिचित था। इनकी टीका मे स्पष्टाक्षर नाममात्र को भी नहीं दिखलाई न देगा। श्रुति वाक्य अधिकाश म वही हैं जिन्हे श्रीधर आदि आचार्य लिख चुके है। स्मृतियो मे केवल गीता के वाक्य ही उद्धृत किए हैं। द्वैताद्वैत सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्मृतियो म ही विस्तृत किया है। पूर्ववर्ती टीकाकारो म श्रीधर एव

जीव गोस्वामी की टीकाओ से अत्यधिक साहाय्य लिया गया है, कहीं-कहीं तो उनके ही अक्षर भी लिखे गये हैं यथा—

८।१६।३ की व्याख्या मे—स कश्यप क्रमसन्दर्भ मे भी है, सिद्धान्त प्रदीप मे भी ८।१७।७ मे 'फेरु श्रृगाल' क्रमसन्दर्भ मे भी है, सिद्धान्त प्रदीप मे भी इतना ही अश रखा है। इनके मुख्य प्रतिपाद्य द्विभुज कृष्ण है—'द्विभुज ज्ञान मुद्राढयम्' ये स्वगत भेद स्वाभाविक है—

'स्वगत भेदस्तु अस्ति अतोहि स्वभावत एव द्वैताद्वैतमित्यर्थ ।।'

अश तथा अशी का भी स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है—

'प्रधान प्रकृत्याख्य शक्तिरूप पुरुष
जीवात्मकाश रूप विश्व तदुभयात्मक
प्रपचरूप शक्ति तद्वतो अशांशिनोश्च
स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्धात् । (सि० प्र० ६।६।२६)

उक्त स्थलो पर सम्प्रदायगत भाव अवश्य ही इनके मौलिक हैं, इन पर अन्य टीकाकारो के प्रभाव का कोई हेतु ही नही है।

'वैराग्यार्थमकस्मात् प्रलयमिव दर्शयाभासेति तदसत् निर्मूलत्वात् ।'

श्रीधर स्वामी ने ८।२४।४६ की व्याख्या मे स्पष्ट लिखा था—'नैवाय वास्तव कोऽपि प्रलय किन्तु सत्यव्रतस्य ज्ञानोपदेशायाकस्मात् प्रलयमिव दर्शयामास ।'

श्रीधर स्वामी को मायावादी कहकर एक प्रकार से उन्हे निरस्कृत किया है। इस टीका मे वेदस्तुति की केशव कश्मीरी कृत टीका लिखी गई है। सम्प्रदाय के तत्व बलात् आरोपित नही किये हैं। पाठान्तर तथा प्रक्षिप्ताश भी अधिक नही लिये हैं। सम्प्रदाय की दृष्टि से टीका गम्भीर एव अपने मे पूर्ण सफल है। क्वचित् श्रीधर स्वामी के खण्डन की दिशा मे टीकाकार पहुँचे है यथा—द्वादश स्कन्ध के अन्तिमाध्याय की कथाओ के क्रम मे व्युत्क्रम हुआ है, वहां वे श्रीधर के इस पक्ष से सहमत नही कि यह व्युत्क्रम स्कन्धो के कारण है। श्रीधर स्वामी ने अष्टम स्कन्ध मे वर्णित प्रलय मायिक मानी है (भावार्थ दीपिका ८।२४।४६), शुकसुधी ने वास्तविक (सिद्धान्त प्रदीप ८।२४।४६)।

'आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिक लय इत्यारभ्य यावद् ब्राह्मी निशेत्यन्तेन ग्रन्थेनोत्कमर्थमनादृत्य—मायावादिना यदुक्त नैवाय वास्तव कोऽपि प्रलय किन्तु सत्यव्रतस्यज्ञानोपदेशाय आविर्भूता भगवान वैराग्यार्थं अकस्मात् प्रलयमिव दर्शयामासेति तदसत् निर्मूलत्वात् ।' (सिद्धान्त प्रदीप ८।२४।३१)

'अनाथ विद्योपहृतम सम्विद' श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट इस मायिक प्रलय लिखा है—

' नैवाय वास्तव कोऽपि प्रलय स्त्रिन्तुसत्यव्रतस्यज्ञानोपदेशाया - कस्मात् प्रलयमिव दर्शयामास' (भावार्थ दीपिका ८।२४।४६) इसका खण्डन सिद्धान्त प्रदीप म ३७ वें श्लोक म किया गया है।

३ वशीधर

(क) परिचय – भागवत के ख्यातिप्राप्त टीकाकारा मे वशीधर का प्रमुख स्थान है। यद्यपि श्रीमद्भागवत के अनेक टीकाकार हुए हैं तथापि वशीधर अपनी नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा एव श्री राधा की अनन्य सेवा भावनापरक अथ रुचि के कारण भागवतियों के श्रद्धा के भाजन बने हुए हैं। इनके वश परिचय के लिए किसी प्रकार की असुविधा नही क्योंकि टीका के उपसहार म अपना परिचय पद्यो में लिख दिया है।[1] इनका जन्म खरड नामक नगर क सुप्रसिद्ध वश म हुआ था। ये कौशिक गोत्री ब्राह्मण थे। खरड नगर हिमालय के पश्चिम म बसा हुआ है, वहा बलराम शर्मा अपनी विद्वत्ता से पूजित होकर रहत थे। उनके पुत्र का नाम भूधर था।[2] भूधर के गौरीप्रसाद एव उनक सुखदेव शर्मा हुऐ। सुखदेव के पुत्र गजराज समस्त शास्त्रो के ज्ञाता थे। इनके पुत्र निक्काराम थे[3] एव इन्ही निक्काराम के पुत्र श्री वशीधर शर्मा थे।

तस्माद्वशीधरो जातो गोत्रे कौशिक सज्ञके
गौड वशे नन्दसूनु पाद-ध्यान परायण ॥

---

१ 'वशीधर, कौशिक गोत्र गौड, वश्य कृती श्रीधर वृत्ति वृत्ति'
(भाव० टी० प्र० १०।१।१)

२ भुवन पालन तत्पर मानसादिगिरिवराज्जल पस्य दिशिस्थितम्
हर विलोचन योजनभूमिके रघु सुतस्य नृपस्य सरोपरम ॥
निखिल पाप हरं प्लवनादिका तदुपकठ गत शुभ पत्तनम
खरड नामक मस्ति जनैर्युत श्रुति विधान परायण मानसैं ॥
तस्मिन पुरे विप्र गणाग्रय गण्य उवासविप्रोबलराम शर्मा
तदात्मजो भूधर नाम धेय स्वाचार निष्ठोऽखिल शास्त्रवेत्ता ॥
(वही उपक्रमे)

३ धर्मात्मक मधुरिपोरनु ग स निक्का-
राम इ् मवाप ततय विनयोपपन्नम् । (वही उपक्रमे)

वंशीधर के एक पुत्र था जिसका नाम लक्ष्मीनारायण था एवं प्रमुख शिष्य का नाम दुर्गादत्त था। वशीधर कृष्ण भगवान् के अनन्य भक्त थे। उनकी कृति भी सागर के समान थी और भावार्थ दीपिका की प्रकाशिका थी—

तेनाय ग्रथित कृष्ण कृपया ग्रन्थ सागर
श्रीधर स्वामि भावार्थ दीपिकाया प्रकाशकः ॥
व्याख्या पुष्पमयी माला श्रीवंशीधर शर्मणा
समर्पिता कृष्ण कण्ठे प्रीत्योपदिहिते मया ॥

(ख) सम्प्रदाय—कृष्ण अपने भक्तो के विचारो को सर्वथा पूर्ण करते है राधापति तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नही, मेरा जीवन तुम्हारे ध्यान मे सलग्न रहे तथा वृन्दावन वास न छूटे। राधाकृष्ण के उपासक एव चित्र मे गोपीचन्दन के अर्ध्व पुण्ड्र तिलक से इनका *निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुगामी होना* सिद्ध है—

श्री कृष्ण नाथ परि पूरय चिंतित श्री
राधापते न कठिन तवकिंचिदस्ति
तद्ध्यान निष्ठ मनसो ममयानु कालो
वृन्दावनेश व्रज मण्डलगस्यनित्यम् ॥

वशीधर नामा नरेश हीरासिंह के आश्रय मे रहे थे।

(ग) स्थिति काल—वशीधर ने चित्सुख-मध्व श्रीधर विजयध्वज-जीव गोस्वामी विश्वनाथ चक्रवर्ती के नाम लिखे हैं[1]। इनमे परवर्ती टीकाकार *विश्वनाथ हैं जिनका समय १७०८ विक्रम से प्रारम्भ माना जाता है, अतः* वशीधर का समय इसके पश्चात् है। पुष्ट प्रमाण यह है कि—वशीधर के सम्मुख ही यह टीका सम्वत् १९४५ विक्रम मे प्रकाशित हुई थी।[2] टीका मे उपलब्ध *चित्र के देखने से उनकी अवस्था ६५ वर्ष से अधिक प्रतीत होती है।* यदि यह टीका रचना काल का चित्र है तो इनका जन्म स० १८७०-८० के मध्य मानना चाहिये।

---

१ श्रीविश्वनाथविजयध्वज जीवगोस्वामी
चित्सुख स्वसनजादिभिरीरितायाः
टीका अतीव गहनाः सुविलोक्य शास्त्र
श्री भारतं च रचितोऽयमपि प्रबन्धः। (भा० दी० प्र० उपक्रम)

२, शरावान्नागांक सातांशुभितेसम्वसरोज्जवे। (वही उपसंहार)

(घ) कृतियां—(१) भावार्थ दीपिका प्रकाश (२) आद्य पद्य व्याख्या शती (३) भगवल्लीला कल्पद्रुम (४) भारत टीका (५) न्याय सिद्धान्त मुक्तावली टीका (६) मातृका विलास (७) चतुर्युगीय नृप चरित ।

उक्त सभी ग्रन्थ खेमराज मुम्बई प्रेस से प्रकाशित हैं ।

(ङ) टीका वैशिष्ट्-नाम—भावार्थ दीपिका प्रकाश नाम से स्पष्ट है कि श्रीधर स्वामी की टीका भावार्थ दीपिका के ऊपर लिखी गई है ।[1]

परिमाण—सम्पूर्ण भागवत पर लिखित यह टीका मूल से कई गुनी अधिक है । कतिपय अत्यन्त सरल श्लोको के अतिरिक्त यह टीका सम्पूर्ण श्लोको पर लिखी गई है ।

उद्देश्य—श्रीधर स्वामी ने टीका लिख कर जहा एक ओर भागवत को सरल बनाने की चेष्टा की दूसरी ओर वह टीका एक जटिल समस्या बन गई । इसमे श्रीधर स्वामी की प्रकाण्ड विद्वता ही हेतु थी ।

श्रीधर स्वामी अनेक शास्त्रो के पारङ्गत विद्वान् थे फलत उनकी टीका मे वह प्रतिबिम्ब आना स्वाभाविक था, अत यह टीका उन व्यक्तियो को समस्या बन गई जो सहसा साधारण ज्ञान के आधार पर उसका तात्पर्य समझने का यत्न करना चाहते थे । वशीधर पण्डित ने इस कठिनाई पर विचार किया एव उसके निराकरणार्थ इस टीका की रचना की। श्रीधर ने अनेक स्थलो पर सकेत-मात्र लिखे थे उन्हें वशीधर ने स्पष्ट लिखा तथा उनके भावो का पल्लवन किया । राधा चर्चा आदि विषय इनके अपने है क्योकि श्रीधर ने इन पर कुछ भी नही लिखा । श्रीधर स्वामी का अभिप्राय व्यक्त करना साधारण कार्य नही है तथापि उनकी अनुकम्पा से मैं उनके भावो को व्यक्त करूँगा—

'श्रीधर स्वाम्यभिप्राय श्रीधरो वेत्ति सर्वथा
भविष्यति तत्कृपया तदभिव्यक्तिराशुमे ।।'

(भा० दी० प्र० १०।१ म०)

यद्यपि श्रीधर स्वामी के पदो का उद्घाटन इस टीका मे किया है तथापि उनके द्वारा अव्याख्यात पद्यो की टीका भी इन्होंने की है—

'क्वचिच्च श्रीधरत्यक्त पदानामपि वर्णनम्' (वही)

---

१. 'भावार्थदीपिका टीका प्रकाशोऽति प्रयत्नत'

(भा० दी० प्र० ३।२ उप० श्लोक ५)

इस कार्य के लिये इन्हे अन्य टीकाओ का भी आश्रय ग्रहण करना पडा था —

'करिष्यामि विदाप्रीत्यै क्षमता ते ममत्वराम्
पूर्वाचार्यानुग्रहान्मे सर्वेर्था प्रतिभान्तु वै ।' (वही १।१।११ उप०)

यशीधर वैष्णव सम्प्रदाय मे दीक्षित थे किन्तु टीकारम्भ मे उन्होने स्मार्त धर्म की उपेक्षा नही की, देवी, गणपति सूर्य आदि सभी की वन्दना की है जो उनकी उदार भावना की द्योतिका है—

वन्दे देव पार्वतीज महेश
वाच सूर्यं मां गुह राधिकेश
विद्यातीर्थान् सर्वतश्च प्रणम्य
व्याख्या कुर्वे श्रीधर स्वामि वृत्ते । (१०।१।१ मग०)

प्रकाशन—'भावार्थ दीपिका प्रकाश' की रचना १६४५ विक्रम मे हुई एव सम्वत् १६६५ विक्रम मे खेमराज के स्टीम प्रेस बम्बई मे यह मुद्रित हुई। यह प्रथम सस्करण ही उपलब्ध है।

शैली—टीका मे व्याकरण, मीमासा, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, न्याय साहित्य आदि वाङ्मय के उच्च ग्रन्थो के आधार पर विभिन्न विषयो का निरूपण हुआ है। प्रथम भागवत दशम स्कन्ध की टीका की गई थी जैसा कि लिखा भी है—

प्रथम दशमस्कन्ध व्याख्या कुर्वे कुतूहलात्
श्री कृष्णलीला माधुर्य सेवनासक्त चेतस ॥ (वही)

यह ग्रन्थ श्री राधा की प्रसन्नता के लिये रचा गया था—

श्री वृन्दावन चन्द्रस्य वृषार्क तनया पते
प्रीत्यर्थ च कृत ग्रन्थ शृणोतु श्री हरि स्वयम् ॥ (१०।उप०)

हृदयेश निज प्रिय 'श्रीराधा' मुझे अपने समीप बुलाकर इस ग्रन्थ को सुनो—

वृषभानुसुतानाथ मामाहूय कृति मम
वृन्दावने शृणु विभो हृदयेश निज प्रिय । (११।उप०)

इस ग्रन्थ मे जो कुछ सौष्ठव है वह प्राचीन टीकाकारो का श्रम है, मैंने उनकी योजना मात्र की है—

सर्वाणिप्राक्तनान्येवपदवाक्याक्षराणि यैं
यत् किंच मेऽस्ति ग्रन्थेऽस्मिस्तेषा योजन मात्रत ।

यद्यपि मेरे गुरु अनेक हैं और गुरु ही पिता के समान हैं, अत उनकी सम्पत्ति पर मेरा भी अधिकार है।

सन्ति मे गुरव सर्वे गुरुव पितरोमता
पित्रर्जित स्वे पुत्राय यथा स्वत्व तथैव मे ॥

अपने से पूर्व टीकाकारो की सम्पत्ति पर अपने अधिकार का स्पष्ट उल्लेख जैसा इन्होंने किया, अन्य किसी टीकाकार ने नही किया। यह मुक्तकण्ठ से कहा जा सकता है कि प्राच्य विद्वानों की सम्पत्ति को ग्रहण करते हुए भी उसकी योजना बडे चातुर्य के साथ की है। वशीधर ने भागवत मे अष्टादश सहस्र श्लोक सख्या पूर्ण मानी है और यह भी लिखा है कि भागवत मे दीर्घ वृत्त हैं एव अनेक गद्य श्लोक भी हैं, उनके अक्षरो को जोडकर एव इति श्रीमद्भागवते' पुष्पिकाओ एव उवाच सख्या को मिलाकर अनुष्टुप् के ३२ का भाग देने पर १८००० पूर्ण श्लोक सख्या वन जाती है—

श्लोक	—	१६१६५
उवाच	—	१२७०
अर्द्धश्लोक	—	२००
पुष्पिका[1]	—	३३५
		१८०००

श्रीधर स्वामी जहा 'ननु' इत्यादि शङ्कावाचक पद रखते हैं वहा वशीधर उसे स्पष्ट करते हुए पदो का स्पष्ट अर्थ भी लिख देते है। यथा १।२।२४—

'नन्वन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्ते'

'अत्राशिपति नन्विति। अन्यान्=भैरवादीन्'

इनकी भूमिकात्मक शैली भी द्रष्टव्य है—'अवताराद्यसख्यया'

'अथ हयग्रीव हरि हंस पृश्निगर्भ विभु सत्यसेन वैकुण्ठाजित सार्वभौम विष्वक्सेन धर्मसेतु सुधामयोगेश्वर बृहद्भान्वादीनां शुक्लादीनां चानुक्तानां सग्रहार्थमाह अवतारा इति।' (वही १।२।२६)

अनेक विद्वान् परीक्षित के विषय में शास्त्रार्थ करते देखे गए है कि मृत्यु के समय परीक्षित की अवस्था कितनी थी ? इस प्रश्न का 'पूर्ण' व्यास

---

१ भावार्थ दीपिका प्रकाश, भूमिका, पृष्ठ ८।

की ही दोनो कृति है—श्रीमद्भागवत और महाभारत। भागवत मे परीक्षित युवा वर्णित है महाभारत मे ६० वर्ष की अवस्था लक्षित होती है।

प० बशीधर ने उसका समाधान करते हुए लिखा है कि 'आषष्ठिमध्यम वय' ६० वर्ष की अवस्था मध्यम वय है तथापि यौवन से सम्बन्धित होने पर वह भी यौवन ही कही जायगी स्थाविर नही। अन्यथा वयस्थ पद अयुक्त होगा।[1]

सगीत की ओर इनकी विशेष अभिरुचि है 'स्वर ब्रह्म विभूपिताम्' (भा० १।६।३३) श्लोक की व्याख्या मे 'भैरव-पचम-नाट, मल्लार-गौडमाल आदि ६ भाग एव उनमे वङ्गपाल, गुणकरी, मध्यमादि वसतक धन्याश्री पाचराग भैरव के लिखे हैं। इस प्रकार प्रत्येक के भेद का निरूपण किया गया है।

टीका मे विशेषत' गौडीय वैष्णवाचार्यो की पद्धति का अनुसरण किया गया है। दशमस्कन्ध मे कस प्रेरित पूतना तृणावर्त शकटासुर आदि मे तत्तदर्थ-प्रतिपादिका श्रुतियाँ भी उद्धृत की हैं। अध्याय १४ से ६० पर्यन्त श्रीधर स्वामि के अभिप्राय का विशेष वर्णन है। वैष्णव तोपिणी, सारार्थदर्शिनी आदि टीका जहाँ अवस्थित की हैं वहाँ पुष्प गुच्छ सा चिन्ह दे दिया गया हैं। श्रीधर स्वामी ने ६४ कलाओ के नाम लिखे हैं, बशीधर ने उनके उदाहरण तथा भेद भी लिख दिये है।

वेदस्तुति की व्याख्या पाँच प्रकार से की है। इसमे नीलकण्ठाचार्य की टीका भी लिखी है। ८८ वें अध्याय से ६० अध्याय पर्यन्त ३ अध्यायो के दो अर्थ किये है। एकादश स्कन्ध मे श्रीधर की उक्ति ही कही गई है। प्रत्येक स्कन्ध के अन्त मे उस स्कन्ध का माहात्म्य भी लिखा है। इस प्रकार प्रत्येक स्कन्ध का माहात्म्य भी अन्य किसी टीका मे नही लिखा गया है। इस टीका की जितनी प्रशसा की जाय कम है। साथ ही इसका भूमिका भाग भागवत तत्व जिज्ञासुओ को सर्वदामननीय है। प्रारम्भ मे—भागवत की 'कर्मकाण्ड से श्रेष्ठता' शीर्षक में मीमासा का निचोड रख दिया गया है। उपासना काण्ड से श्रेष्ठता दिखलाते हुए शाण्डिल्यादि भक्ति सूत्रो की विवेचना का है। शिव, भैरव देवी, कार्तिकेय, गणपति आदि सभी तो भारत के पूज्य देवगण है और इनके पूजन विधान के सम्बन्ध मे अनेक शास्त्रीय प्रमाण हैं इनके उपासको के दृष्टिकोण और अन्त मे एकेश्वरवाद की सिद्धि पठन योग्य सामग्री है।

---

१. 'तथा च षष्टि वर्षोऽपि वयस्यस्तरुणो युवा इत्युक्तेर्बुधैः' (वही १।४।११)

ज्ञान काण्ड से श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए ज्ञान के भेद तथा व्यावहारिक-प्रातिभासिक-पारमार्थिक सत्ता और उनकी आवश्यकता पर विचार किया है। वेद काण्डत्रयात्मक है तथा भागवत वेद का उपबृंहक है अत यह तीनो काण्डो से श्रेष्ठ है। टीकाकार ने—देवी भागवत एव श्रीमद्भागवत मे महापुराण कौन है, इस विषय पर शङ्का की है एव समाधान मे दोनो का प्राधान्य स्वीकार किया है। इस स्थल पर ये सम्प्रदायवाद की परिधि का नि सकोच भाव से उल्लघन करते देखे जा सकते हैं—

'अस्माक त्वेव भाति श्रीमद्भागवत देवीभागवत इत्युभयमपि महापुराणान्तर्गत सर्गविसर्गादि दश लक्षणलक्षितत्वात् शुक प्रोक्तत्वादि बहु लक्षणसमन्वयाच्च ... तथा कल्पभेदेन व्यवस्था ग्राह्या।'

(भा० दी० प्र० भूमिका)

अध्याय विवाद पर विचार करते हुए टीकाकार ने ३३५ अध्याय प्रामाणिक स्वीकार किये हैं। 'ब्रह्मसूत्र एव श्रीमद्भागवत' शीर्षक दोनो मे प्रतीत वाले विरुद्ध धर्म का स्पष्टीकरण किया है। क्योकि ब्रह्म सूत्र मे कपिल मत का खण्डन है—'तेपाचानुपलब्धे' (ब्रह्मसूत्र) भागवत मे महत्तत्व अहङ्कार राजस इन्द्रियो का स्पष्ट उल्लेख है। अत विरोध है किन्तु प्रधानाश मे कोई विरोध नही है। दोनो मे ही 'जन्माद्यस्ययत' का वर्णन है। ब्रह्मसूत्र मे आकाशादि क्रम से सृष्टि का वर्णन प्राप्त होता है। भागवत मे महत्तत्वादि क्रम का उल्लेख है। सृष्टियादि मे अर्थवाद मे आदराभाव है। भागवत मे वेदान्त साख्य है, कपिल साख्य नही है।

'भागवत और ज्योतिष' शीर्षक मे भागवत मे वर्णित जम्बूद्वीप की भूमि १ लाख योजन है। ज्योतिषशास्त्र मे ५ सहस्र योजन परिमित, इनके विरोध का परिहार टीकाकार ने बडे चातुर्य के साथ किया है। गोलाकार, मण्डलाकार एव हिरण्मयाण्ड की विवेचन शैली बडे ही सुन्दर ढङ्ग से लिखी गई होन के कारण पठनीय है। यह पृथ्वी स्वल्पाकार है किन्तु नक्षत्र पुजो पर दीर्घाकार है। पृथ्वी मे पाच सहस्र योजन की दूरी पर अग्नि का गोला है, इसके उपरितन भाग मे काचनी भूमि है यह 'निर्मला' है। इसका एक भाग अल्प, एक भाग बृहत् है। बाह्याङ्ग चन्द्रादि का भी अल्पत्व इसी से सिद्ध होता है। इनके मतानुसार भूपृष्ठ से आकाश कक्षा पर्यन्त आठ पवन हैं, जल और दोनो के मध्य मे है। पुलिश सिद्धान्त मे भी इसका उल्लेख है—

भू वातोऽह्ययोर्मध्ये जलगोलोऽग्निवायवत्

दृश्यन्ते येन संलग्नाः भिन्नाः सूर्यादि रश्मयः ।।

खगोल परिहार—शीर्षक मे इन्होंने लिखा है कि अन्तरिक्ष का कोई माप नही है। बिम्ब स्वरूप से सवा लक्ष योजन की दूरी पर है, ६ कोटि ६८ लाख का इसमें अन्तर है। इस प्रकार टीकाकार ने भागवत के सम्बन्ध मे किये जाने वाले अनेक विशिष्ट स्थलो पर बडी विद्वत्तापूर्वक विचार किया है, जिनसे इस टीका का महत्व और भी अधिक बढ गया है।

टीकाकार ने टीका में जिन ग्रन्थो से सहायता ली है, उनमे, चारो वेद कठादिउपनिषद्, अत्रिआदि स्मृति, अठारह पुराण, महाभारत, वाल्मीकि रामायण, कालिदास आदि के काव्य, अमरकोश, विश्वकोश, हैमकोश, यादवकोश, मेदिनी कोश, द्विरूप कोश आदि कोशो के अनेक उद्धरण के साथ श्रीधर, विजयध्वज, जीव गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, वल्लभाचार्य, गिरिधर, रामप्रसाद आदि की टीकाओ के नाम भी लिखे हैं।

भागवत कथा श्रवण पद्धति का निर्माण पौराणिकों के हितचिन्तन की दृष्टि से किया गया है। इस पद्धति मे 'कलियुग मे सप्ताह श्रवण का माहात्म्य', नक्षत्र नामावली, मृगशिर, चित्रा, श्रुतित्रय, स्वाति, अश्विनी, पुष्य आदि[2] का उल्लेख मुहूर्त के लिये किया है। गुरु, सूर्य, चन्द्र, शुक्रवार एव वक्ता तथा श्रोता का श्रेष्ठ चन्द्रबल, पापग्रह, दृष्टि रहित, शीर्षोदय लग्न मे सप्ताहारम्भ किया जाय तथा प्रारम्भमे-ब्रह्मादि देव व नवग्रहपूजन, षोडशमातृका, सप्तमातृका, कलशादि पूजन पूर्वक, नर-नारायण, गुरु, वायु, सरस्वती, शेष, सनत्कुमार, सांख्यायन, पाराशर, बृहस्पति, मैत्रेय एवं उद्धव की पूजा तथा पृथक् पीठ पर नारद की स्थापनाविधि लिखी है—व्यासपीठ, पुस्तक एव वक्ता की यथोपलब्ध

---

१. सप्ताहं राजसं प्रोक्तं शोभितद्वह्‌ पूजनैः
मासतु नाधाविशाहैरेकाद्यैः सात्विकं शुभम् ।।
समस्तानन्द हेतुत्वादधतामस मुच्यते
धर्षणतामसं प्रोक्तभालस्यात्स्मृतिरोधकृत् ।।
निर्गुणं तु यथेच्छं स्यात् कलौ सप्ताहकं परम् ।। (वही भूमिका)

२. धर्म क्रिया मित्र मृगास्य चित्रा
श्रुति त्रये स्वात्यदितौ कराश्वे
पुष्येच सौम्येषु दिनेषु शस्ते
स्याद्मुहूर्तागम कोविदेन्द्राः ।। (वही)

सामग्री द्वारा पूजा, गाथा की निर्विघ्न समाप्ति के लिये, गणेशस्तव, गायत्री एव द्वादशाक्षर जाप के लिये ब्राह्मणो का वरण कलशपर सुवर्ण की मूर्ति और उसकी पचामृतादि स्नानपूर्वक पूजा की विधि लिखी है। श्रोता के श्रवण नियम एव उनके बैठने के स्थान भी लिखे हैं। प्रथम पक्ति मे सन्यासी, द्वितीय मे वानप्रस्थ, तृतीय चतुर्थ मे ब्रह्मचारी, पचम मे ब्राह्मण, षष्ठ मे क्षत्रिय वैश्य, सप्तम मे शूद्र बैठाये जाय। वक्ता के वाम भाग मे स्त्री वर्ग बैठे अन्य समागत श्रोता दक्षिण भाग मे बैठें।

प्रति स्कन्ध पर गध पुष्पादि से पूजन तथा विराम पर द्वादशवर्ति द्वारा नीराजन एव प्रसाद वितरण की विधि शास्त्रीय प्रमाणो के उद्धरण पूर्वक लिखी गई है।

सप्ताहक्रम—भागवत मे सप्ताह का उल्लेख अवश्य है किन्तु प्रत्येक दिवस के विश्राम का कोई सकेत नही दिया है, सर्वप्रथम वशीधर का ध्यान इस ओर भी गया और उन्होने इसकी शास्त्रीय विधि ढूँढ निकाली, क्रम इस प्रकार है—

मनु कर्दम सम्वाद पर्यन्तं प्रथमेऽहनि
भारताख्यान पर्यन्त द्वितीयेऽहनि वाचयेत्।
तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्ध पूरणम्
कृष्णाविर्भाव पर्यन्त चतुर्थे दिवसे वदेत्॥
रुक्मिणयुद्वाह पर्यन्त पचमेऽहनि शस्यते
श्री हसाख्यान पर्यन्त षष्टेऽहनि प्रवदेत्सुधी।
सप्तमे तु दिने कुर्यात्पूर्तिर्भागवतस्य वै
एव निर्विघ्नता सिद्धिविपर्यय इतोऽन्यथा॥

सप्तम दिवस—द्वादशस्कन्ध पर्यन्त[1]

उपर्युक्त कतिपय विशेषताओ के कारण भागवत वक्ताओ द्वारा जो महत्ता इस टीका को दी जाती है वह किसी भी टीका को नही। सप्ताह वाचको के लिये अनेकानिक भावार्थ के लिए वशीधर की इस भा०दी० टीका की विद्वानो ने भूरि-भूरि प्रशसा की है। टीकाकार ने टीका की विशेषता मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति व्यय की है। इस प्रकार की यह एकमात्र टीका कही जा सकती है।

४. गंगासहाय

(क) परिचय—भारतवर्ष की भूमि मे अध्यात्म तत्व इतना घुल मिल गया है जिसे पृथक् करना अत्यन्त दुरूह है, फलत अनेक मेधावी विद्वान् यहाँ जन्म ग्रहण कर तपश्चर्या मे ही जीवन व्यतीत करना उचित समझते थे। प्रसिद्ध गङ्गासहाय जरठ नामक विद्वान् ने अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण भारती की सेवा मे ही व्यतीत किये थे। गङ्गासहाय पाटण नामक स्थान के निवासी थे। यह स्थान पाडुवशीय तोमर अनङ्गपाल के वशज मुकुन्दसिंह के शासन मे था।[2] इनके पिता रामधन थे, एव इन्ही के चरणो मे बैठकर टीकाकार ने समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया था—

एता स्व पूर्ण वसति ममतात पादा
ख्याता व्ययुर्जगति राम धनाभिधाना ॥ (अ० प्र० उप०)

इन्हे मातृ वात्सल्य से शीघ्र ही वचित होना पडा था, माता लक्ष्मी नाम और कर्म दोनो से अन्वर्थ थी, जैसा कि स्वय टीकाकार ने लिखा है—

---

१ व्रजस्थ विद्वान् प० बन्ना जो निम्नलिखित क्रम को ही अधिक महत्व देते हैं—
हिरण्याक्ष वध यावत् प्रथमेऽन्हि प्रकीर्तयेत्
चरित भरतस्यापि द्वितीयेऽथतृतीयके
समुद्र मथन यावद्यत्र कूर्मः स्वय हरिः
चतुर्थे दशमे कृष्ण जन्मयावत्प्रकीर्तितम्
पंचमेऽन्हि पठेद्विद्वान् रुक्मिण्याहरणावधि
षष्ठे चौद्धव सवादं सप्तमेऽन्हि समापयेत्। (संग्रह से प्राप्त)

२ श्रीपाण्डु वंश भव तोमर गोत्र इन्द्र,
प्रस्येश्वरोऽभवदिलाभुदनंगपालः।......... ....
स्थानं पुरी जयति सम्प्रति पाटणाख्या॥ (अन्वितार्थ प्रकाश, उपसहार)

याग्रे सरत्वमयतेस्म दयावतीना
सीमा च याचति परास्म पतिव्रतानाम् ।
मद्वाल्य एव परलोकमुपेयुषीता
लक्ष्याहृवया स्व जननी प्रणमामि भक्त्या ॥ (वही)

इनके अनुज का नाम चेतराम तथा सपत्न भ्राता विष्णुदत्त तथा हरिवल्लभ थे। इनके पुत्र का नाम रामप्रताप था। इन्होंने भागवत का अध्ययन अपने पिता से किया था—

ज्येष्ठ सुतो जडतमोऽप्यहमाशिपातो
राज्ञापितोऽजनिपिभागवतेऽनुरक्त ।
अध्यापितश्चशनकैं विपुलश्रमेण
प्राप सतापरमनुग्रह भाजनत्वम् ॥ (वही उपोद्घात)

अन्य शास्त्रो का अध्ययन मेलाराम, हरिनारायण, गोविन्द राम, गोपी नाथ प्रभृति विद्वानो से किया था। इनके प्रधान शिष्यो मे—ससारचन्द, पद्म चन्द्र प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

मुनिहारनाथ, पूर्णदेव नृपति एव उनके पुत्र श्रीकृष्ण सिंह नृपति इनके परम स्नेही थे। गङ्गा सहाय ने इनके प्रति टीका मे कृतज्ञता प्रकाशित की है। कुछ दिवस बाघल मण्डलाधिपति के समीप भी इन्होंने व्यतीत किये थे। गणेश पुरी यतीन्द्र इन्हे बूँदी नामक स्थान मे ले गये थे। उन दिनों सूर्य मल्ल नामक कवि वहाँ का राज्य कवि था। नृपति रामसिंह से सूर्यमल्ल ने गङ्गासहाय की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। रामसिंह ने अपनी सभा मे इन्हे सम्मानपूर्वक स्थान दिया। पाँच वर्ष के कार्यकाल से सन्तुष्ट होकर रामसिंह ने इन्हे प्राच्यपरम्परानुसार अमात्य पद प्रदान किया था। दस वर्ष पर्यन्त अमात्य पद पर सेवा की एव अपनी वृद्धावस्था समीप देखकर उस पद से निवृत्त हो गये। रामसिंह एव उनके पुत्र रघुवीरसिंह ने इनका पर्याप्त सम्मान किया था—

श्रीरामसिंह इति वुन्दि नृपेषु रत्न-
मासीदसौ जयति यस्य कीर्ति मूर्ति । (वही)

(ख) सम्प्रदाय—इनके सम्प्रदाय के बारे मे कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्राय सभी देवताओ की स्तुति प्राप्त है, तथापि श्रीकृष्ण के सुन्दर पद्यों के आधार पर इन्हें भक्तवर वैष्णव तो माना ही जाता है तथापि विशेष सम्प्रदायाचार्य का उल्लेख न मिलने के कारण एव युगलोपासक होने के कारण इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय टीकाकारों में रख दिया है।

(ग) स्थितिकाल—इनके समय के बारे में अधिक विसम्वाद नही है, क्योकि अपनी टीका रचने की अवस्था एवं उसका सम्वत् इन्होंने स्पष्ट लिख दिया है, अन्वितार्थ प्रकाशिका टीका सम्वत् १६५५ मे रची गई थी, जैसा कि उपोद्घात पृष्ठ ३६ से स्पष्ट है--

'द्वीप्वङ्क भू प्रमित विक्रम वत्सरस्य
माघेऽभवद्धवल पक्ष उपक्रमोऽस्या.
पचेपु गोधरणि (१६५५) वत्सर कृष्णजन्मा—
ष्टम्या मुकुन्द कृपया परिपूर्ति रासीत् ॥

यह टीका ६० वर्ष की अवस्था पूर्ण होने के उपरान्त रची गई थी। 'षष्टिः समा कुचरितैर्गमितावृथैव'[1] अतः १६५२ मे ६० वर्ष घटित करने पर १८६२ विक्रम इनका जन्म सम्वत् बैठता है। इसके उपरान्त इन्होंने पर्यङ्क निवृति की रचना की होगी पर वह प्राप्त नही। सम्भव है वे सङ्कल्प मात्र करके ही रह गये हो और वह न लिखी गई हो।

(घ) कृतियाँ—(१) शत्रु शल्य टीका (२) केन-कठ-व्याख्या (३) हैम कोश (४) अन्वितार्थ प्रकाशिका-भागवत टीका (५) पर्यङ्क टीका।

'पर्यङ्क टीका' का उल्लेख भागवत टीका मे कई स्थानो पर प्राप्त होता है। भागवत टीका मे अनेक बाते वे नही लिख सके थे, उन्हे इस 'पर्यङ्क टीका' मे रखने का विचार था—

व्याख्यायि भागवतमन्वय वर्त्मनेद
वक्ष्ये पुनः स्फुट तदशय बोधनाय।
नानामतानि विपयाश्च समासतोऽग्रे
पर्यङ्क नाम्नि विवृतेरवशेप भागे ॥ (वही उपदो०)

(ङ) टीका वैशिष्टय-नाम--इस टीका का नाम अन्वितार्थ प्रकाशिका है।[2] भागवत के मूल श्लोको का अन्वय पूर्वक अर्थ लिखने के कारण ही इसका यह नामकरण किया गया है। गङ्गासहाय ने अनेक टीकाओ का अवलोकन किया किन्तु एक भी ऐसी टीका नही थी जिसके आधार पर भागवत का

१. वही, श्लोक १०।

२ ....इयमन्वितार्थप्रकाशिका नाम्नी टीका निर्मिता श्रीहरेश्चरण-योरर्पिता चेति। (अन्वितार्थ प्रकाशिका-उपोद्घात)

मूलार्थ भली भांति बुद्धिगम्य हो सके, गङ्गासहाय ने इस कमी को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया और वे इसमे सर्वथा सफल हुए।

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण भागवत पर लिखी गई है।

उद्देश्य—श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकारो की टीका के समक्ष इसका क्या महत्व है, इसका टीकाकार ने उत्तर दिया है—'कि अब तक मूल भागवत का अन्वय टीका के अतिरिक्त अध्ययन के आधार पर लगाया जाता था, जिसमे विद्वानो को भी अत्यन्त श्रम पडता था तथा वे भी अनिश्चित रहते थे।' इस अभाव की पूर्ति गङ्गासहाय ने की। यह टीका न तो अत्यन्त स्वल्प आकार मे है न अत्यन्त बृहत्। भागवतोपयोगी विषयो को इसमे सजो कर रखा गया है। साथ ही पूर्व टीकाओ की सारोक्तियो को भिक्षा के रूप मे ग्रहण कर लिखा है।[1]

प्रकाशन—यह टीका गङ्गा विष्णु के लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई म मुद्रित हुई थी। प्रथम बार गङ्गा विष्णु ने ही अपने व्यय से इसे प्रकाशित किया था—

'टीकामिमा निज धनव्ययतोऽखिलेषु

+ +

विष्णुर्मुकुन्द कृपयाऽचतुमङ्गलानि।' (उपोद्घात)

पण्डित पुस्तकालय काशी से १९६६ ई० मे इसकी द्वितीयावृत्ति हुई है। यह मूलानुसारिणी टीका है—

गङ्गासहाय जरठोऽह्वमपास्त धर्मा—
घारोऽप्यशेष वयसि व्यथितो रुजाभि
ऋज्वीभिरन्वित पदाभिरनायताभि—
र्याभि पर शरण यामि पुराणराजम्॥ (उपोद्घात १२)

---

१. ननु पूर्वं कृतासु बह्वीषु श्रीमद्भागवत टीकासु सतीषु किं तव टीकया बोध्यमानासु तरणि श्रेणिपुपपोत पोतिकपर्वेनि वैरगम्यम्। मया हि अन्वय क्रमेण प्राय सर्व श्लोकार्थं प्रदर्शिता नाति विस्तरा भागवतोपयोगि बहुविषय युक्ता अति सुगमा च टीका स्वबोधनायैवापेक्षिता .. .. तादृशीमप्यां टीकामसम्भवानेन प्राय पूर्व टीकाभ्य किंचित् किंचिद्भिक्षित्वा ईषमस्मिनार्थं प्रकाशिका नाम्नी टीका निर्मिता।

(उपोद्घात)

प्राचीनाचार्यों की उक्तिया सादर ग्रहण की हैं उन्हे कोई चौर्य न समझे—

प्राचा सुवर्ण रचना परिगृह्य भिक्षा
भक्त्या तयाचित वत परमेशितारम्
क्षीणस्य विप्लुत मतेर्जरठस्य विज्ञा—
श्चौर्यं न कल्पयत याचनमार्गणाभे ॥ (उपोद्घात १४)

इस उक्ति से इनकी निश्छलता, विनम्रता आदि गुणो का आभास प्राप्त होता है ।

शैली—(१) इस टीका मे समस्त श्लोको की व्याख्या है केवल वही श्लोक इस टीका मे व्याख्या रूप मे नही है जिनमे नाममात्र गणना है या जो अत्यन्त सरल है ।

(२) मल्लिनाथ आदि प्राचीन टीकाकारो की भाति इसमे पिण्डान्वय हैं खण्डान्वय नही ।

(३) टीका मे से मूल पद पृथक् करके पृथक् अन्वय की भी सुविधा है ।

(४) विशेष्य सर्वदा विशेषण के उपरान्त रखा गया है ।

(५) उद्देश्य विधेय तथा यत्-तत् का पूर्ण ध्यान रखा गया है ।

(६) उपमा विषय म प्राय एव वाक्य ही रखा है, उसमें स्पष्ट व्याख्यान के लिये उपमानार्थ कही पृथक् कही एकत्र वाक्य मे ही रखा है ।

(७) कठिन श्लोको का अन्वय कही पृथक् भी लिख दिया है ।

(८) गूढ पदों का अर्थ विशद करने के लिए श्रीधरी टीका का अवलम्बन लिया है—

ये गूढतामुपगता यतनैय सूर्या—
लोकेप्यमागिपन भागवतस्य भावा
येस्तेप्यदर्शित दीपिरयेवने मे
श्री श्रीधरा अश्मने परमोज्वलम्ब ॥ (उपोद्घात)

(९) पद्यमग्रन्थ का गद्य अन्वय मुग्र ही लिखा गया है, अत कही मूल पद त्याग दिये हैं ।

(१०) कदाचित् श्रीधर से अतिरिक्त मतान्तर मे भी अर्थ लिखे है ।

(११) भाह के आगे सूत्रकार का योजन करने के लिये 'सम' शब्द का उल्लेख किया है ।

(१२) 'वै' इत्यादिकपादपूरणार्थ अव्ययो का प्राय परित्याग किया गया है।

जहा एकत्र अर्थ मे अन्वित बहुत से पदार्थ समुच्चित हैं तहा प्राय: प्रथम शब्द के आगे आदि शब्द का उल्लेख है। आगे जो व्याख्येय हैं उनका ही उल्लेख है, सबका नही। यथा–

'ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महोजस '

यहाँ 'ऋष्यादय ' ही लिखा है, मनुदेव तथा मनुष्यो का उल्लेख नही है।

'चक्र शङ्खासि चर्मेषु धनु शूलगदाधर ' इत्यादि स्थलो मे चक्रादि अष्टायुधधर इतना ही उल्लेख है।

छन्दो-वैशिष्ट्य—इस टीका का यह अपना निजी वैशिष्ट्य है। इस टीका मे ही प्रथम बार भागवत के मूल श्लोक जिन छन्दो मे रचे गये हैं उनका विचार किया है तथा छन्द शास्त्र के लक्षणो से उन्हे घटित करके भी दिखलाया है।

यद्यपि भागवत मे अनुष्टुप श्लोक हैं तथापि इन्द्र वज्रा उपेन्द्र वज्रा-वंशस्थ इन्द्रवंशा, उपजाति, वसन्त तिलका आदि विभिन्न छन्द भी प्राप्त हैं। श्रीमद्भागवत मे विषम छन्द नही हैं।

छन्द तालिका

पथ्यावक्त्र	—	नैमिषेऽनिमिष क्षेत्रे	(१।१।४)
इन्द्र वज्रा	—	तन्न परमपुण्यमसवृतार्थम्	(१।१८।१७)
उपेन्द्र वज्रा	—	सर्वमवाग्वेदगमस्त गुह्यम्	(१।५।६)
वंशस्थ	—	नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मन:	(१।४।११)
इन्द्रवंशा	—	नामान्यनन्तस्यहतत्रप: पठन्	(१।६।२७)
उपजाति	—	स वा इद विश्वममोघ लील	(१।३।३६)
वसन्त तिलका	—	यम्प्रव्रजन्तमनुपेत मपेतकृत्य	(१।१।२)
प्रमाणिका	—	हरे त्वाम्भिरञ्जयम्	(७।८।५१)
शालिनी	—	एष राजाविदुरेणानुजेन	(१।१३।२८)
वातोर्मी	—	इष्ट भिन्नोद्भिरगद्गदेभ्यम्	(४।७।३७)
स्वागता	—	वाम बाहु कृतवामकपोलो	(१०।३५।२)

द्रुतविलम्बित	—	निगम कल्पतरोर्गलितफलम्	(१।१।३)
भुजङ्ग प्रयातम्	—	अयत्वत्कथा मृष्टपायूष नद्या	(४।७।३५)
स्रग्विणी	—	स्वागतन्ते प्रसीदेशतुभ्य नम	(४।७।३६)
रुचिरा	—	पिवन्ति ये भगवत आत्मन सताम्	(२।२।३७)
प्रहर्षिणी	—	यज्ञोयतवयजनाय केनसृष्ट	(४।७।३३)
मजुभाषिणी	—	जगदुद्भवस्थितिलयेषुदैवत	(४।७।३६)
मत्तमयूर	—	अशाशास्ते देवमरीच्यादय एते	(४।७।४३)
मालिनी	—	तव वरद वराध्रावाशिषेहा खिलार्थं	(४।७।२६)
मन्दाक्रान्ता	—	उत्पत्यध्वन्यशरणउरुक्लेश-दुर्गान्तकोग्र	(४।७।२८)
शिखरिणी	—	पुराकल्पापायेस्वकृत मुदरी कृत्यविकृतम्	(४।७।४२)
नर्कुटकम्	—	जय जय जह्यजामजितदोष-गृभीत गुणा	(१०।८७।१४)
शार्दूल विक्रीडित	—	जन्माद्यस्ययथोऽवया	(१।१।१)
स्रग्धरा अर्द्धसमछद	—	गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो	(६।१०।४)
वैतालीय	—	प्रियराःवपदानिभाषसे	(१०।६०।२१)
औपछन्दसिक	—	हृदमप्यच्युत विश्वभावनम्	(४।७।३२)
पुष्पिताग्रा	—	इतिमतिरूपकल्पितावितृष्णा	(१।६।३२)
आर्या	—	अजितजित सममतिभि (टीकाकार का कथन है कि उक्त श्लोक मे छन्दोलक्षण सर्वात्मना घटित नहीं है पर आर्षत्वात् साधु माना जाता है।)	(६।१६।३४)

अपाणिनीय प्रयोग—पुराण वेद की कोटि मे कि वा पचम वेद के नाम से विख्यात हैं। उनमे आर्ष धर्म के साथ साथ आर्ष पद, वाक्य आदि भी प्रचुर मात्रा मे आयें यह स्वाभाविक है। श्रीमद्भागवत मे अनेक पद पाणिनीय व्याकरण की परिधि म नही समा सकते। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' परिभाषा पूर्णरूपेण घटित है। अनेक स्थलो पर बहुल छन्दसि का आधार लिया जाता है।

नित्यदा मे दाप्रत्यय, विभागश मे शस् प्रत्यय, द्वादशमम् मे सख्या होने भी मट् प्रत्यय इसके उदाहरण है । श्रीमद्भागवत मे उपग्रह नामक—परस्मैपद पर आत्मने पद का व्यत्यय अधिक सख्या मे है । यथा 'धीमहि' मे परस्मैपद का व्यत्यय है । 'सात्वता पतयेनम' षष्ठयत से युक्त पति शब्द विकल्प से 'घि' सज्ञक हो जाता है । अत पतये बन जाता है ।

इनमे कतिपय प्रयोग जो 'आर्ष' कहकर टीकाकारो ने छोड दिये हैं वे—'समासान्तो विधिरनित्य' तथा 'आगम शास्त्रमनित्यम्' आदि से सिद्ध हो जाते हैं । शेष प्रयोग पाणिनीय वैदिक प्रक्रिया के आधार पर सिद्ध किये जा सकते हैं । ऐसे प्रयोग प्रसिद्ध काव्यादिको मे प्रयुक्त नही किये गये और न सीधे व्याकरण के नियम ही उनमे परिलक्षित होते है, अत आर्ष के नाम से लिखे जाते हैं ।

—*—

अध्याय षष्ठ

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१ वल्लभाचार्य
२ विट्ठलनाथ
३ पुरुषोत्तम
४ गिरधरलाल
५ किशोरीप्रसाद

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के टीकाकार

१. वल्लभाचार्य

(क) परिचय—भागवत के टीकाकारो मे वल्लभाचार्य का नाम सर्वोपरि कहा जा सकता है। वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, अत जगद्गुरु के पद पर इन्हे आसीन किया गया। 'कांकरौली का इतिहास'[1] ग्रन्थ एक प्रामाणिक ग्रन्थ है, इसके अनुसार वल्लभाचार्य का परिचय यहाँ दिया जा रहा है—

श्रीमद्वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मण भट्ट जी 'कांकरवाड' नामक ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम तैलङ्ग देश मे गोदावरी नदी के किनारे स्थित है। ये भारद्वाज गोत्री तैलङ्ग ब्राह्मण थे। तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से काशी मे आकर बस गये थे। काशी मे निवास करते हुए एक दिन लक्ष्मण भट्ट ने सुना कि—काशी पर यवन सेना का आक्रमण होने वाला है। अत वे भागने की चिन्ता मे व्यस्त हो गये।

तत्कालीन इतिहास स ज्ञात होता है कि उस समय दिल्ली मे बहलोल लोदी नामक बादशाह राज्य कर रहा था। काशी उस समय 'दशनामी' साधुओ का दृढ गढ़ था, अत उन्होने यवनो से मोर्चा लेने का सङ्कल्प कर लिया था। सेना के आजाने पर नगर निवासियो को काशी को त्याग कर भाग जाना पडा। मार्ग की अनेक आपत्तियो का सामना करते हुए लक्ष्मण भट्ट तथा उनके साथी स० १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन सायकाल के समय रायपुर (मध्यप्रदेश) जिला के चम्पारण्य नामक जङ्गल मे से होकर जाने लगे। उपद्रव की आशङ्का तथा मार्ग के कष्टो के कारण गर्भवती इलम्मा गारू के उदर म पीडा होने लगी। एक एक विशाल वृक्ष के नीचे उनके अष्टम मासिक गर्भ स एक बालक उत्पन्न हुआ। घोर अन्धकार मे शिशु को मृतवत् जानकर पत्तो के ढेर से उसे आच्छादित कर बडे कष्ट के साथ वे अपन साथियों से

---

1. कांकरौली का इतिहास—ले० कण्ठमणि शास्त्री, प्र० सा० विद्या विभाग कांकरौली, सम्वत् १९९६ द्वितीय भाग। यह इतिहास ग्रन्थ श्री १००८ गोस्वामी ब्रजभूषणलाल जी महाराज कांकरौली की अध्यक्षता में लिखा गया है। गोस्वामी श्री आचार्य वल्लभ के वंशज हैं।

चौडा नगर मे जा मिले । भोजनादि के उपरान्त काशी मे शान्ति का समाचार मिला, उसे सुनते ही एक समुदाय काशी व द्वितीय दक्षिण की ओर चल दिया ।

श्री लक्ष्मण भट्ट भी काशी की ओर चल दिये एव गतरात्रि से स्थल पर अपने बालक को देखने की लालसा से वे वहाँ शीघ्र पहुँच गये । उस स्थान पर एक अतिशय सुकुमार तेजस्वी बालक को देखा जो अपने अगुष्ठ को मुख में रखकर चूस रहा था । वृक्ष के अधस्तन भाग को छोडकर चारो ओर रात्रि को लगी हुई दावाग्नि से सभी व्यक्तियो को बडा विस्मय हुआ । प्रेम से उन्होने बालक को उठाकर छाती से लगाया ।[1] बालक की शारीरिक चेष्टा तथा सामुद्रिक चिन्ह के द्वारा लक्ष्मण भट्ट को निश्चय हो चुका था कि यह बालक अवश्य होनहार पुरुष है । वे पुन चौडा नगर वापिस आये और यहाँ जातकर्म सस्कार किया ।

संस्कार और शिक्षा—नामकरण सस्कार मे पिता ने सर्वप्रिय होने के कारण बालक का नाम श्री वल्लभ रखा । कुछ दिवस उपरान्त लक्ष्मण भट्ट काशी मे आ गये एव कृष्णदास द्वारा व्यवस्थित उसी पुराने मकान मे निवास करने लगे । चार पाच वर्ष की वय होने पर वल्लभ का अक्षरारम्भ किया गया । वल्लभ ने कुछ ही वर्षों मे अपना प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर लिया । धीरे-धीरे सस्कृत साहित्य का अच्छा ज्ञान इन्हें हो गया था । पडित इनकी बुद्धि से प्रभावित होते और इन्हे बाल-सरस्वती, वाक्पति, वैश्वानरावतार आदि विशेषणो से सम्बोधित करते थे ।

उपनयन—लक्ष्मण भट्ट ने इनका वैदिक सस्कार करना चाहा तथा सम्वत् १५४३ चैत्र शुक्ल नवमी के दिन वल्लभाचार्य का उपनयन सस्कार किया गया ।[2] वल्लभ ने ग्यारह वर्ष की अवस्था मे ही अपनी कुशाग्र बुद्धि के

---

१ वल्लभाचार्य चरित-पत्र ७-मे प्रसिद्धि का नाम, दैवनाम—कृष्णप्रसाद मास नाम—जनार्दन नक्षत्र नाम—श्राविष्ट, लिखा है ।

२ (क) वल्लभ नामावली 'तदीय सर्वस्व' मे ५ वर्ष की अवस्था मे यज्ञोपवीत होने का उल्लेख है ।

(ख) सम्प्रदाय प्रदीप तथा सम्प्रदाय कल्पद्रुम मे आठवीं वर्ष मे यज्ञोपवीत होना लिखा है ।

दोहा—पंच मुहूरत श्रेष्ठ जब श्रीलक्ष्मण द्विजराय ।
किय उपनयन जु वेद विधि ज्ञातिमध्य हरषाय ॥
अब्द नैन-फल-तत्व भू (१५४२) रामजन्म तिथि पाय ।
कृष्णदास सेवक भयेहु तिहि क्षण भूपति आय ॥
अष्टम वर्ष अषाढ़ सित दूज पुष्य गुरुवार ।
पढ़न गये गुरु गेह को पितु आयसु उर धार ॥

बल से वेद, वेदान्त, षट् शास्त्र और आवश्यक पुराणो का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वल्लभ ने लक्ष्मण भट्ट से वेदाध्ययन, तिरुमल से अगाध्ययन, नारायण दीक्षित से व्याकरणादि का अध्ययन, माधवेन्द्र मुनि से मीमासा का अध्ययन एव सन्यास दीक्षा ग्रहण की थी। वल्लभ की ११-१२ वर्ष की अवस्था मे ही लक्ष्मण भट्ट दिवगत हो गये। यह वियोग वल्लभ को वेंकटाद्रि नगर मे वैशाख कृष्ण नवमी स० १५४६ मे प्राप्त हुआ।[1]

प्रख्याति—विद्याध्ययन के पश्चात् वल्लभ काशी की सभाओ मे विद्वानों से शास्त्रार्थ करने लगे थे। वे शास्त्रार्थ मे शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त स्थापित करते थे। १५४५ सम्वत् मे वल्लभाचार्य ने जगदीश पुरी के शास्त्रार्थ मे भाग लिया था। मायावादी पडितो से पराजित विद्वान् एकत्रित होकर वल्लभ के समीप आये और शास्त्रार्थ के लिय वल्लभ को उत्सुक देखकर वहा के राजा की अनुमति ग्रहण कर शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया। वैदिक सिद्धान्त पर शास्त्रार्थ हुआ और उसमे वल्लभ की विजय हुई। अन्त में राजा ने चार प्रश्न पूछे जो इस प्रकार थे—

१ मुख्य और प्रामाणिक शास्त्र कौन है ?
२ मुख्य और प्रामाणिक देव कौन है ?
३ कौन सा मन्त्र फलदायक है ?
४ सबसे सफल और उत्तम कर्म क्या है ?

इस पर वल्लभ ने भक्तिमार्ग के अनुसार उत्तर दिया जिसे मायावादियो ने स्वीकार नही किया एव जगदीश की अनुमति पर निर्णय किये जाने की घोषणा की। खाली कागज कलम और स्याही जगदीश के मन्दिर मे रख कर थोडी देर बाद पट खोले गये, कागज पर एक श्लोक लिखा मिला।

एक शास्त्र देवकी पुत्र गीत
एको देवो देवकी पुत्र एव
मन्त्रोऽप्येक स्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येक तस्य देवस्य सेवा ॥

इस पर विश्वास न करने पर पुन जगदीश के मन्दिर मे कागज रखा गया और इस बार यह श्लोक लिखा मिला—

---

१ (क) वल्लभ पत्रिका-मथुरा अंक, प्रथम मे मृत्यु स० १५४० लिखा है।
(ख) भागवत गुजराती भाषा-भूमिका, पृष्ठ ३० मे स० १५४८ मे थासाजी नामक स्थान मे पितृवियोग माना है।

य पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् ।
य पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यजोद्‌भवम् ॥

इसे पढकर राजा के क्रोध की सीमा न रही, उसने वादी पडित को तिरस्कृत कर वाहर निकलवा दिया एव वल्लभ को विजय माला पहनाकर भेंट चढाई ।[1] वल्लभ ने समस्त भारत का परिभ्रमण किया । अवन्ती मे नरोत्तम नामक विद्वान् को अपना पुरोहित बनाया तथा सादीपनी आश्रम मे ब्राह्मणो से शास्त्रार्थ किया । इसके पश्चात् 'घटसरस्वती' नामक तान्त्रिक विद्वान् से शास्त्रार्थ किया । यह विद्वान् शास्त्रार्थ के मध्य मे एक घट रखा करता था एव अपने पक्ष की पुष्टि उसके द्वारा यह करवा लिया करता था । १५४७ स० मे ओरछा म वल्लभाचार्य का इससे शास्त्रार्थ हुआ तथा वह पराजित हो गया । यहा वल्लभाचार्य का कनकाभिषेक सम्पन्न हुआ । प्रताप वश वर्णन मे भी इस घटना का उल्लेख किया गया है ।[2] सम्वत् १५४६ मे वल्लभ ने व्रज मे पदार्पण किया । १५५० श्रावण शुक्ल ११ को अर्द्ध रात्रि मे भगवान ने साक्षात् प्रकट होकर ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा का उपदेश दिया और भक्ति के द्वारा अपनी प्राप्ति का उपाय वतलाया । वल्लभ ने सर्वप्रथम दामोदरदास को आत्मनिवेदन (ब्रह्म सम्वन्ध) की दीक्षा दी थी । वल्लभाचार्य की व्रजयात्रा मे दो घटनाएं उल्लेखनीय हैं—

(१) मथुरा के विश्राम घाट से यन्त्र का हटाना । इस यन्त्र के नीचे

---

१ (क) गोपीनाथ जी का हस्तलिखित पत्र, जगन्नाथपुरी से प्राप्त श्री व्रजभूषण लाल जी महाराज कांकरौली नरेश के पास सुरक्षित ।
(ख) निज वार्ता प्रसग १५ मे राजा का नाम भोजदेव लिखा गया है ।
(ग) सम्प्रदाय कल्पद्रुम में सम्वत नहीं लिखा है—
गगासागर होयकें भुवनेश्वरहिं निहार,
दर्शन कर जगदीश के भूप प्रश्न उरधार ।
उत्तर श्री जगदीश सो लेख कराय दिवाय,
मायावादी द्विजन सों विजय पत्र नृप पाय ॥

२ राम भद्रो यदा राजा राजते वै स्वपत्तने,
तदा श्री वल्लभाचार्य कृपया तु समागत ।
प्रसन्नेन तदा राज्ञा सुवर्णेनाभिषेचित ॥
प्रतापवश वर्णन, पृष्ठ ४६, श्लोक २८-४७ । इस ग्रन्थ मे श्लोक २६ से ३६ पर्यन्त घटसरस्वती के शास्त्रार्थ का वर्णन है ।

से निकलने वाले व्यक्तियों की चोटी हट जाती थी एवं डाढ़ी आ जाती थी। वल्लभ ने दिल्ली दरवाजे पर एक ऐसा यन्त्र लगाया जिसके नीचे निकलने पर चुटिया लग जाती थी। दिल्ली के बादशाह की अनुमति से दोनों स्थानों से यन्त्र हटवा दिये गये।

(२) दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी को जब वल्लभाचार्य की महानुभावता का परिचय मिला, तो उसने 'होनहार' नामक प्रसिद्ध चित्रकार को उनका चित्र बना लाने को गोकुल भेजा। वह जब-जब वल्लभ का चित्र बनाता तब तब पर्याप्त भेद निकलता। अन्त में जब वह वल्लभ के चरणों में गिर पड़ा तब उनके आदेश से वह चित्र बना पाया।[1]

विवाह किया। उनके श्वसुर का नाम मधुमङ्गल, सास का नाम अम्मा, पत्नी का नाम महालक्ष्मी था। वल्लभाचार्य के प्रथम पुत्र गोपीनाथ का प्राकट्य स० १५६८ आश्विन कृष्ण १२ को हुआ। द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ का प्राकटय १५७२ स० पौष कृष्ण ६ को हुआ। गोपीनाथ जी का स० १६२० मे नित्य लीला म प्रवेश हुआ था।

कृष्ण चैतन्य से सम्मिलन—एक बार जगन्नाथपुरी मे चैतन्य महाप्रभु से मिलाप होने पर दोनो आचार्यों मे बडा प्रेमपूर्ण वार्तालाप हुआ। एक दूसरे को भगवद्रूप मानने लगे थे। एक बार चैतन्य महाप्रभु के पधारने पर वल्लभाचार्य ने उन्हे भोजन करवाया था। उल्लेखनीय बात यह थी कि उस समय ठाकुर जी का भोग नही लगा था, बिना भोग की वस्तु वे अपण नही करना चाहते थे किन्तु चैतन्य के हृदय मे भगवान् का निवास मान कर उन्हे अर्पित किया गया। इसका प्रभाव दोना की शिष्य मण्डली पर अच्छा पडा था।

अडैल' नामक ग्राम मे स्थायी निवास बनाकर ये कुछ दिन पश्चात् चरणाट (चुनार) नामक स्थान मे चले गये एव वहाँ से काशी आये। यहाँ वैदिक मत का शास्त्राथ पत्रो मे किया गया था, अत वह पत्रावलम्बन नाम से प्रसिद्ध हुआ। पत्रावलम्बन के उपसहार मे इसका सकेत दिया है—

काशीपति स्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु
कस्यचित्वथ सन्देह समा पृच्छतु सर्वथा ॥
न भग्न तेन् कतव्य ब्राह्मणानामिय गति
डिडिस्तु वादितो द्वारि विश्वेशस्य मयाग्रहि
विद्वद्भि सर्वथा श्राव्य ते हि सन्मार्ग रक्षका ॥

भारतवर्ष मे इनके भागवत पारायण के ८४ स्थान हैं, जो 'बैठक' नाम से प्रसिद्ध हैं। स० १५८७ मे वल्लभाचार्य अडैल से प्रयाग आये और यहा नारायणेंद्र तीर्थस्वामी से सविधि दीक्षा ली। सन्यास लेकर काशी चले आये और वहाँ हनुमान घाट पर निवास करने लगे वहाँ एक मास से अधिक योग किया तथा नित्य लीला पधारने का समय निकट आया जानकर इनके दोना पुत्र तथा कई शिष्य दशनाथ काशी आय और उन्होंने अपन कर्त्तव्य के विषय म उनसे आज्ञा माँगी।

(ख) **सम्प्रदाय** - श्रीमद्वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैत मतवाद के प्रसारक हैं। वैदिक साहित्य से अनुप्राणित भारतीय-धर्म, सदाचार सस्कृति क मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादक अमर भारती मे वाङ्मय विश्व मे तात्त्विक चिन्तनात्मक रूप म 'शुद्धाद्वैत सिद्धान्त' और अनुष्ठानात्मक रूप म भक्ति मार्गान्तगत 'पुष्टि

मार्ग' का सिद्धान्त अपना एक गौरवपूर्ण अधिष्ठान रखता है, जिसमे आसुरी वृत्तियो से वचकर दैवी सम्पत्ति के अनुगामी जीवो को स्व-स्वरूप ज्ञान, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का अववोध और अभ्युदय निश्रेयस के साथ परमानन्दमय स्थिति प्राप्त का प्रतिपादन किया गया है।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादन का यह एक मौखिक युग था, जब श्री वल्लभाचार्य ही उसके एक मात्र प्रतिपादक और अनुगामी थे। वल्लभ के सतत प्रयत्न से वैदिक सिद्धान्त के रूप मे अद्वैत के ऊपर शुद्धाद्वैत का प्रकाश छाने लगा। सर्वशास्त्रो की समन्वय पद्धति ने विद्वत्समाज मे आदर पाया और श्री वल्लभाचार्य इस सिद्धान्त के प्रथम सस्थापक माने जाने लगे। इस शुद्धाद्वैतवाद का निरूपण प्रथम श्री कृष्णदेव की विद्वत् सभा मे हुआ था, वैष्णव सिद्धान्त की विजय वैजयन्ती वल्लभ द्वारा यही फहरायी गयी और कनकाभिषेक के साथ उन्हें जगद्गुरु की उपाधि मिली।[1] यह मतवाद विष्णु स्वामि से सम्बन्धित है। अत वल्लभाचार्य को विष्णु स्वामि सम्प्रदाय का उद्धारक भी कहा जाता है। विष्णु स्वामी की शिष्य परम्परा[2]—

विष्णु स्वामी
|
विल्वमङ्गल
|
श्रीकान्त मिश्र
|
सत्ववोधि पण्डित
|
नरहरि
|
× ×
|
वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य ने उक्त मत मे अपने पुष्टि मत का स्थान पृथक् रखा है जो किसी अन्य सम्प्रदायाचार्य की देन नही अपितु श्रीमद्वल्लभाचार्य की ही मौलिक प्रतिभा की देन है।

(ग) स्थितिकाल—वल्लभाचार्य के जन्म सम्वत् के बारे मे दो मत प्रचलित है। एक के अनुसार इनका जन्म १५२९ विक्रम द्वितीय के अनुसार

---

१ शुद्धाद्वैत पुष्टि सस्कृत वाङ्मय, पृष्ठ २।
२ वल्लभ दिग्विजय द्वितीय अवच्छेद।

(१२) अणु भाष्य— यह वृहद्‌भाष्य का संक्षिप्त रूप है अणु नाम जीव का है, उसे अधिकृत कर बनाये जाने के कारण इसका नाम अणुभाष्य रखा गया था। तृतीयाध्याय के द्वितीय पाद ३४वें सूत्रपर्यन्त की व्याख्या वल्लभाचार्य कर पाये थे[1], शेष भाग या तो उपलब्ध ही नही या रचा ही नहीं गया। अणुभाष्य के अन्त मे वल्लभाचार्य को ग्रन्थ समर्पित किया गया है।[2]

(१३) तत्वदीप निबन्ध तथा प्रकाश टीका—इस निबन्ध ग्रन्थ मे तीन प्रकरण हैं—

शास्त्रार्थ प्रकरण—प्रमाण बल के आधार पर शास्त्रार्थ का विवेचन इसमे किया गया है—'प्रमाण बल माश्रित्य शास्त्रार्थो विनि रूपित' शास्त्र का अर्थ भगवत्स्वरूप है। भागवत शास्त्र लक्ष्य-सर्ग विसर्गादि स्वरूप का साक्षात्कार कराना है। पुराण के लक्षणानुसार भागवत मे सर्ग विसर्गादि दस लीलाओ का वर्णन है। प्रथम स्कन्ध मे अधिकारी तथा द्वितीय स्कन्ध मे साधन तृतीय स्कन्ध मे सर्ग का वर्णन है। सर्ग–भगवान की प्रथम लीला है। विसर्ग–सृष्टि मे जीवो की मुख्यता है। अत धर्मादि पुरुषार्थ का वर्णन चतुर्थ-स्कन्ध में है। पुरुषार्थ सिद्ध पुरुषो को तत्तत् मर्यादा के साथ स्थापित करना स्थान है, इसका विवेचन पचमस्कन्ध मे किया गया है।

पोषण–मर्यादा स्थित जीवो मे से किन्ही पर अनुग्रह (पुष्टि) करना पष्ठ स्कन्ध मे वर्णित है।

ऊती–जो पुष्ट हैं उनके वैशम्य दोप की निवृत्ति के लिये वासनाओ का निरूपण सप्तम स्कन्ध का अर्थ है।

मन्वन्तर–वासना की निवृत्ति के लिये जिन सद्धर्मों की आवश्यकता है वे अष्टम स्कन्ध मे वर्णित हैं।

ईशानुकथा–निर्दोष सद्‌भक्तो का चरित नवमस्कन्ध मे वर्णित है।

निरोध–भक्तो का निरोध (आसक्ति) भगवान् मे ही होता है, अत दशम स्कन्ध मे उनके स्वरूप बोधनार्थ कृष्ण के चरित्रो का निरूपण किया गया है।

मुक्ति–आसक्त जीवो की स्वरूप व्यवस्थिति रूप मुक्ति का वर्णन एकादश स्कन्ध मे वर्णित है।

आश्रय–व्यवस्थित भक्तो का आश्रय द्वादशस्कन्धार्थ है।

---

१. अणुभाष्य रश्मि–गोरेश्वर कृत ३।२।३४।

२. श्री मदाचार्य चरणाम्बुजे निवेदितस्तेन तुष्टा भवन्तु मयि ते सदा।'
(अणुभाष्य उपसंहार)

शास्त्रार्थ--प्रकरणार्थ, स्कन्धार्थ, अध्यायार्थ का प्रतिपादन इस निवन्ध मे है, अन्य तीन वाक्य, पद, अक्षरो का अर्थ सुवोधिनी में है।

अध्याय विवेचन--वल्लभाचार्य ने प्रत्येक स्कन्ध में अध्यायो की सख्या में हेतु का प्रतिपादन किया है। यथा प्रथम स्कन्ध में १९ अध्यायो में अधिकारी की सगति स्थिर करते हुए उसके तीन भेद किये हैं—

अधिकारी

साधारण	मध्यम	उत्तम
(अ० १–३)	(अ० ४–६)	(अ० ७–१९)

साधारण अधिकारी का निरूपण तीन अध्यायो में हुआ है। प्रथम मे श्रोता की जिज्ञासा, वक्ता की श्रेष्ठता, द्वितीय में श्रोता का निर्मत्सरत्व, वक्ता का चातुर्यत्व, तृतीय में श्रोता की श्रवण प्रीति वक्ता का गुह्यज्ञानत्व वर्णित है।

मध्यमाधिकारी मे—श्रोता वक्ता को भगवत्कृपा प्राप्ति, भगवदीयत्व, तथा भगवदेकत्व का निरूपण है। उत्तमाधिकारी मे-७ से १९ पर्यन्त, दो चरण, दो हस्त, दो जानु, दो बाहू, दो स्तन, एक हृदय, एक शिर अ ग तथा अ गी रूप से एक मिलाकर १३ अध्याय हैं। तीन अधिकारी होते हैं अत तीन ही प्रकरण इस स्कन्ध मे हैं।

द्वितीय स्कन्धार्थ—साधन निरूपण। इसमे तीन प्रकरण हैं—एक से दो अध्याय पर्यन्त तत्व ध्यान, तीन से चार हृत्प्रसाद, पाच से दस मनन। तत्व ध्यान मे-स्थूल तथा सूक्ष्म ध्यान का वर्णन, हृत्प्रसाद मे-श्रोता वक्ता के हृत्प्रसाद का वर्णन, मनन मे-उत्पत्ति और उत्पत्ति भेद हैं। जनन-समागम प्राकट्य उत्पत्ति के तथा उपपत्ति के भेद है, अत मनन ६ प्रकार का है। जड से जनन, जीव से समागम, परमात्मा से प्राकट्य होता है। अत इस स्कन्ध मे दस अध्याय हैं।

तृतीय स्कन्ध मे सर्ग लीला का निरूपण ३३ अध्यायो मे किया गया है। सृष्टि के द्वैविध्य के कारण मुख्य प्रकरण भी दो हैं—

सर्ग लीला

लौकिक सर्ग (१-१९)	अलौकिक सर्ग (२०-३३)
(बन्ध सृष्टि)	(मुक्ति सृष्टि)

बन्ध सृष्टि मे ५ अवान्तर प्रकरण हैं, अध्याय १–६ मे गुणातीत,

अध्याय ७–९ में सगुण सृष्टि, अध्याय १०–११ मे काल सृष्टि, १२ मे तत्व सृष्टि, और १३–१९ मे जीव सृष्टि उपोदघात है।

मुक्ति सृष्टि मे ५ भी अवान्तर प्रकरण है। अध्याय २०-२४ मे तत्व मुक्ति, अध्याय २५ मे काल मुक्ति, अध्याय २६-२७ मे गुणातीत मुक्ति, अध्याय २८ मे सगुण मुक्ति, अध्याय २९–३३ पर्यन्त जीव मुक्ति का वर्णन है।

वृहदारण्यक उपनिषद् मे १२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु, १ इन्द्र, १ प्रजापति का उल्लेख है। अर्थात् ३३ देवगणो की सृष्टि के कारण भी इस स्कन्ध मे ३३ अध्याय हैं। लौकिक सृष्टि मे २८ तत्व, ४ भूत बीज १ काल = ३३ का उल्लेख है। इस कारण भी इस मे ३३ अध्याय हैं।

चतुर्थ स्कन्ध (विसर्ग)–इसमे चार प्रकरण तथा ३१ अध्याय है।

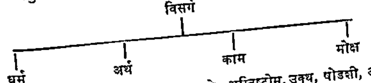

धर्म प्रकरण—१-७ अध्याय। इसमे अग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, अतिरात्र, आप्त, अर्याम, वाजपेय सात धर्मों का वर्णन है।

अर्थ प्रकरण—८–१२ अध्याय। इसमे साधन, साध्य, मनूपदेश–दोष निवृत्ति तथा फल प्राप्ति का वर्णन है।

काम प्रकरण—१३-२३ अध्याय। इसमे पृथिवी–सर्वकाम–स्वकाम नाम के ३ अवान्तरण प्रकरण हैं।

मोक्ष प्रकरण—२४-३१ अध्याय। इसमे ५ अध्याय से ब्रह्म भाव तथा ३ अध्याय से सायुज्य का निरूपण है।

"विसर्गः पौरुष. स्मृत." विसर्ग भगवन्नाम माहात्म्य का ज्ञापक है। माहात्म्य ज्ञापन पुरुषार्थ चतुष्ट्य के दान से विदित होता है। अत चारो पुरुषार्थों के निरूपण के हेतु इसमे चार प्रकरण माने गये हैं।

पचम स्कन्ध (स्थान)—इस स्कन्ध मे २६ अध्याय हैं और दो प्रकरण हैं—

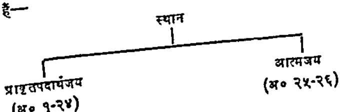

यौगिकार्थ के अनुसार स्थान का अर्थ सर्वत्र स्थिति है, इसके अनुसार तीन भेद हैं—देश, काल, आत्मा। प्रथम मतानुसार प्राकृत पदार्थ २४ हैं। प्रत्येक पर विजय करने के लिये २४ अध्याय हैं। अप्राकृत पदार्थ जीव तथा ब्रह्म रूप से द्विविध है, अतः २६ अध्याय हैं।

पष्ठ स्कन्ध (पोपण)

नाम	ध्यान	अर्चन
(अ० १-३)	(अ० ४-१७)	(अ० १८-१९)

नाम प्रकरण–श्रवण, कीर्तन, स्मरण की त्रिविधता के कारण ३ अध्याय हैं। ध्यान प्रकरण मे रूप सम्बन्धी १४ गुणो के कारण १४ अध्याय हैं। अर्चन प्रकरण मे वाह्य-अभ्यान्तर भेद से अर्चन के दो भेद हैं, अत. इसमे दो अध्याय हैं।

सप्तम स्कन्ध (ऊति)—इसमे ३ प्रकरण तथा १५ अध्याय हैं—

ऊति

असद्वासना	सद्वासना	मिश्रवासना
(अ० १-५)	(अ० ६-१०)	(अ० ११-१५)

अप्टम स्कन्ध (मन्वन्तर)–इसमे ४ प्रकरण तथा २४ अध्याय हैं—

मन्वन्तर

हरि स्मरण	दान	स्वोक्त निर्वाह	मत्स्य
(अ० १-४)	(अ० ५-१४)	(अ० १५-२३)	(अ० २४)

हरि स्मरण–चतुर्भुज पुरुपार्थ का वर्णन है, अत ४ अध्याय हैं। दान प्रकरण मे–नव गुण–एक निर्गुण का वर्णन है, अत. दस अध्याय हैं। स्वोक्त निर्वाह–दानोक्त प्रकार के अनुसार नव विध होता है, अतः ६ अध्याय हैं। मत्स्योक्त मे–धर्मवक्ता का प्रतिकथन एक अध्याय मे है। अतः सम्पूर्ण स्कन्ध में २४ अध्याय हैं।

नवमस्कन्ध (ईसानुकथा)—इसमे दो प्रकरण, २४ अध्याय हैं। पहला प्रकरण हरिकथा का तथा द्वितीय प्रकरण हरिभक्त कथा का है।

ईशानुकथा का फल

दु ख निवारण	सुख प्राप्ति

अध्याय १ से ९ मे सगुण भक्ति द्वारा दुःख निवारण, अध्याय १० मे ज्ञानी द्वारा, अध्याय ११–१३ मे भगवच्चरित्र द्वारा, अध्याय १४–२३ मे भक्त द्वारा, तथा अध्याय २४ मे भगवत् द्वारा दुःखनिवारण तथा सुख प्राप्ति का का निरूपण है। इस कारण २३ अध्यायो का रहस्य भी यही है।

दशम स्कन्ध (निरोध)–इस स्कन्ध मे ५ प्रकरण ८७ अध्याय है।

निरोध

जन्म	तामस	राजस	सात्विक	गुण
(अ० १–४)	(अ० ५–३२)	(अ० ३३–६०)	(अ० ६०–८१)	(अ० ८२-८७)

जन्म प्रकरण मे–चार अध्यायो मे क्रमश वासुदेव, सकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, व्यूह प्राकट्य का वर्णन है। तामस प्रकरण मे–प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल का २८ अध्यायो मे निरूपण है। राजस प्रकरण में–प्रमाण प्रमेय, साधन, और फल का २८ अध्यायो मे निरूपण है। सात्विक प्रकरण में प्रमेय, साधन, फल का २१ अध्यायो में निरूपण है। सात्विक में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। गुण प्रकरण में–ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य का वर्णन ६ अध्यायो में है। १२-१४ अध्याय कौतुक लीला के निरूपक एव प्रक्षिप्त माने गये है। निरोध लीला प्रतिपादक दशमस्कन्ध पुरुषोत्तम का हृदय स्थानीय है। भक्तो के प्रपच का अभाव और स्वकीय शक्तियो के साथ परमात्मा का भक्त हृदय में शयन (निवास) करता है। प्रापचिक विषय से हटाकर भक्त को स्व विषयो के प्रति लीला द्वारा आकृष्ट करना भी निरोध है।

एकादश स्कन्धार्थ (मुक्ति निरूपण)

जीव मुक्ति	सायुज्य मुक्ति	ब्रह्म मुक्ति
(अ० १–५)	(अ० ६–२९)	(अ० ३०–३१)

निष्प्रपच भक्तो को स्वरूप लाभ होना मुक्ति कहलाता है, जिसका सीधा अर्थ "अन्यथा रूप" का त्यागकर स्वरूपावस्थान है। ३१ अध्यायो का यही रहस्य है।

द्वादशस्कन्ध (आश्रय) इसमे पाँच प्रकरण तथा १३ अध्याय है—

आश्रय

कृष्णाश्रय	जगदाश्रय	वेदाश्रय	भक्तियोगाश्रय	भागवताश्रय
(अ० १–३)	(अ० ४–६)	(अ० ७)	(अ० ८–१०)	(अ० ११–१३)

52864

भागवत साक्षात् श्रीकृष्ण स्वरूप है, अत इसमे भी तद् बोधक छः धर्मों का समावेश है। प्रथम स्कन्ध तथा द्वितीय स्कन्ध से ज्ञान का निरूपण। तृतीय चतुर्थ से 'वैराग्य' का, पचम–षष्ठ से 'वीर्य' का, सप्तम–अष्टम से ऐश्वर्य का, नवम–दशम से यश, एकादश–द्वादश से श्री का निरूपण है।

१४. सुबोधिनी—यह श्रीमद्भागवत् की प्रसिद्ध टीका है।

१५. दशम–एकादश स्कन्धार्थ निरूपण कारिका। इसमें एकादश द्वादश दोनो स्कन्धो का निरूपण कारिकाओ में किया गया है।

(ड) टीका वैशिष्ट्य–नाम—शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा रचित भागवत की टीका का नाम "सुबोधिनी" है। टीकाकार ने इसे विवरण नाम भी दिया है। जैसा कि पुष्पिकाओ से स्पष्ट है—

"इति श्री भागवत सुबोधिन्यां श्री लक्ष्मण भट्टात्मज श्रीवल्लभदीक्षित विरचितायां अष्टमाध्याय विवरणम्।"

विशेषत यह श्री सुबोधिनी जी के नाम से अभिहित की जाती है एव इसे मूल के समान किं वा उससे भी अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, इससे भागवत ग्रन्थ का भी गौरव बढता है।

परिमाण—यह टीका समग्र भागवत पर उपलब्ध नहीं है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम तथा एकादश स्कन्ध के चतुर्थाध्याय पर्यन्त ही उपलब्ध है। वैसे समग्र भागवत मे ३३२ अध्यायो को टीकाकार ने प्रामाणिक माना है।

उद्देश्य - इस टीका द्वारा भागवत के अत्यन्त गूढार्थो का प्रकाशन हुआ है। टीकाकार की इस विशेषता के कारण ही 'गूढार्थ प्रकाशन परायण' नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है। टीकाकार स्वय एक सिद्धान्त के प्रवर्तक थे, अत उन्होंने स्वाभिप्राय प्रामाण्य के लिए भागवत ग्रन्थ को आधार बनाया फलत टीका मे अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे अत्यधिक रुचि ग्रहण की थी।

प्रकाशन—इस टीका के अनेक सस्करण हो चुके हैं, आठ टीकाओं के साथ वृन्दावन धाम से सम्वत् १९६४ मे भी इसका प्रकाशन हुआ है।

शैली—टीकावलोकन से उसकी कतिपय विशेषताएँ मननीय हैं—

(१) इस सुबोधिनी टीका मे अध्यायानुसार श्लोकों का अर्थ पूर्वापर सङ्गति रूप मे कहा गया है।

(२) श्लोकों में समागत पदो के स्वारस्य का विवेचन किया गया है। यह पद स्वारस्य ही वास्तव मे पदार्थ है जिसमे प्रकृति-प्रत्यय का अक्षरार्थ भी सम्मिलित है।

(३) अन्वय मुख व्याख्या होने पर भी भाषा क्लिष्ट है।

(४) भूमिका रूप मे जहाँ टीका लिखी गयी है वहाँ समास बहुला गौडी के दर्शन होते हैं, व बुद्धि में अर्थ प्रकटन सहज ही नही होता, साधारण व्यक्ति की समझ में कुछ नही आता। यथा—

'त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्मक वत्सला।' (भाग० १०।६।१२)

की टीका मे 'मातर्मा' मा ताडयेत्युक्ते 'ताडये यदि०' इति पुत्रोक्ति कातर्य विक्लव मना हन्त कदाचिदयं मन्युना वनं प्रविशेत् इति शंकयातन्निरोधार्थमुपाय निश्चिकायेत्याहत्यक्त्वेति। तद्धीर्यस्य सर्वव्यापकत्व लक्षणस्यतदैश्वर्यस्य न कोऽपि शुद्ध तन्माधुर्य्यैक निमग्नत्वादिति भावः।' (सुबोधिनी १०।६।१२)

उक्त गद्यांश के परिशीलन से स्पष्ट है कि इसका मूल से कितना सम्बन्ध है। केवल भावबोध ही समझ मे आता है।

(५) एकाक्षरात्मक अव्ययो के अर्थ की गम्भीरता भी दर्शनीय है।

(६) पाठभेद की समालोचना प्रायः सभी अध्यायो मे की गयी है।

(७) विभिन्न कोश और शब्दानुशासन तथा धातु पाठो का आश्रय लेकर वाक्यार्थ की सङ्गति लगाने का चमत्कार भी देखने योग्य है।

(८) टीकाकार की दृष्टि मे लक्षणा वृत्ति का अधिक महत्व नही है। न्यून पद से अन्य पद का अनुसंधान भी इस टीका मे नही किया गया जैसा कि टीकाकार के कथन से प्रमाणित होता है—

लक्षणा नैववक्ष्यामि न न्यूनादस्य पूरणम्
आर्थिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्षकथनादृते।' (वही १।१ मं० का० ६)

परोक्ष कथन से—पुरञ्जनोपाख्यान आदि आध्यात्मिक कथानकों से है, इनमे तो भागवतकार ने ही अन्य अर्थ की घोषणा की है। लक्षणा न मानने का एक अभिप्राय मननीय हैं, उनका कथन है कि यह वृत्ति मूल से दूर ले जाती है, जैसे 'गङ्गायां घोषः', 'गङ्गा मे कुटी' पद से गंगा अर्थ मे गाँव या कुटी स्थिर न रहने के कारण उससे तट का बोध होता है, जो कि गंगा से दूर हो गया है, अतः भागवत मे अभिधेयार्थ का त्याग कर गौण अर्थ स्वीकार करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं हुआ।

(९) इस टीका मे शास्त्र, स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद तथा अक्षर, अर्थ की अविरोध सगति की गयी है। यह उसकी सर्वातिशायिता है। टीकाकार ने उक्त सप्त अर्थों में पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दुर्बल है, यह भी स्वीकार किया है। (सुबोधिनी १।१ मंगलाचरण, कारिका ७)

(१०) टीका मे अनेक श्रुतियों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है,

श्रुतियो का अर्थ भी स्व सम्प्रदायानुसार किया गया है। इसमे ब्रह्मसूत्रो से भी सहायता ली गयी है।

(सुबोधिनी १०।५।१६ मे ब्रह्मसूत्र २।१।३३ का उल्लेख)

(११) कथाभाग मे सकेतो का अर्थ स्पष्ट करने के लिए अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं।

(१२) *भक्त विश्वासदायिनी भगवत्कथाओ को बडे यत्न से रखा गया है—*

'इत्येवं भगवल्लीला भक्त विश्वासदायिनी
निरूपिताति यत्नेन कृष्ण पादाम्बुजाश्रया।' ,(वही पूर्वार्द्ध उप०)

(१३) भागवत मे त्रिविध भाषाओ का उल्लेख उद्‌घोषित करते हुए उनके उदाहरण द्वारा कथन की पुष्टि की गयी है। यथा—लौकिक भाषा–'अयोपस्युपवृत्ताया' आदि का वर्णन लौकिक भाषा मे है। परमत भाषा–'केचिदाहुरज जात' में 'केचित्' पद परमत है।

समाधि भाषा—वेदव्यास ने समाधि मे जिस तत्व का साक्षात्कार किया है उसका प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त समाधि भाषा कहलाता है। लौकिक और परमत के विश्लेषण के अनन्तर शेष *भाषा समाधि भाषा* है। यद्यपि समग्र भागवत वेदव्यास की कृति है तथापि सम्वादात्मक रूपो को पृथक् मानना पडता है। समाधि दृष्ट तत्वानुसन्धान के लिये सूत ने कहा भी है —

'अपश्यत् पुरुषा पूर्ण माया च तदपाश्रयाम्' (भा० १।७।६)

टीकाकार ने भी समाधि भाषा का प्रामाण्य स्वीकार करते हुए लिखा है—

'समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम्।'

'यावत् समाधौ स्वयमनुभूय निरूपित सा समाधि भाषा।' भागवतार्थ प्रकरण मे भी इसकी पुनरावृत्ति की गई है—

'एषा समाधि भाषाहि व्यासस्यामित तेजस.।'

(भागवतार्थ प्रकरण, पृष्ठ १२३)

यह भाषा व्यास रूप मे अवतरित साक्षात् हरि की भाषा है, अत. इसका सम्मान अधिक किया गया है—

'व्यास रूपोऽवतीर्यायमगलादि पुर. सरम्
प्रसङ्ग पूर्वक चाह समाधावुपलम्भहि ॥' (वही पृ० १२५)

इन तीनो भाषाओं मे जहाँ-जहाँ विरोध सा प्रतीत होता है, वह कल्पान्तर का है। 'धाता यथा पूर्वकल्पयत्' के अनुसार सृष्टि यथापूर्व ही होती रहती

---

१. सप्रकाश तत्वदीप निबन्ध-शास्त्रार्थ प्रकरण, पृष्ठ ३।

है। आवश्यक परिवर्तन होने से उसमे एकरूपता कही-कही नहीं आती अत उसे एक दूसरे का विरोधक या अप्रामाणिक नही मानना चाहिये।

(१४) श्रीमद्भागवत मे जिस स्थल पर जिस भाषा का प्रयोग है वहाँ सुबोधिनी मे उसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इस टीका की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह ईश्वर से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित है। टीकाकार ने यह भी लिखा है कि यह टीका भगवदश के अतिरिक्त नही लिखी जा सकती थी, उन्होने स्वय अपने लिये भी यह प्रयोग (सुबोधिनी, उपक्रम कारिका ५) मे किया है—

> अर्थ तस्य विवेचितु नहिविभुर्वैश्वानराद्वाक्पते-
> रन्यस्तत्र विधाय मानुष तनु मा व्यासवच्छ्रपति
> दत्वाज्ञा चक्रपावलोकन पटुर्यस्मादतोऽह मुदा
> गूढार्थ प्रकटी करोमि वहुधा व्यासस्य विष्णो प्रियम् ॥

इसी भाव से सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् हरिराय जी ने लिखा है कि यदि वल्लभाधीश का आश्रय न लिया तथा सुबोधिनी टीका का परिशीलन नही किया तो जन्म व्यर्थ है।

> नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टासुबोधिनी
> नाराधिराधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले ।[1]

टीका के महत्व का ऐसा वाक्य अन्यत्र दुर्लभ है। इसमे टीका कार का महत्व भी है। आचार्य वल्लभ ने भागवत के परिशीलन मे जितना समय दिया था उतना अन्य टीकाकारो ने दिया हो यह कहा नही जा सकता। 'चौरासी बैठक' भागवत के पारायण के कारण ही प्रसिद्ध हैं। इस टीका मे अन्य विद्वानो के मतो की समालोचना भी की है। अप्रासङ्गिक पाठो का सशोधन दृष्टव्य है। यह टीका सूत्र शैली मे लिखी गयी है। अत यह कथन अनुचित नही कि जब तक भागवत निबन्ध का परिज्ञान न हो सुबोधिनी का ज्ञान कठिन है। इस टीका का मर्म जानने के लिये आचार्य की 'अणु भाष्य' आदि कृतियो का ज्ञान भी आवश्यक है। सुबोधिनी स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है उसमे भागवत के श्लोको के वर्णन पर सिद्धान्तो का निरूपण है तथा वे टीका मे सर्वत्र विकीर्ण हैं। सुबोधिनी मे अध्यायारम्भ म कारिकाएँ दी गयी हैं, जिनमे वे अपना दृष्टिकोण रख देते हैं, यथा (सुबोधिनी १०।१।१७ कारिका १–२) अवतार प्रयोजन म—

---

१. हरिरायवचनामृत–लखनऊ प्रकाशन, अन्तिम पृष्ठ।

भक्ताना दुःख नाशाय कृष्णावतरण मतम्
भूमिर्माता तथा चान्ये भक्ता वै त्रिविधामता।
ये भक्ता शास्त्र रहिता स्त्रीशूद्र द्विज बन्धव
तेषानुद्धारक. कृष्ण स्त्रीणामत्रविशेषत ॥

श्लोको की सगति का निरूपण भी कारिकाओ मे दिया गया है—

दशमि सान्त्वन भूमे पच विंशत्तमैस्तथा
अष्टभिर्नारदोक्त्यैव सर्वेषा दु खमजसा ॥

प्रत्येक श्लोक और उसमे कथित शब्दो का परस्पर क्या सम्बन्ध है इसका जितना निरूपण इस टीका मे प्राप्त होगा अन्यत्र नही। तथापि यह निश्चित है कि सुबोधिनी का उपयोग धारावाहिक कथा बाँचने मे उपयोगी नही है। टीकाकार ने भागवत को तीन रूप मे देखा है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। आध्यात्मिक रूप मे—यह परम हस सहिता या सात्वत सहिता कहलाती है, क्योकि इसमे तत्व ज्ञान कूट-कूट कर भरा हुआ है। आधिदैविक रूप मे—यह भगवत्स्वरूप तथा भगवल्लीला का अवगाहन कराने मे समर्थ है। आधिभौतिक रूप मे—यह ग्रन्थ रूप मे है और इसे परमोत्कृष्ट काव्य सज्ञा से सम्मानित किया जा सकता है। आचार्य वल्लभ का थोडा ही समय रहा, यदि ये कुछ काल और अधिक विद्यमान रहते तो समस्त भागवत की व्याख्या और विस्तार के साथ लिखते। इन्हे भगवदाज्ञा मिली थी कि आपको भूतल त्याग करना है। यह आज्ञा प्रथम तो गगासागर तट पर द्वितीय मधुवन (मथुरा) मे हुई थी। अत तृतीय स्कन्ध की रचना के पश्चात् दशम तथा एकादश स्कन्ध के ही कतिपय अध्यायों की व्याख्या कर पाये थे—

'आज्ञा पूर्वं तु या जाता गगा सागर सगमे
यापि पश्चात् मधुवने न कृत तद्द्वय मया।
देह देश परित्यागस्तृतीयो लोकगोचर ॥

…………भगवता श्रीभागवतार्थ प्रकटनाय पूर्वमाज्ञप्तम् तत्सूक्ष्म टीका करणेन कृतम्।' (विवरण—व्रजराय जी कृत—कारिका ६)

२. श्री विट्ठलनाथजी

(क) परिचय—श्री विट्ठलनाथ जी श्रीमदाचार्य के द्वितीय पुत्र थे, विट्ठलनाथ की ख्याति महाप्रभु, गोसाईं जी के नाम से अधिक है। इनका जन्म चरणाट नामक ग्राम मे हुआ था। विट्ठलनाथ के ज्येष्ठ भ्राता का नाम गोपीनाथ था। विट्ठलनाथ का जन्म एक क्रान्तिकारी जन्म है, एव ईश्वर का किसी न किसी विशेष प्रकार से इनसे सम्बन्ध है, क्योकि वल्लभाचार्य जी जब सन्यास की ओर प्रवृत्त थे तब श्री विट्ठलनाथ भगवान् (पढरपुर) ने उन्हे विवाह करने की प्रेरणा की और स्वय ने जन्म ग्रहण करने के विषय मे भी कहा था।[1] श्री वल्लभाचार्य इनके जन्म अवसर पर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे तथा इनका नाम विट्ठलनाथ ही रखा।

उपनयन तथा अध्ययन—सम्वत् १५८० चैत्र शुक्ल नवमी को श्री वल्लभाचार्य ने उनका काशी मे उपनयन सस्कार किया था। शास्त्रीय अध्ययन भी यही आरम्भ हुआ। विट्ठलनाथ जी बाल्यावस्था मे स्वमार्गीय सिद्धान्तो के परिशीलन मे योग नही दिया, वल्लभाचार्य ने काशी के प्रसिद्ध विद्वान् सन्यासी माधव सरस्वती के पास इन्हें विशेषत: भागवत के परिशीलन के लिये भेजा था।[1] क्रीडा की ओर अधिक अभिरुचि देखकर दामोदर दास नामक वैष्णव ने खेल खेलने के व्याज से साम्प्रदायिक सेवा प्रणाली के प्रति इनकी विशेष रुचि उत्पन्न की।

विवाह और सन्तति—विट्ठलनाथ जी का प्रथम विवाह स० १५८६ के आसपास हुआ था। इनके श्वसुर का नाम आगरोदी विश्वनाथ भट्ट और पत्नी का नाम रुक्मिणी बहूजी था। प्रथम पत्नी से १० सन्तान तथा द्वितीय पत्नी से 'घनश्याम' नामक एक पुत्र ही हुआ था। द्वितीय विवाह स० १६१६ मे प्रथम पत्नी के दिवगत हो जाने पर सं० १६२४ मे मध्य प्रान्त निवासी प० रामकृष्ण भट्ट जी तैलग की पुत्री श्री पद्मावती के साथ हुआ था। विट्ठलनाथ जी ने अपने पुत्र, पुत्रियो के उपनयन तथा विवाहादि सस्कार समय-समय पर बडे उत्साह के साथ किये। इनके सभी पुत्र प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने वल्लभाचार्य के ग्रन्थो का गम्भीर विशद विवेचन किया और साथ मे नवीन ग्रन्थो के निर्माण के द्वारा आवश्यक विषय की पूर्ति भी की। विद्वन्मण्डन ग्रन्थ की रचना मे ये पूर्व पक्ष गिरिधर नामक पुत्र से कराते थे, ऐसा कहा जाता है।[2]

---

१. कांकरौली का इतिहास, पृष्ठ ८१।

२. बाबा श्री व्रजेशकुमार जी गोस्वामी, कांकरौली।

श्री विट्ठलनाथ ने अनेक ग्रन्थो का सकलन वैष्णवो से लेकर किया था क्योकि इनके भाई गोपीनाथ जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी समग्र ग्रन्थ अपने साथ ले गयी थी। चित्रकला-सगीतकला एव काव्यकला मे आपकी अप्रतिहत गति थी। तानसेन जैसे कलाकार आपसे अपनी सफलता की आशा करते थे। गाय हिन्दू सस्कृति का प्रतीक है उसमे सेवा एव दक्षता दिखलाने के कारण अकबर बादशाह द्वारा आपको गोकुल की एव जतीपुरा (गोवर्धन) की जागीर दी गई थी। सम्प्रदाय के प्रचार की भावना से आपने कई बार लम्बी यात्राए की। ऋतुओ के अनुसार कीर्तन व्यवस्था आपके वैज्ञानिक ज्ञान की परिचायिका है। सूरदास आदि अष्ट सखाओ की नियुक्ति कर आपने हिन्दी जगत् मे एक नवीन कार्य किया। अष्ट छाप शब्द अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। आपके ७ पुत्रो मे ज्येष्ठ पुत्र गिरिधर जी एव श्री यदुनाथ जी का वश चला। सम्वत् १६४२ माघ कृष्ण सप्तमी को आपने शरीर त्याग कर लीला प्रवेश किया।

(ख) सम्प्रदाय—श्री विट्ठलनाथ जी ने शुद्धाद्वैत मत का ही प्रचार किया था। इस सम्प्रदाय का जितना शास्त्रीय विचार श्री विट्ठलनाथ जी ने किया उतना अन्य किसी ने नही किया। विद्वन्मण्डन एव अणुभाष्य एव भागवत टिप्पणी मे पुष्टिवाद का अत्यधिक महत्व प्रतिपादन किया है, एक प्रकार से पुष्टि सम्प्रदाय के ये महान् स्तम्भ माने जा सकते हैं, पुष्टि भक्ति का प्रसार इन्ही श्री विट्ठलनाथ जी के द्वारा हुआ।

(ग) स्थितिकाल—श्री विट्ठलनाथ वल्लभाचार्य के कनिष्ठ पुत्र थे। इनके जन्म स० के लिए अधिक विवाद नही। आपके जन्म के सम्बन्ध मे एक श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसके अनुसार सम्वत् १५७२ पौष कृष्ण नवमी, हस्त नक्षत्र, तैतिल करण आपका जन्म दिवस था।

वर्षे नेत्राश्व भूत द्विजपति गणिते पौष कृष्णे नवम्या
हस्तर्क्षे तैतिलेहन्यधिकृत भृगुजे शोभने गोविलग्ने।
रन्ध्रस्थेर्के स चान्द्रौ कवि गुज शनिपु घू नगेष्वारमजस्थे
सोमे जीवे धनस्थे तमसि सहजगे विट्ठल प्रादुरासीत्॥[1]

सम्वत् १६४२ माघ कृष्ण सप्तमी के दिवस आपका अन्तर्धान होना भी प्रसिद्ध है, इस प्रकार पृथ्वी पर ७० वर्ष २८ दिवस उनकी स्थिति मानी गयी है।

---

१. (क) कांकरोली का इतिहास, पृष्ठ ६१।
(ख) शुद्धाद्वैत पुष्टि सस्कृत वाङ्मय, द्वितीय खण्ड।

का क्रम अस्पष्ट है, टिप्पणीकार ने लिखा है कि भगवान् के दक्षिण हस्त मे शख-कमल, वाम हस्त मे चक्र गदा है । तीन आयुधो का उल्लेख भागवत मे जन्म समय मे उपलब्ध है—

'चतुर्भुज शख गदाद्युदायुद्यम्'[1]

इस श्लोक मे उदायुध शब्द कमल का वाचक है। टिप्पणीकार ने कहा है कि यह त्रिविध आयुध का उल्लेख सकर्षण– प्रद्युम्न अनिरुद्ध रूप के द्योतनार्थ किया गया है। टिप्पणीकार 'शख' को भी आयुध मानते हुए लिखता है कि इससे दर्प का विनाश होता है। अब्ज ब्रह्माण्ड का प्रतीक है । इससे उपमर्दन होता है—

'अब्ज धारणेनैव यथा उपरि पतित्वा उपमर्दन भवति'

यद्यपि सुबोधिनी अपने मे स्वय विस्तृत टीका है तथापि क्वचित् उससे आकार से भी द्विगुणाकार टिप्पणी है। इसमे श्रीधर, रामानुजादि आचार्य के मतों का खण्डन एव मर्यादामार्ग पुष्टि मार्ग का वैशिष्ट्य चित्रित किया गया है। यह टिप्पणी प्रौढ शैली मे लिखी गयी है। दुर्भाग्य से यह टिप्पणी समग्र सुबोधिनी पर उपलब्ध नही है, अन्यथा इससे सुबोधिनी के गौरव मे और भी वृद्धि होती। पुष्टि मार्ग के विवेचन के लिये अपने अवसर का परित्याग कही नही किया। यही इस टीका का विशेष महत्व है। क्वचित् अनवसर पर ही पुष्टि-मर्यादा आदि का प्रतिपादन किया गया प्रतीत होता है ।

३ पुरुषोत्तम जी

(क) परिचय—गोस्वामी कुल कमल दिवाकर पुरुषोत्तम जी विट्ठल नाथ जी के तृतीय पुत्र बालकृष्ण के वशधर थे। इनके पिता का नाम पीताम्बर तथा पितामह का नाम यदुपति था।[1] जनश्रुति के अनुसार आपने ६ लक्ष ग्रन्थ

१ कल्याण–वेदान्ताक, पृष्ठ ७०३ के अनुसार वंश परम्परा —

वल्लभाचार्य
|
विट्ठलनाथ
|
बालकृष्ण
|
व्रजराज
|
यदुपति
|
पीताम्बर
|
पुरुषोत्तम

(श्लोक) रचना की थी। आपकी कृतियाँ अत्यन्त प्रौढ संस्कृत भाषा मे लिखी गयी उपलब्ध हैं। इनकी कृतियो मे विज्ञान भिक्षु, निम्बार्क आदि सम्प्रदायो की विचारधारा की समालोचना भी की गयी है।

(ख) सम्प्रदाय—आप शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे एव उक्त सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य के वशज थे।

(ग) स्थितिकाल—श्री पुरुषोत्तम जी गोस्वामी का प्रादुर्भाव सम्वत् १७२५ विक्रम (ई० १६६८) मे हुआ था। (शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, पृष्ठ २५८)

(घ) कृतियाँ—१ भाष्य प्रकाश २. सुवर्ण सूत्र-विद्वन्मण्डन टीका ३ प्रस्थान रत्नाकर ४ सुबोधिनी प्रकाश (भागवत टीका)

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—श्री पुरुषोत्तम गोस्वामी द्वारा विरचित सुबोधिनी टीका का नाम प्रकाश है। जैसा कि इस पुष्पिका से स्पष्ट है—

'श्री श्रीमद्वल्लभनन्दन चरण रज पूरित हृदयस्य पीताम्बरात्मजस्य पुरुषोत्तमस्य कृतौ द्वितीय स्कन्ध सुबोधिनी प्रकाशे दशमाध्याय विवरणम् सम्पूर्णम्।'

परिमाण—यह प्रकाश टीका सुबोधिनी के अनुसार प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ स्कन्ध एव दशम स्कन्ध पर उपलब्ध है।

उद्देश्य—सुबोधिनी एव टिप्पणी का स्पष्टीकरण।

प्रकाशन—नेलीवाडा बम्बई, सम्वत् १९६३ मे प्रकाशित।[1]

शैली—अधिकाश मे सुबोधिनीकार ने सकेत पूर्वक श्रीधर स्वामी की टीका का मण्डन किया या किन्तु प्रकाशकार ने उसे स्पष्ट किया है और उन सकेत स्थलो पर 'श्रीधर मत दूषयन्ति' लिख दिया है जहाँ-जहाँ केचित् शब्द का उल्लेख है वहाँ-वहाँ श्रीधर मत का खण्डन ही है। प्रकाश मे केचित् का अर्थ 'श्रीधरादय' स्पष्ट लिखा है। इनकी भाषा मे प्रवाह है—

---

१. (क) हस्तलिखित प्रति—श्री द्वारकेश संस्कृत महाविद्यालय मथुरा मे २३२ वर्ष प्राचीन स० १७६० वैशाख कृष्ण को लिखित।

(ख) हस्तलिखित प्रति—श्रीनाथद्वारा विद्याविलास मे।

'ननु मत्स्यावतार चाक्षुपे प्रलय उक्त्वा कर्म एकादश उक्तस्ततश्च दशमत्वंमस्य आयाति, नवम सख्या सदशाच्च ततश्च क्रम विचारे चाक्षुप मन्वन्तरीयस्य कूर्मस्य पाश्चात्यत्वात् पूर्व प्रलयो मायिक एव सेत्स्यति न वास्तव क्रमेण बाधात् इत्यत आहु पूर्वोत्यादि ।" (प्रकाश १।१।३)

यहा पूर्वेत्यादि यह अ श सुबोधिनी का है किन्तु उसकी भूमिका 'ननु' पद से वाहु पर्यन्त वाँधी गई है। वल्लभाचार्य के प्रति अगाध भक्ति का प्रदर्शन करना स्वाभाविक ही है--

नम. श्री वल्लभाचार्य चरणाब्जनखेंदवे

यत्प्रकाशित हृद् शा भक्त्यम्भोधितरगिता ॥ (मगलाचरण)

समास शैली मे आप सिद्धहस्त थे। भाषा मे ओज प्रवाह सर्वत्र देखा जा जा सकता है—

प्रेभजन दिलाशनि व्यथित सर्व दिड् मण्डले
सुरेश्वर निदेशत· प्रलय वारिदे वर्षति
क्षितिध्र विमदीकृत क्षितिधर द्रुह स्वीकृत
व्रजेक्षित सुधाबुधेर्भगवत कृतार्थनम ॥ (मगलाचरण)

वल्लभाचार्य विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ति गोपालोपासक थे। यह प्रथम वार इस टीका मे प्राप्त होता है—

'………विष्णु स्वामि मतानुवर्तिगोपालोपासकत्व सूचितम् ।'

टीकाकार ने ३३२ अध्याय ही भागवत मे माने हैं–'शाखा द्वि षष्टि-द्वयम् प्रमाण के अनुसार। इतना ही नही श्रीधरोक्त–'द्वा त्रिंशत् त्रिशत च' दसाक के अनुसार ३३२ अध्याय लिखे हैं। यहाँ श्रीधर मत को भी प्रमाण रूप मे लिया है—'इयमेव सख्या श्रीधरीयेऽपि ।'

इन्होंने भट्ट मतानुयायी विद्वानो को स्थान-स्थान पर पराम्त किया है—

'एतेन सहस्र दिन साध्यस्य यदन्तो नाट्टा निरस्ता वेदितव्यम् ।'

मूल—कौनिको के 'सहस्र दिवस साध्य' यज्ञ का खण्डन किया गया है, क्योकि यह सत्र बलदेव की तीर्थ यात्रा पर्यन्त विद्यमान था। इस मत मे

सूत का वध भी किया गया था—'श्री वलदेव तीर्थ यात्राया यावत् सत्र समाप्यन, सत्र एव सूत वधात्, तस्यैवेदानीमपि-अनुवर्तित्वात् ।'

(सुबोधिनी प्रकाश १।१।४)

एक स्थल पर श्रीधर स्वामी की भूल दिखलाते हुए लिखा है—

'पुत्रेति तन्मयतया' श्लोक मे प्लुत के स्थान पर सन्धि 'आर्पत्वात्' लिखना श्रीधर स्वामी की विरह कातर उक्ति का न जानना है—

श्रीधर मत दूपयन्ति न तु स्वगायेत्यादि शेपिणादूराद्दाह्वाने दूराद्धूते चेत्यनेन प्लुते जाते प्लुतप्रगृह्या इत्यनेन प्रकृति भावात् सध्यनुपपत्ति माशङ्क्याह , तथा चात्र सन्धेरार्पत्व वदत श्रीधरस्य विरह कातर पदतात्पर्याज्ञान मित्यर्थ ।

श्रीधर स्वामी की इस प्रकार की स्पष्ट भर्त्सना अन्य टीकाकारो ने नही की ।

४. गोस्वामी गिरधरलाल जी महाराज

(क) परिचय—गोस्वामी गिरधरलाल 'काशी वाले' गोसाईं जी के नाम से प्रसिद्ध है । इनके पिता का नाम गोपाल लाल जी था जैसा कि इनके मगलाचरण से स्पष्ट है—

श्रीमन्मुकुन्दरायाणा गोपालाना तथैव च
व्यासादीना स्व पितॄणामाचार्याणा महात्मनाम् ॥
पादपद्म नमस्कृत्य प्रार्थयित्वा पुन पुन
वल्लभाचार्य वश्यन श्रीमद्गोपालसूनुना ॥
श्रीमद्गिरिधराख्येन स्वान्त करण तुष्टये । (बालप्रबोधिनी)

उक्त श्लोको मे आचार्य वल्लभ का वशज एव मुकुन्दराय की सेवा प्राप्ति का भी उल्लेख है । मुकुन्दराय के विग्रह का वर्णन 'काकरौली का इतिहास' पृष्ठ २८७ मे भी उपलब्ध है—

'सम्वत् १८८६ मे काशीस्थ श्रीगिरिधर जी महाराज ने श्री मुकुन्दराय जी को काशी मे नाव द्वारा पधरा कर मनोरथ का विचार किया ....

गिरधर जी महाराज अपने ठाकुर जी को अषाढ़ मास के पूर्व नाथद्वारा पधरा लाये। आषाढ में उन्होने श्रीनाथ जी के साथ मुकुन्दराय जी का छप्पन भोग का मनोरथ कर कार्तिक मे चार स्वरूपों का उत्सव करने का विचार किया।

(ख) सम्प्रदाय–काशीस्थ गिरधर जी महाराज श्री वल्लभाचार्य के वशज थे। यह परिचय मे लिखा जा चुका है। अत. शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे, साथ ही 'शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड' नामक एक ग्रन्थ इस सम्प्रदाय का महनीय ग्रन्थ है।

(ग) स्थितिकाल–शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, पृष्ठ २६१ के अनुसार सम्प्रदाय मे आपका जन्म सम्वत् १८४७ विक्रम में माना गया है।

(घ) कृतियां–१. शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड २. बाल प्रबोधिनी
३. प्रपचवाद[1]

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—गोस्वामी गिरधर जी महाराज कृत *श्रीमद्भागवत टीका का नाम बाल प्रबोधिनी है—*

'श्रीमद्भागवतस्येय टीका बालप्रबोधिनी'

परिमाण—यह टीका द्वादश स्कन्धो पर की गयी है, एव प्राप्त समग्र टीकाओ मे अधिक शब्द सम्पत्ति युक्त है।

उद्देश्य—भागवत का गूढार्थ ज्ञान इस टीका द्वारा कराने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। सुबोधिनी टीका द्वारा समग्र भागवत का बोध नही होता क्योंकि चतुर्थ स्कन्ध पर्यन्त एव द्वादश स्कन्ध पर भी वह नही लिखी गयी। बालप्रबोधिनीकार ने शुद्धाद्वैत की भावना एव सिद्धान्तो के अनुरूप सभी स्कन्धो की टीका की है जिसके द्वारा सम्प्रदायक व्यक्तियो एव भागवत प्रेमियो को अलभ्य लाभ हुआ है।

प्रकाशन—हरिप्रसाद भागीरथ, मुम्बई द्वारा प्रकाशित।

शैली—सुबोधिनी टीका के ज्ञान के लिये वल्लभ रचित 'तत्व दीप निबन्ध, अणुभाष्य' का मार्मिक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। बिना इन

---

१. (क) शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, पृष्ठ २६१ (ख) शु० पु० सं० बा०, पृष्ठ ५३।

ग्रन्थो के ज्ञान के सुबोधिनी का मर्म ज्ञात ही नही होगा, यह मन मे विचार कर गोस्वामी गिरिधर जी ने बालप्रबोधिनी की रचना का निर्णय किया था। इसमे 'तत्वदीप' के विषय को अत्यन्त सरलतापूर्वक प्रारम्भ मे तथा प्रत्यक गूढ-स्थल पर स्पष्ट कर दिया है। प्रथम स्कन्ध मे उत्तम, मध्यम अधमाधिकार का निरूपण, श्रोता वक्ता के गुण आदि की सगति सुन्दर शब्दो मे निरूपित की है। टीकाकार ने वल्लभाचार्य की कारिकाओ की भाँति स्वनिर्मित कारिकाओ मे अध्यायार्थ भी दिया है। स्थान-स्थान पर अन्तर्कथाऐ नवीन लिखी है जिन्हे अन्य टीकाकारो ने स्पर्श भी नही किया। यथा साक्षात् पितुर्द्वैपायनस्यम' साक्षात् पिता का उल्लेख माता अभाव का द्योतक है।

एक समय व्यास अग्निमथन कर रहे थे, उनको काम का प्रवल वेग उठा तथा उनके वीर्य का पात अरणि मे हो गया, फलत शुक की उत्पत्ति हुई।[१]

मोक्ष की अपेक्षा भगवद्भजन मे ही विशेष आनन्द है, इसे सिद्ध किया है तथा जीव को सर्वत्र भगवदश निरूपित किया है। ब्रह्म अविकृत परिणाम-शील है इसका विवेचन वेदस्तुति मे किया है।[२] टीकाकार ने न केवल सुवोधिनी का ही सम्यक् परिशीलन किया था अपितु श्रीधर कृत भावार्थदीपिका[३], विजयध्वज कृत पदरत्नावली,[४] विट्ठलनाथ कृत टिप्पणी[५], रामानुजीय-चन्द्रिका[६], रामप्रताप कृत सुवोधिनी[७] आदि टीकाओ का गूढ परिशीलन किया था। इनकी समालोचना अनेक स्थलो पर इन्होने की है। अत यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय मे इस टीका ने अपना विशिष्ट स्थान स्वय वना लिया है। इस एक टीका से सम्प्रदाय का मर्म भली भाति समझा जा सकता है।

५. किशोरी प्रसाद

(क) परिचय—विशुद्ध रसदीपिका के रचयिता श्री किशोरीप्रसाद का इतिवृत्त अभी अप्रकाश मे है, भागवत टीका के अनुसार इनके विषय मे कुछ लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है। इन्होने टीकारम्भ मे सवप्रथम मिश्र नारायण की वन्दना की है और इन्हे भागवत का मर्मज्ञ विद्वान् लिखा है, अत नारायण इनके गुरु वश के पूर्व पुरुष थे —

---

१ बाल प्रबोधिनी १।६।३६ २ वही १०।८७।४७ ३ व ४ वही १।१।१
५ वही १०।१।१ ६ वही १।७।४६ ७ वही १।४।१४

श्रीमिश्र नारायण पाद पल्लव
प्रणोमि सद् भागवत पुराणम्
यत्र क्व व येन स्वय प्रकाशितम्
स्वय निपति स्वयमेव गीतम् ।। (वि. दी. १०।२६ उप्रकम १)

श्री शुकदेव जी की कृपा से मिश्र नारायण को यथार्थ व्याख्यान की शक्ति प्राप्त थी।

लोकवल्लीलया येन मुनिन्द्रि वरदानत.
लब्धा महापुराणस्य यथार्थाख्यान शक्तय ।। (वही श्लोक २)

नवधा भक्ति उनके आगे मूर्तिमती स्थित थी—

नवधा भक्तयो यस्य मूर्तिमत्योऽग्रत स्थिताः
शुद्धा भक्ति प्रपुष्णन्तितत्पदाम्बुज सेविनाम् ।।

वे किशोरी रमण की उपासना सख्य भाव से करते थे एव ललिता सखी के अनुयायी थे—

किशोरी रमणो यस्य देवः सख्येन सेवितः
ललितानुगत प्रीत्या साक्षादानन्ददायक ।।

'किशोरी रमण' का मन्दिर नील कटरा देहली मे है तथा 'ललिता अटा' के नाम से एक प्रसिद्ध स्थान ललिता सखी का ऊचे गाँव मे है।

मिश्र नारायण के पश्चात् 'प्रद्युम्न' नामक विद्वान् की महिमा का उल्लेख मिलता है। प्रद्युम्न वशी अली के पिता थे, वशी अली वृन्दावन के प्रमुख सन्तो मे थे—

'वशी अली का जन्म किशोरीरमण मन्दिर 'नील कटारा,' देहली मे ही हुआ था। कुछ काल के बाद जब वे पुष्कर गये तब मार्ग मे जयपुर मे किशोरीप्रसाद इनके शिष्य हुए। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। वशी अली के प्रभाव से जयपुर मे राजा द्वारा 'लाडिली जी' के मन्दिर का निर्माण भी किया गया। वशी अली के वशज श्री युगल किशोर गोस्वामी वर्तमान है।"

प्रणम्य प्रद्युम्न पदारविन्दम्-
वर्षन् महाप्रेम सुधामरन्दम्
श्री राधिका कृष्ण किशोर लीलाम्,
व्याख्यामि बाल्यामि सदाप्रमीताम् ।।

'प्रद्युम्न के चरणार विन्द की वन्दना कर महाप्रेम सुधा वर्षिनी राधिका कृष्ण की किशोर लीला की व्याख्या करता हूँ।"

(सिद्धान्त दीपिका, मङ्गलाचरण)

इसके पश्चात् 'श्री रामकृष्ण' का स्मरण किया है, उन्होने लिखा है कि यह टीका रामकृष्ण के प्रसाद से पूर्ण हुई—

रामकृष्ण प्रसादेन सवादेन सतामिवम्
क्रियते रासलीलाया विशुद्धरस दीपिका ।

अत रामकृष्ण से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था, यह स्पष्ट है । अपनी अतिशय विनम्रता द्योतक हेतु उन महात्मा विद्वानों की स्तुति भी की है जिन्होंने अपने प्रबल वैदुष्य से भागवत की इस रासलीला की गूढता का का प्रदर्शन किया था–

यदुच्छिष्टामृतेनाप मूर्खोऽपि मुखरीकृत
साधवस्ते कृपापूर्णा क्षम्यन्तामक्रम मम ॥

किशोरीप्रसाद सकल शास्त्र पारावार पारीण विद्वान् थे एव अतीव विनम्र भक्त थे । बिना भक्ति भाव के इतनी सरस टीका का निर्माण भी कठिन था ।

(ख) सम्प्रदाय–किशोरीप्रसाद विष्णु स्वामी सम्प्रदायानुवर्ती ललिता सम्प्रदाय के अनुयायी थे । परिचय मे यह लिखा गया है कि ये वशीअली के शिष्य थे, वशीअली के उपास्य किशोरीरमण एव ललिता के अनुगामित्व का निर्देश किशोरीप्रसाद ने अपनी टीका मे किया है–

'ललितानुगतप्रीत्या' (विशुद्धरस दीपिका, उपक्रम)
शुद्धाभक्ति का उल्लेख भी इस परम्परा मे प्राप्त है—
'शुद्धा भक्ति प्रपुष्णन्तितत्पदाम्बुज सेविनाम् ।'

विष्णु स्वामी का उल्लेख उनकी टीका में उपलब्ध नही हुआ तथापि वशी अली के वशजों के अनुसार उन्हे उक्त सम्प्रदाय में माना गया है ।

(ग) स्थितिकाल—विशुद्धरस दीपिकाकार ने अपनी स्थिति के विषय मे कुछ भी नही लिखा है किन्तु वशी अली जी के वृत्त के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि इनका जन्म १८००–१८५० के मध्य हुआ होगा ।[1]

(घ) कृतिया–विशुद्धरसदीपिका–रासपचाध्यायी टीका

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम–इस का नाम विशुद्ध रस दीपिका है—
'क्रियते रासलीलाया विशुद्ध रस दीपिका' (उपक्रम, श्लोक ७)

परिमाण–यह टीका केवल रासपचाध्यायी पर है । अर्थात् दशम स्कन्ध

१ वशी अली के वशजों के कथनानुसार ।

के २९ से ३३ अध्याय पर्यन्त। किन्तु यह टीका रासपचाध्यायी की उपलब्ध टीकाओं मे सर्वाधिक शब्द सम्पत्तिशालिनी टीका है।

उद्देश्य—यह टीका राधाकृष्ण के सवलित रूप के निर्धारण एव प्रचारण के हेतु लिखी गई है। श्री कृष्ण की स्थिति राधा से कभी भिन्न नही हो सकती यह इस टीका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

प्रकाशन—यह टीका वृन्दावन से प्रकाशित आठ टीका सस्करण मुद्रित है।

शैली–रासपंचाध्यायी का टीका भूमिका शैली मे है, यथा 'बादरायणिरुवाच' पद की सगति मिलाते हुए लिखा गया है—

'तत्र श्रीबादरायणिरुवाच श्रीशुक उवाचेति पाठद्वय तत्राति हर्षज्ञापक पुण्यविशेषमेतस्मिन्नुपकल्पयन् बादरायणिरुवाचेत्याह श्री सूत तथाहि बदराणा समूहो बादरम् 'बदरीखण्डमण्डिते' इति प्रथमोक्तेः, तदयनमाश्रयो यस्या सौ बादरायणो व्यास' तस्यापत्य बादरायणिः ततश्च—

अन्यत्र दशभिर्वर्षैर्यत् पुण्यमुपलभ्यते
मनुजैरेकरात्रस्य वासाद् बदरिकाश्रमे ॥

तत्रचिरवासेन···· ········ ·· आख्यानमित्यादि शन्नाह् बादरायणिरुवाच । यत्र शुक उवाचेति पाठ श्रीरत्रातियोग्यत्वाच्छ्रीराधैव ।'

उक्त गद्य उनकी विस्तार भावना का परिचायक है, सभी शब्दो की प्राय व्याकरण द्वारा व्युत्पत्ति, कोशो के उद्धरण तथा पुराणो के प्रामाणिक उद्धरण एव अन्तर्कथाएँ आदि अनेक विशेषताएँ इस टीका मे दृष्टिगोचर होती होती है। श्री राधिका का उत्कर्ष श्री सनातन ने सिद्ध किया। जीव गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि टीकाकारो ने उसे चरम कोटि मे प्रविष्ट किया। विशुद्धरस दीपिकाकार ने मानो उसका साक्षाद्नुभव किया है। साथ ही वशी तत्व की विभिन्न व्याख्याएँ की गईं। यद्यपि भागवत मे 'वेणु' *शब्द का उल्लेख होने के कारण वशी के विषय मे कुछ नही लिखा गया* तथापि व्रज मे वशी शब्द का ही अधिक प्रसार है। उक्त टीका मे वशी का सादर उल्लेख ही नही अपितु उसकी स्तुति भी है। इस प्रकार की स्तुति अन्य किसी टीका मे उपलब्ध नही है—

श्री वंशिका नौमि ययात्मसात्कृता
कृता न के कु ज सुखाब्धिमग्नाः।
निपीय यस्या ध्वनिमाशु याता
जाता व्रजे राधितराधिका स्ताः ॥

वशी ने कुंज सुख के समुद्र मे सुनने वालों को मग्न किया है, अत उसे नमस्कार करता हूँ। कृष्ण राधिका की लीला नित्य है, टीकाकार ने दशम स्कन्ध की लीला का नित्यत्व सिद्ध किया है—

'तत्र भगवत्लीलाया नित्यत्वप्रतिपादक श्री दशम स्कन्ध वाक्य यथा जयतीति—

'जयति जन निवासो देवकी जन्मवादो'

\+ \+

'जयति वर्तमान प्रयोगेण नित्यत्व सूचितम्'।

भगवान की नित्य लीला के सम्बन्ध मे वल्लभाचार्य एव गौडीय वैष्णवो ने ही बल दिया है, अन्य टीकाकारो ने केवल श्लोको की व्याख्या मात्र की है उसके तलस्पर्श का प्रयत्न ही नही किया। शब्द व्युत्पत्ति मे वस्तुतः ये सिद्धहस्त थे, देवकी की व्युत्पत्ति देखिये—

'दीव्यति नित्य क्रीडतीति देवोनित्य बिहारी त कायति शब्दायते सा देवकी श्री हरिकथा।'

देवकी का अर्थ हरिकथा है।

'राधा' कृष्ण के वाम भाग मे सदा विराजमान हैं—

'वाम भागे स्थिता तस्य राधिका पर देवताम्'

पुल्लिग का निर्देश होने पर भी राधा से अभेद है—

'तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्'

प्रमाण से स्पष्ट है। हरि की त्रिविध लीला ब्रज, वन, निकुंज मे है। किन्तु ब्रज की लीला से वन की लीला एव वन की लीला से निकुंज की लीला श्रेष्ठ है। पुनश्च यह लीला द्विधा है—प्रकटा, अप्रकटा। प्रथम प्रकट लीला साधक सिद्धि के लिये है, अप्रकट लीला द्वापरान्त मे होती है। राधाकृष्ण अपने-अपने परिकर सहित गोलोक से ब्रजभूमि मे अवतरित होते हैं। कुंज-कुंज मे विहरण कर प्रकटता मे भी अप्रकट रूप से ज्ञात होते हैं। विशेषत उनकी प्रकट लीला का गान मुनि महर्षि करते हैं, अप्रकट लीला अति रहस्यपूर्ण होने के कारण गान नही की जाती। माधुर्य सिद्ध अधिकारियो के लिये यह लीला प्रकट की गई है। (विशुद्ध रस दीपिका, उपक्रम)

गोपी—गोपियो के चार भेद किये हैं—ऋषि कन्या, गोप कन्या, श्रुति-रूपा, देवरूपा। दण्डकारण्य के ऋषियो ने राम का रूप देखकर उनसे विहार करने की इच्छा की थी—

'पुरामहर्षय सर्वे दण्डकारण्य वासिन
दृष्ट्वाराम हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले
हरिं सप्राप्य कामेन ततोमुक्ता भवार्णवात् ।'

अत वे गोकुल मे स्त्री रूप मे प्रकट हुए। अग्निपुत्र भी गोपकन्या बने थे--

'अग्निपुत्रामहात्मानस्तपसा स्त्रीत्वमापिरे'

टीकाकार ने 'कृष्णयामल' के अनुसार ८० गोपियो के नामो का उल्लेख किया है। श्रुतियो के सम्बन्ध मे कहा है—'एक बार श्रुतियो ने परात्पर ब्रह्म की चिरकाल तक स्तुति की, वे उनसे प्रसन्न हुए एव वर माँगने के लिये उन्हे प्रेरित किया तब श्रुतियो ने कहा कि आपके कोटि काम मोहक रूप को देखकर हम कामिनी भाव से आपका सेवन चाहते है—

ब्रह्मानन्द मयोलोको व्यापी वैकुण्ठ सज्ञित
तल्लोकवासी तत्रत्ये स्तुतोवेदे परात्पर ।
चिरस्तुत्या ततस्तुष्ट परोक्ष प्राहतान् गिरा
तुष्टो स्मि ब्रूत वो प्राज्ञा वर यन्मनसेप्सितम् ॥'

श्रुतय ऊचु —

'कन्दर्प कोटि लावण्ये त्वयि दृष्टे मनामिन
कामिनी भावमासाद्य स्मर क्षुब्धा न सशयम् ॥
यथात्वल्लोकवासिन्य कामतत्वेन गोपिका
भजन्ति रमण मत्वा चिकीर्षाऽजनि म स्तथा ॥ वि० टी० २८।१)

तब भगवान ने कहा—

'आगामिनि विरचौतु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते
कल्प सारस्वत प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥"

इस वाक्य द्वारा सारस्वत कल्प मे उन्हे गोपिका बनने का वरदान दिया। वे गोपी रूप म प्रकटी। श्रुतिरूपा चालीस गोपियो के—सुतपा, उग्रतपा, सुव्रता आदि नाम भी लिखे हैं। इस प्रकार गोपिया का केवल मनुष्यत्व से सम्बन्ध नही था। यह इन्होंने सिद्ध किया है--

'गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका
देवकन्याश्च विपेन्द्र ! न मानुष्य कथचन ॥

किन्तु निकुन्ज मे एव ही स्त्री का वास होता है—

"नहि निकुन्जेऽनेक नायिकात्वम्"

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार

१. श्री सनातन गोस्वामी

(क) परिचय—मध्व गौडीय वैष्णवाचार्य परम्परा मे सनातन गोस्वामी का नाम वडी श्रद्धा के साथ ग्रहण किया जाता है। सनातन गोस्वामी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे, इन्होंने व्रज एव वृन्दावन के विभिन्न गुप्त स्थलो को प्रकट किया था। आज वे तीर्थ वन चुके है। सनातन के साहित्य परिशीलन से उनके मस्तिष्क पक्ष एवं हृदय पक्ष की महत्ता का वोध होता है किन्तु उसके तल स्पर्श के लिये स्वय का ज्ञान अपेक्षित है। उनके प्रत्यक्ष चमत्कारो का उल्लेख भी कम महत्व का नही है प्रसिद्ध मदनमोहन जी के मन्दिर का दर्शन उनके चमत्कारपूर्ण जीवन के एक अ श का परिचायक है।

वस्तुत सनातन-सनातन धर्म के प्रवल पोषक के रूप मे जनता के सम्मुख आये थे इनके जीवन के वारे मे विश्वनीय प्रमाण उपलब्ध हैं। जीव गोस्वामी एव स्वयं सनातन गोस्वामी ने अपने परिचय मे लिखा है कि उनके पूर्वज 'श्री सर्वज्ञ'-कर्णाट प्रदेश के अधिपति थे'।[१] सर्वज्ञ वडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।[२] अनिरुद्ध वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे।[३] इन्ही के व श मे श्री सनातन देव हुए। सनातन की माता का नाम रेवती एव पिता का नाम कुमारदेव था। सनातन का जन्म रामकेलि (गौडदेश) मे हुआ था।[४] सनातन ने प्रारम्भिक अध्ययन अपने ग्राम मे ही किया था। यवन शासन के कारण इन्हे फारसी का अध्ययन करना पडा। इस कार्य की सम्पन्नता फकरुद्दीन नामक यवन से हुई थी। समस्त शास्त्रो का अध्ययन रामभद्र नामक विद्वान् से किया था। सनातन

---

१. आठ टीका संस्करण में अन्तिम पृष्ठ पर श्लोक बद्ध परिचय, जीव गोस्वामी द्वारा रचित।

२. श्री सर्वज्ञ जगद्गुरुर्भु विभरद्वाजान्वय ग्रामणी। (श्लोक ५)

३. 'लक्ष्मीवाननिरुद्धदेव इति यः स्याति क्षितौजज्ञिवान्' (श्लोकवद्ध परिचय)

४. (क) गौड़ीय वैष्णव अभियान कोश, पृष्ठ १३६७ (बंगला)

(ख) सन्त अंक, पृष्ठ ४३६, गीताप्रेस गोरखपुर।

(ग) भक्ति रसामृत सिन्धु, (भूमिका पृ० १), वी० एच० वनमहाराज (अंग्रेजी)

मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के टीकाकार

१ श्री सनातन गोस्वामी

(क) परिचय—मध्व गौडीय वैष्णवाचार्य परम्परा मे सनातन गोस्वामी का नाम बडी श्रद्धा के साथ ग्रहण किया जाता है। सनातन गोस्वामी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे, इन्होने ब्रज एव वृदावन के विभिन्न गुप्त स्थलो को प्रकट किया था। आज वे तीर्थ बन चुके है। सनातन के साहित्य परिशीलन से उनके मस्तिष्क पक्ष एव हृदय पक्ष की महत्ता का बोध होता है किन्तु उसके तल स्पश के लिये स्वय का ज्ञान अपेक्षित है। उनके प्रत्यक्ष चमत्कारा का उल्लेख भी कम महत्व का नही है प्रसिद्ध मदनमोहन जी के मन्दिर का दर्शन उनके चमत्कारपूण जीवन के एक अ श का परिचायक है।

वस्तुत सनातन-सनातन धर्म के प्रबल पापक के रूप मे जनता के सम्मुख आये थे इनके जीवन के बारे म विश्वनीय प्रमाण उपलब्ध है। जीव गोस्वामी एव स्वय सनातन गोस्वामी ने अपने परिचय मे लिखा है कि उनके पूर्वज 'श्री सर्वज्ञ' कर्णाट प्रदेश के अधिपति थे'।[१] सवज्ञ बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।[२] अनिरुद्ध वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे।[३] इन्ही के व श मे श्री सनातन देव हुए। सनातन की माता का नाम रेवती एव पिता का नाम कुमारदेव था। सनातन का जन्म रामकेलि (गौडदेश) मे हुआ था।[४] सनातन ने प्रारम्भिक अध्ययन अपने ग्राम मे ही किया था। यवन शासन के कारण इन्हे फारसी का अध्ययन करना पडा। इस कार्य की सम्पन्नता फकरुद्दीन नामक यवन से हुई थी। समस्त शास्त्रो का अध्ययन राममद्र नामक विद्वान् से किया था। सनातन

---

१ आठ टीका सस्करण मे अन्तिम पृष्ठ पर श्लोक बद्ध परिचय, जीव गोस्वामी द्वारा रचित।

२ श्री सर्वज्ञ जगद्गुरुर्भु विमरद्वाजान्वय ग्रामणो। (श्लोक ५)

३ 'लक्ष्मीवानिरुद्धदेव इति य ख्याति क्षितोजजियान्' (श्लोकवद्ध परिचय)

४ (क) गौडीय वैष्णव अभियान कोश, पृष्ठ १२८७ (बगला)
(ख) सन्त अ क, पृष्ठ ४३६, गीताप्रेस गोरखपुर।
(ग) भक्ति रसामृत सिन्धु (भूमिका पृ० १), बी० एच० वनमहाराज (अ ग्रेजी)

गोस्वामी ने वेद वेदाग व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य, पुराण शास्त्रो म पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली थी।[1] बडी अवस्था के पूर्व ही सनातन गोस्वामी को 'साकार मलिक' पद हुसेन शाह ने दिया था। इस पद पर बडी योग्यता के साथ सनातन ने कार्य किया। सनातन का बाल्यावस्था का नाम अमर था किन्तु हुसेन शाह के द्वारा इनका नाम 'साकार मल्लिक' प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर गौडीय सम्प्रदाय के अनुगामी वैष्णवो ने इन्हे 'बड गोसाई' शब्द से अभिहित किया। सम्प्रति सनातन की जन्मस्थली-बडवाडी एव सरोवर सनातन सागर के नाम से प्रसिद्ध है। 'सनातन' नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यह नाम चैतन्य महाप्रभु ने दिया था। इस प्रकार सनातन के चार नामो का उल्लख प्राप्त होता है। सनातन के अनुज का नाम रूप था जो रूप गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। रूप के अनुज का नाम वल्लभ था, यही जीव गोस्वामी के पिता थे।[2] रूप गोस्वामी ने सनातनाष्टक मे यह उल्लेख भी किया है कि सनातन के पितामह का नाम मुकुन्द देव था—

सु दाक्षिणात्य भूमिदेव भूपवश भूषणम्।
मुकुन्द देव पौत्रक कुमार देव नन्दनम्।
सजीवतात वल्लभाग्र जन्म रूपकाग्रजम्
भजाम्यव महाशय कृपाम्बुधि सनातनम्॥ (सन्नातेनाष्टक)

श्री सनातन की आत्मा मे अशान्ति बनी रहती थी, यवनो की मृयता उनके आचार विचार एव भारत पर उनका आर्यजनो पर शासन आदि से वे विक्षुब्ध हो गये थे। उनकी इस उद्विग्नता मे श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शनो का सौभाग्य इन्हे प्राप्त हुआ, इसके पूर्व सनातन ने एक स्व न देखा, उसम एक ब्राह्मण ने इन्हे भागवत पुराण दिया। ज्ञात होता है कि उस समय सनातन गोस्वामी भागवत पुराण के परिशीलन म व्यस्त थ—

य श्री भागवत प्राप्य स्वप्नेप्राह्रश्च जागरे
स्वप्न दृष्टादेवविप्रात्प्रथमे वयसि स्थिता॥ (आ० टी० उप० स०)

चैतन्य महाप्रभु के दर्श० से इन्हे कुछ शान्ति प्राप्त हुयी तथा य वृन्दावन-धाम के लिये लालायित हो उठे, इस अवसर पर हुसेन शाह क साथ उनका वार्तालाप हुआ। वार्तालाप का विषय राजकीय अर्थव्यवस्था थी।

---

१ ब्रजधाम और गोस्वामी गन—ले० गोवर्द्धनदास, वृन्दावन (बगला)

२ आदि श्रीसनातनस्तदनुज श्री रूपनामा तत
श्रीमद्वल्लभनामभाग् वलितो निविष्ठते राज्यत'॥ (आ० टी० उप०)

सनातन का उत्तर सन्तोषजनक न पाकर एव इनके कार्य व्यापार से असन्तुष्ट होकर उसने इन्हे कारागार मे डाल दिया। सनातन गोस्वामी ने कुछ दिवस कारागार मे व्यतीत किये, अन्त मे श्री रूपगोस्वामी के सहयोग से ये कारागार से भाग निकले। कारागार से मुक्त होते ही ये श्री चैतन्य के समीप काशी पहुँचे एव वहाँ दशाश्वमेघ घाट पर दीक्षा ली। श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार ये वृन्दावन मे आदित्य टीला नामक स्थान पर निवास करने लगे। इसी स्थान पर सनातन गोस्वामी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ था।

सनातन गोस्वामी वृन्दावन मे निवास करते किन्तु भिक्षा के लिए नित्य मथुरा जाया करते थे। एक बार माथुर बालको के मध्य क्रीडा करते हुए एक बालक ने सनातन के साथ वृन्दावन चलने की अभिरुचि प्रकट की। किन्तु भोजनादि की सुव्यवस्था न होने के कारण सनातन ले जाने मे थोडा झिझके, किन्तु एक दिन ये वृन्दावन चल दिये। सनातन को इनमे दिव्य दर्शन हुए और वे उनकी वडे भाव से सेवा करने लगे। तभी एक घटना घटी और वह सनातन से पृथक् हो गया। कृष्णदास नामक वैश्य अपनी नौका मे व्यापार के लिये यमुना द्वारा यात्रा कर रहा था। नौका सनातन गोस्वामी के स्थान के समीप ही भँवर मे पड गयी, नाविक भाग गये। तव कृष्णदास सहायता के लिए पुकारने लगे, सनातन सेव्य बालक ने उनसे कहा कि आप सनातन नाम पुकारिये तो आप बच जायेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया। नाम ग्रहण करते ही नौका भँवर से निकल आयी। तट पर पहुँच उसने बालक से सनातन का परिचय पूछा और वे उनकी कुटिया पर पहुँच उनके चरणो मे गिर पडे। सनातन को जब यथार्थ ज्ञात हुआ तो वे बालक के प्रति आवेश मे आ गये। साधु प्रकृति पर मोहित होकर कृष्णदास ने समस्त धनराशि सनातन के चरणो मे अर्पित की किन्तु सनातन ने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे कृष्णदास और भी अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने सनातन गोस्वामी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। बालक के अन्तर्हित होने पर सनातन व्यग्र थे किन्तु कुछ कालोपरान्त एक प्रस्तर मूर्ति उन्हे प्राप्त हुयी जो आकार प्रकार मे उस शिशु के ही तुल्य थी। सनातन ने मदन गोपाल नाम से उनकी स्थापना की तथा कृष्णदास ने उनकी सेवा-भावना के अनुसार एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवा दिया। यह स्थान मदनटेर के नाम से विख्यात है।[1] सनातन गोस्वामी

---

१ वृहद्भागवतामृत–रतनलाल बेरी (भूमिका), वृन्दावन, सं० २०१६।

के प्रमुख शिष्य–रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट थे। एक अन्य प्रमाण के अनुसार जीवन ठाकुर, गोपाल मिश्र, अच्युतदास तथा रामदास कपूर भी इनके भक्त शिष्य थे।[1] सनातन गोस्वामी के चमत्कार के सम्बन्ध में अन्य घटनाएँ भी प्रसिद्ध हैं—

(१) एक बार एक ब्राह्मण ने धन हेतु शिव की आराधना की, शिवजी की आज्ञानुसार वह सनातन गोस्वामी के समीप आ पहुँचा। सनातन ने उसका अभिप्राय समझ उसे पारस मणि दे दी। तब वह उससे भी अधिक आकाक्षा करने लगा। सनातन ने उसे भगवान् के स्वरूप की छटा का दर्शन करा दिया। वह पारस मणि को यमुना मे फेंक उनकी शरण मे आ पडा और प्रेम रूपी धन प्राप्त किया। (वृहद्‌भागवतामृत, भूमिका)

(२) सनातन वृद्धावस्था मे गोवर्द्धन पर्वत की प्रदक्षिणा मे मुर्छित हो जाते थे। श्रीकृष्ण ने एक बालक के रूप मे दर्शन दिया और भगवच्चरण चिन्हित एक शिला का दर्शन कराते हुए उसकी प्रदक्षिणा का उपदेश दिया। सनातन उसी की प्रदक्षिणा करने लगे, वह शिला तभी से भक्तवृन्दो का आकर्षण बन गयी। सनातन गोस्वामी के प्रयत्न से ब्रजमण्डल के अनेक तीर्थ प्रकाश मे आये, उन्होंने अपने आचार-विचार एव सहनशीलता आदि के द्वारा ब्रजवासियो पर अमिट छाप छोडी थी। अनेक व्यक्ति उनके शिष्य बन कर अपना सौभाग्योदय मानने लगे थे, किन्तु सनातन भगवद्‌ध्यान एव भजन का उपदेश देना उचित समझते थे। शिष्य बनाने मे उनकी श्रद्धा नही थी क्योकि वे ब्रजवासियो को भगवत्सखा के रूप मे मानते थे। कई बार नन्दग्राम मे भगवान् ने उन्हें भिक्षा में दुग्धपान कराकर स्वस्थता प्रदान की थी।

(ख) सम्प्रदाय—सनातन गोस्वामी ने चैतन्य की भावना पूर्ण करने का प्रयत्न किया था। वे चैतन्य के परमप्रिय पार्षदो मे थे। इन्हें चैतन्य सम्प्रदाय का प्रमुख स्तम्भ माना जाता है। चैतन्य की इच्छा निम्न थी, जिनको सनातन गोस्वामी ने पूर्ण किया[2]—

(१) शुद्धभक्ति सिद्धान्त स्थापन।
(२) मथुरा मण्डल के लुप्त तीर्थो का उद्धार।
(३) वृन्दावन मे कृष्णविग्रह प्राकट्य।
(४) वैष्णव सदाचार प्रचार।

---

१. ब्रजधाम और गोस्वामीगन–गोवर्द्धनदास कृत, वृन्दावन।
२. सप्त गोस्वामी गन–पृष्ठ १२२।

(ग) स्थितिकाल—सनातन गोस्वामी का जन्म सम्वत् १५४५ प्रामाणिक रूप मे माना जाता है किन्तु कतिपय ग्रन्थो मे विभिन्न सम्वतो का उल्लेख है। सप्त गोस्वामी गन (पृष्ठ ६४) एव वृहद्भागवतामृत की भूमिका मे इनका जन्म सम्वत् १५२१ एवं १५३६ लिखा है। विश्वकोश (बङ्गला पृष्ठ १७३) मे १५४२ विक्रम, सन्त अंक, कल्याण मे पृष्ठ ४३६ पर १५४३ विक्रम एवं भागवत पत्रिका मे १४४५ वि० स्वीकार किया है।[1]

इस प्रकार उक्त सभी मतो मे भी केवल १४ वर्ष का अन्तर स्पष्ट है। इनमे गौडीय वैष्णव समाज मे १५४५ विक्रम को अधिक प्रामाणिक माना गया है। उसका कारण यह है कि उक्त सम्प्रदाय के सम्मान्य विद्वान् भक्ति विनोद ठकुर ने 'छ गोस्वामी सम्बन्ध अब्दनिर्णय' नामक ग्रन्थ मे उक्त सम्वत् की पुष्टि की है।[2]

सनातन गोस्वामी का स्थितिकाल ७० वर्ष स्वीकार किया जाता है, 'सप्त गोस्वामीगण' ग्रन्थ का सम्वत् १५२१ मानने से सम्वत् १५६१ पर्यन्त उनका स्थितिकाल बैठता है जो अयुक्त है क्योंकि उनका अन्तर्द्धानकाल १६१५ आषाढ शुक्ल माना गया है, अत वह प्रामाणिक नही है। श्री रूप सनातन शिक्षामृत पृष्ठ ४० पर उनके अन्तर्द्धान का समय १४७६ शाके सम्वत् १६१३ लिखा है। इस अवधि मे सनातन गोस्वामी ने वृहद्वैष्णवतोषिणी की रचना की थी[3] एव उसका सक्षेप जीवगोस्वामी से करवाया था।[4] अत सनातन गोस्वामी का जन्म सम्वत् १५४५ तथा अन्तर्द्धान सम्वत् १६१५ मानना उपयुक्त है।

(घ) कृतियाँ—जीव गोस्वामी के अनुसार इनकी निम्नलिखित कृतियाँ हैं—

(१) भागवतामृत (२) हरिभक्तिविलास (३) दिक्प्रदर्शिनी टीका
(४) लीलास्तव (५) वैष्णवतोषणी।

तथाग्रज कृतेष्वग्र् श्रील भागवतामृतम्
हरिभक्ति विलासश्च तट्टीका दिग् प्रदर्शिनी।

---

१. भागवत पत्रिका—केशव गौड़ीय मठ मथुरा प्रकाशन, वर्ष ६, पृष्ठ २६२।
२. सज्जन तोषिणी, द्वितीय वर्ष, द्वितीय संस्करण।
३. शाके षट् सप्तति मनौ पूर्णेयं टिप्पणी शुभा
सक्षिप्त युगशून्याग्र पंचक गणिते तथा॥ (लघुतोषिणी, उपसंहार)
४. 'या सक्षिप्य मया क्षुद्र जीवेनार्पितवानया' (लघुतोषिणी, उपसंहार)

लीलास्तव टिप्पणी च सेयं वैष्णवतोषणी
या संक्षिप्य मया क्षुद्र जीवेना पितदाज्ञया ।। (लघुतोषिणी उप०)

विश्वकोश में पृष्ठ १७३ पर दिक् प्रदर्शिनी टीका की गणना 'हरि भक्ति विलास' के साथ ही की है पृथक नहीं। सर्वेश्वर पत्र के वृन्दावनांक में पृष्ठ २५७ पर 'गीतावली', 'सिद्धान्तसार' एवं 'रसमय कलिका' नामक तीन ग्रन्थों का उल्लेख अधिक है। कल्याण में भी इनकी पुष्टि की गयी है।[1] तात्पर्य टीका[2] का उल्लेख एवं गोपाल-पूजा[3] का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। जीव गोस्वामी ने इनके ५ ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है, वैष्णवतोषणी में इनका स्पष्ट निर्देश है, सम्भव है ये ग्रन्थ लघुकाय हों या बाद में लिखे गये हों, जीव गोस्वामी ने वैष्णवतोषणी के संक्षेप करने के समय ही उक्त ग्रन्थों का उल्लेख किया होगा।

(१) बृहद्भागवतामृत—यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड का नाम 'श्री भागवत कृपा सार निर्द्धार' द्वितीय का नाम 'गोलोक माहात्म्य निरूपण' है। प्रथम खण्ड में भौम, दिव्य, प्रपंचातीत, भक्त, प्रिय, प्रियतम, और पूर्ण कृपापात्र नामक अध्याय हैं। द्वितीय खण्ड में वैराग्य, ज्ञान, भजन वैकुण्ठ, प्रेम, अभीष्ट, लाभ और जगदानन्द नामक ७ अध्याय हैं। खण्ड एक में ७६८ तथा खण्ड दो में १७१६ श्लोक हैं।

(२) हरि भक्ति विलास—इस ग्रन्थ की रचना महाप्रभु चैतन्य के आदेशानुसार १४६१ शाके (सम्वत् १५९६) में हुई थी। यह ग्रन्थ तथा इसकी 'दिग्दर्शिनी' नामक टीका राधारमण मन्दिर वृन्दावन में सुरक्षित है।

(३) श्रीकृष्णलीलास्तव—यह लीला स्तव के नाम से भी विख्यात है। इसे भागवत दशम स्कन्ध की लीलाओं का सार कहा जा सकता है। ४३२वें श्लोक से १०८ दण्डवत् की विधि पर अच्छी भाँति प्रकाश डाला है। ४५वें अध्याय से नन्द विदा पर्यन्त की कथा बड़े कौशल के साथ कही गयी है। भागवत की स्तुति तथा भगवान् कृष्ण की वन्दना का माहात्म्य अद्भुत है। इस ग्रन्थ के पाठ मात्र से भागवत पाठ की दिव्य विधि पूर्ण हो जाती है। भागवत की वन्दना के यह श्लोक ४१२ व ४१६ बड़े ही सरस हैं। यथा—

---

१. कल्याण वैष्णवांक, पृष्ठ ७०४।
२. इण्डिया आफिस कैटलॉग भाग ७, पृष्ठ १४२२
३. मद्रास ओरियण्टल—एम० एस० एस० लाइब्रेरी कैटलॉग भाग १, सं० १०५३

सर्वशास्त्राब्धि पीयूष सर्वं वेदेक सत्फल
सर्व सिद्धान्त रत्नाढ्य सर्वलोकेक दृक प्रद ।
सर्व भागवत प्राण श्री मद्भागवत प्रमो
कलि ध्वान्तो दितादित्य श्रीकृष्ण परिवर्तित ।।

(४) वृहद्वैष्णवतोषणी—यह श्री सद्भागवत की टीका है । केवल दशम स्कन्ध पर यह टीका लिखी गयी हैं । इसमे श्रीधर स्वामी के अस्पष्ट भावो को व्यक्त करने के साथ अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्तो की स्थापना भी की है ।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम —सनातन गोस्वामी की टीका का नाम 'वृहद्वैष्णवतोषिणी' है । जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—

इति सनातन गोस्वामी कृताया वृहद्वैष्णवतोषिण्या दशम स्कन्धे पूर्वार्द्ध प्रथमोऽध्याय. ।

परिमाण-यह टीका केवल दशम स्कन्ध पर लिखी गयी है किन्तु गौडीय वैष्णव टीकाओ मे सर्वाधिक शब्द सम्पति युक्त है ।

उद्देश्य-सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी शिष्य थे । इस सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत पुराण को अपना उपास्य माना है । श्रीमद्-भागवत मे दशमस्कन्ध ही सार है अत सनातन ने इस स्कन्ध की ही टीका की थी । 'वृहत्तोषिणी' भागवतगुह्य रस से अनभिज्ञ टीकाकारो की शुष्कवाद से पूर्ण वाक्यावली की उष्मा से सन्तप्त भक्तो की हृदय वापिका को सरस बनाने मे पूर्ण सफल सिद्ध हो चुकी है । अथवा भगवल्लीला रसास्वादन पटु जीवधारियो की सुधालिप्सा को यह पूर्ण करने मे समर्थ है । व्रजवल्लवी तथा व्रजवल्लभ के हृद्गत भावो का सफल सम्पादन जैसा इस टीका मे देखने को प्राप्त होता है अन्यत्र दुर्लभ है ।

प्रकाशन-यह टीका आठ टीका सस्करण, वृन्दावन मे मुद्रित हुई है। किन्तु दशम स्कन्ध के १३ अध्यायो की टीका इसमे प्रकाशित ही नही हुई है, जिससे भगवान की सरस व्रजलीलाओ पर सनातन के भावों से वंचित रहना पड़ता है ।[1]

---

१. आठ टीका संस्करण, में पृष्ठ ४७१ से वृहतोषिणी का मुद्रण हुआ है । १०।१४।१२ की टिप्पणी में सम्पादक महोदय ने लिख दिया है कि यह टीका मुद्रण के कुछ काल पश्चात् प्राप्त हुई थी अतः पश्चात् ही आरम्भ की जा रही है ।

शैली–यह अन्वय मुख व्याख्या है, बडी-बडी भूमिकायें भी उपनिबद्ध की है—

'यदि च तास्ताहशविधुनेन निवारिता अभविष्यन् तर्हि सद्य एव दशमी दशामगमिष्यन्निति तासा सर्वासामेव भावविशेष दृष्टान्तेनैव प्रदर्शयन् कासाचिद-वस्थाविशेषमाह । (वृहद्तोषिणी १०।२६।१०)

भाषा मे सरलता तथा लालित्य है लम्बे लम्बे समासो मे भी कृत्रिमता कही नही है। व्याकरण की अवहेलना नही हैं तथा शब्दानुप्रास इन्हे आकर्षित नही कर सका । ये भाव के कवि है अत गद्य की सभी विद्याओ का सन्निवेश इनकी टीका मे हैं। अनेक स्थलो पर श्रुतियो को उद्धृत किया है गोपालतापनी उपनिषद् विशेष प्रिय हैं। पुराणो म विष्णु पुराण तथा हरिवश पुराण के वाक्य ही उधृत किये है। ब्रह्म सहिता का अनेक बार उल्लेख किया गया है तन्त्रो मे 'पाच सत्र' आगम को प्रामाणिक स्वीकार किया है इनके उद्धरण दिये है। व्याकरण के आधार पर अनेक अर्थ किये हैं, क्वचित् कोश से भी साहाय्य लिया गया है।[1]

अचिन्त्य भेद वाद की स्थापना सनातन गोस्वामी की विशेष देन है। इस विषय मे सनातन की बुद्धिमता देखी जा सकती है–चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधर स्वामी एव उनकी टीका का अत्यधिक समादर किया था, अत वे खण्डन तो नही करना चाहते थे किन्तु उनके वाक्यो का भाव भी अपने सम्प्रदाय की ओर खीचकर लाने में प्रयास मे पीछे नही रहे। इस प्रसग मे ये भागवतकार से भी नही चूके, उनके द्वारा अपने वाद की पुष्टि बडे धैर्य, विद्वता तथा स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित करने की पूर्ण चेष्टा की गयी है।

सनातन गोस्वामी पूर्ण रूपेण अलकार साहित्य के उद्भट विद्वान् थे और वे साहित्यशास्त्र को देख चुके थे। अत भ्रमरगीत की व्याख्या म 'जल्प, प्रजल्प, विजल्प' आदि के भेदो का निरूपण प्राप्त होता है। इनकी विनम्रता का प्रभाव टीका पर भी पडा है। श्रीधर स्वामी के विपक्ष मे टीका करते हुए भी उन्हे 'श्रीधर स्वामि चरणा' कहकर उन्हे अभिहित किया है। यथा वृहद्तोषिणी से—

---

१ 'मायादम्भे कृपायांच' इति विश्व.

(वृहत्तोषिणी १०।२६।१)

पीत श्री गोपिकागीत सुधा सार महात्मनाम्
श्रीधर स्वामिनां किंचिदुच्छिष्टमुपचीयते ॥ (१०।३१)

इस टीका का सर्वश्रेष्ठ महत्व इसलिये है कि इसने श्रीमद्भागवत मे राधा की स्पष्ट स्थापना की है। भागवत मे राधा का स्पष्ट नाम निर्देश न करने की शंका का समाधान भी किया है। एका-काचित् आदि पदों द्वारा राधा का उल्लेख भी सिद्ध किया है। प्रेमभक्ति के उज्ज्वल भाव इनके प्रत्येक पद मे देखे जा सकते है।

भगवान कृष्ण नित्य वृन्दावनवासी हैं वे वृन्दावन त्यागकर कही नही जाते जीवात्मा तटस्था शक्ति है, वह प्रभु का सेवक है, प्रभु सेव्य है। वैसे *ईश्वर जीव तथा माया अनादि है अनन्त है।*

यह टीका अपने अभिनव भाव, रस मीमासा, राधा प्रेमप्रसाद ब्रजरत्न अलौकिकता आदि के निर्वचन के कारण गौडीय वैष्णव समाज की धरोहर निधि के समान है। यह टीका जिसकी नेत्रेन्द्रिय का एक बार विषय बन जाय वह इसे पूर्ण देखे बिना अपनी चक्षुरिन्द्रिय को कभी इस ओर से हटा नही सकता।

इस टीका मे इतने वैशिष्ट्य आजाने का एक कारण यह है कि सनातन गोस्वामी ने निरन्तर ब्रज वास किया था एव प्रभु की लीलाओ का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया, यह वैशिट्य केवल शब्दराशी पर गर्वित 'टीका लेखक' मे प्राप्त नही होगा। सनातन भी साधारण विषयी पुरुष होते तो उनकी अमरकीर्ति इतने कार्य मात्र से नित्य नवीन बनकर स्थिर नही रह सकती थी।

२. जीव गोस्वामी

(क) परिचय—गौडीय वैष्णव समाज के देदीप्यमान रत्नो मे श्री जीवगोस्वामी का उल्लेख सर्वोपरि किया जाता है। वस्तुतः जीवगोस्वामी प्रकाण्ड पण्डित, परम साहित्यिक तथा मायावाद के प्रबल विरोधी एव महान् भक्त थे। प्रायः देखा जाता है कि विद्वान् भगवद्भक्ति की परिधि मे अपने आप को स्थिर नही कर पाते किन्तु जीवगोस्वामी ने विद्वत्ता तथा भक्ति दोनो दोनो मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

जीवगोस्वामी के पूर्वज कर्णाट प्रदेश के निवासी थे[1] तथापि इनके पिता अनूप (या वल्लभ) यशोदरे मे निवास करते थे। जीवगोस्वामी का जन्म चन्द्रद्वीप ढाका मे हुआ था। जीवगोस्वामी ने लघुतोषणी के उपसहार मे अपना परिचय लिखा है, अत इनके परिचय के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही है। जीवगोस्वामी के पिता वल्लभ थे। वे सनातन एव रूपगोस्वामी के कनिष्ठ भ्राता थे एव वे श्रीराम के भक्त थे। जीवगोस्वामी ने लघुतोषणी, उपसहार मे लिखा है—

> 'य सर्वावरज पिता मम स तु श्रीराममासेदिवान्
> गगाया द्रुतमग्रजौ पुनरमु वृन्दावन सगतौ
> याम्या माथुर गुप्त तीर्थ निवहो व्यक्ति कृतोभवितर-
> प्युच्चै श्रीव्रजराज नन्दनगता सर्वत्र सर्वाद्धिता ॥

शिक्षा-दीक्षा—जीवगोस्वामी के पिता उन्हे छोटी ही अवस्था मे छोडकर चल बसे थे। जीव गोस्वामी बाल्यावस्था में ही भगवत्पूजा मे रत रहते थे।

---

१. वैष्णव अभिधान कोश पृष्ठ १२४८ (बंगा०) के अनुसार—जीवगोस्वामी का वश वृक्ष—

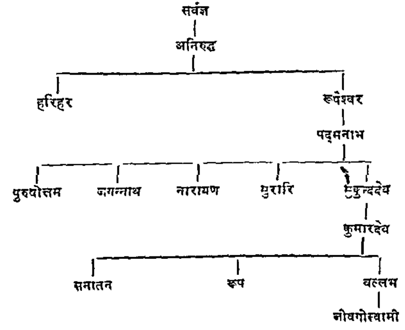

श्री जीव बाल्य काले बालकेर सने

....

करितेन पूजा पुष्प चन्दनादि दिया। (चैतन्य चरितामृत)

प्रारम्भिक दीक्षा रूपगोस्वामी से प्राप्त की एव काशी मे मधुसूदन वाचस्पति से वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया था। भक्तिशास्त्र के ग्रन्थो का स्वाध्याय वृन्दावन मे सनातन एव रूपगोस्वामी से किया था। रूप, सनातन के विरक्त हो जाने के पश्चात् जीवगोस्वामी को गृहस्थ एक बन्धन प्रतीत हुआ। उन्हें विषय भोग भी आकर्षित करने मे असमर्थ रहे। भक्ति रत्नावली मे लिखा भी है—

नाना रत्न भूषापरिधेय सूक्ष्मवास
अपूर्व शयन शय्या भोजन विलास
ए सब छाड़िल किछु नाहिभायचित्ते
राज्यादि विषय वार्ता ना पारे सुनिते ।। (११६८७)

जीवगोस्वामी मे चाचल्य भी कम न था। कहा जाता है कि एक बार रूपगोस्वामी के समीप वल्लभ भट्ट आये, रूपगोस्वामी को ग्रन्थ लिखता देखकर उसके बारे मे पूछताछ की और कहा कि मैं उस ग्रन्थ का शोधन कर दूंगा। वे यमुना स्नान करने चले गये। जीवगोस्वामी को भट्ट जी के उक्त कथन से ठेस पहुंची वे यमुना तट पर गये और उनसे यह प्रश्न किया कि आपको इस ग्रन्थ मे किन स्थलो पर दोष दिखलाई पडे हैं। भट्ट जी के उत्तर से दोनो मे विवाद छिड गया।[1] उन्होने रूपगोस्वामी से पूछा कि यह बालक कौन है तब रूपगोस्वामी ने परिचय दिया कि यह मेरा शिष्य है एव भ्रातृव्य है—

श्री रूप कहे ने किवा, दिब परिचय
जीव नाम, शिष्य मोर भ्रातार तनय ।।

वल्लभ भट्ट जीवगोस्वामी की प्रशसा कर चले गये किन्तु रूपगोस्वामी समझ गये कि अवश्य ही जीवगोस्वामी ने इन्हें शास्त्र विचार मे तिरस्कृत किया होगा। क्योकि वे जीवगोस्वामी के स्वभाव से पूर्ण परिचित थे। उन्होने खिन्नता पूर्वक जीवगोस्वामी को पूर्व की ओर चले जाने का आदेश दिया। यह भक्ति रत्नावली मे है—

मोर कृपा करि भट्ट आइना मोर पाने
मोर हित लागि ग्रन्थ शोधिब कहिना ।।

---

१. भक्तिरत्नावली ४।१६३५—'श्री जीवेर साथ भट्ट नारे पण्डितारे।'

ए अति अल्प वाक्य सहिते नारिला
ताहे पूर्व देशे शीघ्र करह गमन ।। (५।१६४१-४३)

रूपगोस्वामी की अनुल्लघनीय आज्ञा थी अत जीवगोस्वामी पूर्व की ओर नन्दघाट के समीप जा पहुँचे। वहाँ कन्द-मूल से अपना निर्वाह करते, कई बार उन्हे उपवास भी करने पडते थे। कालान्तर मे दुर्बलता के कारण जीवगोस्वामी का पहचानना कठिन हो गया। एक दिन सनातन गोस्वामी भ्रमण करते हुए वहाँ आये और इनकी दशा देखकर रूप गोस्वामी के समीप लाकर क्षमा करा दिया। सनातन के अनुग्रह से इन्हें आरोग्य लाभ हुआ—

श्री जीवेर आरोग्य सबार हर्ष मन
दिलेन सकल भाव रूप सनातन
श्री रूप सनातन अनुग्रह हइते
श्री जीवेर विद्या बल व्यापिल जगते ।। (वही ५।१६६४)

प्रसिद्ध है कि षट् सन्दर्भो की रचना नन्दघाट पर हुयी थी। जीव गोस्वामी अत्यन्त उदार एव कृतज्ञ थे उन्होंने विद्वानों का आदर करना सीखा था। इसकी पुष्टि वैष्णव तोषिणी, दशम स्कन्ध के मगलाचरण से द्रष्टव्य है—

श्रीमन्मदन गोपाल वृन्दारण्यपुरन्दरम्
श्रीगोविन्द प्रपद्येऽह दीनानुग्रह कातरम् ।।
श्रीमाधवपुरी वन्दे यतीन्द्र शिष्य सयुतम्
लोकेष्वकुरितो येन कृष्णभक्ति सुराघ्रिप ।।
श्रीभागवत सिद्धयाप्ते टीका दृष्टिरदायियै
श्रीधर स्वामि पादास्तान् वन्दे भक्त्येक रक्षकान् ।।
भट्टाचार्य सार्वभौम विद्यावाचस्पतीन् गुरून्
वन्दे विद्या भूषणच गौडदेश विभूषणम् ।।
वन्दे श्रीपरमानन्द भट्टाचार्य रसालयम्
राम भद्र तथा वाणी विलासचोपदेशकम् ।।
नमामि श्रीमदद्वैताचार्य श्रीवासपण्डितम्
नित्यानन्दावधूतच श्री गदाधर पण्डितम् ।।
श्री वासुदेवदत्तच श्रीगोविन्द मुकुन्दकम्
मुरारिगुप्तमन्याश्च वन्दे चैतन्य सेवकान् ।। (२८)

उक्त मगलाचरण से स्पष्ट है कि उन्होने मदनगोपाल, गोविन्दमाधव पुरी (सन्यासी) श्रीधर स्वामी, भट्टाचार्य सार्वभौम, विद्यावाचस्पति, विद्याभूषण, परमानन्द भट्टाचार्य, रामभद्र, वाणी विलास, अद्वैताचार्य, श्रीवास

पण्डित, गदाधर पण्डित, दामोदर, वासुदेवदत्त, मुरारि गुप्त आदि को नमस्कार किया है। गोपाल भट्ट तथा रघुनाथदास भट्ट की विशेष सहायता का आभार प्रकट करते हुए इन्होने लिखा है कि उनकी कृपा से ही मैं ग्रन्थ लेखन मे सफल हुआ हूँ—

राधा प्रिय प्रेम विशेष पुष्टो
गोपाल भट्टोरघुनाथ दास.।
स्यातामुभौ यत्र सुहृत्सहायौ
को नाम सोऽर्थो न भवेत् सुसिद्ध ॥

जीव गोस्वामी के सम्बन्ध मे एक किंवदन्ती है कि ये जितने उदार विनम्र तथा सरस थे उतने ही क्रोधी भी थे। कविराज गोस्वामी के ग्रन्थ चैतन्य चरितामृत को इन्होने एक बार कुये मे डाल दिया था। जिसके कष्ट के कारण उन्होंने अपने प्राणो का विसर्जन कूप मे कर दिया था। कतिपय गौड़ीय वैष्णवाचार्य इस घटना को ऐकान्तिक सत्य नही मानते है।[1]

अकबर बादशाह से भेंट—किम्वदन्ती है कि एक बार अकबर सम्राट के राजदरबार मे गगातटवासी एव राजपूतानावासी दो दलो मे एक विवाद चल पडा था। एक दल का कथन गगा की श्रेष्ठता द्वितीय दल यमुना की श्रेष्ठता सिद्ध करता था। इसके समाधान के लिये जीवगोस्वामी को मध्यस्थ चुना गया। उन दिनो जीवगोस्वामी वृन्दावन छोडकर कही नही जाते थे। अत आगरा का निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। बादशाह ने उनके राधिवास वृन्दावन के नियम का पालन करने का वचन दिया तथा घोडो का प्रबन्ध कर दिया। जीवगोस्वामी ने निर्णय देते हुए कहा कि 'गगा विष्णु चरणामृत है तथा यमुना प्रेयसी है, अत यमुना श्रेष्ठ है।' इसे सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जीवगोस्वामी को पर्याप्त धनराशि भेंट की लेकिन इन्होने उसे विरक्तता के कारण अस्वीकार कर दिया। विशेष आग्रह देखकर इन्होंने बनारस तथा आगरे मे निर्मित कागज लेना स्वीकार किया था। कागज प्राप्ति के पूर्व ग्रन्थ लेखन के लिये इन्हे भोजपत्र तथा ताडपत्रों का प्रयोग करना पडा था।[2]

जीवगोस्वामी के समय स्वकीया-परकीयावाद की धूम मची हुई थी। उन्होंने केवल नित्य लीला मे परकीयात्व स्वीकार नही किया। उन्होंने लिखा है कि—

---

१. १०८ श्रीभक्तिहृदय वनमहाराज-रेक्टर (प्राच्य दर्शन विद्यापीठ) वृन्दावन।
२ वही।

स्वकीया परकीया रूपेद्विविध संस्थान
परकीया भावे अति रसेर उल्लास
ब्रज विना इहार अन्यत्र नहि वास ।।
श्रृंगाररस में औपपत्य रसाभास जनक है ।

(ख) सम्प्रदाय—'वन्दे चैतन्य सेवकान्' (लघु० उपसंहार)

इस वाक्य एवं सनातन रूप के शिष्यत्व से स्पष्ट है कि वे चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी थे ।

(ग) स्थितिकाल—जीवगोस्वामी ने अपने परिचय में जन्म समय का उल्लेख कहीं नहीं किया है । किन्तु यह निश्चित है कि ये सनातन गोस्वामी की टीका रचना के समय विद्यमान थे । इस टीका की रचना सम्वत् १६११ विक्रम में हुई थी । इसका उल्लेख जीवगोस्वामी ने भी किया है । इस समय जीवगोस्वामी की ३०–३१ वर्ष की अवस्था मानी जाय तो सम्वत् १५८० विक्रम के आसपास उनका जन्म समय बैठता है । विश्वकोश में जीवगोस्वामी का जन्म पौष शुक्ल तृतीया सम्वत् १५८० एवं ब्रजरजवास तिथि आश्विन शुक्ल तृतीया सम्वत् १६७५ का उल्लेख किया है ।[1] भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने निबन्ध में इनका जन्म सम्वत् १५६१ वि० लिखा है तथा अन्तर्द्धान् सम्वत् १६७६ विक्रम में माना है । यदि उक्त मत स्वीकार किये जाय तो इनका वल्लभ भट्ट वाली घटना से सम्बन्धित मानना अयुक्त होगा । । क्योंकि उनका अन्तर्द्धानकाल १५८७ वि०'निश्चित है ।[2]

(घ) कृतियाँ—१ षट्सन्दर्भ—छ सन्दर्भों का नाम षट्सन्दर्भ है ।

(क) तत्वसन्दर्भ—दर्शन का ग्रन्थ है ।
(ख) भगवत्सन्दर्भ—इसमें ब्रह्म और भक्ति का विचार है ।
(ग) परमात्मसन्दर्भ—परमात्मा के विषय में विचार ।
(घ) श्रीकृष्णसन्दर्भ—कृष्ण के सम्बन्ध में निर्णय ।
(ङ) भक्तिसन्दर्भ—भक्ति का विवेचन है ।
(च) प्रीतिसन्दर्भ—भगवान् की प्रीति को सबसे बड़ा पुरुषार्थ कहा है ।[3]

२ सर्वसम्वादिनी (षट् सन्दर्भ व्याख्यान)—३११ श्लोकों का यह ग्रंथ

---

१ विश्वकोश खण्ड ७-८ पृष्ठ १०६ (बंगाक्षर)
२. (क) सनातन तोषणी (ख) ब्रजधाम और गोस्वामीगण, पृष्ठ १७१ ।
३. वैष्णव अभिधान कोश, पृष्ठ १६८६ ।

चार भागो मे विभक्त है, इसकी रचना भागवत सन्दर्भ की विशिष्ट स्थलो की पूर्ति हेतु की गयी थी। 'सर्वसम्वाद' से स्पष्ट है कि इसमे वेद, वेदान्त, व्याकरण तथा पूर्वाचार्यो की समालोचना की गयी है।

(३) हरिनामामृत व्याकरण—यह ग्रन्थ गोपालदास नामक शिष्य के लिये रचा गया था। इस ग्रन्थ मे ३१८६ सूत्रो का विवेचन है।

(४) सूत्र मालिका—हरिनामामृत मे व्याख्यात सूत्रो को व्यवस्थानुसार रखा गया है।

(५ दुर्गसङ्गमिनी—यह भक्ति रसामृत की टीका है। गौड़ीय वैष्णव साधन ज्ञान के लिये यह ग्रन्थ अति उपादेय है।

(६) श्रीमाधव महोत्सव—यह महाकाव्य १४७७ शाके मे रचा गया। इस ग्रन्थ मे ६ उल्लास तथा ११५६ श्लोक है। राधा के वृन्दावन राज्य के अभिषेक का वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना रूपगोस्वामी के आदेशानुसार की गयी थी।

(७) श्रीगोपाल चम्पू—यह दो भागो मे विभक्त है। पूर्व भाग मे किशोरावस्था पर्यन्त की लीलाओ का वर्णन है, उत्तर भाग मे मथुरागमन मे गौलोक गमन का वर्णन है। इस ग्रन्थ की भाषा दार्शनिक है और व्रजरस पूर्ण रूपेण भरा पडा है। कविराज ने चैतन्य चरितामृत मे ठीक ही लिखा है—

श्रीगोपाल चम्पू नामे ग्रन्थ महाशूर
नित्य लीला स्थापन याहे व्रजरसपूर ॥ (१.४४ बगा०)

(८) सकल्प कल्प वृक्ष—इसमे दशमस्कन्ध की लीलाओ को समन्वित करने का सफल यत्न किया है। यह चम्पू के भावो का भी द्योतन कराता है। सकल्प कल्प वृक्षो ऽय चम्पू भावार्थ सूचक'। ७३१ श्लोको का यह ग्रन्थ चार भागो मे विभक्त है।

(९) श्रीगोपाल विरुदावली—यह काव्यात्मक शैली की उत्कृष्ट रचना है।

(१०) सुखबोधिनी—यह गोपालतापिनी उपनिषद् की टीका है। इस टीका मे गोपाल रूप ब्रह्म ही सर्वोत्तम है यह सिद्ध किया गया है।

(११) दिग्दर्शिनी—यह ब्रह्म सहिता की टीका है। इसमे कृष्ण का कर्तव्य तथा आनन्दमय मूर्तित्व प्रतिपादित है।

(१२) लोचनरोचनी—यह उज्ज्वल नीलमणि के भावो की स्पष्ट व्याख्या है। जीवगोस्वामी की प्रखर प्रतिभा का दर्शन भी इस ग्रन्थ के अवलोकन मे किया जा सकता है।

(१३) गायत्रीभाष्य—इसमे अग्निपुराणस्थ २१६ अध्याय के १७वे श्लोक की व्याख्या बड़े विस्तार के साथ की गई है।

(१४) क्रमसन्दर्भ–यह भागवत की टीका है। इसकी रचना के सम्बन्ध मे लेखक ने लिखा है कि—भागवत सन्दर्भ तथा वैष्णव-तोषणी के दर्शन से जहाँ भी कही मुझे स्फूर्ति मिली है वहाँ ही भागवत की व्याख्या के रूप मे यह सन्दर्भ लिखा गया है।

(१५) धातु सग्रह–इसमे भू आदि धातुओ का सग्रह है।

कृष्णलीला कथा बीज रूप धातुगणोमया
सक्षेपाद्वक्ष्यते तेन कृष्णो मह्य प्रसीदतु ॥

यह ग्रन्थ हरिनामामृत के पश्चात् रचा गया था।

इससे इतना तो स्पष्ट है कि जीवगोस्वामी की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे सार्वदेशिक विद्वान्, रससिद्ध कवि, आलकारिक एव उच्चकोटि के पौराणिक थे। उनका जीवन भागवतमय बन चुका था। उनकी समस्त रचनाएँ एक प्रकार से श्रीमद्भागवत की अर्थप्रकाशन की सहायिका हैं। ब्रजवास एव ब्रजरस ज्ञान के कारण उनकी भागवत टीका भी अन्य टीकाओ से अपना महत्व बनाये हुए है। टीका मे ब्रज के रीति-रिवाज, भौगोलिक सीमा आदि का निरूपण बडे ही सरल ढग से प्रस्तुत किया गया है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम–श्रीमद्भागवत पर जीवगोस्वामी की व्याख्या 'क्रम सन्दर्भ' के नाम से प्रसिद्ध है। वैसे इनकी भागवत पर ३ टीका कही जा सकती है—१ क्रम सन्दर्भ २ बृहत्क्रमसन्दर्भ ३ वैष्णवतोषिणी। 'क्रम सन्दर्भ' एक विशेष हेतु से सम्बन्धित है, गूढार्थ प्रकाशक, नानार्थ वस्तु, सारोक्ति श्रेष्ठता आदि वाली रचना सन्दर्भ कहलाती है—

गूढार्थस्यप्रकाशश्च सारोक्ति श्रेष्ठता तथा
नानार्थत्व च वेद्यत्व सन्दर्भ कथ्यते बुधैं। (प्रारम्भ)

जीवगोस्वामी रचित यह सप्तम सन्दर्भ है, षट् सन्दर्भ की चर्चा तृतिया मे की जा चुकी है। यह सन्दर्भ श्रीधर स्वामी के अव्यक्त भाव तथा व्यक्त होने पर भी अस्फुट भावो का सरलतम ढग से उद्बोधक है—

स्वामिपादैर्नयद् व्यक्त यद्व्यक्त चास्फुट क्वचित्
तत्र तत्र च विज्ञेय सन्दर्भ क्रम सज्ञक ॥ (वही मगला०)

परिमाण—यह सन्दर्भ सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पर लिखा गया है। यद्यपि यह व्याख्यात्मक शैली मे लिखा गया है तथापि विस्तार कहीं-कही इतना अधिक हो गया है जिसमे एक पृथक् निबन्ध ही बन जाता है यथा 'श्रवण कीर्तन विष्णो' की व्याख्या मे २०० पक्तियाँ भक्तिशास्त्र के स्तर से

(— ७।५।२३)

उद्देश्य—इस सन्दर्भ की रचना सम्बन्ध अभिधेय प्रयोजन निर्णय के लिये की गयी थी—

'अधुना श्रीमद्भागवत व्याख्यानाय तत्रापि सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन निर्णय दर्शनाय च सप्तमः क्रमसन्दर्भोऽयमारभ्यते।' (वही १।१।१)

प्रकाशन—आठ टीका सस्करण वृन्दावन से प्रकाशित। बगाक्षरो मे अनेक सस्करण विभिन्न स्थानो मे हो चुके हैं।

शैली—क्रमसन्दर्भ अन्वय मुख व्याख्या है। लम्बी भूमिकाओ द्वारा श्लोक की सगति बैठायी गयी है—

यथा 'भीष्मादीना स्वापराधमननशकया मुनीना स्वस्यापि शिक्षणेन युधिष्ठिरो न शाम्यतिस्म·························पूर्वाभिप्रायमेवव्यक्तीकर्त्तु माहपाण्डु पुत्रानिति।' (वही १।६।११)

भाषा मे लालित्य एव भाव प्राधान्य है। मन्तव्य का प्रकाशन स्वाभाविक ढग से कराया गया है। व्याकरण व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ के साथ प्रवृत्ति-लभ्य अर्थ को भी स्वीकार किया गया है। इस व्याख्या की कतिपय निजी विशेषताएँ है, जिनकी ओर लेखक ने ध्यान आकर्षित किया है। बिना इस कुजी के रहस्योद्घाटन सम्भव नही है। श्री जीवगोस्वामी ने इस सन्दर्भ का मूल लेखक गोपाल भट्ट को ही स्वीकार किया है। इसमे यदि कोई दोष भी हो तो वह मेरा ही समझा जाय कर्त्ता का नही।[1] दाक्षिणात्य भट्ट ने इसका विवेचन किया था, उसी की कृति का परिशीलन परिवर्द्धन इसमे किया गया है—

जयता मथुरा भूमौ श्रील रूप सनातनौ
यौविलेखयतस्तत्वज्ञापकौ पुस्तिकाभिमाम्॥
तौसन्तोषयता सन्तौ श्रील रूप सनातनौ
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद्विविच्यते॥
तस्याद्य ग्रन्थना लेख क्रान्त व्युत्क्रान्त खडितम्
पर्यालोच्याथ पर्याय कृत्वालिखति जीवक॥
पूर्व यान्येव वाक्यानि धृतान्यर्थ विशेषत
तानि मूलक्रमेणापि धार्याणि क्रमलब्धये॥ (वही मगलाचरण)

---

१. श्रीभागवतसन्दर्भान् श्रीमद्वैष्णव तोषिणीं
दृष्ट्वा भागवतव्याख्या लिख्यतेऽप्रययामतिः।
यदत्र स्खलितं किंचिज्जायतेऽनवधानत.
ज्ञेयं न तत्तत् कर्त्तृणां समाहर्तुर्ममैव तत्॥ (वही मंगलाचरण)

इसमे पूर्व व्याख्या पूर्व पक्ष सम्मत तथा सर्वान्तिमा जीवगोस्वामी सम्मत है—

पूर्वं पूर्वात्र च व्याख्या पूर्वपक्षानयामता
सर्वान्तिमा तु विज्ञेया स्वसिद्धान्ततयामता ॥

टीका मे जहा अक दिये हैं वे मूल से अभिमत है, कही अक नही दिये गये वहाँ पूर्व श्लोक से सम्बद्धित उसे मानना चाहिये । अर्द्धक-युग्मक के सकेत भी यथास्थान दिये गये हैं—

अथात्र परिभाषेय ज्ञातव्या यद्यपेक्ष्यते
मूल सटीकमकार्थं परिच्छेद्य सहानया ।
अ का वाक्यान्त एवात्र देया
बहुपद्यैक वाक्यत्वे गर्भाका बिन्दु मस्तका ॥
यस्मिन् पद्ये नास्ति टीका तदप्यकेन योजयेत्

बहुपद्यैकवाक्यत्वऽप्यमीत्रे यास्तथाविधा
यथार्द्धक युग्मक च त्रिकमित्याद्युदाहृति ॥ (वही मगलाचरण)

श्रुतिवाक्यो को अधिकतर वेदस्तुति मे प्रमाण के लिए उद्धृत किया है । अनेक ग्रन्थो का उल्लेख इस टीका मे उपलब्ध होता है । विशेषत हनुमद् भाष्य, वासनाभाष्य, सम्बन्धोक्ति विद्वत्कामधेनु तत्वदीपिका भावार्थ दीपिका, परमहसप्रिया, शुकहृदया, मुक्ताफल, हरिलीला भक्ति रत्नावली, सम्प्रत्सर प्रदीप, शारीरिकभाष्य ब्रह्मसहिता, गरुड पुराण, स्कन्दपुराण पद्म तथा विष्णु पुराण मध्वभाष्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं (क्रम सन्दर्भ १।१।१) । ग्रन्थकारो मे चित्सुख[1], श्रीधर स्वामी[2] का उल्लेख सर्वाधिक किया है । क्वचित् तंव्याख्यातम् पद से श्रीधर का उल्लेख है । व्याख्या मे अनेक परिभाषाएँ दी गयी है यथा उत्तम श्लोक की परिभाषा देते हुए लिखा है कि जो जगत् के जीवो का मल दूर करते है, मलमूत्रादि रहित है—वे उत्तम (पुण्य) श्लोक है—

जगज्जनमलध्वसि श्रवण स्मृति कीर्तन
मलमूत्रादिरहिता पुण्य श्लोक इतिस्मृता ॥

जीवगोस्वामी ने जिन भागवत टीकाओ का उल्लेख किया है उनमे कतिपय तो नाम से भी अप्रसिद्ध हो चुकी हैं ।

---

१ क्रमसन्दर्भ १।२।२, ४।१६।४१, ४।१०।२२-२३, ४।२५।३०-३२, ४।२७।६-१०, ४।२८।६१, ४।२६।३ आदि ।

२. क्रमसन्दर्भ १।१।१, ४।२७।१, ४।२७।५ आदि ।

(ङ) वैशिष्ट्य (वृहत्क्रम सन्दर्भ)—यह सन्दर्भ दशम स्कन्ध के ब्रह्म स्तुति (भा० १०।१४) रासपचाध्यायी (१०।२६।३३) भ्रमरगीत (१०।४७) एव वेदस्तुति (भा० १०।८७) प्रकरण पर उपलब्ध है । आठ टीका सस्करण में दशम स्कन्ध के १४ वे अध्याय के ८ वें श्लोक पर यह सूचना टिप्पणीकर ने दी है कि वृहत्क्रम सन्दर्भ पश्चात् प्राप्त हुआ था, अत मुद्रण भी यही से किया गया है । क्रमसन्दर्भ में जो विचार अस्पष्ट है वे 'वृहत्क्रम सन्दर्भ' मे विस्तार के साथ स्पष्ट किये गए हैं । अधिकाश भाग वृहत्तोषिणी–वैष्णवतोषिणी से साम्य रखता है । भावार्थ विस्तार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'पुष्प प्रियत्वात् माधवावमन्त इत्यभिप्राय (क्र० स० १०।३०।८)

यहाँ अभिप्राय शब्द का प्रयोग भावार्थदीपिकाकार से सम्बन्धित है । इसी क्रम सन्दर्भ के व्याख्यात श्लोक की टीका का विस्तार वृहत्क्रमसन्दर्भ की टीका मे है। यथा–

हे सख्य अनया दृष्टोऽसौ सापत्न्यादेव न कथ्यते तदेता मालत्यादी । पृच्छाम एतास्त्वमस्माक सखी प्राया एवेति तथा पृच्छन्ति हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति, हे यूथिके इतिभावार्थ । (१०।३०।८)

इससे यह स्पष्ट है कि वृहत्क्रम सन्दर्भ म भावो के प्रकाशन पर अधिक श्रम किया गया है । वृहत्क्रम सन्दभ की रचना वैष्णवतोषिणी के पश्चात् हुई थी । यह 'दृष्ट्वा वैष्णव तोषिणी' पद के द्वारा स्पष्ट है । क्र० स० १।१।१। वृहत्क्रम सन्दभ म जीवगोस्वामी की मौलिकता की झाकी देखने को प्राप्त होती है ।

(ङ) वैशिष्ट्य–(वैष्णवतोषिणी)–सनातन गोस्वामी ने वृहत्तोषिणी की रचना अति विस्तार मे की थी । सनातन गोस्वामी न इसका सहज आस्वादन प्राप्त करने के लिये जीवगोस्वामी स इस टीका को सक्षिप्त करवाया था । इसम सनातन के अस्पष्ट भावो को भी स्पष्ट करने का यत्न किया गया है । इसका प्रकाशन भी आठ टीका सस्करण म वृन्दावन से हुआ है । यह टीका केवल दशमस्कन्ध पर है । ब्रज, गोपिका एव राधा की महत्ता के सम्बन्ध म इन्होंने इस टीका म बडे विस्तार के साथ स्वाभिप्राय का प्रकाशन किया है । इस टीका का प्रत्यक अक्षर मूल्यवान् है । प्राय वृहत्तोषिणी के भाव तथा अक्षर भी ज्यो के त्यो इसमे दिखलाई पडते हैं ।

३. विश्वनाथ चक्रवर्ती

(क) परिचय—श्रीमद्भागवत की रसमयी अनूठी टीका के रचयिता आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय क सम्मान्य रत्नो म थ ।

इनके पिता का नाम रामनारायण चक्रवर्ती था। विश्वनाथ के ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्र तथा कनिष्ठ रघुनाथ थे।[1] सम्प्रदाय की जनश्रुति के अनुसार विश्वनाथ के जन्म के समय एक तेज पुंज सूती गृह मे समाविष्ट हुआ था और उसी से इनका जन्म हुआ था। जगन्नाथ के पुत्र नरहरि चक्रवर्ती ने इस घटना का उल्लेख भी किया है।[2] जगन्नाथ श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। विश्वनाथ के पूर्व पुरुष 'वर्द्धमान' नामक स्थान के निवासी थे। भट्टनारायण 'नदिया' नामक ग्राम मे निवास करने लगे थे। 'ऐतिहासिकों' का कथन है कि देवगाव मे कभी पाण्डव छद्म वेष मे रहे थे। कल्याण वर्मा प्रभृति नरेशों की राजधानी भी यहा थी। यह देवग्राम वर्तमान मे कालीगज थाने के अन्तर्गत है।

शिक्षा—विश्वनाथ का विद्यारम्भ देवग्राम मे ही हुआ था।[3] स्वल्प काल मे काव्य-व्याकरण आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। विश्वनाथ भक्तिशास्त्र का अध्ययन करना चाहते थे, अत ज्येष्ठ बन्धु की आज्ञानुसार सैयदाबाद स्थान के उस नरोत्तम ठाकुर के अन्यतम शिष्य-रामकृष्ण आचार्य के पुत्र प्रधान पण्डितो मे थे। विश्वनाथ ने भागवत का अध्ययन इन्ही के पास किया था।

विवाह—इन्हे अनिच्छा से गृहस्थ मे आना पडा। विवाह के उपरान्त भी ये स्त्री से कभी प्रेमालाप नही करते थे। एक बार गुरु के आग्रह विशेष से स्त्री के समीप जाने पर सारी रात भागवत की कथा सुनाकर व्यतीत कर दी। अवसर पाते ही बिना सूचना के व गृहस्थ त्याग कर चले गये।

उपनाम—गृह परित्याग कर विश्वनाथ वृन्दावन चले गये। वैष्णव समाज म रूपकराया प्रगण मे प्रमुख हो जाने के कारण ये 'हरिवल्लभ' नाम से विख्यात हो गए।[4] इस अवसर म विश्वनाथ ने विभिन्न विद्वानो की कृपा स

---

१ वैष्णवाचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती—सं० गोपालगोस्वामी, प्राच्यवाणी कलकत्ता (बगा)।

२. जन्म हइ तेज पुंज अतिर गमाम
 हर्नेर मालिया ताहा हैल अन्तर्द्धान
 बालक देखिया सुन्न माकिल सबार
 मर्त्ये मर्त्ये बागरेर हैसे चमत्कार॥ (नरोत्तम विलास)

३ वैष्णव अभिधान कोष, पृष्ठ १६७० बगाब्द (हरिदास गौड़ीय)

४ भागवत पत्रिका—गौड़ीय मठ मथुरा, वर्ष ६, स०१०, पृष्ठ ३६१।

शास्त्रों का अवगाहन किया। राधारमण,[1] कृष्णचरण[2] आदि विश्वनाथ के गुरु थे। राधारमन का संक्षिप्त नाम राम तथा कृष्णचरण का कृष्ण था। निम्न श्लोक में दोनों नाम अंकित हैं—

श्रीराम कृष्णगगाचरणान् नत्वा गुरुनुर प्रेम
श्रील नरोत्तम नाथ श्री गौराग प्रभुं नौमि ॥

गगाचरण—कृष्ण के गुरु थे, नाथ शब्द से लोकनाथ का ग्रहण किया जाता है। लोकनाथ नरोत्तम के गुरु थे।

अध्यापक पद—संस्कृत भाषा के पठन-पाठन की क्षीण प्रणाली देखकर विश्वनाथ ने गुरु की आज्ञा से अध्यापन भी किया। इस बीच संस्कृत के अनेक ग्रन्थ भी इन्होंने रचे। संस्कृत की रचना द्वारा इनका संस्कृत के प्रति प्रगाढ प्रेम अधिक परिलक्षित होता है। विश्वनाथ के पास देश देशान्तर के छात्र विद्याध्ययन के लिये आते थे। कविकर्णपूर की रचना 'अलकार कौस्तुभ' की टीका भी विश्वनाथ ने संस्कृत में ही की थी।

वृन्दावन यात्रा—षट् गोस्वामियों के तिरोधान के पश्चात् वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण भी अपनी महिमा का तिरोधान करने लगे थे। जीवगोस्वामी के शिष्यों ने श्री विग्रह इतस्ततः छिपा दिये थे। व्रजधाम में अन्धकार छाने लगा था। गोपीनाथ, मदनमोहन, गोविन्द जी, राधाविनोद, राधा दामोदर, प्रभृति विग्रह व्रजभूमि छोड़कर इधर-उधर चले गये थे। जो वृन्दावन गौराग की कृपा से गौड़ीय वैष्णव गण द्वारा सुप्रतिष्ठित किया गया था, वह ह्रासोन्मुख हो रहा था। विश्वनाथ ने इसके उद्धार का व्रत ग्रहण किया। यद्यपि वे इस कार्य में असहाय ही जुट गये थे तथापि उन्हें बलदेव विद्याभूषण का पर्याप्त सहयोग मिला। वृन्दावन में इस कार्य का श्री गणेश करने के उपरान्त एक बार ये गौड़देश गये तथा अनेक स्थानों में भ्रमण करने उपरान्त पुनः वृन्दावन आये।

राधाकुण्ड वास—विश्वनाथ ने वृन्दावन से अधिक शान्ति का अनुभव राधाकुण्ड में किया। अधिकांश ग्रन्थ राधाकुण्ड में रचे गये थे—

करिलेन वास राधाकुण्ड समीपे ते
रचिलेन बहु ग्रन्थ व्यापिल जगते ॥

षट् गोस्वामियों के ग्रन्थ अत्यन्त दुरूह थे। उन्हें बंग-देश निवासी भी नहीं समझ पाते थे, विश्वनाथ ने उनकी टीकाएँ की।

---

१ 'श्रीराधारमण मुदा गुरुवर वन्देनिपत्यावनौ'
(स्तवामृत लहरी—गुरुचरणाष्टक, विश्वनाथ कृत)

२ 'स कृष्ण चरण प्रभुः प्रदिशतु स्वपादामृतम्' (वही—परमगुरु अष्टक)

राधा-दर्शन—राधाकुण्ड निवास के अवसर पर विश्वनाथ की दृष्टि मे कविराज गोस्वामी का एकपद आया जिसका अर्थ बडी कठिनाई से भी समझ मे न आ सका, वह पद निम्न था—

काम गाइत्री रूप हय कृष्णेर स्वरूप
सार्द्ध चब्विश अक्षर तार हय ।

विश्वनाथ ने विचार किया कि यह या तो कविराज की भूल है या मेरी, पर वे भूल नही कर सकते । काम गायत्री कृष्ण का स्वरूप कैसे है ? यह उनकी बुद्धि मे नही समा रहा था । फलतः उन्होंने प्राण त्याग का निश्चय किया । रात्री को 'राधा जी' ने स्वप्न दिया और इस पद का आशय समझाया, तब विश्वनाथ प्रसन्न हुए । विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक भगवद्विग्रह की स्थापना भी की थी । यह विग्रह आज भी वृन्दावन मे 'गोकुलानन्द' नाम से विद्यमान है । विश्वनाथ ने माघ शुक्ल पचमी के दिन राधाकुण्ड मे शरीर त्याग दिया । वृन्दावन के पत्थरपुरा नामक मुहल्ला मे इनकी समाधि है । वालूचर स्थान मे इनके वशधर अब भी निवास करते हैं ।

(ख) **सम्प्रदाय**—इनकी गुरु परम्परा का क्रम गौराग से ही माना जाता है । फलतः ये मध्व गौडीय सम्प्रदाय के अनुयायी थे । विश्वनाथ के परम गुरु नरोत्तम ठाकुर थे, नरोत्तम ठाकुर के गुरु लोकनाथ थे जिनका स्मरण विश्वनाथ ने मगलाचरण मे किया है । लोकनाथ चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे, यह प्रसिद्ध है । अत विश्वनाथ के सम्प्रदाय निर्णय मे कोई मतभेद नही है ।

(ग) **स्थितिकाल**—विश्वनाथ चक्रवर्ती के जन्म समय के बारे मे दो मत प्राप्त होते है । प्रथम के अनुसार इनका जन्म सम्वत् १६८५ है तथा द्वितीय के अनुसार सम्वत् १७२१ विक्रम । प्रथम मत श्यामलाल गोस्वामी का है, द्वितीय मत के सस्थापक अनक सम्प्रदायज्ञ गौडीय वैष्णवो की अनुश्रुति है । किन्तु गौराङ्ग लीला की रचना सम्वत् १७२६ मे की गई थी । अत विश्वनाथ ने इसे चार वर्ष की अवस्था म रचा हो, यह असम्भव है । अत इसे तो किसी प्रकार युक्त नही माना जा सकता । सर्वेश्वर वृन्दावनाक मे मे इनका जन्म सम्वत् १७०४ विक्रम लिखा है ।[1] 'राधाकृष्ण कुण्ड का इतिहास' के लेखक ने इन्हें १०८ वर्ष पर्यन्त जीवित रहना सिद्ध किया है ।[2] एक स्मृति

---

१ सर्वेश्वर वृन्दावनाक, पृष्ठ २६१ ।

२. राधाकृष्ण कुंड इतिहास, लें॰ नवद्वीपदास, राधाकुंड (मथुरा)

फलक के अनुसार इनका जन्म सम्वत् १७०० विक्रम एव देहत्याग सम्वत् १७८६ वि० माना गया है। इसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

'वैष्णवाचार्य विश्वनाथ। श्री गौरागाय नम

महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रकट काल शकाब्दा १५६५–१६५२ (सम्वत् १७००–१७८६ विक्रम)……… …

विश्वस्यनाथ रूपोऽसौ भक्ति वर्त्म प्रदर्शनात्
भक्त चक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्यया भवेत्।
सैयदा वासि श्री विश्वनाथाख्य शर्मणाऽद्भुता
चक्रवर्तीति नाम्नेय कृता टीका सुबोधिनी ॥

यह सुबोधिनी टीका अलकार कौस्तुभ पर की गई थी। यदि इनका जन्म सम्वत् १७०० वि० माना जाय तो भागवत की टीका की रचना ६१ वर्ष की अवस्था मे की गई, यह निश्चित है। भागवत की टीका शाके १६२६ मे की गई थी—

ऋत्वक्षि षड् भू मिते शाके राधा कृष्ण सरस्तटे
शुक्ले षष्ठ्या सिते माघे टीकेय पूर्णतामगात् ॥'[1]

विश्वनाथ ने क्षणदागीत चिन्तामणि की रचना शाके १६२७ मे की थी। इस कृति के पश्चात् कोई कृति नही लिखी गयी। अत उनका जन्म १७०० वि० मानना उचित है।

(घ) कृतियाँ—विश्वनाथ ने साहित्य की महती सेवा की थी। काव्य-दर्शन दोनो का कोई साधर्म्य नही है तथापि विश्वनाथ ने दोनो मे सफलता प्राप्त की थी। विश्वनाथ की १२ मौलिक कृतियाँ तथा १२ ही टीकाएँ है। इनमे भागवत की सारार्थदर्शिनी टीका गौडीय वैष्णव समाज का पूर्ण प्रतिनिधित्व भागवत पर निभाने मे समर्थ है।

वैष्णव अभिधान कोश[2] के अनुसार कृतियो का परिचय—

(१) उज्ज्वल नीलमणि किरण—यह टीका रूपगोस्वामी कृत 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रन्थ की सस्कृत टीका है। इस ग्रन्थ मे श्रीकृष्ण के ९६ प्रकार के भेदो का वर्णन है एव नायिका के ३६० भेदो का एव उसके स्वभाव, उसकी दूती आदि का विस्तृत विवेचन है।

(२) ऐश्वर्यकादम्बिनी—इस ग्रन्थ मे दर्शनशास्त्र का विश्लेषण है।

---

१. सारार्थदर्शिनी टीका-उपसंहार।

२. कृतियो का परिचय, पृष्ठ १५३०-१५५० तक।

(३) गौरगणस्वरूपतत्व चन्द्रिका—इसमे गौर महाप्रभु तथा उनके गणो का परिचय है।

(४) गौरांगलीलामृत—१६०१ शाके मे इसकी रचना हुई थी, खण्डित होने के कारण लेखक का नाम स्पष्ट ज्ञात नही होता।

(५) प्रेमसम्पुट काव्य—इस काव्य मे १४१ श्लोक हैं। राधा-कृष्ण के परिहास का सुन्दर निरूपण इसमे किया गया है। विश्वनाथ ने इसका सरलानुवाद भी किया है। शाके १६०६ मे इसकी रचना हुई थी—

पट् शून्य ऋत्वकनिर्गणिते तपस्ये-
श्री रूप वाङ्मधुरिमामृतपान पुष्टे
राधा गिरीन्द्र धरयो सरसस्तटान्ते
तत्प्रेम सम्पुटमविन्दत कोऽपि काव्यम्।।[1]

सरलानुवाद वगला मे 'राधा-कुण्ड' मे लिखा गया था—

राधा कुण्ड श्याम कुण्ड तटे अवस्थित हइया
प्रेम सपुट काव्य नाम अर्थात् रचना करिलेन।

(६) श्रीकृष्ण भावनामृत—यह २० सर्ग का महाकाव्य है इसमे १३२६ श्लोक हैं, जिनमे श्लेष का प्रयोग बाहुल्य, विशुद्ध शृगार रस-व्यजना अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। प्रत्येक लीला के वर्णन के अन्त मे युगल किशोर का एक बार मिलन वर्णन इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। रागानुगासाधना भक्ति की पद्धति पर इसकी रचना की गई है।

(७) चमत्कार चन्द्रिका—यह खण्ड काव्य है। यह काव्य चार कुतूहलो मे विभक्त है—प्रथम मे—मञ्जुषिका मिलन, द्वितीय मे—अभिमन्यु वेश मे मिलन, तृतीय मे—वैद्यवेश मे मिलन, चतुर्थ मे—गायिका वेश मे मिलन का वर्णन है।

(८) भक्ति रसामृत सिन्धु बिन्दु—यह रूप गोस्वामी की कृति 'भक्ति-रसामृत सिन्धु' का सार है।

अनधीत्य व्याकरणस्वर्णप्रवाहोद्धर्जनोऽस्मात्
भक्तिरसामृत सिन्धु बिन्दुर्गोविन्दुर्लोण ।।[2]

(९) श्रीभागवतामृत कणिका—यह लघु भागवतामृत का सार-मात्र है। अन्त मे लिखा है—

---

1 प्रेम सम्पुट, १४१ पद्य (बंगाक्षर) वैष्णवग्रन्थावली मे प्रकाशित।
2 वैष्णव ग्रन्थावली (बं०) अन्तिम २८।

अनधीत्य व्याकरणश्चरण प्रवणोहरेर्जनो यस्मात्
भागवतामृतकणिकामणिवाचनमिवानुस्यूता ॥

(१०) माधुर्य कादम्बिनी—यह प्रकरण ग्रन्थ ८ वृष्टियों में विभक्त है, विश्वनाथ की मौलिक कृति है।

(११) रागवर्त्मचन्द्रिका—भक्तिरसामृत सिन्धु बिन्दु का ही यह सक्षिप्त रूप है।

(१२) स्तवामृत लहरी—इसमें २८ स्तव हैं।

(१३) सुबोधिनी—अलकार कौस्तुभ की टीका नाम सुबोधिनी है। किन्तु सरस्वती भवन वाराणसी में कृष्णदेव सार्वभौम के नाम से रचित यह उपलब्ध है, सम्भव है विश्वनाथ की कृति अन्य रही हो।

(१४) आनन्द चन्द्रिका—यह उज्ज्वल नीलमणि की टीका है। इसका रचनाकाल शाके १६१८ है।

(१५) दानकेलि कौमुदी महती—रूपगोस्वामी कृत 'दानकेलि कौमुदी' पर यह टीका लिखी गयी है। कृष्ण की दानलीला का वर्णन है।

(१६) सुखवर्तिनी—आनन्द वृन्दावन चम्पू की टीका का नाम सुखवर्तिनी है। कविकर्णपूर ने भगवान की जिन मानवोचित या अतिमर्त्य लीलाओं का गाया है उनका निगूढ़ तात्पर्य और माधुर्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ने प्रकट किया है। पूतनावध (३।५ का०) तथा जृम्भण लीला (५।१) आदि में उनकी उत्कृष्ट शैली दर्शन योग्य है।

(१७) चैतन्य चरितामृत टीका-यह कविराज गोस्वामी कृत चैतन्य चरितामृत की टीका है। इस ग्रन्थ में गौड़ीय वैष्णव धर्म के नैतिक, तात्विक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विषय बड़े चातुर्य के साथ सजोकर रखे हैं।

(१८) प्रेमभक्ति चन्द्रिका—'प्रेमभक्ति' नरोत्तम ठाकुर की कृति है, विश्वनाथ ने इस पर 'चन्द्रिका' नामक टीका रची है।

(१९) भक्तिसारप्रदर्शनी—यह भी भक्तिरसामृतसिन्धु की टीका मात्र है।

भक्ति के बिना कर्म व ज्ञान की व्यर्थता सिद्ध की है। यह टीका प्रीति रसपूर्ण तथा काव्यवत् सहजबोध्य एवं आनन्ददायक है।

(२४) सारार्थदर्शिनी–यह प्रसिद्ध भागवत टीका है।

(२५) क्षणदागीत चिन्तामणि—इस ग्रन्थ मे ४५ कवियो के पद सग्रहीत हैं। इसमे ३६ पद हरिवल्लभ नाम से तथा १५ पद वल्लभ के नाम से सगृहीत है। किन्तु उक्त पद विश्वनाथ के ही हैं। हरिवल्लभ उनका उपनाम था यह लिखा जा चुका है। चण्डीदास का कोई पद इसमे नही हैं यह आश्चर्य की बात है—

'ए सखि विहि की पुरायब साधा
हेर वपन किये रूपनिधि राधा
....
कहे हरिवल्लभ सुत ब्रज वाला
हरि जप ये तुया गुन मणि माला ॥ (१६।५)

इसके पूर्वभाग से ज्ञात होता है कि वे उत्तर भाग नही रच सके।

(ङ) **टीका वैशिष्ट्य–नाम**—सारार्थ दर्शिनी का उल्लेख उन्होंने पुष्पिकाओं मे तथा कारिकाओं मे किया है—

'इति महामहोपाध्याय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति कृतायां सारार्थदर्शिण्या एकोनविंशतितमोध्याय ।' (१।१९)

प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ मे अध्याय का सार तथा प्रत्येकाध्याय के अन्त मे प्राय. एक कारिका लिखी है—

इति सारार्थ दर्शिण्यां हर्षिण्यां भक्त चेतसाम्
एकोनविंशा प्रथमे सगत. सगतः सताम् ॥ (१।१९)

केवल एक श्लोक मे इसे अपने नाम से भी सम्बोधित किया है—

'टीकेयं वैश्वनाथी भवतु भगवतो भक्तलोकस्य रस्या। (१२।१३)

इस टीका का नाम साभिप्राय रखा गया है। श्रीधर स्वामी, श्रीमहाप्रभु की व्याख्याओ का सार ग्रहण करने के कारण इसका नाम सारार्थ दर्शिनी है।[1]

परिमाण—यह टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध है।

---

१. श्रीधर स्वामिनां........ ....,........,....
व्याख्यानुसार ग्रहणादियंसारार्थ दर्शिनी। (वही १।१९ का०)

उद्देश्य—भागवत का सर्वशास्त्र मूर्धन्य सिद्ध करना एवं कृष्णस्वरूप प्रमाणित करते हुए चैतन्य के सिद्धान्तों को पुष्ट करना।

प्रकाशन--सं० १९६४ में नित्यस्वरूप द्वारा वृन्दावन से आठ टीका संस्करण में प्रकाशित।

शैली—यह अनुभव मुख व्याख्या है, सरल संस्कृत को प्राधान्य दिया है। काव्यगत श्लोकों की व्याख्या बड़े ललित शब्दों में की गई है। काठिन्य की ओर टीकाकार की अभिरुचि नहीं दिखलाई देती, यथा—

अवतारम्यास्य ब्रह्मावै कश्चित् सशेरते तत्र ये सशेरते ते सशेरता नाम अहन्तु साक्षादिमं परं ब्रह्म रूपमेवानुभवामि। (५।१६।४)

पदार्थ ज्ञान कराने के लिये किम् का अधिक प्रयोग किया गया है।

'तत किमत आह न कश्चिदिति। ततोऽपि किमत आह—अहो इति। (२।१६।८) शंका 'ननु' पद से उठाई गई है—

'ननु तर्हि कथमस्माकं क्लेशस्तत्र तत कारण प्राचीनार्वाचीन किमपि पापमपश्यत् आह 'सर्वकालकृत मन्य।' (१।६।१४)

अनेक लीलाएँ विश्वनाथ ने अपनी मौलिक देन में दी है और उनका आधार भागवत् ही है, यथा भागवत के 'मनोरमालापविहार विभ्रमैं (१०।३०।२) के आलाप शब्द के आधार पर कथोपकथन लिखे हैं। कृष्ण जब वन जाते हैं गोपियाँ उस विरह काल मानकर व्याकुल हो उठती हैं एवं कभी कभी वार्तालाप भी करती हैं मानो कृष्ण कह रहे हैं'—

जो स्थल पद्मिनी ? तृषात मधुकर को मधुपान के लिये मधु देगी या नहीं ?

गोपी—पद्मिनी का पति सूर्य है उसे छोड़कर वह तुच्छ भ्रमर को मधुपान क्या करायेगी ?

कृष्ण—पद्मिनी ! यह तो तुम्हारा स्वभाव है कि तुम अपने पति को परित्याग कर उपपति भ्रमर को ही भजती हो। इस आलाप से पराजित होकर हँसती हुई अधर पानादि विहार करने लगी।

सामावाची शब्दों की सुन्दर व्याख्या की गई है। यथा—शारदा—शीयत इति शार त ममार पति खण्डयति इति शारदा।

---

१ कृष्ण—अयिस्थल पद्मिनि ? अति तृष्णार्ताय मधुपाय स्व मकरन्द दास्यसि न वा।

गोपी—भो भ्रमर ! पद्मिन्या पतिः सूर्य एव न तु भ्रमरस्तत्कथ त्वां स्व स्वीय मधु पायमिष्यति। (सारार्थ दर्शिनी १०।३०।२)

विचित्रार्थ—तात्पर्यार्थ बडे विचित्र लिखे हैं जैसे शिव के वीर्य से सोने चादी की खान बनी। इसका अर्थ सुवर्ण प्राप्ति के लिये शिवोपासना किया है (८।१२।३३)। कल्पनाशक्ति बडी विलक्षण थी—चीरलीला प्रसग मे गोपिया वस्त्र मागती हैं, कृष्ण उन्हे देवियो के बतलाते हैं, यहा बडा मधुर आलाप प्रस्तुत किया है। सम्प्रदाय भावना को उचित स्थलो पर ही प्रकट किया है—

'परिच्छिन्नस्यापि मत्स्वरूपस्यव्यापकत्वादित्यचिन्त्य शक्तिमत्वच-दर्शितम्।' (६।४।४७)

अनेक शकास्पद स्थलो का सुन्दर समाधान किया। अवतार ग्रहण भूमि पर वात्सल्यादि गुणो का वैकुण्ठ मे उपयोगाभाव होने के कारण हुआ। (१०।१।१) भागवत की कथा ब्राह्म कल्प की है, पद्म कल्प की नही। (३।४।१३)

विद्वानो द्वारा 'भागवत का सिहासन पर रख कर दान देने का' उल्लेख विरुद्ध प्रतीत होता था। कतिपय विद्वान् शका करते थे कि सिंह देवी का वाहन है अत महापुराण देवी भागवत ही है। विश्वनाथ ने बडी युक्तिपूर्वक समाधान किया है—श्री मद्भागवत् पुराणार्क है अत सम्राट है, सम्राट का सिंहासन पर आसीन होना उचित ही है। अथवा उस समय सिंह राशि के सूर्य थे तथा भाद्रपद मास की पूर्णिमा को इस ग्रन्थ की समाप्ति हुई थी। (१२।१३।१४) अत सिंहासन द्वारा उसकी तिथि का सकेत किया गया है। अथवा भगवान विष्णु के लिये भी सिंहासन प्रदान पांचरात्रागम सम्मत है, अत दोष नही। टीका मे देवी देवताओ की न तो निन्दा ही की गई है न उपेक्षा। देवी दुर्गा के नामो की सुन्दर व्युत्पत्ति (२।१८।१४) शिव की महिमा आदि सभी के बडे सुन्दर चित्रण हैं। राम की परब्रह्मता का प्रतिपादन सुन्दर रीति से किया है।

ब्रजभूमि वास के कारण वे यहा की मान्यताओ की भी अच्छी जानकारी रखते थे। शकट को गोपों का अधिदेव मानना आदि इसी भावना के परिचायक हैं। (१०।७।१२) श्रीकृष्णलीला भाव वाले प्रक्षिप्त श्लोकों को भी सादर ग्रहण किया है, यह भी इस टीका की विशेषता है।[1] क्षेपक या प्रक्षिप्त मानकर भागवत के श्लोको का क्वचित् तिरस्कार नही किया। गौडीय वैष्णव समाज मे सनातन गोस्वामी की रसमयी टीका के पश्चात् सारार्थ दर्शिनी टीका ही अधिक सम्मान्य है। भागवतशास्त्र रूपी अगाध अमृत

१. 'यदि कसाद्विमेषित्व तर्हिमां गोकुले नय' (वही० १०।३।४६)

सरोवर मे अवगाहन करने वाले व्यक्तियो के लिए सारार्थ दर्शिनी सोपान है। इस *टीका की विशेषता है कि इसके कतिपय स्थल बिना मूल के भी पढे* जाय तो मूल से भी अधिक आनन्द एव अविच्छिन्न कथानक युक्त मिलेंगे। चीरलीला–रासलीला आदि के स्थल मौलिक निबन्धो से परिपूर्ण है। यद्यपि टीकाकार न्याय, व्याकरण, मीमासा एव अलकार शास्त्र आदि का प्रगाढ पण्डित था तथापि उसकी प्रवृत्ति एव उसका भक्तिरस से रसमय हृदय भावपक्ष की ओर अधिक प्रवाहित हुआ है। टीकाकार की यह स्पष्ट घोषणा है कि भागवत शास्त्र बिना भक्ति के बुद्धिगम्य नही। यथा १२।१३ उपसहार का० २—

टीकेय वैश्वनाथी भवतु भगवतो भक्तलोकस्य रस्या
पद् शास्त्रागम्यधाम्नो मधुरिमलहरीखेलनैकान्त वृत्ते
यत्तस्या रोखकस्त्वे कृतिरिति कृतिन सर्वसाद्गुण्य गुण्या
दीव्यत्पाण्डित्यनृत्याप्यनुपद विधुरा स्याज्जती दुर्भगेव ॥ तथा
व्याख्याऽस्य भक्त्या गम्या सा श्रीगुरो कृपये क्षने
तस्मान्नमो नमस्तस्मै गुरवे गुरवे नम ॥ (उप० का० ३)

टीकाकार हठधर्मी नही थे किन्तु अपनी सम्प्रदाय का हीनत्व भी स्वीकार नही करते। निम्न श्लोक मे उन्होने स्पष्ट लिखा है कि आरम्भवाद, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि से हमे कोई प्रयोजन नही, भागवत पुरुषार्थ शिरोमणि है—

आरम्भे परिणामे च विवर्तेऽपि नहि क्षति
श्रीमद्भागवते भक्त पुरुषार्थ शिरोमणे ॥ (१२।१३ उप०)

भागवत एक पूज्य शास्त्र है तथा विश्वनाथ विनीत भक्तो के दास है, व स्पष्ट कहते हैं कि *तुम्हारे द्वार पर एक श्वान स्थित है जो उच्छिष्ट प्रसाद* ग्रहण की कामना करता है—

हे भक्ता द्वारिवस्त्वचद् बालधी रौत्यय जन
नाथावशिष्ट श्वे वान प्रसाद लभवा मनाक् ॥ (वही)

श्रीधर स्वामी की टीका का अन्य टीकाकारो ने खण्डन भी किया है किन्तु विश्वनाथ ने 'स्वामिचरणास्तु' के सम्बोधन द्वारा उन्हे सर्वत्र सम्मान दिया है। क्वचित उनकी टीका की पक्तियो को अविकल उद्धृत किया है।[1] सनातन गोस्वामी एव जीवगोस्वामी की व्याख्याओ को भी उद्धृत

१ वही २।२७।२१, २।२।१०, २।५।४०।

किया है। राधा का उल्लेख उन्होने किया है। भक्तिशास्त्र के गूढ स्थानो की भी विवेचना की है। पाडित्यपूर्ण विवेचन, नयनवोन्मेषशालिनी भक्तिशास्त्र की प्रतिमा, अनुपम रसमयी कथा आदि विशेषतायें इस एक ही टीका मे समुचित रूप मे देखने को उपलब्ध होती है। श्लेष[१], काकु[२], रूपक[३], उपमा[४] आदि की सुन्दर योजना देखने योग्य है।

टीका में श्रीधर स्वामी[५], सनातन गोस्वामी[६], जीवगोस्वामी[७] मधुसूदन[८], सरस्वती भट्टनायक[९], तथा यमुनाचार्य[१०], आदि के उल्लेख हैं। विशेष प्रमाण के लिये गोपाल तापनी[११], मुग्धबोध[१२], मध्यभाष्य[१३], नृसिंह तापनी[१४], नारद पचरात्र[१५], विश्वप्रकाश[१६], के नाम लिखे हैं। कोशो मे विशेषत विश्वकोश मेदिनी का उल्लेख प्राप्त होता है।[१७]

४. बलदेव विद्याभूषण

(क) **परिचय**—भागवत की वैष्णव नन्दिनी टीका के रचयिता बलदेव विद्याभूषण का जन्म रेमुना गाव के निकट हुआ था।[१८] यह गाव उडीसा के बालेश्वर जिले के अन्तर्गत है। पिल्का हृद के निकट किसी विद्वद् स्थली मे व्याकरण अलकार एव न्यायशास्त्र का अध्ययन किया।

(ख) **सम्प्रदाय**—बलदेव वेदाध्ययनार्थं महीशूर भी गये थे। इसी समय इन्होंने माध्व सम्प्रदाय का शिष्यत्व ग्रहण किया।

षट् सन्दर्भ का अध्ययन—श्री रसिकानन्द प्रभु के प्रशिष्य कान्यकुब्ज वासी श्रीराधा[१९] दामोदर के निकट किया। एव गौडीय वैष्णव धर्म के निगाढ मर्म से आकृष्ट होकर उनके शिष्य बन गये।

भक्तिशास्त्र—का अध्ययन पीताम्बर से एव श्रीमद्भागवत का अध्ययन विश्वनाथ चक्रवर्ती से किया था।

---

१ वही ३।१८।३   २ वही ३।१८।११

३ वही ३।२०।२६   ४. वही ३।२८।३०

५–७ सारार्थ दर्शिन १।१।१   ८. वही १।५।२२

६ वही १।१।३   १० वही ७।५।३२

११-१२ वही १।१।३ १।८।४५   १३-१४ वही ३।४।२६

१५ वही ३।५।२२   १६. वही ३।६।१

१७ वही ३।२।१८, ३।२८।६०

१८ गौडीय अभिधान कोश, पृष्ठ १२६२

१६. अर्चित नयनानन्दो राधा दामोदरोगुरुर्जीयात् (छन्दः कौस्तुभ भाष्य)

गोविन्ददास—विरक्त वैष्णव वेश ग्रहण करने के बाद इन्हे गोविन्ददास नाम से पुकारा जाने लगा था। वृन्दावनस्थ श्यामसुन्दर के विग्रह की स्थापना इन्ही के द्वारा हुई थी।

प्रधान शिष्य—बलदेव के प्रधान शिष्यो मे उद्धवदास और नन्दमिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। बगालियो को सेवा करने का अनाधिकारी सिद्ध किये जाने पर विश्वनाथ के आदेश से बलदेव विद्याभूषण, कृष्णदेव सार्वभौम के साथ जयपुर गये एव विपक्षियो को पराजित किया। 'गलता' नामक स्थान पर गौडीय आसन की प्रतिष्ठा की तथा विजय गोपाल भगवान की स्थापना की।[1] यद्यपि यह विग्रह देवमन्दिर मे विराजमान हैं। इसी समय श्री गोविन्द देव की कृपा के आदेश से श्री गोविन्द भाष्य की रचना भी की।

(ग) स्थितिकाल—बलदेव विद्याभूषण ने विश्वनाथ चक्रवर्ती का स्मरण किया है—

इति विश्वनाथ चक्रवर्ति शिष्य बलदेव विद्याभूषण विरचिताया भागवत' टीकाया प्रथमोऽध्याय। (वै० १।१)

और स्वय को विश्वनाथ चक्रवर्ती का शिष्य लिखा है। विश्वनाथ से इन्होंने श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था यह निर्विवाद है। विश्वनाथ न अन्तिम समय मे भागवत की टीका सारार्थ दर्शिनी लिखी थी। सम्वत् १७६१ वि० मे बलदेव विद्याभूषण अवश्य उपस्थित रहे होंगे क्योकि इसी समय सारार्थ दर्शिनी पूर्ण हुई थी। यदि उस समय विद्याभूषण की अवस्था ४० वर्ष के लगभग मानी जाय तो सम्वत् १७२१ विक्रम के लगभग इनका जन्म समय मानना होगा।

बगालियो को अनधिकार सिद्ध किये जाने की जैपुर वाली घटना से भी कोई विरोध आकर नही पडता। कहा जाता है कि जब जैपुर म यह झगडा चल रहा था कि बगालियो को राधा-कृष्ण की एक साथ पूजा करना अवाछनीय है तब विश्वनाथ अति वृद्धावस्था मे थे और वे वहाँ नही जा सके तथा बलदेव को शास्त्रार्थ के लिए भेजा। अतः बलदेव का उस समय विद्वान एव युवक होना निश्चित है फलत उनका जन्म स० १७२० के समीप मानना उपयुक्त है।

(घ) कृतिया—गौडियार तिन ठाकुर मे पृष्ठ ४०० पर इनकी निम्न कृतिया लिखी हैं—

---

१ सर्वेश्वर-वृन्दावनांक, पृष्ठ २६१।

१. षट् सन्दर्भ की टीका २. लघु भागवतामृत ३. सिद्धान्तम रत्न ४ वेदान्त स्यमन्तक ५. सिद्धान्त दर्पण ६. प्रमेय रत्नावली ७. श्यामानन्द शतक टीका ८. नाटक चन्द्रिका टीका ९ साहित्य कौस्तुभ १०. छन्द कौस्तुभ ११. काव्य कौस्तुभ १२. वैष्णवानन्दिनी टीका (भागवत टीका) १३. गोपाल तापिनी भाष्य १४. भगवद्गीता भाष्य १५ स्तवमाला १६. ऐश्वर्य कादम्बिनी १७. गोविन्दभाष्य (ब्रह्मसूत्रो पर रचित) १८. विष्णु सहस्र नाम भाष्य १९. सक्षेपभागवतामृत टिप्पणी २०. चन्द्रालोक की टीका (दुष्प्राप्य) २१. गोविन्द भाष्य टीका।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—वैष्णवानन्दिनी टीका के रचयिता श्री वलदेव विद्याभूषण गौडीय वैष्णवाचार्य थे। पुष्पिका मे इसका स्पष्ट निर्देश है–

'इति विश्वनाथ चक्रवर्ति शिष्य वलदेव विद्याभूषण रचितायां वैष्णवानन्दिन्या टीकायां प्रथमोऽध्याय.।' (१।१)

परिमाण—यह टीका द्वादश स्कन्धो पर की गई थी। सूत्र शैली मे लिखे जाने के कारण इसकी शब्द सम्पत्ति स्वल्प ही है।

उद्देश्य—गौडीय वैष्णवो के सिद्धान्तो मे परिवर्तन तथा परिवर्द्धन और भागवत द्वारा उनकी पुष्टि।

प्रकाशन—मध्व गौडीय परसाहित्य मन्दिर कलकत्ता।

शैली—टीका के आरम्भ मे कृष्ण, व्यास तथा शुकदेव की बडी सुन्दर वन्दना की है। दशम स्कन्ध मे सनातन गोस्वामी, श्रीधर स्वामी एव विश्वनाथ चक्रवर्ती की प्रार्थना की है तथा विश्वनाथ की भाँति अध्यायारम्भ मे सक्षिप्त कारिकाओ मे अध्याय का सार भी लिखा है। मायावाद का प्रवल खण्डन प्रथम स्कन्ध मे किया है। गौडीय 'वैष्णव अभिधान कोश पृष्ठ १७८१ के अनुसार इस टीका मे शकर के केवलाद्वैतवाद रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद का खण्डन किया गया है तथापि सैद्धान्तिक मतभेद जीवगोस्वामी से भी है, जीव गोस्वामी 'जीवात्मा, प्रकृति' आदि की उत्पत्ति एव परतत्व मानते हैं। वलदेव विद्याभूषण ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्मभेद से पाँच तत्व मानते हैं तथा जीव-प्रकृति आदि ४ शक्तियाँ भी मानते हैं। जीव गोस्वामी जीव को तटस्था शक्ति मानते हैं। वलदेव विद्याभूषण विभिन्नाश मानते हैं। टीका मे उनके मत का प्रतिविम्ब अवश्य भाषित होता है। टीका —— ... से परिपूर्ण है।

५. श्री राधारमणदास गोस्वामी

(क) परिचय—राधारमणदास गोस्वामी भागवत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आप वृन्दावन निवासी थे। आपके पिता श्री गोवर्धन[1] जी एव पितामह श्री जीवनलाल जी भी उच्चकोटि के विद्वान् थे।[2] श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ताओ मे वे सर्वश्रेष्ठ गिने जाते थे। राधारमण जी की माता का नाम किशोरी था—

किशोरी मातर वन्दे वृषभानु पुरोद्भवाम्'

(दीपिका दीपनी ११।१)

किशोरी जी वरसाना ग्राम की थी। पितामही कृष्ण कुँवर थी इन्हे 'गीत गोविन्द' कण्ठस्थ था। राधारमणदास ने इनका उल्लेख भी अपनी टीका मे किया है—

पितामही प्रपद्येऽह श्रीकृष्ण कुवराभिधाम्
गीत गोविन्द काव्य हि यस्याः कण्ठे विराजते ।।

(दीपिका दीपनी ११।१)

राधारमणदास के चचेरे भाई का नाम कृष्णगोविन्द था और इनका व्यवहार मित्र जैसा था। अपनी टीका मे इन्होने 'मित्र' शब्द का उल्लेख किया है –

कृष्ण गोविन्द मित्रेण राधारमण सेविना
राधारमणदासेन तृतीये दीपन कृतम् ।।[3]

राधारमणदास के छोटे भाई का नाम विरजलाल था। विरजलाल का वश आगे नही चला। राधारमणदास जी के दो पुत्र हुए, ज्येष्ठ का नाम

---

१ गोस्वामि पितर वन्दे श्रीगोवर्द्धन सालकं.................

(दीपिका दीपिनी ११।१)

२. 'पितुश्च पितरं वन्दे श्रीमज्जीवन सालकं
मन्त्रराजोपदेशेन येन निस्तारितो स्म्यहम् ।।

(दीपिका दीपनी ११।१ मंगलाचरण)

३. दीपिका दीपनी ३।३३, उपसंहार २।

राधाप्रसाद एव कनिष्ठ का गोपीप्रसाद था।[1] राधारमण जी के पुत्र अल्पवय मे ही चल बसे थे। राधारमणदास जी ने अपने पितामह की विशेष कृपा का सौख्य प्राप्त किया था। शिक्षा-दीक्षा दोनो ही इन्हे पितामह द्वारा प्राप्त हुई थी।

---

१. वंशज श्री विश्वम्भर गोस्वामी जी के पास सुरक्षित वंशवृक्ष के आधार पर।

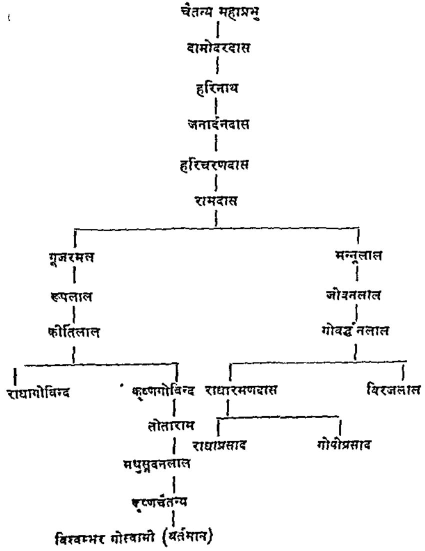

(ख) सम्प्रदाय–मध्व गौडेश्वराचार्य के वश मे इनकी स्थिति मानी गई है, जैसा कि वशवृक्ष से स्पष्ट है। श्री चैतन्य का उल्लेख भी टीका मे किया गया है—

कीर्तनात्मक यज्ञेन य सन्तुष्ट शुनोऽपिहि
त चैतन्य प्रपद्येऽह गान्धर्वभाव कान्तिकम् ॥ (वही ११।२७ उप०)

....

श्री चैतन्य प्रपद्येऽह साद्वैत च सनित्यकम्
श्रीमद्गोपाल भट्ट च षट् सन्दर्भ प्रकाशकम् ॥
श्रीमद्भागवत वन्दे सर्वशास्त्र प्रकाशकम्
तद् व्याख्यातृन् गुरुन् वन्दे श्रीधरस्वामिपादकान् ॥
(वही ३।१ मगलाचरण)

उक्त श्लोको द्वारा चैतन्य सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी विद्वानो का स्मरण किया है। प्रथम स्कन्ध के प्रथम श्लोक की टीका मे नृसिह, मुरारिगुप्त, गोकुल चन्द्र मिश्र, महामहोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य, काशीनाथ उपाध्याय, गोपीचन्द्र वैयाकरण आदि के उल्लेख भी प्राप्त होते है। श्रीमद्भागवत की टीका मे प्रारम्भ मे कोई मगलाचरण नही है, एकादश स्कन्ध मे मगलाचरण उपलब्ध है. प्रथम आपने भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका ही की थी। इसके उपरान्त प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्कन्ध की रचना की थी। तृतीय स्कन्ध की रचना के समय इन्हे मृत्यु के समान कष्ट प्राप्त हुआ। चैतन्य की कृपा से ही अपनी देह-रक्षा मानते हुए इन्होने लिखा है—

मृत्योर्विमोच्य येनाह तृतीयस्कन्ध दीपन
प्रापितो स्मिप्रपद्येऽह चैतन्य प्राणपालकम्। (वही ३।३३ उप०)

चतुर्थ स्कन्ध का आरम्भ करते ही इन्हे ज्वर ने आक्रान्त किया था, और य उसमे बडे चिन्तित थे—

प्रोत्साहितोऽस्मि चेन्नाथ ! भावाना दीपने ह्ययम्
तज्ज्वरादिव यद्हन्तुकस्मान्मेदीयते प्रभो ॥ (वही ४।१ मगला०)

एक बार तो ये प्रारब्ध की प्रबलता पर खीझ उठे और स्पष्ट कह दिया कि आपकी कृपा से यदि मैं वियुक्त नही तो प्रारब्ध की इतनी शक्ति क्यो जो शारीरिक कष्ट भोगना पड रहा है—

त्वत्पाल्यमानेऽप्यरब्ध प्रबल चेन्मह प्रभो
तदात्मास्त्रस्य व्यापारो रात्नगप्राप्यते यथा ॥ (वही ४।१ मग)

(ग) स्थितिकाल—यद्यपि राधारमणदास ने अपने जन्म आदि का

उल्लेख नहीं किया तथापि कतिपय प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से उनका स्थिति काल माना जा सकता है। राधारमणदास और चिरजलाल दोनो भाई थे। इन दोनो का विभाजन सम्वत् १८८७ विक्रम में राधारमण मन्दिर (वृन्दावन) मे हुआ था। यह विभाजन आठ आने के कागज पर इनकी माता की समक्षता मे सपन्न हुआ था। इस कार्य मे साक्षी कृष्णगोविन्द ने की थी जो राधारमणदास के चचेरे भाई एव मित्र भी थे।[1] इनसे यह निश्चित है कि राधारमणदास जी १८८७ मे अल्पवयस्क नहीं थे। सम्वत् १८१८ से स० १८५७ पर्यन्त विभिन्न समयो मे राधारमणदास जी के पितामह एव पिता को कथा-प्रवचन के लिये ग्वालियर मध्यवर्ति नरवर रियासत मे जाना पडा था। सम्वत् १८१८ मे मन्दिर के लिये ५०० रुपये की धनराशि भी नरवर रियासत से भोग सामग्री के लिये निश्चित की गई थी। छत्रसिह ने २५ बीघा भूमि भी इस मन्दिर के लिये भेंट की थी। विभाजन के पूर्व गोवर्द्धनलाल (पिता) तथा जीवनलाल जी (पितामह) का परम पद हो चुका था किन्तु जीवनलाल जी से दीक्षा ग्रहण की थी अत राधारमणदास जी का समय १८५० १८६० विक्रम के मध्य माना जा सकता है।

(घ) कृतियाँ—राधारमणदास गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी विरक्त से रहते थे। आपकी कृतियो की कुल सख्या कितनी थी यह अभी निर्णय पूर्वक नही कहा जा सकता। वर्तमान मे आपकी केवल 'दीपिका दीपिनी' (भागवत टीका) ही उपलब्ध है।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य—नाम—श्री राधारमणदास कृत भागवत की टीका का नाम 'दीपिका दीपिनी' है। टीकाकार ने 'दीपन' शब्द का प्रयोग अधिक किया है—

'राधारमणदासेन तृतीये दीपन कृतम्' (वही ३।३३ उप०)

यह टीका श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका पर लिखी गयी है। 'दीपका' शब्द से उनका तात्पर्य उक्त श्रीधर स्वामी की टीका से ही है। 'दीपन' शब्द का प्रयोग श्रीधर स्वामी के भावो को दीप्त करने के हेतु रखा गया है। श्रीधर स्वामी की इन्होंने वन्दना भी की है।

परिमाण—यह टीका समग्र भागवत पर उपलब्ध नही है। केवल प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ (१६ अध्याय के २० श्लोक पर्यन्त) तथा दशम स्कन्ध के 'वेदस्तुति' मात्र एव एकादश स्कन्ध पर यह टीका उपलब्ध है।

---

१ शपथपत्र श्री विश्वम्भर गोस्वामी, वृन्दावन के पास सुरक्षित।

'टीकाकार चैतन्य महाप्रभु की वंश परम्परा से सम्बन्धित थे, फलत उनके सिद्धान्तो का अनुसरण किया है।

शैली—भावार्थ दीपिका के अक्षर-अक्षर का रहस्य इस टीका मे दर्पण की भाँति स्पष्ट दिखाई देता है—

गोस्वामिनश्च सनम्य श्रीधरस्वामिदादवान्
व्याख्या व्याख्यायते तेषा सा भावार्थ प्रदीपिका ॥ (वही १।१।१)

भावार्थ दीपिका एक गूढ टीका है इसका ज्ञान दीपिका के आधार पर बडे ही सहज ढग से प्राप्त हो जाता है। प्रारम्भ के मगलाचरणो को ही देखें। श्रीधर स्वामी ने राम, नृसिह, हरिहर, कृष्ण आदि देवो की वन्दना की है किन्तु अन्य वैष्णव टीकाकारो मे इस प्रकार त्रिदेव वन्दना कम ही देखने को मिलेगी। राधारमणदास जी ने प्रत्येक देव की वन्दना का हेतु लिखा है। प्रारम्भ मे श्री राम की वन्दना 'श्रीमत् परमहस स्वादित०' से है। राधा रमणदास लिखते है 'श्रीराम नमस्करोमि, ओ नम इति' ततैतिह्यम्—इस मगल-चरण मे इतिहास है। एक बार श्रीधर स्वामी अपने पाण्डित्य से समस्त दिशाओ को जीतकर आरहे थे, मार्ग मे चोरो ने उनका पीछा किया। श्रीधर भयभीत हुए और उन्होंने अपने कुल के उपास्य श्री रामचन्द्र का स्मरण किया, तत्क्षण ही श्री राम ने धनुष-बाण लेकर चोरो को दर्शन दिया और उन्हे भयभीत किया। चोर जिस दिशा मे जाते थे वहा पर ही उन्हे धनुर्बाणधारी श्रीराम दिखाई देते थे। चोर घबडा गये और श्रीधर स्वामी के चरणो पर गिर पडे। चोरो ने कहा कि आपके साथ दूर्वादल श्याम धनुर्बाणधारी कोई बालक है जो हमे वेध रहा है, आप रक्षा करे। श्रीधर स्वामी को यह सुन-कर बडा दुख हुआ कि धन के लिये मेरे प्रभु श्रम कर रहे हैं। तब खिन्न होकर एव सब कुछ परित्याग कर काशी आये और दण्ड ग्रहण किया।'[1] काशी मे आकर परमानन्द नामक गुरु से नृसिह मन्त्र की दीक्षा ली। इस कारण प्रारम्भ मे उन्होंने श्रीराम का ही स्मरण किया। भागवत के कुछ बगीय सस्करणों मे—राम के स्थान पर 'कृष्ण' का भी उल्लेख है। आठ टीका मे राधा-रमणदास ने इसका खण्डन किया है और 'राम' पाठ ही उचित माना है—

'रामाय इति तु सार्वत्रिक पाठ अदमेवोचितश्च, अन्यथा' विध मर्ग विसर्गेत्यादि पद्येन पौनरुक्त्य प्रसगात्। यत परम्परोपास्यत्वेन श्रीराम मन्त्रानुष्ठान द्वारा विघ्नदातृत्वेन नृसिह, श्रीमद्भागवत प्रतिपाद्यत्वेन श्रीकृष्णाय

---

१. दीपिका दीपनी १।१।१, आठ टीका सस्करण (परमहंस पुस्तकालय)।

६. रामनारायण मिश्र

(क) परिचय—श्रीमद्भागवत मे रास पचाध्यायी प्राणभूत है। इसकी व्याख्या अनेक विद्वानो ने की है किन्तु वे सदा अतृप्त ही रहे। रामनारायण मिश्र भी भावुक टीकाकारो मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपकी टीका आठ टीका सस्करण वृन्दावन से प्रकाशित हुई है। आपके पिता का नाम सुचेतरामराज था।[1] उपनयन गुरु का नाम भवानीदास शर्मा था—

भवानीदास शर्माण गायत्री व्रतद भजे। (वही मगला०)

रामनारायण के शास्त्र गुरु का नाम रामसिंह[2] एव दीक्षा गुरु का नाम हरिनाथ था[3]। दीक्षा गुरु हरिनाथ, दामोदर के प्रथम पुत्र थे। दामोदर गोपीनाथ के अनुज थे तथा सहारनपुर मण्डलान्तर्गत देववन्ध ग्राम के निवासी थे, गोपीनाथ ने सुप्रसिद्ध चैतन्य मत के विद्वात् गोपाल भट्ट से दीक्षा ग्रहण की थी। रामनारायण की विद्वता का प्रकाशन रासपचाध्यायी द्वारा हुआ है, ये साहित्य शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् थे, एव षड्दर्शनो का मर्म भली-भांति जानते थे। समस्त विश्व हरिमय है यह इनका उद्गार था, जैसा कि इनके मगल पद्य से स्पष्ट है इन्होने प्राय सभी देवता एव आचार्यो को नमस्कार किया है—

श्रिय श्रीश गिरा ढुण्ढि शिवा शिवभज सुरान्
गुरुन्विप्रानदो नक्तान् विश्व वन्दे हरेर्वपु।
शेप सनत्कुमारादीन् साख्यायन पाराशरौ
नारद भगवद् व्यास शुक सूत द्विजान् नृपम्॥

उक्त महर्षियो के अतिरिक्त शकर, नानक, श्रीधर स्वामी, वल्लभाचार्य,

---

१. सुचेत रामराजाख्य भवधून भवद भजे।
....
भवानीदासशर्माण शर्मकृत्कर्मवर्त्मदम्॥
(भावभाव विभाविका, मंगलाचरण)

२. 'बोधदं रामसिंहाख्यं विद्यानन्द प्रदायकम्'
(भावभाव विभाविका, मगलाचरण)

३ 'हरिनाथ मह वन्दे हरि नाम प्रद गुरुम्।'
(भावभाव विभाविका, मंगलाचरण)

मध्वाचार्य, केशव, कृष्ण चैतन्य, जीवगोस्वामी, सनातन गोस्वामी आदि की वन्दना भी की है, इससे इनका अतिशय विनम्र भाव भी द्योतित है।

(ख) सम्प्रदाय—ये चैतन्य के अनुयायी थे। चैतन्य सम्प्रदाय के टीकाकारो की टीका की ओर इनकी विशेष अभिरुचि थी और अपनी टीका मे उन टीकाओ का अवलम्बन ग्रहण किया था।

(ग) स्थितिकाल—रामनारायण के जन्म सम्वत् का कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता तथापि विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका प्रभाव से इन्हे उनके पश्चात् ही मानना चाहिये। विश्वनाथ चक्रवर्ती का समय १८ वी शती है। अत १९-२० वी शती के मध्य इनका स्थितिकाल माना जा सकता है।

(घ) कृतियाँ—भावभाव विभाविका (भागवत रासपचाध्यायी पर टीका)।

(ङ) टीका वैशिष्ट्य-नाम—रामनारायण मिश्र कृत टीका का नाम 'भावभाव विभाविका' है। जैसा कि पुष्पिका से स्पष्ट है—

'इति श्री • 'दशमस्कन्धान्तर्गत रासपचाध्यायी व्याख्याया श्री चन्द्र भागाख्य विष्णु सख्यापन्न श्रीरामनारायण विरचिताया भावभाव विभाविकाया प्रथमाध्याय व्याख्या समाप्ता।'

परिमाण—यह टीका दशमस्कन्ध के केवल २९ से ३३ वें अध्याय पर्यन्त ५ अध्यायो पर है किन्तु इसकी शब्द-सम्पत्ति अत्यधिक है।

उद्देश्य—श्रीराधाकृष्ण के युगल स्वरूप की सत्ता सिद्ध करना ही इस टीका का उद्देश्य है।

प्रकाशन—आठ टीका सस्करण, वृन्दावन।

शैली—भाषा मे प्रवाह एव माधुर्य गुण है। अनेकार्थ के लिये विभिन्न कोशो का आश्रय लिया है। पाठक एक बार पढ़ना प्रारम्भ कर छोडना नही चाहता, यह इसकी सर्वाधिक विशेषता है—

'तत्र रासे सर्वासा गोपीनामात्मनश्च भाविप्रेमविह्वलत्व सम्भाव्य क्रीडा तदुपकरणादि साकल्यमापादयितु विश्वकर्ममाययो स्व लीला प्रवेशाभावेन तत्सर्वमुपकरणादियोजयतीति योगा तत्र योग्यायां योगा स्व योगैश्वर्यात्मिका या योगा तत्र योग्या या योगा स्व योगेश्वर्यात्मिका या अघटन घटनापटीयस्त्वेन माया काचित् स्वरूपाभिन्नैव शक्तिस्तामुपाश्रित।

यद्वा तासामपि योगाय - नृत्यरतिविहारादिना भगवत -सयोगाय मायाकृपायस्यास्ता राधामुपाश्रित -एव रन्तु मनश्चक्रे तत्कृपयैव भगवतस्ताभी-रमणाय प्रवृत्ति ।'[1]

शब्दो की तोड मरोड मे विद्वत्ता देखते ही बनती है—

'करे क सुख रान्तीति तया भूतँ करे स्वरश्मि रूपँ ...... ।'

भाव का स्पष्टीकरण सर्वत्र किया है। उडुराज के भाव देखने योग्य हैं—

'अयमभिप्राय – उडुभी राजते इत्युडुराज इत्यात्मन उडुराजत्वेन यथाऽह बहुभिरुडुभि स्वकान्ताभीराजमानस्तथैव मद्वश प्रादुर्भूतेन त्वया-भाव्यमिति दर्शयति ।'[2]

व्याकरण की व्युत्पत्ति भी दर्शनीय है। 'भावभाव विभाविका' यह सार्थक नाम है और यह टीका रसपक्ष की एव अलकार पक्ष की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट टीका है।

---

१. भावभाव विभाविका १०।२६।१।
२. वही १०।२६।२।

अध्याय अष्टम

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल

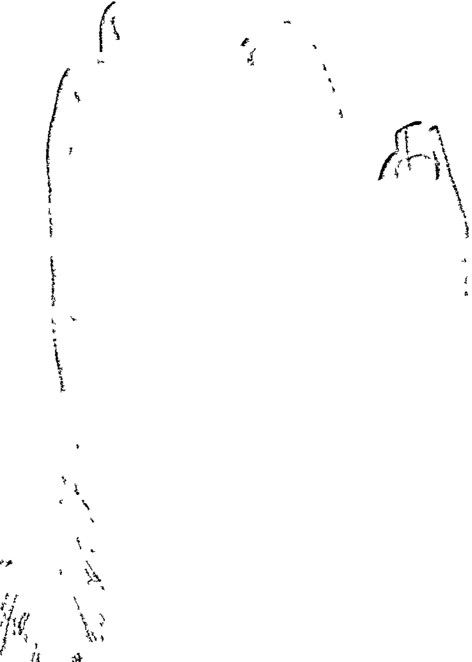

टीकाकारों की दृष्टि में श्रीमद्भागवत के कतिपय विशिष्ट स्थल

प्रथम स्कन्ध

अष्टदश पुराणो मे श्रीमद्भागवत सर्वोत्तम पुराण है, यह न केवल शब्द सम्पत्ति के कारण महान् है, अपितु अपने अर्थगाम्भीर्य–विषय–वैविध्य एव समस्त शास्त्रो का सार होने के कारण ही समस्त विद्वानों का उपास्य एव मननीय ग्रन्थ रहा है। यह अगाध शास्त्र है, इस शास्त्र पर भक्ति की मुद्रा लगी हुई है, इससे यह उक्ति 'भक्त्या भागवत ग्राह्यम्' सार्थक प्रतीत होती है। वस्तुत इसके भक्तियुक्त कथानक, आध्यात्मिक उपाख्यान भौगोलिक विवेचन अपूर्व है। इसके प्रथम श्लोक पर ही मूल से भी बहुगुणी शब्द राशि लिखी जा चुकी है। यह मगलाचरण का श्लोक अध्येता की कसौटी तो बना ही रहता है साथ ही अपने अगाध सिद्धान्तो का महत्व प्रदर्शित करता है—

प्रथम श्लोक—जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

....

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

उक्त श्लोक मे सत्य रूप परमेश्वर का ध्यान है। श्रीधर स्वामी ने सत्य को परमेश्वर का स्वरूप लक्षण तदा 'जन्मादि' को तटस्थल लक्षण लिखा है। इसके अनुसार विश्व का कारण ब्रह्म ही है। यह श्लोक गायत्र्याख्य ब्रह्मविद्या है 'धीमहि' पद द्वारा उसका निर्देश भी है। भागवत के लक्षण मे भी गायत्री का सम्बन्ध लिखा है। (भावार्थ दीपिका से)

यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते धर्म विस्तरः
वृत्रासुर कथोपेत तद्भागवतमिष्यते ॥

ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तीन प्रकार के मगलाचरण किये जाने चाहिये–आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक।[1] 'धीमहि' पद से नमस्कारात्मक मगलाचरण माना जाता है। मम्मट ने 'जयति' पद द्वारा इसी प्रकार 'नमः' पद का आक्षेप किया है (काव्य प्रकाश कारिका १)

---

१. 'आशीर्नमस्क्रियावापि वस्तुनिर्देश एव वा।' (दण्डी, काव्यादर्श, का० १)

भागवत ग्रन्थ के सर्व प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने उक्त श्लोक से अनुप्राणित होकर श्रीराम नृसिंह, हरिहर, एव श्रीकृष्ण की सुन्दर वन्दना की है।

श्रीधर स्वामी का प्रथम मगलाचरण गद्य मे है। इसके दो पाठ मिलते हैं, प्रथम मे राम का निर्देश है, द्वितीय मे कृष्ण का।

(क) श्रीमत्परमहसास्वादितचरण कमलचिन्मकरन्दाय भक्तजन मानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ।

(ख) श्रीमत्परमहसा·······श्रीकृष्ण चन्द्राय ।

श्रीकृष्णचन्द्र पाठ बगाक्षर लिपि के पाठो मे ही उपलब्ध है, शेष पाठो मे सर्वत्र 'रामचन्द्र' पाठ ही प्राप्त होता है (आठ टीका संस्करण, टिप्पणी नित्य स्वरूप ब्रह्मचारी)। श्रीराम श्रीधर स्वामी के कुलोपास्य थे। अतः राम का मगलाचरण सर्वप्रथम किया है। भागवत दीपिका दीपनीकार १।१।१ ने इसका उपाख्यान भी लिखा है कि श्रीधर पर रामचन्द्र का प्रभाव कैसे पडा था (आगे कृष्ण की वन्दना है, अतः पुनरावृत्ति भी होगी)।

भावार्थ दीपिका प्रकाशकार का मत है कि भागवत एक अगाध पयोधि है उसे पार करने के लिये रामनाथ सेतु है। अत प्रथम राम का मगलाचरण श्रीधर स्वामी ने किया। (भावार्थ दीपिका प्रकाश उपक्रम १।१।१) नृसिह वन्दना मे वेदलक्षणावाक् तथा लक्ष्मी का ध्यान भी किया है—

> वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि
> यस्यास्ते हृदये सवित्त नृसिहमह भजे ॥२॥

उक्त मगलाचरण द्वारा विद्या और लक्ष्मी से त्रिवर्ग लाभ एव नृसिह स्मरण से सर्वोत्तम लाभ-प्राप्ति ध्वनित है। नृसिह श्रीधर के उपास्य थे। भागवत के प्रति पाद्य श्री कृष्ण है अत. विद्या प्राप्ति के पश्चात् उनका ध्यान आवश्यक है—

> विश्व-सर्ग-विसर्गादि-नवलक्षण-लक्षितम्
> श्रीकृष्णाख्य पर धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥३॥

श्रीकृष्ण सर्ग विसर्गादि नवलक्षणो से युक्त है। भागवत मे तृतीय स्कन्ध में द्वादश स्कन्ध पर्यन्त सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती, मन्वन्तर ईशानुकथा, निरोध मुक्ति एव आश्रय का निरूपण है। हरिहर की वन्दना द्वारा उन्होंने शैव एव वैष्णवो को एक स्थान पर प्रेम पूर्वक लाने का श्लाघनीय प्रयास किया है—

> माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ
> वन्दे परस्परात्मानौ परस्पर नुति प्रियौ ॥४॥

उक्त श्लोक से श्रीधर ने सिद्ध किया है कि माधव (विष्णु) तथा उमाधव (शिव) में मात्रा भेद है, वस्तुत अभेद है—

'शिवस्य हृदय विष्णु विष्णोश्च हृदय शिव'

यह पौराणिक वाक्य भी यहाँ उपादेय है । उमाधव–नाम वेणीमाधव से भी सम्बन्धित है । जनश्रुति है कि श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका की रचना पर्याप्त विश्वासपूर्वक की थी, उन्हे यह आशा थी कि मूलानुसारिणी इस टीका का विद्वान् आदर करेंगे । किन्तु विद्वानो को इससे सन्तोष न हुआ, तब श्रीधर स्वामी की टीका की प्रामाणिकता ज्ञात करने के लिये विद्वानो ने उसे वेणी-माधव के मन्दिर मे विग्रह के समक्ष रखा । प्रात काल इस टीका पर भगवान का हस्तचिह्न देखा गया । तब से विद्वानो ने इसे प्रामाणिक मान लिया । श्रीधर ने यह टीका सम्प्रदाय के अनुरोध पर की थी—

सम्प्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारत·
श्री भागवत भावार्थ दीपिकेय प्रतन्यते ।। (मगला०)

'सम्प्रदायानुरोध' शब्द के विभिन्न तात्पर्य विद्वानो ने लिये है । दीपिका दीपनीकार (१।१।१) ने भरत का उल्लेख करते हुए 'सम्प्रदाय' की परिभाषा लिखी है कि 'गुरुपरम्परागत सदुपदेश का नाम सम्प्रदाय है । 'सम्प्रदाय' शब्द अद्वैत सम्प्रदाय से भी सम्बन्धित माना जाता है । पौर्वापर्यानुसारत' पद यह सिद्ध करता है कि भागवत मे विभिन्न उल्लेख एक ही वस्तु के है उनका यथार्थ ज्ञान पूर्वापर प्रसग से ही सम्भव है । यथा—'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' कृष्ण स्वयम् भगवान् हैं तथा अथाहमशभागेनदेवक्या पुत्रता शुभे । (भाग १०।२।६) मे अश भाग से देवकी का पुत्र बनूँगा आदि की सगति पूर्वापर सगति द्वारा ही ठीक बैठती है । श्रीधर स्वामी ने भागवत ग्रन्थ की महिमा के लिये 'कृताह मन्दमति' श्लोक लिखा है तथा गुरु की महिमा प्रदर्शन के लिए निम्न श्लोक लिखा है ।

मूक करोति वाचाल पगु लघयते गिरिम्
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्द माधवम् ।

मूक का उदाहरण 'ध्रुव' एव पगु का उदाहरण 'अरुण' है । भगवत्कृपा मे ध्रुव वाचाल हुआ और अरुण पगु होने पर भी पर्वतों के शिखरो पर भ्रमण करता है । भागवत एक कल्प वृक्ष है जो ओंकार रूपी अकुर से उत्पन्न है । द्वादश स्कन्ध ही जिसके स्कन्ध है भक्ति ही जिसका आलवाल है, ३३५ अध्याय ही जिसकी शाखा है तथा १८००० श्लोक ही इस कल्प वृक्ष के पत्र हैं—

श्रीमद्भागवताभिध सुरतरुस्तारांकुर सज्जनि
स्कन्धैर्द्वादशभिस्तत प्रविलसद्भक्त्यालवालोदय ।

द्वात्रिंशत् त्रिशत च यस्यविलसच्छाखासहस्राण्यलम्
पर्णान्यिष्टदशेष्टदोऽति सुलभो वर्वति सर्वोपरि ॥

इस प्रकार भागवत के अन्य टीकाकार वीर राघवाचार्य, विजयध्वज, वल्लभाचार्य, शुकसुधी, जीवगोस्वामी आदि सभी ने मगलाचरण किये हैं इनमे वीरराघव ने श्रीराम की, विजयध्वज ने नारायण की एवं अन्य टीकाकारो ने श्रीकृष्ण की वन्दना की है। भागवत के दश लक्षण प्रसिद्ध है–सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोपण, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। 'जन्माद्यस्य' श्लोक मे ये निम्न रूप से घटित किये गये है। (क्रमसन्दर्भ १।१।१)—

जन्माद्यस्य यतः	—	सर्ग, विसर्ग, स्थान, निरोध, मन्वन्तरे-शानु कथा।
तेने ब्रह्म०	—	पोपण
मुह्यन्ति०	—	ऊति
धाम्नास्वेन०	—	मुक्ति
सत्य पर धीमहि	—	आश्रय का निरूपण है।

जीवगोस्वामी ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण एव राधिका के पक्ष मे भी इस श्लोक की व्याख्या लिखी है। कृष्ण का उल्लेख 'सत्य' शब्द से किया है 'स्वेनधाम्ना' पद द्वारा मथुरा का ग्रहण है, अर्थात् जो 'कृष्ण' कसादि का विनाश कर मथुरावासियो से शोभायमान हैं, जिन्होंने ब्रह्मा को भी मोहित किया जिस कृष्ण की वेणु से जल भी कठोर हो जाता है, मृत्पापाण भी द्रवित हो उठते हैं उनका हम ध्यान करते हैं। यह अर्थ कृष्ण पक्ष मे किया है। तथा—आद्यस्य=शृ गार रसस्य, अर्थात् शृ गार रस का जन्म श्री राधिका जी से है, इस प्रकार उन्होंने राधापरक व्याख्या बडे चमत्कारपूर्ण ढग से लिखी है।

आचार्य वल्लभ ने गायत्र्यर्थ के अनुसार टीका लिखकर अपने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का निरूपण किया है। उन्होने लिखा है कि ब्रह्म मे देहन्द्रिय की कल्पना व्यर्थ है—' ···· ··· सर्वेपा तेपां बुद्धिरेव भ्रान्ता न ब्रह्माणि शरीरेन्द्रिय सम्बन्ध।' (सुबोधिनी १।१।१)

इस प्रकार अनेक विसम्वाद है, यथा—

(१) चिदानन्द मे देह तथा इन्द्रिय कल्पना।
(२) चल कृष्ण मे जड जीव की कल्पना।
(३) जड जीव विशेप मे सामर्थ्य की कल्पना।
(४) मायायुक्त अध्यात्म आदि की कल्पना।

उक्त सभी कल्पनायें व्यर्थ हैं। वल्लभ का यह आशय नहीं कि ब्रह्म निर्विशेष है अपितु सविशेष का सम्बन्ध भिन्न प्रकार से है। वह स्वरूप स्फूर्ति द्वारा सब की अविद्या का नाश करने में समर्थ है, वह श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है।

अद्वैतवाद के उद्भट विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती ने इस श्लोक की व्याख्या में ब्रह्मसूत्रों का समन्वय किया है—

जन्माद्यस्य यत	जन्माद्यस्य यत
अन्वयात्	तत्तु समन्वयात्
अर्थेष्वभिज्ञ	ईक्षतेनशिब्दम्
तेनब्रह्म हृदा	शास्त्रयोनित्वात्
मुह्यन्ति यत्सूरय	एतेन सर्वेव्याख्याता
तेजो वारि मृदा	अविरोधाध्याय
धीमहि	साधनाध्याय
धाम्नास्वेन	फलाध्याय

मधुसूदन सरस्वती ने भागवत के प्रचलित नाम 'पारम हस्या सहितायाम्' की व्याख्या भी की है। उनका कथन है कि इसके उपाख्याना का वेदान्तपरक तात्पर्य है अत 'पारमहस पद का प्रयोग किया गया है। गायत्री के अक्षर निम्नलिखित पद्यो से गृहीत किये है—

स्वराट	तत्सवितुर्वरेण्य
जन्माद्यस्य यत	भर्गोदेवस्यधीमहि
तेने ब्रह्म हृदा य आदि	धियो योन प्रचोदयात्

गायत्री के जाप की भाति भागवत का भी थर्हांश आवर्तन होना चाहिए। सर्गादि दश लक्षणो का निवचन श्रीधर से साम्य रखता है। मधुसदन सरस्वती ने चतुर्व्यूहपक्ष तथा रसिक पक्ष म भी सुन्दर व्याख्या की ह। 'जन्माद्यस्य' श्लोक क महत्व ज्ञान के लिये टीकावलोकन आवश्यक है। निम्न तालिका म अन्वयानुसार उक्त श्लोक के अथ सहित पद लिख गय है। विभिन्न अथ सम्प्रदाय भावो से परिपूर्ण है।

> जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ स्वराट
> तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवय मुह्यन्ति यत्सूरय
> तेजो वारि मृदा यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
> धाम्नास्वेन सदानिरस्तकुहक सत्य पर धीमहि ॥

अन्वय—अस्य जन्मादि आद्यस्य आदिकवये ब्रह्म हृदा तेने यत् सूरय मुह्यन्ति तेजो वारि मृदा यथा विनिमय यत्र त्रिसर्ग मृषा (अमृषा) स्वेन धाम्ना निरस्त कुहक, सत्य पर धीमहि।

अस्य[1]	=	विश्व (क) श्रीकृष्ण (च) जगत् (छ) चिद्-चिद्मयजगत (ख) प्रत्यक्षजगत् (ग)
जन्मादि	=	जन्मस्थिति भंग (क) प्रणवार्थ (ङ) जन्मैश्वर्यप्रवटन पूर्व वृत्तकथनादि (क)
आद्यस्य	=	आकाश (च) मथुरा, गोकुल, द्वारका में विराजमान गोविन्द (ज) शृंगार रस (झ)
यत	=	परमेश्वर (क) वसुदेवगृह (ज-झ)
अर्थेषु	=	कारणकार्य (क) देवमनुष्य (ख) सर्व पदार्थ (घ-झ) कसवचनादि लक्षण (ज) विचित्र प्रकाश (ञ)
अन्वयात्	=	मृत् या सुवर्ण (क) अनुवृति का उपादान (ख) तात्पर्य लिंग (ङ) समवायिकारण (च) कारणकार्यावस्था में अनुवृत्त (ज)
इतरत	=	पुष्पादि (क) प्रकृति पुरुष से विलक्षण (ख) स्मृति तर्क (घ) इतरतर्क (ङ) निमित्तकारण (च) असत् (छ, ञ) कार्य कारण में व्यावृत्त (ज) सर्ग विभाग (झ)
अभिज्ञ	=	सर्वज्ञ (घ) ज्ञातृत्व (ज) विदग्ध (झ)
स्वराट्	=	अकर्मवश्य, स्वतन्त्र (ख) अन्यापेक्षा रहित (घ) स्वय नृप (ङ) गोकुलवासियों से शोभित (ज) स्वरूप से शोभित (झ)
आदिकवये	=	ब्रह्मा (क, ञ, ज) सत्यव्रतमनु (झ)
ब्रह्म	=	वेद (क, घ) रसमूर्ति (ज, झ)

---

1 उपर्युक्त तालिका में टीकाओं के नाम क, ख, ग आदि संकेतों द्वारा दिये गये हैं—

१ भावार्थ दीपिका (क) — २ शुक पक्षीय (ख)
३ भागवत चन्द्रचन्द्रिका (ग) — ४ तात्पर्य निर्णय (घ)
५ पदरत्नावली (ङ) — ६ सुबोधिनी (च)
७ मधुसूदन सरस्वती (छ) — ८ जीव गोस्वामी कृत [वैष्णवतोषिणी, क्रमसन्दर्भ] (ज)
९. सारार्थ दर्शिनी (झ)
१०. सिद्धान्तप्रदीप (ञ)

हृदा	=	मन (क) सकल्प (ख, ग, ज, झ) स्नेह (घ, ङ)
तेने	=	प्रकाश (क, झ) विस्तार (ज।
यत्	=	ब्रह्म (क) चिन्मात्नलक्षण (छ) लीलाहेतु (ज) भक्तियोग (झ)
सूरय	=	ज्ञानवन्त उपासक (ख, ग) कपिलादि (ङ) तार्किक (छ) श्रीकृष्ण भक्त (ज) नारद या वशिष्ठादि (झ)
मुहयन्ति	=	व्याकुल (ख, ग) आवरण-विक्षेपरूपमोह (छ) विवशता (ज) आनन्द मूर्छा (झ)
तेजो वारिमृदाम्	=	वारि बुद्धि मरीचिका—प्राय सब
विनिमय	=	व्यत्यास (क) विकार (ञ)
यत्र	=	उपाधि सम्बन्ध शून्य (क) ब्रह्म (छ) पूर्ण चिन्मयाकार (झ)
त्रिसर्ग	=	माया गुण (क) जीव, ईश्वर, जड सर्ग (घ, ङ) भू भुँव स्व या गोकुल मथुरा द्वारका (ज) बुद्धि (झ)
मृपा	=	मिथ्या (प्राय सभी)
अमृपा	=	सत्यवत् (क, च) जगत् सत्य है (ज, झ, ञ)
स्वेन	=	निरुपधिक (ज) असाधारणतया (झ)
धाम्ना	=	तेज (क) स्वरूप ज्ञान महिमा (ङ) अखण्डानन्दा द्वितीय चैतन्य रूप (छ) श्री मथुरा (ज) स्वरूप शक्ति (झ)
कुहकम्	=	कपट (क) माया (ङ) मायोपाधिकृत भ्रम पराभव (ज) जीवों की अविद्या (झ)
सत्यम्	=	परमेश्वर का स्वरूप लक्षण (क) सत्य ज्ञानमनन्त रूप ब्रह्म लक्षण (ज) सब काल देशवर्ति परमेश्वर (झ)
परम्	=	परमेश्वर (क) सम्पूर्ण गुण (घ) सर्वोत्कृष्ट (झ) विश्वकारण (ञ) किन्तु अभेदवादियों का सा नहीं (ज)
धीमहि	=	ध्यान करते है (प्राय सभी)

द्वितीय श्लोक— धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो०' (भाग० १।१।२)

रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध टीकाकार वीरराघव ने इस श्लोक मे— अनुबन्ध चतुष्टय, अधिकारी सम्बन्ध, विषय प्रयोजन की व्याख्या की है।[1] भागवत का प्रधान प्रतिपाद्य धर्म है। मुमुक्षु भागवत के पाठ का अधिकारी है। तापत्रय निवृत्ति ही प्रयोजन है। प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्ध है। *भागवतनाम अन्वर्थ नाम मानते हुए—'भगवत इद भागवतम्' बताया गया है। विजयध्वज ने भी अनुबन्ध चतुष्टय का उल्लेख किया है। (पद० र० १।१।१* उपक्रम)

उक्त श्लोक द्वारा त्रिकाण्ड से भागवत की श्रेष्ठता क्रममन्दर्भकार ने लिखी है। इस श्लोक मे तीन बार अत्र का प्रयोग हुआ है, यह प्रयोग निर्धारणार्थ है। श्री वल्लभाचार्य ने 'श्री' शब्द से दशविध रसो का उल्लेख किया है। श्रीधर स्वामी का कथन है कि तीनो काण्डो से श्रेष्ठ होने के कारण इसे नित्य पढना चाहिये। (भा. दी० १।१।२)

तापत्रयोन्मूलन०	*ज्ञानकाण्ड विषयो से श्रेष्ठता*
महा मुनि०	*कर्मकाण्ड से श्रेष्ठता*
सद्योहृद्यवरुध्यते०	उपासना काण्ड से श्रेष्ठता है।

इस श्लोक के भी विभिन्नार्थ किये है तथापि उनमे अत्यन्त वैमत्य नही है। यद्यपि प्रतिपाद्य श्रवण कीर्तनादि लक्षण धर्म अनेक है तथापि भागवत्स्वरूप प्राप्ति लक्षण फलैक्य के कारण 'धर्म' एक वचन का प्रयोग है (बाल प्रबो० १।१।२)। वशीधर ने 'श्री' शब्द से राधा का उल्लेख माना है और तदनुसार व्याख्या भी की है। (भा० दी० प्र०)

तृतीय श्लोक—'निगम कल्पतरोर्गलितफलम् शुक मुखादमृतद्रव सयुतम्' (भागवत १।१।३)

श्रीमद्भागवत निगम रूपी तरु का गलित फल है, गलित का अर्थ शनै शनै भूमिपर अवतरित होना है। *फलपान भी सम्भव नही है तथा फल मे त्याज्य अश भी होते है अत इस 'पिवत' क्रिया द्वारा रसरूप सिद्ध किया* है। 'आलय' का अर्थ है मोक्षपर्यन्त अर्थात् इसका पान (श्रवण) सदा करो। आचार्य विजयध्वज ने 'पिवत' का अर्थ आस्वादय किया है (पद० १।१।२)। वीर राघवाचार्य ने प्रामाण्य निश्चय के लिये इस श्लोक का अवतरण साभिप्राय स्वीकार किया है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि—व्यापि वैकुण्ठ अक्षरा-

---

१ 'विषयोनाम प्रतिपाद्य वस्तु रूप धर्म' *(भा० च० च० १।१।१ उपक्रम)*

त्मक मे प्रणव बीज, वेद तरु है वहाँ से व्यासाख्य भगवदवतार मूर्तीभूत देवतात्मक उस फल को लाये। (सुबो० १।१।२ एव बाल प्रबोधिनी १।१।२)

निगम = विष्णु, गलित = नारद

'वठ माधुर्यमम्यास्तीति गली गायन शीलत्वान्नारद मुनि"

रसमालय = रसमाल नाम विष्णु (भक्ति ज्ञान वैराग्य दयावीर)

शृ गारादि रसाना कवितालकाराणाँ माला पक्तिर्यस्मात् ।

स रस मालो विष्णु तस्मा यति निर्गच्छति तत् ।

इसी प्रकार शुक मुखादमृत द्रवसयुतम्—शु – शीघ्र, क – सुख, उखाद – तक्षक, मृत – मरण, तक्षक से मरने वाले राजा परीक्षत को जिससे सुख है

(उ ना शकरेण खाद्यते तत् उखाद=विष तदस्यास्तीति उखादः तक्षक तस्मान्मृतम मरण यस्य स उखाद मृत परीक्षिद्राजा स द्रवो ज्ञान 'शुक मुखाद' ऋतद्रव सयुत' यह पदच्छेद भी किया है।)

भागवत टिप्पणी प्रबोधिनीकार के अनुसार शुक अह कारात्मक है, अह कार तत्व का अभिमानी रुद्र है अत शुक रुद्र ही है। (भा०प्र०टि १।१।३ एव पद रत्नावली)

चतुर्थ श्लोक—'नैमिषेऽनिमिष क्षेत्रो' (भा० १।१।४)

इस श्लोक से भागवत शास्त्र का आरम्भ माना गया है। नैमिषारण्य मे श्रीमद्भागवत की कथा शौनकादि ने सूत द्वारा श्रवण की थी। एक समय ऋषियो ने दीर्घकालीन सत्र प्रारम्भ करना चाहा, इसके लिये उन्हे विघ्न रहित भूमि का निर्वाचन आवश्यक था अत वे ब्रह्मा जी के समीप इस कार्य मे सहयोग प्राप्त करने के लिये पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हे एक मनोमय चक्र देते हुए कहा कि 'जहा इस चक्र की नेमि गढ जाय वह स्थल आपके दीर्घ सत्र के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।' ऋषियो न उस चक्र का अनुसरण किया और उसकी नेमि जहाँ शीर्ण हुई वह स्थल नैमिषारण्य नाम से विख्यात हुआ। वाराह पुराण के अनुसार नैमिश दानव का वध इस स्थल पर हुआ था तब से यह नैमिशारण्य के नाम से विख्यात हुआ।

पचम श्लोक—नारायण नमस्कृतय्य नर चैव नरोत्तमम्

देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत् ॥

(भा० १।२।४)

---

१ भाग० टि० वि० उ० १।१।२ पाघरी श्री निवासाचार्य कृत ।

इस मगलाचरण मे 'व्यास' शब्द आ जाने से इसे व्यास कृत मानने मे सकोच होना स्वाभाविक है। द्वितीय पाठ मे व्यास के स्थान पर 'चैव' पाठ भी प्राप्त होता है। अत इनमे प्रामाणिक पाठ कौन-सा है यह सदिग्ध है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि ये दोनो पाठ ही ठीक हैं—

'नारायणो व्यास इति वाच्य वक्तृ स्वरूपक ।
एक एव परो ह्यात्मा आदावन्ते निवेशित ।। (सु० १।२।४)

आचार्य विश्वनाथ ने उक्त श्लोक मे श्रीकृष्ण देवता, सरस्वती शक्ति, व्यास ऋषि, प्रणव बीज, गायत्री छन्द का उल्लेख किया है।(सा०द० १।२।४)

षष्ठ श्लोक—'जगृहे पौरुष रूपम्' (भागवत १।३।१)

भगवान् ने पौरुष रूप ग्रहण किया था। पौरुष रूप से बढकर कोई दूसरा देव अवश्य है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार तो यह परम व्योमाधिनाथ हैं। यह जब १६ कला का रूप धारण करता है तब महाविष्णु नाम से अभिहित किया जाता है। प्रकृति का ईक्षणकारी सकर्षण तथा कारणार्णवशायी प्रथम पुरुष कहलाता है—

एकन्तु महत स्रष्टृ द्वितीय त्वण्ड सस्थितम्
तृतीय सर्व भूतस्थ तानि ज्ञात्वाविमुच्यत ।। (सा०द० १।३।१)

सप्तम श्लोक—'द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युग पर्यये ।। (भा० १।४।१४)

दीपिका दीपनीकार ने व्यास का जन्म त्रेता के अवसान मे स्वीकार करते हुए व्याख्यालेश (भागवत टीकाकार) के मत को उद्धृत किया है। 'युग-पर्यय' के आधार पर कलयुग, द्वापर, त्रेता मे त्रेता तृतीय युग हुआ, उसके अवसान पर द्वापर के प्रारम्भ मे व्यास का जन्म माना है। (दी० दीपनी १।४।१४) वीरराघवाचार्य का भी यही अभिमत है। (भा० च० च० १।४।१४)

अष्टम् श्लोक—'हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणि.' (भा० १।७।११)

श्रीमद्भागवत व्यासजी ने शुकदेव को कहाँ पढाई-इस शका का समाधान करते हुए विश्वनाथ ने ब्रह्मवैवर्त पुराण के उद्धरण द्वारा यह स्वीकार किया है कि जिस समय शुकदेव समाधिनिष्ठ थे तब व्यास ने अपने शिष्यो को भागवत के श्लोक पठ करवाकर उनके समीप उच्च स्वर पूर्वक गान करने को भेजे। उन श्लोको के माधुर्य से शुकदेव की समाधि भग्न हो गई और वे उन

श्लोको के रचियता अपने पिता का नाम सुनकर उनके पास चले आये और उनसे भागवतशास्त्र पढा था। (सारार्थ दर्शिनी १।७।११)।

नवम श्लोक— धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये० (भा० १।६।३६)

भीष्मकृत स्तुति मे यह युद्ध का वर्णन है। कृष्ण अर्जुन के घोडो की वल्गा पकडे हुए हैं। यहाँ श्रीधर स्वामी ने अनकारान्त 'रश्मि' शब्द से भी 'व्रीह्यादि गण म' रश्मि' शब्द को मानकर 'इनि' प्रत्यय से 'रश्मिनि' शब्द को साधु माना है (भा० दी० १।६।३६)। दीपिका दीपनीकार ने इस पर आपत्ति की है। उनके अनुसार यह श्रीधर स्वामी की भूल है क्योंकि 'व्रीह्यादिभ्यश्च' (अष्टाध्यायी ५।२।११६) का प्रमाण देना सगत जब माना जा सकता था जबकि उसमे 'रश्मि' शब्द पठित होता किन्तु इस व्रीहि आदि गण मे 'रश्मि' शब्द क्वचित उपलब्ध नही होता—

'यद्यप्यत्र रश्मिशब्दो न दृश्यते तथाप्याकृतिगण मत्वा ऊहनीय, यद्वालेखक प्रमादात् रश्मि शब्दस्यादर्शनमनुमेयम्।' (दी० दीपनी १।६।३६)

सम्भव है 'रश्मि' शब्द श्रीधर के समय मे व्रीह्यादि गण म पठित हो पश्चात् लेखक के प्रमाद से वह छूट गया हो क्योंकि श्रीधर स्वामी अत्यन्त सावधान होकर टीका लिखते थे और साथ ही व्याकरण के मर्मज्ञ विद्वान् थे। अत उनसे भूल होना मानना उचित न होगा।

दशम् श्लोक—'मृदगशाख ।' (भागवत १।१०।१५)

भीष्म के भूतल वियोग के समय अनेक वाद्य सुनाई दिये थे। श्रीधर स्वामी ने यहाँ मृदगादि दशविध वाद्य माने हैं (भा० दी० १।१०।१५)। आचार्य विजयध्वज ने मृदग शख, भेरी, वीणा, पणव, गोमुख, धुन्धरी, दुन्दुभी आदि की सुन्दर व्याख्या भी की है (पद रत्ना० १।१०।१५)। आचार्य वल्लभ न चतुर्विध वाद्यो का उल्लेख किया है तथा मृदग, भेरी, पणव आनक दुदुभी को नद्ध का भेद, शख, गोमुख को शुषिर का भेद, वीणा, ततम्प, घटा धुधुरी को घन भेद मे लिखा है। (सुबो० १।१०।१५)

एकादश श्लोक—'कुरु जांगल पंचालान्०' (भागवत १।१०।३४)

श्रीकृष्ण भीष्म निर्याण के पश्चात् हस्तिनापुर स द्वारका जाने को जब उद्यत हुए तब पाण्डवों ने उन्हें भावभरी विदाई दी। द्वारका के मार्ग मे ग्यारह देशो का उल्लेख मिलता है—कुरुजागल, पचाल, शूरसेन, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, सौवीर, आभीर और आनर्त (भा० दी० १।१०।३४)। इन देशो मे क्रम की विवक्षा पर ध्यान नही दिया गया, अन्यथा शूरसेन के पश्चात् कुरुक्षेत्र का उल्लेख असगत है। जीवगोस्वामी ने लिखा है

कि यह व्युत्क्रम अपने व्यक्तियो के मिलने के कारण कृष्ण ने किया था और उसी दिन द्वारका पहुँचना रथ की शीघ्रता का द्योतक है। (क्रम सन्दर्भ १।१०।३४)

द्वादश श्लोक—'*अथाजगाम भगवान्नारद सहतुम्बुरु०*' (भा० १।१३।३७)

श्रीधर स्वामी ने इस प्रसग मे पाठान्तर स्वीकार करते हुए भी उसकी उपेक्षा की है और सम्प्रदाय के अनुसार पाठ मानकर व्याख्या की है (भा दी १।१३।३७)—

'अत्रास्ति क्वचित् पुस्तके पाठान्तर तदुल्लध्य यथा सम्प्रदाय व्याख्या यते' इससे श्रीधर स्वामी के समय भी इसके पाठान्तरो मे मतभेद था, यह स्पष्ट है।

त्रयोदश श्लोक—'तस्यान्तरायो ।' (भागवत १।१३।५६)

धृतराष्ट्र विदुर के साथ हिमाचल म चले गये थे तथा वहाँ श्वास अवरोधनपूवक स्थित थे। नारद ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया कि तुम उसके सन्यास म विघ्न स्वरूप मत बनो। अन्तराय ९ प्रकार का योग शास्त्र म वर्णित है।[1] व्याधि, स्तयान, सशय प्रमाद, आलस्य, विरति, भ्रान्ति दर्शन अलब्ध भूमिका, अनवस्थिति, चित्तविक्षेप। दीपिका दीपनीकार ने इन्हे ही यहा विघ्न माना है। (दी दीपनी १।१३।५६)

चतुर्दश श्लोक—'*व्यतीता कतिचिन्मासा०*' (भागवत १।१४।२)

अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ द्वारका गय थे। हस्तिनापुर मे युधिष्ठिर को अनक अपशकुन दिखलाई दे रहे थ, अत उन्हे अर्जुन की चिन्ता हो गई और उन्होने भीम से कहा कि तुम्हारे भाई को गये कुछ मास व्यतीत हो गये है किन्तु कोई समाचार नही मिला (पद रत्ना १।१४।२)। पद रत्नावलीकार ने मास' शब्द का अर्थ दिवस माना है। और यह सिद्ध किया है कि जहाँ चिन्ता भाव प्राधान्य होता है वहाँ दिन के लिये मास' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है।[2] आचाय वल्लभ एव विश्वनाथ ने भागवत के प्रमाणानुसार अर्जुन को द्वारका प्रस्थान किये ७ मास का समय ही स्वीकार किया है किन्तु विजय ध्वज ने दिवस माना है। यहाँ विजयध्वज का अथ समीचीन प्रतीत नही होता क्योकि इतना दीघ माग तय कर द्वारका म पहुँचना एव तत्क्षण ही भगवान

---

१ पातजलदशन समाधिपाद, सूत्र ३०।

२ 'अहस्तु मास शब्दोक्त यत्र चिन्तायुत व्रजेत्' इत्यभिधानम

(पदरत्नावली १।१४।२)

श्रीकृष्ण से मिलकर परावर्तित होना ठीक प्रतीत नही होता । साथ ही युधिष्ठिर ने जिन अपशकुनो की भीमसेन से चर्चा की है वे भी एक दिन मे ही हो गये हो, असगत है । उनमे शृगाल की ध्वनि गोमुख मे अश्रुदर्शन, प्रतिमा भग्न, विद्युत् गर्जन रुधिर वृष्टिवत् काल प्रतीति आदि भी हैं । एव यात्रा मे हिरणी का दक्षिण की ओर से वाम ओर प्रस्थान, मृत्यु दूत कपोत तथा उलूक के उच्चारण आदि भी सम्मिलित हैं । अत सात मास का समय ही चिन्ता का विषय सम्भव है–सात दिवस नही ।

पचदश श्लोक—'मृत्युदूत कपोतोऽयमुलूक कम्पयन्मन०' (भा १।१४।१४)

विजयध्वज ने कपोतदर्शन स्वप्न मे माना है, वीरराघवाचार्य ने अयम् शब्द को उलूक के साथ सम्बद्ध किया है ।[1] इस श्लोक का अन्वय निरुष्ट है अत सभी टीकाकारो ने उसका समाधान किया है । शका का स्थल–'शून्य-भिच्छन' यह द्विवचन प्रयोग है जब कि श्लोक म कपोत, उलूक, प्रत्युलूक तीन वर्णित है । शुकसुधी[2] ने अय' शब्द का कपोत से वीरराघव ने 'अय' का सम्बन्ध ऊलूक से स्थिर किया है । द्विवचन का सम्बन्ध उलूक, श्वान से बिठाया है । यहा अन्य किसी टीकाकार ने श्वान का उल्लेख नही किया ।

षोडश श्लोक— यो नो जुगोप वनमेत्य० (भागवत १।१५।११)

अर्जुन ने युधिष्ठिर के समक्ष कृष्ण की महिमा का गान करते हुए दुर्वासा से अपनी रक्षा की वार्ता का स्मरण किया— एक बार दुर्योधन ने दुर्वासा ऋषि को अपने आतिथ्य स सन्तुष्ट कर युधिष्ठिर के समीप भोजन क लिये भेजा और यह समझा दिया था कि जब वे भोजन कर चुकें तब आप पधारें उसका लक्ष्य था कि ऐसा करने से पाण्डवो को दुर्वासा की क्रोधाग्नि म दग्ध होना पडेगा ।[3] श्रीधर स्वामी की गद्य शैली का यह सरस उदाहरण है । वीर राघवाचार्य ने भारत के श्लोक ज्यो के त्यो रख दिये हैं । श्रीधर

---

१ अयमुलूको मृत्योर्दूत स च प्रत्युलूकश्च मदभिद्रुखमन्यश्च उलूक-श्वानावेतो अनिशो कुहू वानं कु कु इत्येव विधं शब्दं इम देश शून्य-मिच्छत सूचयत ।' (भाग च. च. १। ४।७)

२ सिद्धान्त प्रदीप १।१४।१४ ।

३ 'कदाचिदुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्य कृतम् मेन च परितुष्टेन वर वृणीष्वे-त्युक्त, दुर्वासस शापात् पाण्डवा नश्येयुरिति मनसि निधाय वचनम् ।' (भा टी १।१५।११)

कि यह व्युत्क्रम अर्प ... गद्य के माध्यम से ही अन्तर्कथाऐं लिखी हैं।
उसी दिन द्वारका प ... रखे हैं।
११०।३४) ... स्य धनञ्जयोदित ।' (भागवत १।१५।३३)

द्वादश श्लोक—'अ ... भूतल त्याग की बात सुनी। इस प्रसग मे श्रीकृष्ण
श्रीधर स्वामी ... स्वीकार नही करते। दीपिका दीपनीकार
उपेक्षा की है और सम्प्र ... ने नराकृति का परित्याग कर दिया था।
१।१३।३७)— ... हुए थे, देह त्याग कर नही गये थे। ऐसा
'अत्रास्ति क्वचि ... विरोध प्राप्त होगा (दी दी १।१५।३३)।
यते' इससे श्रीधर स्वामी ... नु शब्द से शरीर का ग्रहण नही अपितु भू-भार
स्पष्ट है। ... होना चाहिये—

(यथा क्रम सन्दर्भ १।१५।३६)

त्रयोदश श्लोक—'तस ... कमेव ननु स्व तन्वा सह इति व्याख्येयम्'
धृतराष्ट्र विदुर के ... मानते हुए लिखा है। कि 'शान्त यादव
धनपूर्वक स्थित थे। नार ... ही सहायत्व मे सम थे—(सिद्धान्त प्रदीप
म विघ्न स्वरूप मत वनो।
व्याधि, स्तयान सशय, प्रम ... भूभार तनुश्चेति द्वयमपि ईशितुर्भौतिकतया
अनवस्थिति, चित्तविक्षेप। ... भगवल्लीलादर्शनव्यतिरिक्त भौतिकदेहेनं किमपि
है। (दी दीपनी १।१३।५

चतुर्दश श्लोक—'इम

छायोक्त श्लोको की संगति हो जाती है। (दीपिका दी० १।१७।२४-२६) क्रमसन्दर्भकार ने इसे स्पष्ट रूपेण प्रत्येक के चतुर्थ अंश से एक पाद की स्थिति मानी है। (क्र स १।१७।२४) सुबोधिनीकार ने अधर्म को गर्दभाकार मानते हुए उसके 'गर्व संग-मद-अनृत' नामक चार चरण माने हैं। (सु० १।१७।२४) गर्व से तपस्या का नाश ही, तप चरण का भग्न होना कहा गया है। इसी प्रकार संग, मद, अनृत से अन्य चरणो का विनाश वर्णित है।

प्रथम स्कन्ध मे टीकाकारो ने प्राधान्यत. उन स्थलो का विवेचन अधिक उत्साह के साथ किया है जिनमे उन्हें अपनी सम्प्रदाय की अनुकूलता दिखलाई पडी है। मध्व सम्प्रदाय के सभी टीकाकारो ने शुकदेव को रुद्र स्वरूप लिखा है। (भाग तात्पर्य टि प्रबो) तथा जीवात्मा एवं परमात्मा मे भेद का स्पष्टीकरण किया है और उसके प्रमाण के लिये 'ऋत पिवन्तो' आदि श्रुति वाक्य भी उद्धृत किये हैं।[1] व्यास को धर्म का रक्षक भी माना है और उनका आश्रम 'शम्याप्रास' लिखा है। शम्या नामक यज्ञ सम्बन्धि काष्ठ विशेष पर जहा यज्ञशाला बनाई गई थी वह आश्रम शम्याप्रास था। (ता टि प्र १।७।१) यह व्युत्पत्ति मध्व कृत तात्पर्य के पश्चात् उनके अनुगामी टीकाकारो ने भी स्वीकार की है।

व्यास का जन्म प्रकरण टीकाकारो का विवेच्य विषय रहा है। द्वापरादौ की व्याख्या म कोई द्वापरान्त कोई त्रेता का अन्त मानते है किन्तु 'व्यास पद् शतवर्षीयो धृतराष्ट्रमजीजनत के प्रमाणनुसार श्री मध्वाचार्य द्वापर के अन्तिम चरण मे व्यास जन्म मानते हैं। ब्रह्म कल्प के प्रथम मन्वन्तर के तृतीय युग द्वापर मे व्यास जन्म 'गिरिधर गोस्वामी' ने लिखा है (बाल प्रबो १।४।१४। प० रामप्रताप ने अपनी सुबोधिनी टीका म 'अष्टाविंशतिमे द्वापरे' २८ वें द्वापर मे व्यास जन्म माना है। यह पक्ष अन्य मतो की अपेक्षा अधिक संगत हैं एव हमे युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

द्वितीय स्कन्ध

द्वितीय स्कन्ध मे प्राय सभी टीकाकार दस अध्याय मानते हैं। कतिपय श्लोकों के पदा का अर्थ टीकाकारा ने अपनी स्वेच्छा से भी किया है। उदाहरण स्वरूप—

श्लोक १—'आत्मवित् सम्मत. पुंसाम्' (भागवत २।१।१)

---

1 'छायातपाविति वाक्यशेषे जीवेश्वरयोरनादिनित्यभेदप्रतिपादकं शास्त्रान्तरस्य संमतम्।' (भागवत तात्पर्य टिप्पणी प्रबोधिनी १।१।२)

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि 'तुम्हारा प्रश्न अत्यन्त लोकोपकारी है तथा आत्म ज्ञानियो की भी सम्मत है। श्रीधर स्वामी ने आत्मवित् का अर्थ मुक्त किया है, (भा दी २।१।१), वीरराघव ने आत्मज्ञान (भा च च २।१।१) एव विजयध्वज न ब्रह्मादि देव (पद रत्ना २।१।१)। यहा हम यह कह सकते हैं कि केवल विजयध्वजाचार्य न अपनी सम्प्रदाय भावना से यहा ब्रह्मा का उल्लेख किया है। अन्य टीकाकारो व अर्थ परिवर्तन म कोई गहरा मतभेद नही है।

श्लोक २—'अधीतवान् द्वापरादो पितुर्द्वैपनादहम्' (भा० २।१।८)

शुकदेव ने परीक्षित से कहा कि यह भागवत पुराण द्वापरादि मे मैंने अपने पिता के द्वैपायन से पढा था। इस श्लोक मे द्वापरादो' पद टीकाकारो के विवाद का विषय रहा है। द्वापरादौ का अर्थ कलियुग, त्रेता भी किया गया है। वीर राघवाचार्य ने कलियुग का आरम्भ माना है उन्होंने इस पद का समास निम्नलिखित प्रकार से किया है—

'द्वापर आदिर्यस्य स द्वापरादि कलियुगादि' (भा च च २।१।८)

आचार्य बल्लभ ने त्रेता युग माना है। षष्ठी तत्पुरुष के द्वारा वे अपने मत की पुष्टि करते है। (सुबो २।१।८) विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वापर के आसपास' अर्थ सगत मानते है। (सा द २।१।८) विश्वनाथ का 'द्वापरोपान्त' अर्थ करने का अभिप्राय स्पष्ट है कि वे न तो 'द्वापरस्यादौ' अर्थ के पक्षपाती हैं न कलियुगारम्भ के। एक प्रकार से इन्होने आचार्यवल्लभ तथा वीरराघवाचार्य के अर्थ का खण्डन किया है। राधारमणदास ने 'द्वापरान्त' अर्थ किया है। (दी दी २।१।८) यह वीरराघव के मत से मिलता है। वर्तमान अष्टादश सहस्त्र श्लोकात्मक भागवत का निर्माण द्वापर के अन्त म ही मानना चाहिये। 'द्वापर के आदि मे' यह अर्थ चतु श्लोकी भागवत, जो नारद को प्राप्त हुई थी उसके सम्बन्ध मे भले ही युक्त बैठता हो वर्तमान भागवत महापुराण से नही। क्योकि व्यास एव शुकदेव का जन्म भी द्वापर के अन्तिम चरण म पाण्डवो से सम्बधित है। अत लाखो वर्ष पूर्व का अर्थ कथमपि सु-सगत अ होगा।

श्लोक ३—'प्रादेश मात्र पुरुष वसन्तम् (भागवत २।२।७)

शुकदेव जी ने परीक्षित को ध्यान विधि का उपदेश दिया था, इसम चतुर्भुज और चतुरायुधधारी परमात्मा का प्रादेश मात्र हृदय म ध्यान करना सर्वोत्तम सिद्ध किया है। इस श्लोक की टीका मे वल्लभाचार्य ने चार प्रकार के स्वरूप की कल्पना की है (सुबो २।२।७) तथा श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने

चार प्रकार के योगियों की (सा द २।२।७)। वल्लभाचार्योक्त चार रूप निम्न हैं—

१ अंगुष्ठ मात्र, २. प्रादेश मात्र, ३ पुरुष मात्र, ४ चतुर्भुज।

उक्त श्लोक की व्याख्या में किशोराकार भगवान की उपासना पर विश्वनाथ ने अधिक बल दिया है, वे वल्लभाचार्य के मत से सहमत नहीं हैं। गौडीय वैष्णव किशोरोपासक हैं, यह प्रसिद्ध है।

श्लोक ४—'*स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं*
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः।।' (भागवत ३।२।१६)

उक्त श्लोक में अपने पैर की एड़ी से गुदा द्वार की वायु रोककर छः स्थानों में उसे चढ़ाने की विधि वर्णित है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा नामक चक्र क्रमशः गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नाभि, हृदय, कण्ठ एवं भ्रुकुटि स्थानों में स्थित हैं।

चक्र	स्थान	दल	वर्ण
मूलाधार	गुदा	चतुर्दल	व श ष स
स्वाधिष्ठान	लिंग	षड्दल	ब भ म य र ल
मणिपूर	नाभि	दशदल	ड ढ ण त थ द ध न प फ
अनाहत	हृदय	द्वादश	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ
विशुद्ध	कण्ठ	षोडश	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
आज्ञा	भ्रुकुटि	द्विदल	ह क्ष

प्राणायाम की विधि में कतिपय टीकाकार नाभि में वायु का उत्थान मानते हैं तथा आचार्य वल्लभ नाभि में अष्टदल मानते हैं किन्तु अष्टदल मानने से ४८ हजार अक्षर की सहस्र स्थानों में स्थित किये जा सकेंगे। षट्चक्र में षट्चक्रनिरूपण द्वारा ५० वर्ण की मातृका स्थान में गिनाये गए हैं।[1]

श्लोक ५—'तस्मै नमो भगवते' (भागवत २।४।१२)

उक्त श्लोक में विश्वनाथचक्रवर्ती ने अपने सम्प्रदाय के गुरु मन्त्र का

---

1 षट्चक्र निरूपण—सं० पूर्णानन्द यति, कालिकादेवी बम्बई सं० १८२६।

उल्लेख किया है, वह है—'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि
तन्नो विष्णु प्रचोदयात्'
इसे विष्णु गायत्री भी कहा गया है।

श्लोक ६—'द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च०' (भा. २।५।१४)

उक्त श्लोक में आचार्य वल्लभ ने शुद्धाद्वैत के तत्वों का निरूपण बड़े विस्तार के साथ किया है। वल्लभाचार्य ने इसे तत्व गणना का मूल स्रोत भी स्वीकार किया है। अन्य टीकाकारों ने उक्त दोनों श्लोकों पर अपना कोई अभिमत प्रकट नहीं किया है।

श्लोक ७—ऋचाओं का साधर्म्य (भागवत २।५–६।३०-२८)

श्रीमद्भागवत के इस स्कन्ध में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की ऋचाओं का अर्थ प्रकट किया है। अर्थ के साथ-साथ शब्द सम्पत्ति में अत्यधिक साम्य है, ऐसा प्रतीत होता है कि भागवतकार ने वेद के वाक्य ही यहाँ मूल रूप में रखना उचित माना था। किन्तु सूक्त की ऋचाओं के क्रम में और भागवत के श्लोकों के क्रम में व्युत्क्रम है। टीकाकारों के अनुसार भागवत में निम्नलिखित ऋचाओं को माना जा सकता है—

भागवत के श्लोक		वेद की ऋचा
वैकारिकान्मनो०	(२।५।३०)	चन्द्रमा मनसो जात०
स एव पुरुष०	(२।५।३५)	सहस्रशीर्षा पुरुष०
पुरुषस्य मुख ब्रह्म०	(२।५।३७)	ब्राह्मणोऽस्य मुख०
सर्वं पुरुष एवेद०	(२।६।१६)	सभूमि विश्वतो०
पादेषु सर्वभूतानि०	(२।६।१८)	उताभृतत्वस्ये०
पादास्त्रयो०	(२।६।२०)	त्रिपादूर्ध्व०
सृती विचक्रमे०	(२।६।२१)	ततो विष्वङ्०
यस्मादण्ड विराड्०	(२।६।२२)	तस्माद्विराड्०
तेषु यज्ञस्य०	(२।६।२३)	यत्पुरुषेण हविषा०
वस्तून्योषधय	(२।६।२४)	त यज्ञ०
नामधेयानि०	(२।६।२५)	तेनदेवा०
गतयो मतय०	(२।६।२६)	तस्माद्यज्ञात्०
इति सम्भृत०	(२।६।२७)	तस्माद्यज्ञात्०
		तस्मादश्वा०
ततस्ते भ्रातर०	(२।६।२८)	यज्ञेन यज्ञम्०

टीकाकारों ने उक्त वैदिक भाग की व्याख्या स्व सम्प्रदायानुसार की है।

श्लोक ८—'अध्यर्हणीयासनमास्थितपरं वृत चतु षोडष प च शक्तिभि'
(भागवत २।९।१६)

उक्त श्लोक मे भगवान को चार-पाँच तथा सोलह शक्तियो से आवृत माना है किन्तु उन शक्तियो के नाम का स्पष्टीकरण नही किया गया। फलत टीकाकारो ने अपनी विचारधारा के अनुसार उनके नाम मान लिये हैं। श्रीधर स्वामी एव वल्लभाचार्य ने चार शक्तियो मे प्रकृति, पुरुष, महान् अहकार की गणना की है। विजयध्वज न इच्छा, ज्ञान, क्रिया तथा बल' लिखे हैं एव जीवगोस्वामी ने उक्त दोनो पक्षो से पृथक—धर्म, ज्ञान, वैराग्य एव ऐश्वय को ही चार शक्तियो मे गिना है। इसी प्रकार श्रीधर एव वल्लभ ने षोडश शक्तियो मे ११ इन्द्रिय एव ५ महाभूत मिलाकर १६ सख्या उचित मानी है जबकि विजयध्वज ने वायु पुराणोक्त १६ शक्तियो के नाम लिखे हैं, जो निम्न हैं—

१ मोचिका, २ सूक्ष्मा, ३ असूक्ष्मा, ४ अमृता ५ ज्ञानामृता, ६ आप्यायिनी, ७ व्यापिनी, ८ व्योमरूपणी, ९ अनन्ता, १० अणिमा ११ महिमा, १२ लघिमा, १३ प्राप्ति १३ प्राकाम्य, १५ इशित्व १६ वशित्व

भागवतकार को यहाँ षोडश शब्द से अभीष्ट क्या था यह निश्चित नहीं कहा जा सकता किन्तु उक्त दोनो पक्ष के विद्वानो ने अपना मत किस प्रमाण से पुष्ट माना है—स्पष्ट नही है। विजयध्वज ने जिन सोलह शक्तियो का उल्लेख किया है उनमे अणिमा, महिमा आदि आठ सिद्धियाँ भी हैं। श्रीधर स्वामी आचार्य वल्लभ एव विजयध्वज ने ग्यारह इन्द्रिय एव पाँच भूतो को ही भगवान् की शक्ति माना है।[1] इसमे किसी हेतु का उल्लेख नही किया है। अत इसे स्वेच्छया मान लिया गया है, कहा जा सकता है, क्योकि जीव गोस्वामी ने पद्म पुराणोक्त सोलह शक्तिया लिखी हैं[2]—

चण्ड प्रचण्ड भद्र, सुभद्रक, जय विजय, धाता, विधाता, कुमुद कुमुदाक्ष, पुण्डरी वामन श कुकर्ण, सर्व नेत्र, सुमुख तथा सुप्रतिष्ठित।

इसी प्रकार पाच शक्तियो के नाम म भी ऐक्य नही है। श्रीधर ने

---

१ (क) भावार्थ दीपिका २।९।१६। (ख) सुबोधिनी २।९।१६।
(ग) पदरत्नावली २।९।१६।

२ क्रम सन्दर्भ २।९।१३।

पाच त मात्राओ के नाम लिखे हैं[1]—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। जीव गोस्वामी ने कूर्म, नागराज वैनतेय, छन्द मन्त्र का उल्लेख किया है।

श्लोक ६—'अहमेवासमेवाग्रे०' (भागवत २।६।३२)

उक्त श्लोक से चतु श्लोकी भागवतारम्भ मे किसी टीकाकार को आपत्ति नही है किन्तु 'अहमेवासमेवाग्रे' के 'अह' पद से उनका कर्त्ता मूर्त सिद्ध करते हुए तथा 'आसम्' क्रिया से वर्तमानता मानते हुए वैष्णव टीकाकारो ने निर्विशेष वाद का खन्डन किया है।

इस स्कन्ध मे प्राय सभी टीकाकारों को अपने मत की पुष्टि की सामग्री प्राप्त हुई है, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत आदि सभी सम्प्रदाय के टीकाकारो ने विभिन्न श्लोको पर अपने मतवाद की स्थापना की है। शुकसुधी ने अपनी व्याख्या मे स्पष्ट रूप से भेदाभेद वाद सिद्ध किया है। विश्व कार्य है अत परमेश्वर से भिन्न है तथा निरपेक्ष स्थिति प्रवृत्ति आदि के अभाव से अभिन्न है जैसे पृथिवी से औषधी भिन्न स्वरूप भी है अभिन्न भी।

'एव तावद्भगवत उत्पन्न विश्व कार्यत्वेन भिन्नमपि कारण निरपेक्ष स्थिति प्रवृत्याद्यभावात्तदभिन्न यथा पृथिव्या औषधय भिन्न स्वरूपा अप्यभिन्ना ।' (सिद्धान्त प्रदीप २।६ ३२)

जीवगोस्वामी ने 'कथा हरि कथोदर्का' की व्याख्या मे गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के तत्व एव सिद्धान्तो की मीमासा प्रस्तुत की है, शिव एव विष्णु मे कोई भेद नही है इस पर दो ो के ऐक्य के लिए पठनीय सामग्री प्रस्तुत की है—(क्रम सन्दर्भ २।१।११)

सता निन्दा नाम्न परममपराधं वितनुते
यत ख्याति यात कथमुसहते तद्विगर्हां ।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुण नामादि सकल
धियाभिन्न पश्येत् स खलु हरिनामामृतकर ॥

तृतीय-स्कन्ध

श्लोक १—अथाजयद्धर्म सुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभु
सोऽपि क्ष्मामनुजैरक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रत ॥ (भा० ३।३।१८)

उक्त श्लोक मे युधिष्ठर द्वारा तीन अश्वमेध यज्ञ करने एव भाइयो की सहायता से पृथ्वी सुख से निवास करने का सकेत है। श्री वल्लभाचार्य न इस

---

१ भावार्थ दीपिका २।६।१६।

श्लोक मे मर्यादा मार्ग, पुष्टि मार्ग का विवेचन किया है एव पुष्टिमार्ग का वैशिष्ट्य सिद्ध किया है। यहाँ उनका पुष्टिमत नाम्ना निर्दिष्ट है (सु० ३।३। १८)। इसके पूर्व सोलहवें श्लोक में उन्होने 'प्रवाह मर्यादा' की स्थापना पर बल दिया था। 'अनेन प्रवाह मर्यादा च स्थिरा कृतवानित्युक्तम्' सु० ३।३।१६) आचार्य ने यादवो को भी पुष्टि मार्गीय भक्त लिखा है (सु० ३।३। २०)। यद्यपि नवधा भक्ति का निरूपण श्रीमद्भागवत मे किया गया है तथापि वल्लभ नवधा भक्ति का अन्तर्भाव पुष्टिमार्गीय 'तनुजा' सेवा मे करते है। 'पुष्टि मार्गे हरेर्दास्यम्' पुष्टिमार्ग मे हरि के दास्य भाव का ही विशेष समादर है। जीवभेद, देहभेद एव क्रियाभेद के कारण पुष्टिमार्ग, प्रवाह मार्ग एव मर्यादा मार्ग की स्थापना की गयी थी—(पुष्टि प्रवाह एव मर्यादा पृष्ठ ३७ पर—हस्तलिखित प्रति)

पुष्टि प्रवाह मर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्
जीवदेह क्रियाभेदै प्रवाहेण फलेन च ॥

उक्त स्थल पर वल्लभाचार्य ने जो स्वसिद्धान्तो का दृढतापूर्वक प्रतिपादन किया है उसकी सगति मूल से कितने अंश मे सगत है यह विचार करने पर ही ज्ञात होगा। स्थूल रूपेण मूल से इस विवेचन का कोई सम्बन्ध नही है। इसी प्रकार 'भगवानेक आसेदम्' (भा ३।५।२३) मे वीर राघव ने चिद-चिद्विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन (भा च च ३।५।२३) तथा जीवगोस्वामी ने अंश अंशी का विवेचन स्वसिद्धान्त परक किया है—

'इद विश्व पुरुषादि पार्थिव पर्यन्त तदानीमेकाकिना स्थितेन भगवता सहैको भूयासीदित्यर्थ इति तत्र स्वांशानामप्यशित्व दर्शित ब्रह्माभिन्न- त्वच। (क्रम सन्दर्भ ३।५।२३)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सिद्धान्त विवेचन मे जीवगोस्वामी का अन्धानुकरण नही किया है।

श्लोक २–'पुरामयाप्रोक्तमजायमार्ग्य' (भागवत ३।४।१३)

उक्त श्लोक के 'पुरा', पद का अर्थ जीवगोस्वामी ने पद्मकल्प (क्र. स ३।४।१३) तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ने ब्राह्मकल्प (भा. द. ३।४।१३) किया है। तथा चतु श्लोकी भागवत की ओर यह वाक्य सगत माना है।

श्लोक ३–'कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य' (भागवत ३।४।१६)

उक्त श्लोक की व्याख्या मे १६ विशेषण है इन्हें वल्लभाचार्य १६

कलाओ का प्रतीक मानते है। (सु० ३।८।१६) मुक्ति के चातुर्विध्य का विवेचन भी अत्यन्त सुन्दर है।

श्लोक ४—'भगवानेक आसेदमग्रआत्माऽऽत्मनां विभु (भा० ३।५।२३)

सृष्टि के पूर्व केवल भगवान ही थे। यहा 'आत्मना' का अर्थ श्रीधर ने (भा दी ३।५।२३) जीव एव आत्मा का = आत्मस्वरूप, विजयध्वज ने आत्मा का अर्थ आदानादिकर्ता (पद रत्ना ३।५।२३) वल्लभाचार्य ने चिद्रूप (सु ३।५।२३), शुकसुधी ने आत्मात्मना का अर्थ = प्रकृति पुरुष किया है (सि प्र ३।५।२३)

श्लोक ५—'साध्यात्म साधिदैवश्च' (भागवत ३।६।६)

उक्त अध्याय मे आचार्य वल्लभ ने अनाधिकरणारम्भ माना है तथा उक्त श्लोक मे अविकृत परिणामवाद को सिद्ध किया है।

श्लोक ६—'सत्सेवनीयो बत पूरुवशो' (भागवत ३।८।१)

उक्त श्लोक मे वीरराघव ने भागवत की दो परम्पराओ का उल्लेख किया है—इन व्याख्यान मे पराशर को पुलस्त्य द्वारा पुराणकर्ता' को वरदान देना भी लिखा है, पाराशर के पिता की मृत्यु राक्षसा ने की थी। पराशर यज्ञ द्वारा उन्हे नष्ट करना चाहते थे किन्तु वशिष्ट क आदेश से यज्ञ बन्द किया इस पर पुलस्त्य ने अपने वशजो की रक्षा के कारण उन्हे वर दिया था (भा च च ३।८।६) वल्लभाचार्य ने वीरराघव की भाति अन्तकथा नहीं दी किन्तु यह अवश्य लिखा है कि प्रारम्भ मे पराशर अपढ थे, वरदान प्राप्ति क पश्चात् वे विद्वान बने थे।

श्लोक ७—विद्या दान तप सत्यम्' (भागवत ३।१२।४१)

उक्त श्लोक मे धर्म के चार चरणो का वर्णन है—विद्या, दान, तप, और सत्य। प्रथम स्कन्ध म तप शौच, दया तथा सत्य का उल्लेख किया गया है। इनके समाधान मे वीरराघव की अवस्था देखने योग्य है उनका कथन है कि दया शौक, विद्या ये दान के कार्य हैं। कारण शब्द कार्य मे व्यवहृत किया जा सकता है अत न दोष का प्रश्न है न विरोध का।

(भा० च० च० ३।१२ ४१)

श्लोक ८—'वराहतोको निरगात्' (भागवत ३।१३।१८)

वाराहावतार दो बार मानना उचित है, प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तर म द्वितीय चाक्षुष मन्वन्तर मे। विश्वनाथ का कथन है कि स्वायम्भुव म प्राचेतस दक्ष की सत्ता नही थी तब हिरण्याक्ष जन्म भी सगत नही है। अत स्वाय-

स्भुव तथा चाक्षुष मन्वन्तर के वाराहो की कथा मिलकर मैत्रेय ने वर्णित की है। वस्तुत विश्वनाथ का समाधान बुद्धिगम्य है।

श्लोक ६—'आहैन मेह यग सुराधमासादित सकराकृते।'
(भा० ३।१८।२)

श्रीधर ने उक्त श्लोक मे हिरण्याक्ष की उक्ति के २ अर्थ किये हैं प्रथम अधिक्षेप एव द्वितीय स्तुति पक्ष। अधिक्षेप पक्ष मे—अरे अज्ञ। इस पृथ्वी को छोड दे, ब्रह्मा ने यह पृथ्वी रसातल वासियो को दे दी है, सूकर रूपधारी सुराधम। मेरे स्थित तू इस पृथ्वी को सकुशल नही ले जा सकता। स्तुति पक्ष म, अज्ञ का अथ सवज्ञ तथा सुरधाम का अर्थ—देवश्रेष्ठ होगा।

श्लोक १०—'करेण कर्णं मूलेऽहन्' (भागवत ३।१६।२५)

उक्त श्लोक मे वाराह द्वारा हिरण्याक्ष के कर्णमूल मे घूसा मारने का उल्लख है किन्तु २८ वें श्लोक मे वाराह के चरण द्वारा मारने का। अत मूल मे ही पूर्वापर विरुद्ध व्याख्यान है। इसके समाधान मे श्रीधर ने युक्तिपूर्वक पाद शब्द का अथ हाथ किया है। उनका कथन है कि पशु के अगले पाद, कर ही कहे जाते हैं, अत कोई विरोध नही है— (भा० टी० ३।१६।२५)

'पूर्वं पादयोरेव करत्वात् करेणाहन्निति पदाहत इति चाविरुद्धम्।

श्लोक ११—'गतिरग शृण्वताम' (भागवत ३।१६।३८)

उक्त श्लोक के अग पद पर विवाद है कि यह सम्बोधन विदुर के लिये है अथवा परीक्षित या शौनक के लिए। अग का अर्थ—श्रीधर स्वामी ने (भा० टी० ३।१६।३८) विदुर' राधारमण दास ने (टी० टी० ३।१६।३८) शौनक', वीरराघव ने (भा० च० च० ३।१६।३८) परीक्षित माना है। राधा रमणदास ने वतमान श्रीधरी के पाठ विदुर को प्रामादिक माना है। उन्होने स्पष्ट लिखा है टीकायाभग हे शौनक इत्यत्र पाठ विदुर इति तु प्रामादिक। जीवगोस्वामी जी ने अग का अथ 'शौनक' ही माना है। (क्र० स० ३।१६।१८)

उक्त श्लोक मे 'शुक उवाच है अत अग का अथ परीक्षित करना उचित है जैसा कि वीरराघव मानते हैं किन्तु द्विज पाठ जहां है वहां अग का अर्थ 'शौनक उपयुक्त है। ३३ वें श्लोक मे सूत उवाच से इसकी सगति भी बैठती है।[1] वर्तमान भागवत मे 'सूत' 'शौनक उवाच' का उल्लेख है, अत यह विचार किया जाता है कि व्यास जी के पश्चात् इसकी रचना पुन की गयी

१ गीताप्रेस हिन्दी टीका के सस्करण में 'अग' शब्द का उल्लेख ही नहीं किया है।

होगी। किन्तु वीरराघवाचार्य का मत है कि सूत शौनक के वार्तालाप को व्यास से पुनः उपनिबद्ध किया था, अथवा व्यास त्रिकालज्ञ थे, अतः अपने तपोबल के द्वारा सूत शौनकों के सम्वाद को भागवत निर्माण के समय ही वे लिख चुके थे। व्यास के त्रिकालज्ञ होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। वीरराघव का मत अत्यन्त समीचीन है एवं इसके अतिरिक्त अन्य कोई समाधान भी ऐसा प्राप्त नहीं जिसके आधार पर सूत शौनक उवाच की संगति बैठायी जा सके।

श्लोक १२— तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम्
काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम्॥ (भा ३।२०।२९)

ब्रह्मा का शरीर सुन्दरी सन्ध्या देवी के रूप में परिवर्तित हो गया, उनके चरणों में पायजेब, मदभरे नेत्र, कटिसूत्र मंडित कटि भाग, उन्नत स्तन मण्डल, हावपूर्ण दृष्टि, नीली अलकावली को देखकर असुर मोहित हो गये थे। विश्वनाथ ने सारसों के कलरव को काञ्ची, मेघ खण्डों को नितम्ब, लालिमा को दुकूल, सूर्य किरणों का मेघच्छिद्रों से निःसरण ही हासावलोकन तथा काले मेघ खण्डों को भी नीलालक माना है। सन्ध्या का यह वर्णन एक सुन्दरी स्त्री के रूप में वर्णित किया गया है (भा द ३।२०।२९)। यह स्त्री सूर्य रूपी गेंद से कन्दुक क्रीडा कर रही है। विश्वनाथ ने अपनी टीका में मूल से अधिक चमत्कार डालने का सफल प्रयत्न किया है। राधारमणदास ने कतिपय स्थलों की व्याख्या जीवगोस्वामी के क्रमसन्दर्भ की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए की है। यहीं तो ज्यों के त्यों उद्धरण लिए हैं—

'भूतेषु वक्ष्यमाणरीत्या अप्राणभृज्जीव मारभ्य भगवदर्पितात्म जीव पर्यन्तेषु भूतात्म तत्तदन्तर्यामीतमवज्ञाय मा तेषामेवाश्रयानदधिष्ठानकरम मर्मवाणा कृर्वेव्यर्थ' (क्र स ३।२९।२२)

'भूतेषु वक्ष्यमाणानुसारादप्राणभृज्जीव मारभ्य मदर्पित जीव पर्यन्तेषु भूतात्मतयादन्तर्यामी अहं सर्वान्तिया तमवज्ञायमदधिष्ठानस्यावज्ञानेन मां पूजां कृर्व्यर्थ इ' (दीपिका दीपनी ३।२९।२२)

जीवगोस्वामी ने पूज्य विष्णु भगवान् में पाषाण बुद्धि करने वाले, गुरु में मनुष्यत्व, वैष्णव में जाति, विष्णुचरणोदक में जल, मन्त्र में शब्द, एवं विष्णु में इतर बुद्धि वाले व्यक्तियों की घोर निन्दा की है—(क्र स. ३।२९।२२)

'अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिः।
विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः॥

शुद्धेतनाम्नि मन्त्रे सकल कलुषहे शब्द सामान्य बुद्धि
विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितर समधीयस्य वा नारकीस ।।'

इस व्याख्यान मे जीवगोस्वामी ने छ श्लोक उद्धृत किये है उनमे से पाच श्लोक राधारमणदास ने उद्धृत किये हैं। भक्तिपरक स्थलो की व्याख्या मे जीवगोस्वामी ने बडे स्पष्टरूप से सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या की है।

चतुर्थ स्कन्ध

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के प्रथमाध्याय मे वर्णित दक्षिणा और यज्ञ का विवाह एक अद्भुत घटना है। बहिन भाई के विवाह की घटना भारतीय सस्कृति के प्रतिकूल कही जा सकती है किन्तु भागवत म इस विवाह को वैध माना गया है।

श्लोक १—अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्य कन्यामलकृताम् (भा० ४।१।२)

स्वायम्भुव मनु की कन्या अकूति थी। इसके विवाह के समय अपने दामाद से यह शपथ ग्रहण करायी गयी थी कि यह कन्या भ्रातृ रहित है इसने उत्पन्न पुत्र मेरा पुत्र बनेगा। किन्तु भागवत म ही आकूति के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक भाइयों का उल्लेख है। अत यह कथन अयुक्त सिद्ध होता है। इसम टीकाकारो ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये है। वीरराघव का कथन है कि यह शपथ पुत्र बाहुल्य भावना से की गयी थी (भा च च ४।१।२)। विजयध्वज का कथन है कि मनु जानते थे कि उनका दौहित्र भगवदश होगा अत ऐसा किया गया (पदरत्ना ४।१।२)। जीवगोस्वामी न 'अभ्रातृ का का अथ भ्रातृ विहीन न मान कर स्वल्प भ्रातृ वाली माना है (क्रम सन्दर्भ ४।१।२)। व अभ्रातृका मे नञ प्रत्यय का अथ स्वल्प मानत हैं। अल्पार्थे नञ् व्याकरण शास्त्र मे प्रसिद्ध है। वीरराघव तथा विजयध्वज की अपेक्षा जीवगोस्वामी का अर्थ सगत प्रतीत होता है। पुत्रिका धर्म म कन्या से उत्पन्न पुत्र का विधिवत् पालन मातामह के गृह मे वैध था। जीवगोस्वामी के मत की इसके द्वारा पुष्टि होती है। वर्तमान गीता प्रेस मे मूल पाठ मे 'अभ्रातृका' के स्थान पर अपि भ्रातृमती नृप पाठ लिखा है। यह अभ्रातृकां से विपरीत है। इसमे नञ के अर्थ के द्वारा अल्पार्थ की क्लिष्ट कल्पना नही करनी पडती। किन्तु वह प्राचीन पाठ है, अन्यथा टीकाकार भी सरलतापूर्वक इस पाठ को मान्यता देते।

श्लोक २—'यस्तयो पुरुष (भागवत ४।१।४)

श्रीधर स्वामी का मत है कि दक्षिणा' लक्ष्मी का अश एव यज्ञ'

विष्णु का अंश था। अतः दोनो ही भगवदंश थे। अतः इनका विवाह वैध है तथा यज्ञ-दक्षिणा की उत्पत्ति रज वीर्य द्वारा नही हुई थी अतः बहिन भाई का औरस सम्बन्ध भी नही है। विवाह मे औरस सम्बन्ध ही त्याज्य है।

श्लोक ३—'लुप्तक्रियायाशुचयेऽमानिनेऽभिन्नसेतवे' (भा ४।२।१३)

इस प्रसंग मे दक्ष ने शिवजी की भर्त्सना की है एवं उन्हें लुप्त क्रिया, अशुचि आदि शब्दो से सम्बोधित किया है। श्रीधर स्वामी ने भर्त्सना पक्ष के साथ शिव के स्तुति पक्ष पर अधिक बल दिया है। पूर्ण प्रसंग के अवलोकन से शिव की निन्दा का पक्ष अधिक-सदृक्त है क्योकि दक्ष ने यह स्पष्ट कहा है कि—'यह शिव लोकपालो की कीर्ति धूल मे मिला रहा है।' इसने सत्पुरुषो के आचरण को कलंकित किया है। यह शिव मेरे पुत्र के समान है इसने लोक व्यवहार की उपेक्षा करते हुए मुझे प्रणाम भी नही किया। पागलो की भाँति कभी हँसता, कभी रोता है, सत्कर्म को लुप्त कर यह घमण्डी बन गया है। यह नाम मात्र का शिव है आदि।

श्रीधर स्वामी का कथन है कि परब्रह्म मे सभी क्रिया लुप्त हो जाती है।

'अशुचये' का अर्थ शिव से बढकर कोई पवित्र नही है।

'अमानिने' वह गर्व रहित है।

प्रेतावास आदि विडम्बना मात्र है।

'अशिव' जिससे बढकर कोई शिव नहीं।

'अमत्त' प्रमाद, रहित है।

'नष्टशौचाय' जिससे नष्टो की भी शुद्धि होती है।

'देवगणाधम' देवगण जिससे अधम हैं।

'सहभाग नलभता' यह देवगणो से पूर्व भाग ग्रहण करें साथ नही।

इससे स्पष्ट है कि मानिने आदि मे-'अकार' का पदच्छेद किया है। श्रीधर का पक्ष वीरराघव ने अस्वीकार किया है एवं यहाँ तक प्रस्तुत किया है कि यहाँ यह स्तुति पक्ष-दक्ष को अभीष्ट नही, भागवतकार को भी अभीष्ट नहीं केवल तुम जैसे व्यक्ति को है।" वीरराघव ने यह भी लिखा है कि यदि दक्ष को स्तुति पक्ष अभीष्ट होता तो वह यह वाक्य न कहता कि 'मैं न तो अज्ञान से ही कुछ कह रहा हूँ न मत्सर से'। साथ ही—

दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापं
तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्ध मन्युः। (भा ४।२।१६)

वाक्य भी सगत नही होगा। वेदव्यास को भी यह अभीष्ट नही, वे सर्वत्र कर्म-वश्यता का प्रतिपादन करते रहे हैं। श्रीधर स्वामी का पक्ष भी उचित नही क्योंकि यह आग्रह मूलक है। जहा जहा भागवत मे शिव की निन्दा की है वहाँ सर्वत्र उनकी प्रशसापरक व्याख्या की जायेगी। 'अमानिने' आदि मे जो पद-च्छेद किये गये हैं वे उचित नही हैं। सती को मानवी कन्या कहना भी उचित नही क्योंकि दक्ष तथा शिव दोनो ही ब्रह्मा के पुत्र हैं। तमोगुणी पर कभी कृपा नही की जा सकती। स्वय भगवान ने कहा है—

'तानह द्विषत क्रूरान् ससारेषु नराधमान्
क्षिपाम्यमजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।' (भा च. च ४।२।१३)

अत स्तुति पक्ष कथमपि उचित नही है। श्रीधर के इस स्तुति पक्ष मे वीर-राघव को उनके द्वारा लिखित 'शिव के परब्रह्मत्व' शब्द पर विशेष आपत्ति है। वीरराघव शिव को परब्रह्म नही भगवदावेशावतार मानते हैं। जीवगोस्वामी ने दक्ष की उक्ति का स्तुतिपरक अभिप्राय भी सगत माना है (क्र स ४।२।१३) श्रीधर स्वामी काशी म विश्वेश्वर की शरण मे निवास करते थे। प्रारम्भ मे उन्होने माधव और उमाधव की वन्दना भी की (भा दी १।१।१ मगलाचरण) है। अत स्थान या सम्प्रदाय की इस प्रेरणा द्वारा स्तुति पक्ष किया गया हो यह स्वाभाविक है।

श्लोक ४—'पार्ष्णिग्रहेणा कनक'' अष्टायुधैरनुचरैः''।' (भा ४।३०।६)

पुरजन चरित मे विष्णु के आठ आयुधो मे पद्म का भी उल्लेख है किन्तु पद्म के स्थान पर 'परशु, पाश, अंकुश मे से कोई मानना उचित होगा। आचार्य विजयध्वज ने इसकी पुष्टि की है (पदरत्नावली ४।३०।६)। पुरजन चरित मे अध्यात्मवाद का निरूपण प्राय स्पष्ट ही है अत टीकाकार विशेष खण्डन-मण्डन मे प्रवृत्त नही हुए।

पंचम स्कन्ध

श्लोक १—'ज्ञान विशुद्ध परमार्थमेकम्' (भागवत ५।१२।११)

उक्त श्लोक की व्याख्या मे विश्वनाथ चक्रवर्ती ने 'ब्रह्म-परमात्मा भगवान' का विवेचन बड़े विस्तार पूर्वक किया है। ६० पंक्तियों की इस व्याख्या मे निर्विशेषवाद का खण्डन भी किया गया है। ब्रह्म, परमात्मा आदि का वर्णन द्वितीय स्कन्ध मे पर्याप्त हो चुका है। विश्वनाथ ने राम का ब्रह्मत्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि इस अवतार के विषय मे किसी को शका भले ही हो किन्तु मै तो राम को निश्चित परब्रह्म मानता हूँ (सारार्थ दर्शिनी ५।१८।३६)—

'अवतारस्यास्य ब्रह्मत्वे केचित् सशेरते तत्रये सशेरते ते सशेरता नाम अहन्तु साक्षामिद परब्रह्म रूपमेवानुभवानि इत्याह यत्तद्विशुद्धम् ।'

वीरराघवाचार्य ने राम की व्युत्पत्ति लिखते हुए उन्हे ब्रह्म नाम से अभिहित किया है—(भा च च ५।१८।४०)

'रमन्ते योगिनोऽनन्ते निन्यानन्दे चिदात्मनि
इति राम पदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते ।'

श्लोक २—'योऽन्तर्विस्तार एतेन विशुद्धामुदाहरन्ति ।'

(भा ५।२०।४२)

उक्त श्लोक की टीका मे भूमण्डल का विवेचन करते हुए वीरराघव ने अपने अगाध पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। ये 'पचास कोटि योजन' भूमण्डल के मध्य भाग मे मेरु पर्वत मानते हैं। मेरु से चारो दिशाओ मे दक्षिण से उत्तर २५ कोटि, तथा पूर्व से पश्चिम २५ कोटि भू भाग है। मेरु से अण्ड भित्ति पर्यन्त २५ कोटि योजनात्मक भू भाग में जम्बू द्वीप पचास हजार योजनात्मक है। सप्त द्वीप के भू भाग का परिणाम २ कोटि ५० लक्ष्य, २० सहस्र योजन माना है। वीरराघव ने शुद्धोदधि के बाह्य भाग मे भी एक कोटि सार्द्धसत्तावन लक्ष योजन भूमि मानी है। इसके आगे आदर्श भूमि है जिसका विस्तार आठ कोटि ३९ लक्ष योजन है। इस प्रकार कुल योग १२ करोड ५० लाख योजन है। लोका-लोक से आगे—अलोक भूमि भी १२ करोड ५० लाख योजन है। यहा लोको का सचार नही है अतएव भागवत मे 'तत परस्तात्' लिखा गया है (भा च च ५।२०।४२) पुराण में भी इसे काँचनी भूमि कहा है (विष्णु पुराण अश २।४।९३)—

'स्वादूदकस्य पुरत दृश्यते लोक सस्थिति
द्वि गुणा काचनी भूमि सर्वजन्तु विवर्जिता ॥'

भागवत म लोकालोक के अन्तर्विस्तार के साथ बाह्य परिमाण का वर्णन भी किया गया है।[1] समीकरण की प्रक्रिया द्वारा टीकाकार ने इस गहन विषय का सरलतम रूप दिखा का सफल प्रयास किया है। अन्य टीकाकारो न इस विषय पर विशेष विवेचन नहीं किया। वस्तुत यह अत्यन्त कठिन स्थल है, यहाँ साहित्य का वाग्जाल नही चल सकता या ज्योतिष का

---

१ योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोक परिमाणं च व्याख्यात यद् बहिर्लोकालोकाचलात् तत परस्तात् योगेश्वर गति विशुद्धामुदाहरन्ति '

(भा० च०च० ५।२०।४२)

सम्यक् स्वाध्याय ही इस विवेचन मे सहायक सिद्ध हो सकता है, इस दिशा मे वीरराघव सबसे आगे हैं ।

षष्ठ स्कन्ध

श्लोक १—'नाम व्याहरणं विष्णोः' (भागवत ६।१।१०)

उक्त श्लोक की २०० पक्तियो की व्याख्या मे विश्वनाथ ने विष्णु *भगवान के नामोच्चारण का माहात्म्य लिखा है ।* (सा. द ६।२।१०) विस्तार से यह टीका पृथक् प्रबन्ध जैसी लगती है । अनेक पुराण वाक्य इसमे लिखे गये हैं । चैतन्य के अनुयायी नाम महात्म्य के प्रबल समर्थक हुए है । विश्वनाथ ने उक्त श्लोक मे इस भावना का सफल प्रदर्शन किया है ।

श्लोक २—'यस्मिन यतो येन च यस्य यस्मै' (भागवत ६।४।३०)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी ने केवल सात विभक्तियो का अर्थ ही लिखा है । (सा. दी ६।४।३०) वीरराघव ने यहा विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना करते हुए ब्रह्म को चिदचिद्विशिष्ट माना है—

(भा च. च च. ६।४।३०)

'कार्यावस्थकारणावस्थयोस्तस्य चिदचिच्छरीरकत्वादेव विश्व रूपत्व मप्युपपन्नम्, कार्यावस्थाया कारणावस्थास्या च चिदचिच्छरीरकत्वाद्विश्वरूपत्वमपि तस्योपपन्नम् ।'

इस विवेचन मे वीर राघवाचार्य ने व्याकरण का कोशल प्रदर्शित किया है । विश्वनाथ चक्रवर्ती ने तो सप्त विभक्तियो का कारण भी ब्रह्म माना है । (सा. द. ६।४।३०) विजयध्वज ने लिखा है कि यस्मिन् का अर्थ यह नही कि विष्णु उसमे अवस्थित है अपितु इन सबका आधार विष्णु है यह मानना चाहिये (प र. ६।४।३०) शुक सुधी ने तो भेदाभेद का सम्बन्ध स्थापित किया है ।

'स्वगतभेदस्तु अस्ति, अतोह स्वभावत एव द्वैताद्वैतमित्यर्थ ।'

स्पष्ट है कि श्रीधर के अतिरिक्त सभी टीकाकारो ने विभिन्न अर्थ *करते हुए स्वकीय सम्प्रदाय भावना को प्राधान्य दिया है ।*

श्लोक ३—'अस्तीति नास्तीति वस्तु निष्ठयोः' (भागवत ६।४।३२)

वीरराघव ने उक्त श्लोक की टीका मे अद्वैतवाद का खण्डन किया है—'निर्गुणवादो निरीश्वर वादश्च भ्रम मूलक एव' । (६।४।३२) टीकाकार का कथन है कि भिन्न वस्तुओ का अधिकरण एक नहीं हो सकता।

श्लोक ४—'अहमेवासमेवाग्रे' (भागवत ६।४।४७)

आचार्य विजयध्वज ने उक्त श्लोक मे अद्वैतवादियो की आलोचना की है।

'अनाद्वैतवादिनो निर्गुण वाङ्मनसागोचर जगत्कारण सगुणमिति द्विविध कल्पयन्ति तन्मत निराकरणायाह' (पद रत्नावली ६।४।४७)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अचिन्त्य शक्ति का उल्लेख किया है—'परिच्छिन्नस्यापि मत् स्वरूपस्य व्यापकत्वादित्यचिन्त्य शक्ति मत्वच दर्शितम्।
(सारार्थ दर्शिनी ६।४।४७)

श्लोक ५—'ओ नमस्ते स्तु भगवन्नारायण · '(भा० ६।८।३३)

उक्त स्थान पर गद्य भाग अकस्मात् ही दिखलाई पडता है। श्रीधर स्वामी का कथन है कि पद्य मे परिमित अक्षर होते हैं अत गद्य म स्तुति की गयी है। हरि के अपरिमित गुण पद्य म नही आ सकते (भा दी ६।८।३३)—

'मिताक्षराणि पद्यानि नमीयन्ते हरेर्गुणा
इतिपद्यैरतुष्यन्त सद्योगद्येन तुष्टुवु ॥'

श्रीधर स्वामी की इन तर्कपूर्ण युक्ति म कोई चमत्कार नही है। हरि के अपरिमित गुण उक्त स्वल्पाक्षर गद्य मे आ गये हो यह भी तो प्रमाणित नही है। वीरराघवाचार्य ने गद्यस्थ भगवन्नामो की निरुक्ति करते हुए चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट आत्मा ही स्थूल चिदचिद्विशिष्ट विश्वाकार मे परिणित है—

' ···चिदचिद्विशिष्टमात्मान स्वेनैव सृजसि पासि रक्षसि च सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्टमात्मानमेव स्थूल चिदचिद्विशिष्टावस्थ विश्वाकारेण परिणमयसीत्यर्थ। (भा च च ६।८।३३)

श्लोक ६—'त्वमेव देव वयमात्म दैवत०' (भागवत ६।६।२७)

उक्त श्लोक की व्याख्या मे ब्रह्म तथा प्रकृति का स्वाभाविक अभेद मानने वाले विजयध्वजाचार्य के मत का खण्डन शुकसुधी कृत 'सिद्धान्त प्रदीप' मे किया गया है। शुकसुधी ने भेदाभेद सम्बन्ध की स्थापना की पुष्टि के लिये ब्रह्म सूत्र का प्रमाण भी दिया है—

'प्रधान प्रकृत्याख्य शक्ति रूप पुरुष, जीवात्मकाश रूप विश्व तदुभयात्मक प्रपच रूप शक्तिमद्दतो थ द्वाशिनोरच स्वभाविक भेदाभेद सम्बन्धात्' 'उभयव्यपदेशात्वहिकुण्डलवत्' इति सूत्रात् प्रकृति पुरुष तदुभयात्मक जगद्विलक्षणत्वत्वमिदं।' (सिद्धान्त प्रदीप ६।६।३३)

सप्तम स्कन्ध

श्लोक १—'श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्

अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ॥' (भा ७।५।२३)

उक्त श्लोक द्वारा प्रह्लाद ने नवधाभक्ति का उल्लेख किया है। वृहत्क्रमसन्दर्भ में नव भक्तो का भी उल्लेख किया गया है।[1] यथा—श्रवण मे परीक्षित, कीर्तन मे शुकदेव, स्मरण मे प्रल्हाद, पादसेवन म लक्ष्मी, पूजन म पृथु, वन्दन मे अक्रूर, दास्य मे हनुमान, सख्य मे अर्जुन, आत्मनिवेदन म राजा वलि के नाम उल्लेखनीय है। भावो के मिश्रण से दास्य पूर्वक निवेदन भक्ति अम्बरीष मे थी। प्रेयसी भाव से आत्मनिवेदन रुक्मिणी ने किया था। जीवगोस्वामी ने श्रवण भक्ति मे भागवत का प्राधान्य स्वीकार किया है तथा स्मरण भक्ति मे—स्मरण, धारणा, ध्यान, स्मृति, समाधि का उल्लेख किया है। पादसेवन का अर्थ चरणस्पर्श मात्र नही अपितु मूर्तिदर्शन, मूर्ति स्पर्श मूर्ति परिक्रमण, मूर्ति अनुव्रजन है। यह अनुव्रजन गगादि तीर्थो मे पुरुषो त्तमादि क्षेत्रो मे एव द्वारका, मथुरा आदि पुण्य तीर्थों म किया जाना चाहिये। अर्जन भी दो प्रकार का होता है—केवल कर्म, मिश्र। जन्माष्टमी व्रत, कार्तिक व्रत एकादशी व्रत आदि मिश्र के अन्तर्गत है। जीवगोस्वामी ने लगभग ३०० पक्तियो म भक्तिरस की गगा प्रवाहित की है।

श्लोक २—'आत्मा नित्योऽव्यय शुद्ध' (भागवत ७।७।१९)

भागवत के उक्त श्लोक म स्पष्ट है कि आत्मा नित्य, अव्यय तथा शुद्ध है। अद्वैतवाद की पुष्टि उक्त श्लोक द्वारा की जा सकती है। श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक मे प्रत्येक शब्द के साथ अद्वैतानुसारी एक श्रुति वाक्य को उद्धृत किया है, यथा—

नित्य	अविनाशी वारेऽयमात्मा
एक	एकमेवाद्वितीय

वीरराघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी के मत का खण्डन करते हुए नित्य का अर्थ—उत्पत्ति विनाश रहित, अद्वितीय का सब देहो म एक रूप किया है

---

१ 'श्री विष्णो' श्रवणे परीक्षिदभवत् वैयासकि' कीर्तने
प्रल्हाद स्मरणे तदघ्रि भजने लक्ष्मी पृथु पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुन
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषापरम् ॥' (वृ क्र स ७।५।२३)

(भा. च. च ७।७।१९)। उक्त श्लोक में आत्मा के द्वादश लक्षण गिनाये गये हैं।

श्लोक ३—'विप्राद्द्विषड् गुण युतादरविन्द नेत्रात्' (भागवत ७।९।१०)

भक्ति शून्य द्वादश गुण वाले ब्राह्मण से भी भगवद्भक्त श्वपच श्रेष्ठ है। द्वादश गुण निम्न हैं—धन, अभिजन, रूप, तप, श्रुत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग।

श्रीधर स्वामी ने ब्राह्मण के द्वादश गुणों का उल्लेख किया है—धर्म, सत्य, दम, तप, अमात्सर्य, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति, पाडित्य। अथवा—शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, विरक्तता, ज्ञान, विज्ञान, सन्तोष, सत्य और आस्तिक्य। (भा. दी. ७।९।१०)

श्लोक ४—'यस्मिन्यतो यहि येन च यस्य यस्मात्' (भा. ७।९।२०)

वीरराघवाचार्य ने उक्त श्लोक की टीका में अपनी व्याकरण पटुता का प्रदर्शन किया है। छः कारकों का अन्तर्भाव भगवान में सिद्ध किया है—

'सप्रकारक कारक षट्करूपः सम्बन्धि रूप· काल रूपश्च यो पदार्थः ··············· धातुपात्र व्यापार जन्य फलाव्यवहित पूर्व व्यापाराश्रयत्व करणत्वम्।' (भा. च. च. ७।९।२०)

श्लोक ५—'एकस्त्वमेव' (भागवत ७।९।३१)

शुक सुधी ने उक्त श्लोक की व्याख्या में जगत् का कार्यत्व ब्रह्म का कारणत्व सिद्ध करते हुए जगत् को ब्रह्म से भिन्न तथा अभिन्न भी सिद्ध किया है—

कार्यकारणयोर्जगद्ब्रह्मणो भेदाभेद सम्बन्ध दृष्टान्तेनोपपादयति।'
(सि प्र ७।९।३१)

श्लोक ६—'तत् तेऽर्हत्तम नम स्तुति कर्मपूजा' (भागवत ७।९।५०)

उक्त श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामी ने भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि भक्ति के बिना मोक्ष सुलभ नहीं है, अतः दास्य योग की इच्छा करनी चाहिये—

'तस्मादेव भक्ति विना न मोक्षो न च भक्ति सेवयाविना अत. प्रार्थित षडङ्ग योगमेव देहीति।' (भा दी. ७।९।५०)

उक्त श्लोक में सेवा के छः अंग लिये हैं—नमस्कार, स्तुति, कर्मार्पण, सेवापूजा, चरण चिन्तन, लीलाकथा और श्रवण।

श्लोक ७—'स्थानानि पुण्यतराणि क्षेत्राण्यहर्ष्यिन्नाच्युत' (भा ७।१४।३०)

पुण्य क्षेत्र, पुण्य सरोवर आदि का संकेत मात्र इस पद्य में उपलब्ध है,

टीकाकारो ने इनके अर्थ अपनी देश भावना के अनुसार किये हैं। वीरराघव ने क्षेत्र का अर्थ चित्रकूट (भा. चं. चं. ७।१४।३३) माना है, विजयध्वज ने पुरुषोत्तम क्षेत्र (प. र. ७।१४।३३)। जीव गोस्वामी ने गोवर्धन पर्वत (क्र स. ७।१४।३३) को ही क्षेत्र माना है। जीव गोस्वामी एव विश्वनाथ ने 'सरासि' का अर्थ 'राधाकुन्ड' (सा. द. ७।१४।३३) माना है, विजयध्वज ने कृष्णावेणी आदि नदियो का उल्लेख किया है। इसी प्रकार फाल्गुन का अर्थ वीरराघव ने गयादेश, विजयध्वज ने कन्यातीर्थ माना है तथा अभिधान कोश का उद्धरण भी दिया है—

'कन्यापुर फाल्गुनं स्यात् स्थान हरपुर चतत्'

इस श्लोक की व्याख्या मे विजयध्वज ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि भागवतोक्त सरोवर, क्षेत्र, पुण्यदेश, कृष्णावेणी आदि नदिया दक्षिण देश मे ही है। वीरराघव ने सम्प्रदाय के प्रभाव से चित्रकूट आदि के उल्लेख किए हैं। केवल गौडीय वैष्णवो ने ब्रज प्रदेश को उत्तम सिद्ध करने का प्रयास किया है। विश्वनाथ ने फल्गुन का अर्थ 'गया' देश किया है किन्तु हरपुर मानना चाहिए क्योकि गया दो बार प्रयुक्त है, अत विश्वनाथ के कथन मे पुनरावृत्ति दोष प्राप्त है। यहाँ किसी भी टीकाकार का मत सर्वथा ग्राह्य है नही कहा जा सकता, भागवत का ब्रज से अधिक सम्बन्ध मानते हुए जीवगोस्वामी ने जो स्थानो का सकेत दिया है वह उचित ही है। सम्प्रदायानुयायी व्यक्ति अपने सम्प्रदाय के टीकाकारो के अर्थ को ग्रहण करने मे स्वतन्त्र हैं।

श्लोक ८—'स्यात सादृश्य भ्रमस्तावत्' (भागवत ७।१५।६१)

उक्त श्लोक की व्याख्या मे प्राय. सभी टीकाकारो ने तार्किक एव मीमासको के पक्ष की समालोचना की है। किन्तु विश्वनाथ ने विवर्तवादियो का खण्डन बडे ओजपूर्ण शब्दो से किया है—

"अन्ध परम्परयैव विवर्तं मिथ्याभूतस्येव सादृश्य भ्रम मात्र क्षणाविगीयन्त।"

विवर्तवादी अन्ध परम्परा का अनुसरण कर रहे है।

अष्टम स्कन्ध

श्लोक १—'मुखानि पंचोपनिषदस्तवेश' (भागवत ८।७।२९)

यहाँ शिव की स्तुति मे उन्हे ५ मुख वाला कहा है। पाच उपनिषद् ही मुख हैं—

१. तत्पुरुषाय विद्महे०
२. अघोरेभ्योऽथघोरेभ्य ०
३. सद्यो जात प्रपद्यामि०   आदि

भागवत मे यह एक ही स्थल है जिसमे पचमुखी शिव का उल्लेख उपलब्ध है।

उक्त श्लोक मे यह कहा गया है कि शिवजी के वीर्य से चांदी एव सुवर्ण के आकार बन गये थे। विश्वनाथ का कथन है कि सुवर्ण प्राप्ति के लिए शिव की उपासना करनी चाहिए। यहा विश्वनाथ ने सगति बैठाने को भले ही उक्त मत लिख दिया हो किन्तु द्वितीय स्कन्ध के *'विद्याकामस्तु गिरिश' (भा० २।३।७)* के अनुसार विद्याकामना के लिए शिव की उपसना का विधान है, सुवर्ण प्राप्ति के लिए नही।

श्लोक ३—'औदचनोदके' (भागवत ८।२४।१६)

'एक बार सत्यव्रत अर्घ दे रहे थे तब उनकी अजलि मे एक मत्स्य आया और उसने कहा कि मुझे कूपोदक मे डाल दो।'

औदचन का अर्थ–मटका का जल है। श्रीधर ने मणिकस्थ जल (भा टी ८।२४।१६) वीरराघव ने बडी कढाई (भा च च ८।२४।१६) एव विश्वनाथ ने कूप जल माना है (सा द ८।२४।१६)।

अष्टम स्कन्ध मे मन्वन्तर तथा अवतारो का वर्णन है। सिद्धान्त भेद के स्थल अधिक नही है। इस स्कन्ध पर टीका भी अधिक विस्तार पूर्वक नही लखी गई।

विजयध्वज का लक्ष्मी स्वयवर का एव उद्धहरण सुन्दर है—
(प र ८।८।२३)

'एव ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चलोमातरिश्वा
शिवासानीलकऊस्मिदक्षपतिरसौ मंदित क्षीमतेऽस्त ।
इत्थ देव्या विचिन्त्य भ्रमर कुल कलागीन शब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारे सुरतरु कुसुमालकृता पातु युष्मान् ॥'

इस श्लोक मे कहा गया है कि—ब्रह्मा अत्यन्त वृद्ध है, सूर्य मे उष्णता एव वायु मे चचलता है, शिव नग्न है इन्द्र अभिमानी तथा चन्द्रमा क्षयी है। अत लक्ष्मी ने विष्णु भगवान की ग्रीवा मे माला डाल दी।

इस स्कन्ध मे सर्वाधिक विचार का विषय मत्स्यावतार है। विष्णु

भगवान ने सत्यव्रत की अंजलि में स्थित होकर कहा था कि तुम 'ब्राह्मी निशा पर्यन्त, जल में भ्रमण करोगे।' इसे कतिपय विद्वान महाप्रलय मानते है कतिपय मायिक प्रलय। महाप्रलय मानने में एक आपत्ति है। इस प्रलय में पृथ्वी आदि के अवशेष नही रहते, किन्तु 'योऽसावस्मिद् महाकल्पे' वाक्य में स्पष्ट महाप्रलय का उल्लेख है। दैनन्दिन प्रलय यदि मानी जाय तो सांवर्तक मेघो का जल-वर्षण उपयुक्त नही है। चाक्षुप मन्वन्तर में यदि यह प्रलय होती तो वैवस्वत-मन्वन्तर की स्थिति ही आगे न आती।

श्रीधर स्वामी इसे वास्तविक प्रलय नही मानते। वे इसे एक प्रदर्शन मानते हैं, जिस प्रकार मार्कण्डेय के लिए भी प्रदर्शन किया गया था।

वीर राघव का कथन है कि यदि इसे प्रदर्शन मात्र समझा जाय तो अवतार का प्रयोजन ही क्या शेप रहेगा ? साथ ही—

आसीदतीत कल्पान्ते	(८।२४।७)
कालेनागत निद्रस्य	(८।२४।८)
योऽसौ सत्यव्रतो नाम	(८।२४।११)
रूप स जगृहे मात्स्य	(१.३।१५)

आदि भागवत वाक्य भी मायिक कहे जायेगे। अत. इसे प्रदर्शन मात्र न मान कर दैनन्दिन कल्पावसानिक प्रलय मानना उपयुक्त होगा। (भा. च. च. ८।२४।४६)

विश्वनाथ का मत है कि यह आकस्मिक प्रलय चाक्षुप मन्वन्तर मे ही हुई थी एव ईश्वर की लीला ही इसमे कारण है। उन्होंने भागवतामृत के प्रमाण से उक्त कथन की पुष्टि की है (सा. द. ८।२४।४६)। यथा भागवतामृत का श्लोक ५—

'मध्ये मन्वन्तरस्यैव मुनेः शापान्मनु प्रति
प्रलयोऽसौ बभूवेति पुराणे क्वचिदीर्यते ॥
अयमाकस्मिको जातश्चाक्षुपस्यान्तरे मनोः
प्रलय पद्मनाभस्य लीलयैवेति कुत्रचित् ॥'

मत्स्य पुराण मे इस प्रलय का उल्लेख चाक्षुप मन्वन्तर के मध्य में किया गया है। नियम विरुद्ध घटित होने वाली प्रलय मे एक प्रमाण दिया है कि—स्वायम्भुव मनु को अगस्त्य मुनि का शाप लग गया था, इस कारण यह प्रलय हुई थी। शुक सुधी ने अपना मत देते हुए सिद्ध किया है कि मत्स्यावतार दो बार मानना चाहिये—एक तो स्वायम्भुव मन्वन्तर मे, द्वितीय चाक्षुप

मन्वन्तर मे। प्रथमावतार ग्रहण कर हयग्रीव का वध तथा वेदो की रक्षा की गई। द्वितीय अवतार सत्यव्रत के दर्शनार्थ हुआ—

'मत्स्योऽपि प्रादुरभवद्धि कल्पेऽस्मिन् वराहवत् ।
आदौ स्वायम्भुवीयस्य दैत्यघ्नन्नाहरच्छ्रुती
अन्ते तु चाक्षुषीयस्य कृपा सत्यव्रतेऽकरोत् ॥'

शुक सुधी कृत समाधान अन्य सभी समाधानो मे श्रेष्ठ है। श्रीधर की मायिक कल्पना का सप्रमाण खण्डन भी किया है एव युक्ति भी दी है। अत यह समाधान उचित है।

नवम स्कन्ध

श्लोक १—'श्रीनिवास श्रिया सह' (भागवत ६।४।६०)

उक्त श्लोक म भगवान के नाम के पूर्व ही जब श्री शब्द का प्रयोग है तब श्रिया सह' कथन पुनरुक्ति मात्र है। वीरराघव ने इसे अनेक शकाओ के समाधान के लिए आवश्यक माना है। इस श्लोक की टीका विशिष्टाद्वैत पक्ष की दृढता स पुष्टि करती है। आश्चर्य है इस श्लोक पर किसी भी टीकाकार न टीका नही की। टीकाकार यदि चाहते तो अर्थ परिवर्तन ही कर देते। श्रीनिवास से उनका एकान्त द्वेष हो यह भी नही कहा जा सकता क्योंकि व शिव के पक्ष मे अभिरुचि रखते हैं। इस श्लोक की टीका अवश्य करनी चाहिये थी या इसे प्रक्षिप्त लिखते। अत उक्त श्लोक निश्चित ही विशिष्टाद्वैत मतवाद का मूल स्तम्भ माना जा सकता है। सम्प्रदायज्ञ आचार्यो ने भी इसी प्रकार के श्लोको के पाठ से टीका की प्रेरणा ग्रहण की हो इसम आश्चर्य ही क्या है। विश्वनाथ न मान्धाता का राज्य मथुरा म सिद्ध किया है। (सारार्थ दर्शिनी ६।६।४०)

दशम स्कन्ध

श्लोक १—'कथितो वश विस्तारो भवता सोमसूर्ययो' (भागवत १०।१।१)

'राजा परीक्षित ने शुकदेव जी स कहा कि आपने सोम वश तथा सूर्य वश के राजाओ की परम्परा सुनाई।' इस श्लोक मे 'सोम' शब्द सूर्य के पश्चात् होना चाहिए, क्योंकि नवम स्कन्ध म प्रथम सूर्य वश का वर्णन किया है तदनन्तर सोम वश का। टीकाकारो का कथन है कि दशम स्कन्ध मे कृष्ण चरित्र है एव श्रीकृष्ण का जन्म चन्द्रवश म हुआ था। अत राजा ने प्रथम सोम शब्द का उल्लेख किया है। सिद्धान्त प्रदीपकार का मत है कि 'सोम'

सूर्य का पितृव्य था अन सोम का प्रथम उल्लेख उचित ही है। (सिद्धान्त प्रदीप १०।१।१)

श्लोक २—'यदोश्च धर्म शीलस्य नितरा मुनि सत्तम' (भागवत १०।१।२)

उक्त श्लोक मे धर्मशील यदु को कहा गया है किन्तु पिता की आज्ञा न मानने के कारण उसे अधर्मी कहना चाहिये था। टीकाकारो ने उसे धर्मशील इस कारण माना है कि यदु ने अनुचित मार्ग पर जाने वाले अपने पिता को रोका था।

'तत्राशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणिशसन' राजा ने प्रश्न किया था कि यदु कुल मे अ श से अवतीर्ण विष्णु के चरित आप सुनावें।' यह व्याख्या उपयुक्त नही है क्योकि कृष्ण का अवतार अ श से नही माना जाता। भागवत मे स्पष्ट सकेत है—

'एते चाश कला पु स कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' (भा० १।३।२८)

श्रीधर स्वामी ने 'अ शेन' यह पद प्रतीति के अभिप्राय से माना है (भा दी १०।१।२)। जीवगोस्वामी ने इसमे केवल इतना अ श और सम्बद्ध किया है कि 'प्रति व्यक्ति को असाधारण प्रतीति नही होती' (क्रम सन्दर्भ १०।१।२)। अथवा अ श अर्थात् बलदेव। वीर राघवाचार्य अ श का अर्थ बलदेव को मानते है।' साथ ही अ श के दो अर्थ और किये हैं—१ सकल्प रूप ज्ञान २ दिव्य विग्रह अ श। यह भी विचारणीय है कि यदि भगवान स्वय ही इस धरातल पर आजायें तो समस्त ससार नष्ट हो जायगा। आचार्य वल्लभ ने इस ओर सकेत करते हुए लिखा है कि जितने देश में माया अप्रविष्ट है उतने देश का नाम अ श है। यथा सुबोधिनी १०।१।२ का श्लोक—

'तावति देशे तेन प्रकारेण माया दूरी कृतवान् इति अ श एव स भवति।'

अ श का सरल अभिप्राय है माया रहित शुद्ध ब्रह्म का अवतीर्ण होना। अथवा अ श का अर्थ प्रद्युम्न भी है। शुकसुधी का मत है कि यहा अ श शब्द से राजा परीक्षित 'बलदेव' के चरित्र सुनने की इच्छा प्रकट करता है (सि प्र १०।१।२)। यहाँ राजा परीक्षित की बलदेव के साथ अवतीर्ण कृष्ण चरित श्रवणेच्छा ही अधिक सगत है।

श्लोक ३—'अवतीर्य विस्तरात् (भागवत १०।१।३)

इस श्लोक म 'विस्तर' शब्द का उल्लेख द्वितीय स्कन्ध के सक्षिप्त कृष्ण चरित वर्णन के कारण किया गया है। यह आचार्य वल्लभ का मत है (सु १०।१।३)।

श्लोक ४—'निवृत्ततर्षैः..........बिना पशुघ्नात्' (भागवत १०।१।४)

पशुघ्न का मन हरि कथा में नहीं लगता। पशुघ्न का अर्थ है घातक किन्तु श्रीधर स्वामी ने शोक रहित आत्मा का 'घातक' अर्थ (भा. दी. १०।१।३) किया है। जीव गोस्वामी ने इसे 'गाली' माना है। पशु को लोकद्वय सुख विवेक की सिद्धि नहीं होती, उन्होंने एक उदाहरण (क्रम सन्दर्भ १०।१।३) का यहां दिया है—

'राजपुत्र चिरंजीव माजीव ऋषि पुत्रक
जीव वा मर वा साधो व्याध माजीव मा मर ॥'

श्लोक ५—'पितामहामे समरे' (भागवत १०।१।६)

उक्त श्लोक में वल्लभाचार्य ने श्रुत माहात्म्य लिखा है क्योंकि परीक्षित ने अपने पूर्वजों के वृतान्त श्रवण में अभिरुचि प्रकट की थी। अग्रिम श्लोक 'द्रोण्यस्त्रविप्लुष्ट' में दृष्ट माहात्म्य माना है। क्योंकि परीक्षित ने गर्भावस्था में अपने नेत्रों से भगवान् का दर्शन किया था।

श्लोक ६—'वीर्याणि तस्याखिल..........मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्' (भागवत १०।१।७)

भगवान् को मृत्यु तथा अमृत प्रदान करने वाला कहा गया है। विश्वनाथ ने 'मारक' समझने वालों को मृत्यु देने वाला व अन्यों को अमृत प्रदान करने वाला लिखा है (सा. द. १०।१।७) तथा मत्स्यण्डिका खण्ड का उदाहरण भी यहां दिया है, कि वह पित्त दूषित रसना वाले व्यक्तियों को तिक्त स्वाद देती है। 'प्रयच्छतः' वर्तमान काल का प्रयोग भगवान् की लीला की नित्यता सिद्ध करता है। 'माया मनुष्यस्य' का उचित समाधान करने का प्रयास टीकाकारों ने यथामति किया है किन्तु वे कहां तक सफल हुए हैं नहीं कहा जा सकता। माया का अर्थ ज्ञान भी किया है (सि. प्र. १०।१।७) तथा स्वरूप भी (प. र. १०।१।७)। विजयध्वज ने स्पष्ट लिखा है कि 'मनुष्य शब्द' से भयभीत नहीं होना चाहिये और विभिन्न व्याख्याओं के फेर में भी नहीं पड़ना चाहिये। कृष्ण मनुष्य ही थे—'गूढं परं ब्रह्म मनुष्य लिंगम्' आदि में उन्हें छिपा हुआ ब्रह्म कहा गया है। विजयध्वज का कथन उचित ही है क्योंकि कृष्ण की लीलाऐं मनुष्य रूप में ही अधिक आकर्षक हैं।

श्लोक ७—'एवं निशम्य..........कलिकल्मषघ्नं.......' (भा. १०।१।१४)

इसके अनेक अर्थ किये गये हैं—कलि में कल्मष, कलि का भी कल्मष, कलह की कल्मष, संसार दुःख, विष्णुरात का विशेषण। यह विशेषण कलि रूपी कल्मष को जीतने के कारण ही लिखा गया है।

श्लोक ८—'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरि' (भा १०।१।२८)

जीवगोस्वामी ने मथुरा पुरी की अत्यधिक महिमा लिखी है—'ब्रह्म ज्ञान से मथा हुआ सार जिस पुरी मे रहता हो वह मथुरा है'—

'मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा
तत्सार भूत यद्यस्या मथुरा सा निगद्यते ।।'

तथा (क्रम सन्दर्भ १०।१।२८) द्वारा स्पष्ट है—

'अहो न जानन्ति नरादुराशया पुरीमदीयापरमा सनातनीम्
सुरेन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र सस्तुताम् मनोरमा ता मथुरा पराकृतिम् ।।'

मथुरा और गोलोक मे अभेद है—

'तदेवमेकस्य स्वय भगवत आस्पदत्वात् गोलोकादीनामेकात्मकतैव ज्ञेया ।'

श्लोक ६—'कीर्तिमन्त प्रथमजम्' (भागवत १०।१।५७)

देवकी का प्रथम पुत्र कीर्तिमान् था । आचाय वल्लभ का मत है (सु १०।१।५७) कि विवाह के समय देवकी की अवस्था ८ वर्ष की थी । विवाहोपरान्त प्रतिवर्ष एक बालक उत्पन्न होता था । यह शीघ्रता भगवान् क शीघ्र जन्म लेने के कारण हुई थी । जीवगोस्वामी नामकरण होना उचित नही मानते, उनका मत है कि कृष्ण के भाइयो का नामकरण बलि राजा के समीप जब उन भाइयो को स्वय श्रीकृष्ण लेने गये थे तब किया गया था । यह भी उल्लख उपलब्ध है कि कृष्ण के अग्रज जन्म लेते ही मार दिये गये थे (सु १०।६।६६) । ऐसी परिस्थिति म नामकरण का प्रश्न ही नही उठता । जीव गोस्वामी के उक्त मत मे आपत्ति है, भगवान् के ज्यष्ठ भ्राता का नाम भागवत मे लिखा गया है । वल्लभाचार्य ने यह सिद्ध किया है कि वसुदेव जी का प्रथम पुत्र पाच वर्ष की अवस्था मे मारा गया था । किन्तु जात जातमहन् पुत्र' का प्रामाणिक मानकर एव 'कन्या चैवानुवत्सर' के साथ युक्त करें तो जन्म ग्रहण के साथ ही उनके भाइयो का बध सिद्ध नही होता । कीर्तिमान् नामक भाई जब पाँच वर्ष का होगा तो प्रतिवर्ष क्रम से चार भाई और जन्म ग्रहण कर चुके होगे और उनका नामकरण भी किया गया होगा । अत यहाँ आचार्योक्त मत गूढ़ प्रतीत होता है, यदि इसे स्वीकार करें तो भागवत के विरोध के साथ जीवगोस्वामी के मत का खण्डन भी होता है । अत कृष्ण के भाइयो का जन्म लेते ही वध एव पश्चात् कृष्ण द्वारा उनका नामकरण उपयुक्त प्रतीत होता है ।

श्लोक १०—'दुर्गेति भद्रकालीति ' (भागवत १०।२।११)

योगमाया के जन्म ग्रहण के अनन्तर उनके अनेक नामो का उल्लेख भागवतकार ने किया है। उन नामो की निरुक्ति विश्वनाथ ने बडी युक्ति के साथ की है—

दुर्गा	दु ख से प्राप्त
कुमुदा	पृथ्वी मे प्रसन्न
चण्डिका	शत्रु पर कुपित
कृष्णा	आनन्द रूपा
माधवी	मधु कुल मे उत्पन्न
नारायणी	नर समुदाय की आश्रयभूता
ईशानी	सब की इष्ट देवी
शारदा	ससार से मुक्त करने वाली
अम्बिका	सब की मा

काशी मे दुर्गा, उज्जैन में भद्रकाली, उत्कल मे विजया, कोल्हापुर मे वैष्णवी, कामरूप म चण्डिका, उत्तर प्रदेश मे शारदा, अम्बिका वन मे अम्बिका, कन्याकुमारी मे कन्या का निवास है (सा द. १०।२।१२)। जीवगोस्वामी योगमाया की सत्तामात्र स्वीकार करते हैं, पुत्री रूप नही। 'नन्द पत्न्यां भविष्यसि' मे भू धातु का प्रयोग केवल सत्तावाची है।

श्लोक ११—'अहो विस्र सितो गर्भो'० (भा १०।२।१५)

यहा जीव गोस्वामी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कृष्ण और बलराम म केवल ४ मास का अन्तर था। भागवत मे—'तावध्रि युग्म मनुकृष्यसरीसृपन्तौ' आदि मे उनका एव साथ रिंगण, क्रीडन आदि वर्णित है। देवकी के गर्भ म जब सात मास का शिशु था तब उसे योगमाया ने स्व शक्ति से बाहर निकाल कर रोहिणी के गर्भ मे प्रविष्ट किया था। रोहिणी भी गर्भवती थी और इस प्रक्रिया को लक्षित नही कर सकी थी। इस घटना के उपरान्त देवकी के पुन गर्भ स्थापित हुआ। यह कृष्ण सम्बन्धी गर्भ था। जीवगोस्वामी ने बलभद्र का जन्म वैशाख म माना है (क्र स १०।२।१५)। अत कृष्ण उनसे चार मास लघु थे।

श्लोक १२—'सत्यव्रत सत्यपरम' " (भागवत १०।२।२६)

देवकी के गर्भ मे श्रीकृष्ण के अवस्थित होने का समय जानकर देवगण उनकी स्तुति करने कारागार म गये जहाँ देवकी वसुदेव बन्दी थे। यह स्तुति १६ श्लोको मे की गई है। भगवान् कालात्मा है, काल पचदशात्मा है अत

सोलह श्लोको मे यह स्तुति की गई है। आचार्य वल्लभ ने इसे (सु. १०।२।२६) पक्षपात स्तुति कहा है—

पक्षपात स्तुति ह्र्येवा देवाना हितकारिणी
ध्रुवा तुर्योऽपी प्रोक्ता वृद्धौ वा तादृशोभवेत् ।।

काल कृत पक्षपात चार प्रकार का होता है—१ लोक कृत, २. स्मृति कृत, ३ वेद कृत, ४ भगवन्मार्ग कृत। यह चार प्रकार का पक्षपात—प्रमाण, प्रमेय, साधन, फलभेद के कारण भी है। यदि सत्य प्रमाण है तो परिदृश्यमान जगत् प्रमेय है। गुणाभिमानी देव साधन है, क्षेम ही फल है। विश्वनाथ ने (सा द १०।२।२६) एक सुन्दर रूपक मे स्तुति का वर्णन किया है, 'कृष्ण मेघ है, ब्रह्मा कृपीवल तथा शिव मयूर हैं। कस जरासन्धादि रूपी दावानल से आक्रान्त महामतगज रूपी देवगण हैं—

'कृष्ण लीलामृत वर्षिण कृष्णाम्बुद, ब्रह्मा धुवन चतुर्दश केदार महा-कृपीवल इव, भवश्च उल्लासित साधुपक्षो नृत्य विनोदी महा नीलकन्ठ इव, नारदादिभिस्तदेक जीवनैर्महासोत्कण्ठैरिव देवै कस जरासन्धादि दावानलावृत्तै-र्महामतगजैरिव सह ऐडगद् तुष्टुवु ।'

'सत्यव्रत सत्य पर त्रिसत्य' की व्याख्या मे प्राय सभी टीकाकारो ने विभिन्न अर्थ किये हैं। यथा—

त्रिसत्यम्	तीनो कालो मे वर्तमान (शु प १०।२।२६)
	तीनो वेदो मे सत्य (प र १०।२।२६)
	प्रकृति, पुरुष, काल तीनो सत्य हैं
सत्यस्ययोनिम्	पाँच भूतो के कारण (भा दी, १०।२।२६)
	चिदचिज्जगत् के कारण (शु, प, (१०।२।२६)
	मत्स्य कूर्मादि के उद्गम् स्थान। (सा द १०।२।२६)
	प्राकृत लोक के उपादान कारण। (सि प्र १०।२।२६)
निहित च सत्ये	अन्तर्यामितया अवस्थित (भा दी. १०।२।२६)
	मुख्यप्राण मे निहित (प र. १०।२।२६)
	सत्य के रक्षक (सु १०।२।२६)
	नित्य धाम वाले (भा च. च १०।२।२६)

सभी टीकाकारो ने उक्त श्लोक की व्याख्या सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के अनुसार की है, यह स्पष्ट है।

श्लोक 'स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तर॰' (भा १०।२।३१)

इस श्लोक मे श्रीधर स्वामी ने भक्ति मार्ग का अच्छा विवेचन किया है ।

श्लोक १४—'न ते भवस्येश भवस्य कारणम्' (१०।२।३९)

उक्त श्लोक मे आचार्य वल्लभ ने, न त + इम =, गज, तस्येश विनीत गज के मोक्षदाता' आदि अर्थो द्वारा कृष्ण की महिमा का गान किया है ।

श्लोक १५—'मत्स्याश्व कच्छप नृसिंह०' (भा १०।२।४०)

उक्त श्लोक मे त्रिविध अवतारो का अन्तर्भाव कृष्ण में किया है । तीन अवतार जल के हैं—मत्स्य, अश्व, कच्छप, तीन अवतार वन के हैं—नृसिंह, वराह हंस, तीन अवतार लोक के हैं—राम, परशुराम, वामन ।

'मत्स्य' हीन जाति का था । कृष्ण का भीम के साथ युद्ध की भिक्षा के लिय जरासन्ध के समीप जाना हीनता सिद्ध करता है ।

'हयग्रीव' ने असुर हनन कार्य किया था । कृष्ण ने शिशुपाल (असुर) का वध किया था ।

'कच्छप' ने मन्दराचल धारण कर देवो को अमृतपान कराया था । कृष्ण ने गोवर्द्धन धारण कर स्वरूपामृत की वृष्टि की थी ।

'नृसिंह' ने प्रह्लाद रक्षार्थ अवतार ग्रहण किया था । कृष्ण ने पाण्डवों की रक्षा हेतु अवतार लिया ।

'वाराह' ने पृथ्वी (गन्धगुण) का उद्धार किया था । कृष्ण ने विदुर के य.। शाक ग्रहण किया था ।

'हंस' न ब्रह्मादि देवो को उपदेश दिया था । कृष्ण ने अर्जुन, उद्धवादि को ज्ञान दिया ।

राम न एक भक्त के लिए राक्षसो का वध किया । कृष्ण ने एक भूमि की रक्षा के लिए असुरों का वध किया ।

परशुराम ने ब्रह्म वृत्ति हाने पर भी क्षत्रियों का वध किया था । कृष्ण ने 'ब्रह्म' रूप स समान हाने पर भी क्षत्रियों का वध किया था ।

'वामन न अदिति की प्रार्थना स अवतार लिया था । कृष्ण ने देवकी की प्रार्थना से अवतार लिया । दशमावतार कृष्ण स्वय है और ये अवतारी है । अत कृष्ण चरित म दशावतारों का चरित समाविष्ट है । (सु० १०।२।३०)

श्लोक १६—'प्रति बिंब यपु' (भा १०।२।४२)

उक्त श्लोक में देवगण स्तुति कर अपने २ स्वर्ग गए—यह वर्णित है । आचार्य वल्लभ न २१ या १०० स्वर्गो का उल्लेख किया है परन्तु कोई

प्रमाण प्रस्तुत नही किया। प्रमाणाभाव मे सन्देह बना रहता है। क्योकि अन्यत्र कही इस प्रकार की सख्या उपलब्ध नही है।

श्लोक १७—'अथ सर्व गुणोपेत' (भा १०।३।१)

तृतीयाध्याय के प्रथम श्लोक से 'आवि रासीत् यथा प्राच्या दिशीन्दुरिव पुष्कल' (भा १०।३।१-८) पर्यन्त के श्लोको का अन्वय एक साथ किया गया है, इस एक वाक्य मे अनेक विरोध दिखलाई पडते हैं, यथा—कृष्ण के जन्म के समय रोहिणी नक्षत्र उदित हुआ, दिशायें प्रसन्न हो उठी, पृथ्वी मे सर्वत्र मगलारम्भ होने लगे, नदियो का जल निमल हो गया, सरोवरो मे कमलश्री विकसित होन लगे। भ्रमर वृन्दो का गु जा एव पक्षियो का कलरव सुहावना लगने लगा। अग्नि प्रज्वलित हो उठी, अप्सरागण नृत्य मे व्यस्त होने लगी, बादल गरजकर बरसने लगे। उस अर्द्ध रात्री के समय कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ। प्रथम श्लोक मे वर्णित शान्त वातावरण अष्टम श्लोक के वर्णन से विरुद्ध है, किन्तु टीकाकारो ने इसे समस्त ऋतु गुणो का परिचायक सिद्ध किया है, इस प्रकार यह वर्णन अनेक हेतु तथा शकाओ के निराकरण के लिये यहा लिखा गया है। इन श्लोको के आधार पर ही अष्टमी तिथि, भाद्रपद मास, कृष्णपक्ष, बुधवार आदि को प्रमाणित माना हैं अन्यथा भागवत मे स्पष्ट रूप से कही भी कृष्ण के जन्म समय के वार तिथि आदि के उल्लेख उपलब्ध नही हैं।

निशीथेऽतम उद्भूते इस पदच्छेद द्वारा अतम अर्थात् चन्द्रमा, उद्भूत उससे उत्पन्न 'बुध' अर्थात् बुधवार आने पर तथा चन्द्रमा का उदय कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि के दिन अर्द्ध रात्री मे होता है, अत कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि का ग्रहण किया जाता है। (मा दी प्र १०।३।८)

श्लोक १८—'तमद्भुत बालकमम्बुजेक्षणम् चतुर्भु ज शख गदाद्युदायुधम्।' (भा १०।३।१०)

उक्त श्लोक में 'बालक' शब्द के अनेक अर्थ किए है–(सु १०।३।१०)

१—ब्रह्मा जिसका बालक है। (क बाल यस्य)

२—जिसके रोम रोम मे ब्रह्मा है (क' ब्रह्मा' रोमे यस्य)

३—जिसका 'शिव' बालक है (क. बाल यस्य) आदि

इसी प्रकार 'अम्बुजेक्षण' शब्द के विभिन्नार्थ किये हैं—

१—लक्ष्मी मे कामसुख प्राप्त करने वाला

२—जिसे लक्ष्मी मे सुख प्राप्त है

३—ब्रह्माण्ड पालन दृष्टि वाला

४—पृथिवी में दत्त दृष्टि वाला

'चतुर्भुजम्' पद ज्ञान के प्रकाश के लिए अथवा 'धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष, पुरुषार्थ के लिए, अथवा दिक्पालों की संख्या द्योतन कराने के लिए है (सु १०।३।१०)।

शंख	जल तत्व है।
कमल	पृथ्वी तत्व (यह भुवनात्मक)
गदा	वायु तत्व (प्राणात्मक)
चक्र	तेज तत्व है।

आचार्य वल्लभ ने योगमाया का जन्म अष्टमी तिथि के व्यतीत होने पर नवमी तिथि मे माना है। विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है कि यशोदा के गर्भ से एक बालक तथा एक कन्या की उत्पत्ति हुई थी। वसुदेव पुत्र कृष्ण यशोदा पुत्र कृष्ण में समाकर एकरूप हो गए थे (सा द १०।३।३१)। भागवत में कृष्ण को यशोदानन्दन तथा देवकीनन्दन दोनों नामों से अभिहित किया गया है। योगमाया को यशोदा की शैया से उठाकर वसुदेव मथुरा लाये, कंस ने उसे मारना चाहा किन्तु वह कंस के हाथों से छूटकर अष्टभुजी देवी बन गयी। वाम भाग की चार भुजाओं में धनुष, चर्म, शंख तथा गदा, दक्षिण कर में शूल, बाण तलवार एवं चक्र धारण कर उसने कंस को कृष्ण जन्म का संकेत दिया था।

श्लोक १६—'विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षण'
(भागवत १०।६।८)

कृष्ण जन्म सुनकर कंस ने अनेक असुरों को ब्रज में बाल-हत्या करने के लिए प्रेरित किया था। उनमें पूतना सम्मिलित हुई और सर्व प्रथम रूप सुन्दरी के वेश में नन्दोत्सव में सम्मिलित होने गोकुल गयी। कृष्ण ने पूतना को देखकर अपने नेत्र बन्द कर लिए। इस पर टीकाकारों ने कल्पनायें की हैं।[1]

१ कृष्ण ने पूतना को देखकर निज बालत्व ज्ञापनार्थ नेत्र बन्द किए।
२ सौम्य प्रदर्शन के लिए नेत्र बन्द किए। (सा द १०।६।८)
३ अमंगल रूप के कारण नेत्र बन्द किए।

··

1. पूतना बलि राजा की कन्या थी जो वामन भगवान को देखकर मुग्ध हो गई थी एवं उनको वामन को स्तनपान कराने की इच्छा की थी, भगवान के वरदान से उसने यह इच्छा पूतना बनकर पूर्ण की। (गर्ग संहिता, गोलोक खण्ड)

४ कृष्ण की दृष्टि के समक्ष ग्रह डट नही सकते, अत वही ये भाग न जाय इसलिये नेत्र बन्द किए।

५ मातृ भाव से समागत का वध होगा इस लज्जा से नेत्र बन्द किए।

६ कपटपूर्ण स्नेह का देखना उचित नहीं इस कारण नेत्र बन्द किए। (सि प्र १०।६।८)

७ कृष्ण जगत्कर्त्ता हैं, ज्ञान छिप नही सकता, अत उसके गोपन के लिए नेत्र बन्द किए। (सु १०।६।८)

८ चराचरात्मा थे वे पूतना के हृद्गत को जान गए अत नेत्र बन्द किए।

९ पवित्र बालकों के अपहरण करने वाली का मुखदर्शन उचित नही, इस कारण नेत्र बन्द किए। (भा दी १०।६।८)

१० क्या पूतना ने कोई साधन किए हैं जो मुझे स्तनपान कराने आई है। इस कारण को जानने के लिए नेत्र बन्द किए।

११ उदर स्थित असख्य जीव, कृष्ण के हालाहल पान से घबडा गए थे मानो उन्हें शान्त करने हेतु नेत्र बन्द किए।

१२ कृष्ण के नेत्रो ने विचार किया कि ईश्वर इसे चाहे गति दे दें हम (सूर्यलोक, चन्द्रलोक) नही देंगे। अत नेत्र बन्द किए।

१३ हलाहल पान का मैं अभ्यस्त नहीं, अत शकर के ध्यान मे नेत्र बन्द किए।

१४ कडवे जहर को आख मीचकर पीया जाता है, अत नेत्र बन्द किये।

१५. योगसाधना से विष का प्रभाव नष्ट किया जाता है अत नेत्र बन्द किये।

१६ नेत्रो मे धार्मिक निमि राजा का निवास है वे उस दुष्टा का मुख भी नही देखना चाहते, अत नेत्र बन्द किये।

१७ पूतना के देखते ही नेत्र बन्द हो जाते हैं यदि मैंने न किये तो यह लौटकर चली जायगी मेरे साथियो का नाश करेगी, अत नेत्र बन्द किये।

१८ कृष्ण सोचते हैं मेरी दो दृष्टि हैं उग्र तथा करुण, यदि उग्र से इसे देखूँगा तो तत्काल भस्म हो जायेगी (फिर स्तनपान भी तो करना है) यदि करुण से देखूँगा तो मारना असम्भव हो जायगा, अत नेत्र बन्द किये।

१६ कृष्ण सोचते हैं कि धात्री वेश मे यह आई है अत मारण उचित नही इस चिन्तन मे नेत्र बन्द किये।

२० मेरे नेत्रो से इसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जायगा और उसे देखकर यशोदा आदि गोपी अपने प्राणो का परित्याग कर देंगी अत. नेत्र बन्द करना ही उचित है।

२१. असुर भी तो पुत्र हैं उनकी भी मृत्यु पीडा देखने मे सकोच हुआ अत नेत्र बन्द किये।

२२ छोटे बालको का स्वभाव है वे अपरिचित को देखकर नेत्र बन्द कर लेते हैं अत नेत्र बन्द किय।[1]

श्लोक २०—'गोप्य सस्पृष्ट सलिला अंगेषु करयो पृथक्
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यास मकुर्वत ॥' (भा १०।६।२१)

पूतना के शरीर पर क्रीडा करते हुए कृष्ण को अक मे उठाकर गोपियो ने गोपुच्छादि से उनके दोषो का अपसारण किया। यहाँ 'न्यास' शब्द का उल्लेख किया है, प्रथम बार गोपियो ने शीघ्रता मे भगवान के केशवादि नामो का उल्लेख किया तदनन्तर साविधि न्यास किया। आचमनादि करके अगन्यास करन्यास करके बालक के अगो में भी बीजन्यास किये। इस श्लोक के आगे भगवान के अज, मणिमान्, यज्ञ, अच्युत, हयग्रीव, केशव, ईश, इन, विष्णु, उरुक्रम तथा ईश्वर नामो का उल्लेख विभिन्न अवयवो की रक्षार्थ किया गया है। अज के प्रथमाक्षर पर अनुस्वार लगाने से 'अं' बीज बनता है, इस प्रकार श्लोक मे समागत नामो के प्रथमाक्षरो से जो बीज बने हैं उन्हे कृष्ण के अगो म स्थापित किया—यह 'अव्यादजोघ्रि मणिमान्' श्लोक से स्पष्ट है।

सानुस्वार अगन्यास—करन्यास का सकेत श्रीधर स्वामी ने भा दी १०।६।२१ म दिया है—

'गोप्य. आत्मनि (आत्मन) अगेषु करयो च पृथक् न्यस्य अगन्यास *करन्यासौ कृत्वा बालस्य अघ्र्यादि अगेषु बीजस्य अजादि नामाद्यैकाक्षरस्य* सानुस्वारस्य नम शब्दान्तस्यन्यासमकुर्वत'।'

उक्त गद्याश से यह स्पष्ट है कि गोपियो ने अगन्यास, करन्यास अपने अगो मे किये तथा 'अं नम' आदि बीजन्यास बालक कृष्ण के अगो मे किये

१ सकेतिक टीकाओ को छोडकर शेष सभी अर्थ प० श्रीधर अन्नाजी मथुरा कृत भागवत की हस्तलिखित टिप्पणी से उद्धृत किये गये हैं।

थे। श्रीधर ने इनका उल्लेख नहीं किया कि इन नामों का न्यास किस विधि से किया जाना चाहिये।

राघवाचार्य ने अकारादि, क्षकारान्त ५० वर्णों के न्यास को वैध मानते हुए श्रीधरोक्त मत से विपरीत विधान प्रस्तुत किया है—

'अकारादि क्षकारान्तानि मातृका बीजानि विन्यस्य अथ बालस्य आत्मनि करयो अंगेषु च बीजन्यासमकुर्वत।' (भा च च १०।६।२१)

विजयध्वजाचार्य ने 'बीजन्यास' शब्द से अष्टाक्षर न्यास का उल्लेख किया है। 'अथान्तर मंगल कर वा बालस्य बीज न्यास अष्टाक्षरन्यासमकुर्वत।' (प र १०।६।२१)

वल्लभाचार्य ने ११ बीज मन्त्रों का न्यास ही माना है। यह ११ बीज अजादि नामों के अद्यक्षर हैं। वल्लभाचार्य ने चार अंगुलियों के पर्वत्रय में यह न्यास माना है और षष्ठ स्कन्ध के नारायण कवच के वाक्य 'प्रणवादियकारान्तमंगुल्यंगुष्ठ पर्वसु' (भा ६।८।७) को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है।

'तेनांगुली चतुष्टये पर्वत्रये न्यासो भवति।'

इससे दोनों करों की चार-चार अंगुलियों का ग्रहण भी किया जा सकता है—८ अंगुलि, ४ अंगुष्ठ पर्व=१२ होते हैं। नाम केवल ग्यारह हैं। फलत एक पर्व के लिए एक नाम कम पड़ेगा। वे आगे दशन्यास की चर्चा भी करते हैं।

'मदशन्यासा वा निरूपिता मातृकान्यासादय। एवमात्मनिन्यस्य सर्वा देवताधार भूता सत्य अथ भिन्न प्रकारेण देवता सर्वा बहि स्थिता विधाय बालस्य भगवन बीजैरेकादशभि न्यास मकुर्वत।' (सु १०।६।११)

वल्लभ ने मातृकान्यास गोपियों के लिये, अजादि एकादशाक्षर बीजन्यास कृष्ण के लिये माना है और इस बीजन्यास को अत्यन्त गोप्य लिखा है—

'बीजानि स्थानानि च गोप्यानि इति भगवन्तरेण देवता प्रार्थना रूपेण रक्षा स्तोत्र रूपा वदन्नाह 'अव्यादिति'।'

आचार्य वल्लभ उक्त भगवन्नामों को वैष्णव तन्त्र में प्रसिद्ध मानते हैं—

'भगवत एकादशरूपाणि मूलत प्रसिद्धानि वैष्णव तन्त्रे, अन्यानि तु न समप नि उपदेशनेनागोपित सामर्थ्यानि वा भवन्ति, तत्रप्रथममज न आयत इति अविघ्न मूलभूत इतिपाक्द।'

विश्वनाथ ने अंगन्यास करन्यास गोपियों के अंग में, बीजन्यास कृष्ण के अंग में माना है। (भा द १०।६।२१) किन्तु अजादि नामों के आद्यक्षर

के साथ अजादि नामो को भी साथ मे रखा है, जैसे—'अ नमो अज तवांघ्री अव्यात्' ।

बलदेव विद्याभूषण ने यह रक्षा 'विधान पूर्वक' स्वीकार की है ।[1]

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम पक्ष मे—श्रीधर स्वामी, जीव गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, शुकदेव, बलदेव विद्याभूषण, वशीधर आदि हैं । द्वितीय पक्ष मे—वीरराघव और वल्लभाचार्य हैं । तृतीय पक्ष मे—विजयध्वजाचार्य हैं ।

प्रथम पक्ष के टीकाकारो ने, करशुद्धि मे तीन वर्ण, कर-सन्धि मे चार वर्ण माने हैं । आचार्य वल्लभ ने दशागुलि मे व अगुष्ठ मे भी न्यास करना स्वीकार किया है । अग द्वादश हैं[2], बीजाक्षर ग्यारह । अत एक अग अवशिष्ट रहता है, उस पर किस वर्ण का न्यास किया जाय यह स्पष्ट नही । वीरराघव के पाठानुसार १० नाम ही रह जाते हैं—वे हृद, केश, वस्ति, उदर' चार अवयव मानते हैं । अत केशव नाम कम पड जायगा । वीरराघवाचार्य तथा वल्लभाचार्य ने मातृकान्यास का उल्लेख किया है जो मूल से सगत नही बैठता । वीरराघव ने 'अगन्यास करन्यास बालक (कृष्ण) के स्वीकार किये हैं, गोपियो के नही—

'बालस्य आत्मनि करयो अगेपु च'

विजयध्वज ने मातृकान्यास की चर्चा नही की और न बीजन्यास मे अजादि नामो के आद्यक्षर ही ग्रहण किये हैं । इन्होने 'अष्टाक्षर नारायण' मन्त्र के न्यास की विधि लिखी है । यह विधि मूल से दूर है । अन्वितार्थ प्रकाशिका टीकाकार का मत अधिक सगत है (१०।६।२१)—

	नाम	अगन्यास	करन्यास
(अ)	अज	पाद	दक्षिण करतल
(अ)	अणिमान्	जानु	वाम करतल
(य)	यज्ञ	ऊरू	करपृष्ठ
(अ)	अच्युत	कटि	दक्षिणागुल सन्धि
(ह)	हयग्रीव	जठर	दक्षिणमणि बन्ध

---

१ वैष्णवानन्दिनो १०।६।२१ ।

२ ललाट बाहुमूले च हृदय नाभि पार्श्वकम्
कण्ठ स्कन्धो कटिर्मूर्द्धास्तनोचेति विदुर्बुधा ॥

ध्वज, द्वितीय जीवगोस्वामी एव तृतीया वल्लभाचार्य ने किया है।[1] 'हीरक' श्वेत वर्ण का होता है अत यह उपमा उचित प्रतीत नही होती, नीलमणि से उपमा देना अधिक उचित है। गर्ग सहिता मे तृणावर्त के पूर्व जन्म का प्रसग भी भी लिखा है —

'तृणावर्त पूर्व जन्म का 'सहस्त्राक्ष नामक' पाण्डुदेश का राजा था। एक सहस्र स्त्रियो से आवृत यह नृपति रेवा के तट पर विहार मे रत था, दुर्वासा मुनि को नमस्कार न करने पर उन्होंने शाप दिया कि तुम राक्षस बनो। उनकी अनुनय से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने कृष्ण के चरण स्पर्श से मुक्ति का वरदान दिया था।'[2]

कृष्णजन्म के १०० वें दिवस गर्गाचार्य ने गोकुल मे प्रवेश किया। वसुदेव ने इन्हें नामकरण के व्याज से कृष्ण का समाचार लेने भेजा था।

(क्र स १०।८।१)

गोकुल मे प्रतिदिन उत्पात बढने लगे थे, अत सब गोपों ने वृन्दावन मे आने का निश्चय किया। यह भूमि सात्विक राजस-तामसो को भी सुख कर है। वृन्दावन प्रवेश के समय कृष्ण की २ वर्ष ३ मास की अवस्था थी। गोकुल लीला म पूतना वध, शकट भजन, नामकरण, रिंगण, तृणावर्त, प्रथम विश्व दर्शन, उपालम्भ, वत्सपुच्छ ग्रहण, मृत्तिका भक्षण, द्वितीय विश्वदशन, चौर्य-तथा उलूखल बन्धन—ये १६ लीलाऐ प्रमुख है।

जीवगोस्वामी का कथन है कि कृष्ण जब वृन्दावन में पधारे थे तब वृन्दावन कालिय ह्रद से दक्षिण भाग मे आठ कोश लम्बा तथा चार कोश विस्तृत था। वृन्दावन पहुँचकर गोपो ने शकटो को अर्ध चन्द्र की भाँति खडा किया था। विश्वनाथ ने अर्धचन्द्र शिवजी का चिन्ह लिखा है। (सा द १०। १३।५६) किन्तु यहाँ इसका तात्पर्य क्या है, यह स्पष्ट नही लिखा है।

श्लोक २३—'अत्र भोक्तव्यम्० (भागवत १०।१३।६)

वृन्दावन मे कृष्ण ने वत्स चारण प्रारम्भ किया। एक बार वे गोप-ग्वालो के साथ रमणीक शिला पर बैठ कर भोजन कर रहे थे। ब्रह्मा ने इसे ईश्वरोचित कार्य न मान कर परीक्षार्थ उनके वत्सों का अपहरण किया और जब कृष्ण उन्हें ढूढने गये तो बालकों का भी अपहरण किया। विश्वनाथ चक्रवर्ती भगवान के निज सखाओ का अपहरण नहीं मानते। उनका मत है

---

१. (क) पदरत्नावली १०।७।२७ (ख) क्रमसन्दर्भ १०।७।२७
(ग) सुबोधिनी १०।७।२७।

[illegible] गोलोक खड अध्याय १४।

कि मायिक वत्स तथा मायिक बालको का अपहरण हुआ था, भगवत्सखाओ का अपहरण सम्भव नही।

श्लोक २४—'तनोति..........पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका' (भा. १०।१३।५६)

कृष्ण ने ब्रह्मा को जब गोप और वत्सो को चतुर्भुज रूप मे दिखलाया तब वह कृष्ण की शरण मे आया। वह ग्रामदेवता के समीप पुत्रिका की भांति कृष्ण के समीप शोभित हुआ। श्रीधर का कथन है कि पूर्देवी ब्रज की अधिष्ठात्री देवी थी। (भा. दी. १०।१३।५६) वीरराघवाचार्य ने पूर्देवी के समीप सुवर्ण की प्रतिमा की उपमा ब्रह्मा की दी है। आचार्य वल्लभ ने इस उपमा द्वारा ब्रह्मा की निष्प्रभता स्वीकार की है। (सु १०।१३।५६) 'पुत्रिका' सेव्य देवता के समीप रखी जाया करती थी तथा यह अपूज्य होती थी। विश्वनाथ आचार्य पुत्रिका का अर्थ मिट्टी की पुतरी मानता है—

'..........अत्र दृष्टान्त पूर्देवी बहुलोके पूज्यमाना ग्रामदेवता तस्या अन्ति निकटे पुत्रिका बालकेन खेल्यमाना अपूजिता क्षुद्रा मृण्मयी पञ्चालिकेव।'

(सा. द. १०।१३।५६)

श्लोक २५—'शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने।' (भा. १०।१३।६४)

ब्रह्मा कृष्ण के चरणो पर गिर पडे एव आखो मे आसू भर लाये। यहा लोचने मे द्विवचन का प्रयोग है। परन्तु ब्रह्मा चतुर्मुख है अत उसके नेत्रो की सख्या आठ होनी चाहिये तथा लोचने मे बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए। विश्वनाथ का कथन है कि पाणिद्वय से लोचनद्वय का मार्जन सम्भव है अत द्विवचन का प्रयोग है। यद्यपि ब्रह्मा के चार मुख चारो दिशाओ मे थे तथापि कृष्ण के चरणो मे गिरते समय वे एक ओर ही आ गये थे।

(सा. द. १०।१३।६४)

श्लोक २६—'नौमीडयतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुंजावतंस परिपिच्छ लसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय॥'

(भा. १०।१४।१)

'नौमी' यह क्रिया है, शेष चतुर्थ्यन्त विशेषण हैं। यद्यपि 'अभ्रवपुषे' का अर्थ मेघवत् श्याम शरीर है तथापि जीवगोस्वामी के अनुसार 'नारायण का भी भरण करने वाला' अर्थ है।[1] इसी प्रकार गुंजावतंस का अर्थ ध्वनि निरोधनम परिपिच्छ का अर्थ चतुर्दिक् मायाधारी, सन्मुखाय का अर्थ भक्तो के सन्मुख किया है। भगवान् के वस्त्राभरण भी प्रतीकमात्र हैं। कर्म जड पशुओं

१. 'अं नारायण बिभर्तीति अभ्रे कृष्ण' (बृहत् क्रम सन्दर्भ १०।१४।१.)

साथ सम्बन्ध होते ही मद आता है, मद मे वह नृत्य करता है। नृत्य मे गात्र विक्षेप क्रिया करता है, गात्र चालन से मयूर का रस एकत्रित होकर नेत्रो से बाहर निकलता है, वह मयू ी के मुख मे पडता है। नेत्रगत रस रेत है। ज्ञान द्वारा अन्य सब कार्यों मे प्राकृत ही रस है '

मोक्ष—कृ ण मेघ के समान वाणी मे गायो को बुलाते है, वाणी के उच्चारण को मोक्ष रूप मे वर्णित किया गया है। भगवत्स्.युज्य और मुक्ति दो ो के दाता भगवान् श्रीकृष्ण है।

दशरस लीला—आचार्य वल्लभ ने अध्याय पन्द्रह मे दशरस लीलाओ का निरूपण किया है—

'चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजाश्च बर्हिण ०' श्लोक मे समागत चकोर, क्रोच आदि से रस का सम्बन्ध घटित किया है। यथा—चकोर शृगार का, क्रोच वीररस का चक्रवाक करुणा का, भारद्वाज अद्भुत् का, मयूर हास्य रस का प्रतीक है तथा व्याघ्र भयानक रस का प्रतीक हैं। भयानक रस सब रसो का उपमर्दक है अत उसे पृथक् रखा गया है। उक्त छ रसो का अधिक विवेचन वल्लभ ने नही किया किन्तु निम्न चार रसो की व्याख्या अधिक विस्तार के साथ की है—

बीभत्स रस—हीन से हीन भाव उत्तम का बीभत्स होता है। भक्तो को भगवान् कृष्ण मे अपार श्रद्धा है, उन्हे कृष्ण द्वारा बलदेव के अ ग परिचालनादि कार्य बीभत्स प्रतीत होते हैं।

रौद्र रस—मल्ल लीला रौद्र रस के अन्तर्गत आती है तथा इसके चार भेद हैं— चतुर्विधा मल्ललीला स्तूयते हरिणामुदा'। इन चार लीलाओ मे कायिकी लीला, वाचिकी लीला, मानसिकी लीला—तीन ही स्पष्ट है। चतुर्थ लीला का अन्तर्भाव कायिकी लीला मे है।

कायिकी लीला–नृत्य करने की लीला कायिकी है।
वाचिकी लीला–गायन लीला वाचिकी है।
मानसिकी लीला–चलन करना मानसिकी लीला है।

शान्त रस—वृक्ष तल मे विश्राम शान्ति रस है। 'वृक्ष मूल' शब्द परम हसो के लिय साकेतिक है। भगवान परम हसो का आश्रय लेते हैं, अत वृक्षो के तल मे उन स्थानो म अतीन्द्रियत्व से स्थित परम ऋषियो को कृतार्थ करने के लिए ही भगवान् वृक्ष मूल मे विराजते थे। गोपो के गोद मे शिर रखकर शयन करके वे सिद्ध करते थे कि गोप ऋषियो से भी अधिक भाग्यशाली हैं। यहाँ 'तल्पेपु' मे बहुवचन का प्रयोग है। गोप वन मे वृक्षो के मूल मे पत्रो की शय्या बनाते थे और कृष्ण अनेक रूप बनकर उन पर शयन करते थे, प्रत्येक बालक उन्हे अपने समीप मानता था। यह बहुवचन का अभिप्राय है।

भक्ति रस—'पादसम्वाहनं चक्रुः' श्लोक मे गोपो द्वारा भगवान् के पाद-सेवन का उल्लेख है। आचार्य वल्लभ का मत है कि कर्म मार्गानुसार भक्ति करने वालो को पाप की सम्भावना रहती है, अनन्य उपासको को नही। पाद सम्वाहन तथा व्यजन चालन, उभयविध भगवत्-सेवा लक्षण भक्ति रस है जो भगवत्सन्निधान मे ही उपलब्ध हो सकता है। अत. यह भक्ति रस सहित भगवान् की लीला है।

श्लोक ३०—'यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तमो०' (भा. १०।१६।२८)

वीरराघव (भा. च च १०।१६।२८) मे तथा सुदर्शन ने (शु. प. १०।१६।२८) मे श्री शब्द से वेदवती के उस प्रसग की ओर सकेत किया है जिसका वर्णन रामायण मे प्रसिद्ध है। वल्लभाचार्य (सु.१०।१६।२८), विश्वनाथ (सा. द. १०।१६।२८) का कथन तो यह है कि लक्ष्मी ने गोपाल की चरण रज प्राप्ति के लिये तपस्या की थी। शुकदेव (सि. प्र. १०।१६।२८) का भी यही मत है। यद्यपि श्री का वियोग क्षणिक भी नही माना जाता तथापि रुक्मिणी, सीता आदि के व्यावहारिक रूप लक्ष्मी के पृथक्त्व को सिद्ध कर ही देते हैं।

श्लोक ३१—'नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥' (भा १०।१६।४५)

इस श्लोक मे पाँचरात्र सम्मत चतुर्व्यूह के अतिरिक्त पचम सख्या भी है—कृष्ण, राम, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। वीरराघव (भा. च च. १०।१६।४५) ने वासुदेव को पृथक् माना है। विजयध्वज ने कृष्ण शब्द के कई अर्थ किये है—

उत्कृष्टानन्द रूप,
भक्तजन दुरित कर्षणशील,
शत्रुओ को अग्निस्वरूप अथवा नीलवर्ण वाले।

श्लोक ३२—'दिव्याम्बरस्रङ् मणिभिः' (भागवत १०।१६।६५)

उक्त श्लोक मे मणि का उल्लेख है, यह कौस्तुभ मणि थी। यह मणि कृष्ण को कालिय नाग के दमन के पश्चात् नाग कन्याओ ने भेंट की थी। यद्यपि यह मणि कृष्ण के जन्म के समय उनके गले मे थी। भागवत के 'गलशोभितकौस्तुभम्' श्लोक मे स्पष्ट है तथापि बालको के गले मे मणि को तत्काल उचित न मानकर हृद मे पहुँचा दी गई थी। कृष्ण ने कालिय दमन लीला के पश्चात् उसे पुन. प्राप्त किया था। नाग-कन्याओं ने यह मणि रत्न-विशेष के दान मे दी (सा. द. १०।१६।६५)—

'कौस्तुमाख्योमणिर्येन प्रविश्य ह्रुदमोरणं ।
कालिय प्रेयसी वृन्द हस्तैरात्मोपहारित ॥'

आचार्य वल्लभ ने इस अध्याय मे तत्कालीन अनेक क्रीडाओ का उल्लेख किया है जिनमे कतिपय के नाम इस प्रकार हैं—मुष्टिभ्रामण, धावन, अस्पृश्य, वरवर्तिका, नेत्रबन्ध, निलायन, आरोह, एकपद, हरिण एवं दोला । इस अध्याय मे आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रसाद्य गरुडध्वजम्०' (सा. द. १०।१६।६५) मे इस श्लोक पर एक अन्त कथा लिखी है—'एक बार कालिय नाग ने भगवान् से प्रार्थना की कि कभी मुझ पर भी विराजने की कृपा करें । एक निमेष मे ही आपको शतकोटि योजन पहुँचा दूँगा ।' अत. कस मारणार्थ कालिय पर बैठ कर ही कृष्ण मथुरा गये थे । यह पुराणान्तर की कथा है ।

श्लोक ३३—'नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण०' (भा १०।१६।१०)

आचार्य वल्लभ ने उक्त श्लोक मे पुष्टि मार्ग की रक्षा का उल्लेख किया है ।

श्लोक ३४—'.........ब्रह्मेव सगुणं बभौ' (भा १०।२०।४)

उक्त श्लोक की टीका मे प्रायः सभी टीकाकारो ने अपनी सम्प्रदाय के अनुसार व्याख्या लिखी है । इसका अर्थ है 'आकाश' सगुण ब्रह्म की भांति सुशोभित हुआ । श्रीधर स्वामी ने गुणो से आवृत जीव की शोभा तथा 'विद्युत्-गर्जन-मेघ' को क्रमशः सत्व, रज, तम माना है । अर्थात् गुणावृत जीव की उपमा व्योम को दी गयी है (भा. दी. १०।२०।४) । जीवगोस्वामी ने (क्र. स १०।२०।४) ब्रह्माश जीव से अलकृत व्योम माना है । विजयध्वज ने सगुण से ब्रह्मा का अर्थ लिया है (प. र. १०।२०।४) तथा ब्रह्मा की भांति शोभित आकाश माना है । वल्लभ ने आदित्यवत प्रकाशमान सगुण ब्रह्म दृष्टान्त से प्रावृट् का निरूपण किया है (सु. १०।२०।४) । 'आकाश शरीर ब्रह्म' वाक्य से आकाश का भी शरीर सिद्ध किया है परन्तु वह कृष्ण सदृश रूपवान् है । इसे प्रत्यक्ष दर्शी स्वीकार करने मे सकुचित होगा अत. विद्यमान गुण साम्य ही यहाँ अपेक्षित है । सान्द्र जलद नील वर्ण हैं, विद्युत् पीताम्बर एवं गर्जन नाना वाद्य सवलित शब्द रूप है ।

प्रावृट्, आकाश और कृष्ण—

प्रावृट्, आकाश मे ज्योति अस्पष्ट है ।
कृष्ण अनेक विध आभरण से अलकृत हैं ।
आकाश मेघो से आच्छन्न हैं ।

'महेन्द्र धनु निर्गुण होने पर भी शोभित होता है। अत. विजातीय भी विजातीयो मे शोभा प्राप्त करता है। मेघागम से मयूरो का प्रसन्न होना स्वाभाविक है, भगवज्जन भी त्रिविध ताप सन्तप्त मानवो की वेदनाओ के निवारणार्थ गृहस्थो के आश्रमो मे जाते है।

श्लोक ३७—'तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीत स्मरोदयम्॰'

(भा. १०।२१।३)

उक्त श्लोक मे सनातन गोस्वामी ने काश्चित् पद से राधा का उल्लेख किया है (वृ. तो. १०।२१।३)। उन्होंने यह भी लिखा है कि राधा ने ललितादि सखियो के समक्ष वेणुगीत का वर्णन किया था। यह वेणुगीत 'बर्हापीड' श्लोक से प्रारम्भ होता है। विजयध्वजाचार्य ने 'बर्हापीड' के साथ एक अन्य श्लोक भी उद्धृत किया है जिसे अन्य टीकाकारो ने स्वीकार नही किया है—

बर्हांपिच्छो वनचर वपु: कर्णयो. कर्णिकार:
सव्ये बाहौ निहितवदनः सज्जमन्यत्र हस्ते
भ्रू विन्यासांगुलिभिरणयन् गापयन् गोपवृन्दान्
भूत ग्रामन्तर्हि रमयन् ब्रह्म गान्धर्वमेव ॥ (प. र. १०।२१।५)

बर्हापीड की विविध व्याख्याएँ की गई हैं।

श्लोक ३८ —बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद् वास–कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै–
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

(भा. १०।२१।५)

जीवगोस्वामी ने नटवर के कई अर्थ किये है (क्र. स. १०।२१।५)—नट जैसे शरीर वाला, वर की तरह शरीर वाला, नट से भी श्रेष्ठ तथा जिसे देखकर सब प्रसन्न हो। श्रीधर स्वामी ने नट-वर को पृथक् मानकर 'नटवद्वर वपु विभ्रत्' नट की तरह 'श्रेष्ठ वपु धारण करने वाला' अर्थ किया है (भा. दी १०।२१।५)। वीरराघव ने 'नटात्मक वर की भांति वपु धारण किये' अर्थ किया है। वल्लभाचार्य ने कृष्ण का दो प्रकार का शरीर माना है—वरप्रत्यग्र भोक्ता है, भगवान् हृदय मे भी स्थित है-(सु. १०।२१।५)। विश्वनाथ ने श्रीधर का ही अनुकरण किया है (सा दी. १०।२१।५)। शुक सुधी ने शिव उपास्य वपु भी माना है। शुक सुधी का अर्थ अधिक सगत है, क्योकि नटराज शिव कहा जाता है। पाणिनि को भी नटराज ने १४ सूत्र दिये थे।

बर्हापीड—(मयूर पख का मुकुट) यह राधिका के ईक्षण साम्य का कारण है, राधिका का ईक्षण मेरे शिर पर हो, अतः मोरमुकुट धारण किया है—

'राधाप्रियमयूरस्य पत्रं राधेक्षण प्रभम्
विभर्ति शिरसा कृष्णस्तस्याश्चूडानिभं यतः।'

जैसे नट सामाजिकों के विनोदार्थ अनेक वेषों को धारण करता है, वैसे ही कृष्ण भी स्वकीयों के विनोदार्थ नट बनते हैं।

कर्णयो॰ कर्णिकारम्—'कर्णिकार' में एकवचन का प्रयोग किया गया है, तथापि दो कान होने से दोनों में ही इसे सम्बद्ध मानना चाहिये। यह पीत रङ्ग का पुष्प होता है, भाषा में इसे कन्हेर कहते हैं। यह शृंगार रस का उद्बोधक है, शृंगार के दो भेद होते हैं—संयोग, विप्रयोग। परन्तु श्रोत्र से दोनों का सम्बन्ध है। अतः कर्णिकार शब्द से शृंगाररस का उच्छलित होना स्पष्ट है। इस पुष्प को 'कर्ण फूल' अलंकार की भाँति धारण करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। ब्रज में आज भी ग्रामीण समुदाय कानों के ऊपर एक इंच लम्बे पीत पुष्प को शोभा की अतिशयता धारण करते हैं। एक टीकाकार ने इस पुष्प को 'सूर्यमुखी' लिखा है—

विप्रदास—कर्णिकार बाण है, पीतवस्त्र धनुष स्थानीय हैं और प्रति-दायक हैं। आचार्य वल्लभ ने पीतवस्त्र को माया संज्ञा दी है। यह भी लिखा है कि जब गोपिकाओं को रसोद्बोध होगा तब वे इस माया को नही गिनेंगी।

वैजयन्ती च मालाम्—वैजयन्ती माला मे मेघमुक्ता, गजमुक्ता, मत्स्य मुक्ता, शंख मुक्ता, वंश मुक्ता तथा सूकर मुक्ता ग्रथित होते थे।[1] ये 'पांच रत्न' पांच तत्व के भी प्रतीक हैं—भूमि का प्रतीक हीरा, जल का मुक्ता, अग्नि का मूंगा, पवन का पुष्पक, आकाश का नीलम—

> भूमौ वज्र जले मुक्ता वन्हौ विद्रुमको मणि
> पवने पुष्पकं ज्ञेय नीलमाकाश एव च।
> पंचतत्वात्मिका शुद्धा ज्ञान सूत्रेण गुम्फिता
> एतद्रत्नमयी माला वैजयन्ती प्रकीर्तिता॥[2]

वैजयन्ती तथा वनमाला में भेद है। वनमाला पांच पुष्पों की बनी होती थी—तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल। यह माला आपाद लम्बिनी होती थी—

> तुलसी कुन्द मन्दार पारिजात सरोरुहै
> पंचभि पुष्पैरेतैर्वनमाला प्रकीर्तिता।[3]

आचार्य वल्लभ ने वैजयन्ती माला को सर्वजन प्रकाशिका माना है।[4]

रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन्—'वेणु छिद्रों को अधर सुधा से परिपूर्ण करते हुए।' अधर सुधा से यद्यपि एक छिद्र पूर्ण होना है तथापि वह उच्छलित होकर सभी छिद्रों मे भर जाती थी। आचार्य वल्लभ ने सुधा के तीन भेद किये है—देवभोग्या, भगवद्भोग्या, सर्वभोग्या। लोकात्मक अधर पर सुधा विराजमान है, उसका साक्षात् अनुभव उच्छिष्टता से सम्भव नहीं, अत वह श्रोत्रपेया है एवं वह ब्रह्मानन्द से भी बढ़कर है। कृष्ण के अधर वेणु को निश्छिद्र करना चाहते थे, अत कृष्ण के अधर संस्पर्श से वेणु चेतना युक्त हुआ उससे तीनों जगत् उन्माद युक्त बन गये। तदनन्तर सुधा ने वेणु का कठोर और अचेतन स्वभाव, अधिकारी जानकर उसी के छिद्र से बाहर निकल कर, व्रजबालाओं के कर्ण द्वार से उनके मन में घुस कर अपने को सफल बनाकर पराक्रम प्रदर्शन में लग गई। वेणु एवं मुरली में भेद निम्न प्रकार से है—

(सारार्थ दर्शिनी १०।२१।५)

---

१ जीमूतश्च करीमत्स्य शंख वंश वराहजा   प्रेममंजरी १०।२१।५
२ प्रेम मंजरी १०।२१।५   ३ वही   ४ सुबोधिनी १०।२१।५

वेणु– १२ अ गुल दीर्घ, अ गुष्ठ तुल्य स्थूल एव छ छिद्रो का होता था––

द्वादशागुल दीर्घस्तु स्थौल्येंगुष्ठ मितस्तथा
षड्भीरन्ध्रै सुसवृत्तो वेणुरित्यभिधीयते ।।

मुरली––दो हाथ की तथा ४ छिद्र की होती थी––

हस्तद्वय मितायाम मुखरन्ध्र समन्विता
चतु स्वर समायुक्ता मुरली चारुवादिनी ।।

वशी––यह १७ अगुल दीर्घ तथा ६ छिद्र युक्त होती थी––

नवच्छिद्रान्विता वशी तार घोर प्रवर्तिनी
अ गुलै सप्तदशभि परिच्छिन्ना बुधैर्मता ।।

भगवान अधमो का उद्धार करने के लिये वेणु धारण करते थे यह आचार्य वल्लभ का मत है––

वेणुर्गर्जति हर्षेण मुकुन्द वदनाश्रित
कुर्वन्तु मा भय लोका अधमोद्धारको हरि ।। (सु १०।२१।५)

गोपवृन्दे गीत कीर्ति ––वृन्दावन प्राविशत् ।

'गोप वृन्दो द्वारा गाई गई कीर्ति वाले भगवान् वृन्दावन मे प्रविष्ट हुए।' 'गोपवृन्दे' पद के अनेक अर्थ किए गए है––

१ गोपालो द्वारा गीतकीर्ति––(गोपाना वृन्दास्तै स्वसखिभि)

२ देवो द्वारा गीत कीर्ति––(गा = पृथ्वी वृष्ट्यादिना पान्तिगोपा = देवा)

३ एकादश रुद्रो द्वारा गीत कीर्ति––(गा = वृषभंपान्तीति गोपा = एकादशरुद्रा. तै)

४ ब्रह्मसमूह द्वारा गीत कीर्ति–(गा = वेदलक्षणा गिरपांतीनि गोपा = ब्रह्मसमूहा)

५ सूर्यो द्वारा गीत कीर्ति (गा = पृथ्वी तद्गत प्रजासर्वा पान्तीति गोपा = सूर्या तै)

६ इन्द्रो द्वारा गीत कीर्ति––(गा = स्वर्ग पान्तीति गोपा = १४ इन्द्रा तै)

७ मनुओं द्वारा गीत कीर्ति––(गा=पृथ्वी सद्धर्म प्रवृत्यादिना पान्तीतिमनव तै ।

८. चन्द्र तारादिद्वारा गीत कीर्ति––(गा = पृथ्वी तद्गतौषधीनाम-

कुर जनकत्वान् राज्यान्धकार निरसनेन ताप हरणादिना च तद्गतप्रजा अपि पान्तीति चन्द्र तारकादय तै)

९. शेष मुख द्वारा गीत कीर्ति–(गा=पृथ्वी फणैकदेश धारणेनपातीति गोप=शेष तस्य वृन्दे=मुख समूहे)

१० सनकादि द्वारा गीत कीर्ति–(गा=पृथ्वी पचभूतोप लक्षित द्वन्द्व पान्तीति गोपा=सनकादयो मुनयस्तेषा वृन्दै परम भागवतै)

११ हरिभक्तो द्वारा गीत कीर्ति–(गा=पशव ज्ञानहीना प्राणिन तान् भक्ति मार्ग सप्रदाये प्रवर्तनेन पान्तीति गोपा=हरिभक्ता तेषा वृन्दै)

१२ दिग्गजो द्वारा गीत कीर्ति–(गा=पृथ्वी स्वस्थितया चतुर्दिश पान्तीति गोपा=दिग्गजास्तै)

१३. सखि समूह द्वारा गीत कीर्ति-(गोभि=इन्द्रियै स्वदर्शन स्पर्शनादिना सर्वजीवान् पापहरणादिना च पान्ति रक्षन्ति स्वसखि समूहा=पार्षदास्तै)

उपर्युक्त अर्थ प० वन्नाजी पौराणिक के सग्रह से उपलब्ध किये गये है। गापवृन्दे की भाँति 'गीत कीर्ति' पद के भी अनेकार्थ किये है—

१ व्रज नारियो द्वारा गीत कीर्ति–(गीता व्रजनागरीभि कीर्तिर्यस्य)

२ गीत=वेणुनाद मे जिसका यश है। (गीते वेणुनादे कीर्तिर्यशोयस्य स)

३ शास्त्रों मे जिसका गान है। (गीता शास्त्रेषु कीर्तिर्यस्य)

४ गीतो द्वारा जिसकी कीर्ति गाई गई है। (गीतैरपि मिलित्वा गीता कीर्तिर्यस्य)

५ वेणुनाद कीर्ति वाले–(गीत–वेणुनाद लक्षणमेव कीर्तिर्यस्य)

गीत लक्षणम्–

तानिस्वरगमायुक्त राग रागाग भूषित
सस्कृत प्राकृत वापि गीतं गीत विदोविदु ॥

वृन्दारण्य के भी तीन अर्थ प्रसिद्ध है—वृन्दा सखी के वन मे, वृन्दा देवी के वन मे तथा राधा के वन मे।

मत्स्य पुराण मे लिखा है कि राधा वृन्दावन मे है–

वाराणस्यां विशालाक्षी विमलापुरुषोत्तमे
रुक्मिणी द्वारवत्यां च राधा वृन्दावने वने ॥
वृन्दावनाधि पत्य च दत्त कृष्णेन गुन्दगा ॥

कृष्ण ने सन्तुष्ट होकर वृन्दावन का स्वामित्व राधा को दिया था।

श्लोक ३९—'यकत्र व्रजेश सुतयोरनुवेणु जुष्ट' (भा १०।२१।७)

व्रजेश सुतयो का अर्थ है–कृष्ण और बलराम। अथवा व्रजेश सुत 'राधा और कृष्ण' इनके अधर पर जितने वेणु को स्थापित देख लिया उनका जीवन धन्य है—

'व्रजशश्च व्रजेशश्च व्रजेशौ एक शेष पुन सुतश्च सुता च सुतौ, पुन षष्ठी तत्पुरुष यथा सख्यतया व्रजेश सुतयोरिति राधाकृष्णयोरिति कृष्णराधयो र्वक्त्र निपीत, एकत्व जातिविवक्षया।' (वृ, क्र. स १०।२१।१०)

श्लोक ४०—'वृन्दावन सखि भुवो वितनोति कीर्ति' (भा १०।२१।१०)

सनातन गोस्वामी का कथन है कि गोपियो ने 'सखि' शब्द राधा के लिय प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार इस अध्याय के सत्रहवें श्लोक मे समागत दयितोरु गाय' पद से राधा का अर्थ ही किया है–(सा द १०।२१।१७)

'उरु काम बीजादि रूपेण श्रीराधेति गायो गान वेण्वादौ यस्या'

उक्त श्लोक म भगवान श्रीकृष्ण को देवकी का पुत्र कहा है, किन्तु प्रसग म यशोदा का ही उल्लेख चला आ रहा है। विश्वनाथ चक्रवर्ती का मत है कि नन्द पत्नी यशोदा का नाम भी देवकी था—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीत्यपि

अत सख्यमभूत्तस्या देवक्या शौरिजायया ॥' (सा द १०।२१।३०)

उक्त प्रमाण मे यह स्पष्ट निर्देश है कि यशोदा का देवकी नाम होने के कारण ही वसुदेव पत्नी देवकी से सख्य भाव था। अत जहाँ भी देवकी शब्द आने के कारण यशोदानन्दन के बारे मे सशय हो वहाँ देवकी का अर्थ यशोदा ही करना उपयुक्त है।

वेणुनाद पर सर्वाधिक सामग्री शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय मे उपलब्ध होती है। आचार्य वल्लभ ने वेणुनाद को अलौकिक माना है अन्यथा वह सभी गोपी एव ग्वालो का सुनाई पडता। (सु १०।२१।१०)

श्लोक ४१—'हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिका।

चेरुह विष्य भु जाना कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ (भा १०।२२।१)

चीर लीला का वर्णन २२ वें अध्याय मे है आचार्य वल्लभ ने गोपियो को २ वर्गों म रखा है—अन्यपूर्वा, अनन्य पूर्वा। अन्य पूर्वाओ का त्याग एव अनन्यपूर्वा वर्ग की गोपियो का सस्कार कृष्ण ने किया था। ऋपि रूपा गोपियो ने हेमन्त ऋतु के प्रथम मास मे कात्यायनी का व्रत किया था। कात्यायनी आधिदैविकी तामसी शक्ति है और दुर्गा राजसी। गोपियाँ यमुनातट पर एव घर पर भी कात्यायनी का पूजन किया करती थी (सु १०।२२ २)।

सनातन गोस्वामी का कथन है कि 'कात्यायनी' कात्य मुनि के वश की प्रकाशिका थी अत यह नाम सार्थक है। यह गोकुलेश्वरी भी है इसके द्वारा अखिलेश्वर की प्राप्ति भी सरल है। अत इसका पूजन आवश्यक था—(वै तो १०।२२।४)

एकेय प्रेमसर्वस्व स्वभावा गोकु श्वरी
अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वर ।
अस्या आवरिका शक्तिर्महामायाखिलश्वरी
यया मुग्ध जगत्सर्वं सर्वे देहाभिमानिन ।।

वीरराघव कात्यायनी को भद्रकाली की अवस्था विशेष मानते है (भा च च १०।२२।४)। आचार्य वल्लभ ने भद्रकाली पद की व्याख्या भद्र काल की है, स्पष्ट है कि वे शक्तिपरक न मानकर 'कालपरक' भद्रकाली पद को मानते ह (सु १०।२२।२)। चीर लीला प्रसग मे विश्वनाथ चक्रवर्ती ने आलाप लिखे हैं वे बडे ही मनोरम है (सा द १०।२२।१४)।

श्लोक ४२—प्रयात देवयजन सत्रमागिरस नाम०'
(भागवत १ ।२३।३)

यह आ गिरस सत्र माथुर ब्राह्मणो द्वारा एकान्त मे किया जा रहा था, उस समय कस के भय से यागादि प्रत्यक्ष रूप मे नही किये जाते थे। कर्म काण्ड के वैभव पर इस प्रसग द्वारा पर्याप्त प्रकाश पडता है। कृष्ण के ओदन याचा करन पर भी ब्राह्मणो ने अस्वीकार कर दिया था। यह सत्र स्वर्ग कामना से किया जाता था एव इसके सम्पादन के लिए ४० दिवस का अनुष्ठान आवश्यक होता था। आचार्य विश्वनाथ ने उक्त प्रसग म द्विजा शब्द की व्युत्पत्ति बडी विचित्र की है। कृष्ण ने द्विजा पद द्वारा उनकी भर्त्सना की है—यह अर्थ किया है तथा विपरीत लक्षणा से धर्मवित्तमा अर्थ निकलता है—

'अतो यूय द्विजा पितृद्वय जाता एवत्यात्पश्च धर्मविद्वमा इतिविपरीत लक्षणया। (सा द १०।२३।७)

हमे यह उचित प्रतीत नही होता क्याकि कृष्ण उनकी भर्त्सना पितृ द्वय से उत्पन्न शब्द द्वारा नही कर सकत क्याकि वे न ब्राह्मणाभेदयित इत्यादि क द्वारा सवत्र ब्राह्मण पूज्यता के पोषक रह है।

दीक्षाया पशुसस्थाया सौत्रामण्याश्च सत्तमा' की व्याख्या किसी टीकाकार ने स्पष्ट नही की।

श्लोक ४३—'मेवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं०' (भा. १०।२३।२६)
उक्त श्लोक उस समय वर्णित है जब ऋषि-पत्नियां भगवान् का वन समागमन सुनकर उनकी शरण मे नाना पकवानो को लेकर आई थी और कृष्ण ने उन्हें लौटकर चले जाने को कहा, तब उन्होंने अपना मन्तव्य। प्रकट करते हुए कहा था—'मेव विभो' (अर्थात् आप ऐसा न कहे)। आचार्य वल्लभ ने यहा अपनी सम्प्रदाय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि भगवान पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन करने के हेतु ही अवतार कारण करते हैं(सु. १०।२३।२६)—

'आदौ पुष्टिमार्ग प्रवर्तनार्थं भगवानवतीर्ण.'

श्लोक ४४—'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः
वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः (भागवत १०।२६।१)

'खिले हुए मल्लिका के पुष्पो वाली उन शरद् ऋतु की रात्रियो को देखकर भगवान ने योगमाया का आश्रय लेकर रमण करने की इच्छा की।'

यद्यपि परीक्षित भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन सुन रहे थे तथापि शुकदेव जी द्वारा रासलीला का वर्णन उनकी अहैतुकी कृपा थी। भगवान् शब्द द्वारा ऐश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन षड् गुणो मे सम्पन्न लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही अभिप्रेत है। अपि शब्द गोपियो के पूर्वानुराग का द्योतक है। 'रात्री' के बहुवचन से उनकी ओर सकेत है जिनमे कात्यायनी व्रत के पश्चात् रमण करने के लिए भगवान गोपियो को वचन दे चुके थे। 'ता.' पद भगवान के मन की चमत्कृति को प्रकट करता है। 'ता. गोपी' का अर्थ है—उन गोपियो को देखकर कृष्ण भगवान ने रमण की इच्छा प्रकट की। शरदोत्फुल्लमल्लिका द्वारा वृन्दावन की अनिर्वचनीय शोभा कही गई है। मल्लिका केवल उपलक्षण है, प्राय समस्त पुष्प जातियो का विकसित होना अभीष्ट है। रासलीला के लिये उन्हे योगमाया का आश्रय लेना पडा था। जीवो को जगत् से सम्बद्ध करने वाली शक्ति का नाम माया है। इसे अविद्या तथा अज्ञान शब्दो द्वारा भी व्यवहृत किया गया है। यहाँ माया शब्द का अर्थ कृपा भी है। अत. कृपापूर्वक रमणेच्छा का यह अर्थ भी किया जाता है। इसके विभिन्न अर्थ किये गये हैं—

१. योगमाया—नाम 'सकल्प' का है अर्थात् भगवान ने सकल्प किया।
(भा. चं. चं. १०।२६।१)

२. योगमाया—स्वरूप सामर्थ्य का ही नाम है। (प.र. १०।२६।१)

३. योगमाया—दुर्घट घटना घटीयसी शक्ति है। (क्र.स. „)

४. योगमाया—सच्चिदानन्द की शक्ति विशेष है। (बृ. तो. „)

५ योगमाया—ऐश्वर्य युक्त माया का नाम है। (वही)

६. योगमाया—योग=आत्मारामता, माया=आवरणात्मिका, वाप-द्‌य का सामीप्य होने पर भी स्वस्वरूपाभिव्यक्ति। (बृ. तो १०।२६।१)

७ व्रज सुन्दरियों को, योग=सयोग होने पर भी वचना ग्रहण कराकर सिद्धि प्रदान करना। (वही)

८. नित्य वक्ष. स्थल सयुक्त जो, मा=लक्ष्मी उसके द्वारा सेव्यमान।

९ सयोग के लिये जो माय (शब्द) युक्त है अर्थात् वशी। (वही)

१० सम्भोग के लिये माय=मानयुक्त अर्थात् राधा। (वही)

११ योग=सम्भोग, मा=लक्ष्मी (सम्पत्ति) उसे जो प्राप्त करे, अर्थात श्रीराधा। (सा. द १०।२९।१)

१२. स्वीयाचिन्त्य चित् शक्तिवृत्ति ही योगमाया है।[1]

१३ निश्चल कृपा ही योगमाया शब्द व्यपदेश्य है।[1]

१४. अयोगमाया—पदच्छेद द्वारा, अर्थात् ब्रह्मविचार शून्यो पर जो कृपा, उसका आश्रय लेकर —'अयोगेषु चित्तनिरोधादियोगशून्येषु स्वस्मिन्नयुज्यमानेषुवा या माया=कृपा।'[1]

१५ गोपियो की स्वरूप विच्छित्ति के लिये प्रवृत्त जो माया—'ता मामयोगाय=स्वस्वरूप विच्छेदाय प्रवृतायामाया।'[1]

१६. उन गोपियो को मनोहर लीला आदि द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने वाली जो माया—'तासां योगाय स्व मनोहरलीला श्रवण गानादिना स्वस्मिन् योजनाय या माया=कृपा।'[1]

१७ कूटस्थ स्वरूप मे जो मा=प्रमा (साक्षात्कार रूपा) उसमे स्वरूप सम्पादन के लिए वृत्तियो द्वारा उपाश्रित।[1]

१८ नि सग आत्मविषय प्रमा।[1]

१९ चित्त वृत्ति निरोध मे अन्वित प्रमा।[1]

२०. गोपिकाओ की अग सोभा मे सलग्न मन होकर।[1]

२१ अचिन्त्य शक्ति।[1]

२२ जिसका आश्रय लेकर रमण करना चाहा वह दुर्गा है।[1]

२३ योगमाया=श्रीराधा।[1]

---

१ से ९. भावभाव विभाविका १०।२९।१

१० से १२ विशुद्ध रसदीपिका १०।२९।१

२४. योगमाया-श्रीराधा । (सि. प्र. १०।२६।१)

२५. गोपियो के इष्ट योग के लिए कपट आश्रय करने वाले ।[1]

२६. योगमाया = अपनी असाधारण शक्ति (अन्यथा इतने व्रजवासी जनो का मोहन सम्भव नही) ।[2]

२७. योगमाया = मुरली ।[3]

रासलीला का विचार करते ही चन्द्रोदय हुआ । इस पर अनेक उत्प्रेक्षाऐं की गई हैं (प श्रीवर वन्ना जी सग्रह, मथुरा)—

१. मानो चन्द्रमा पूर्व दिशा रूपी स्त्री का मुख है ।
२. शरद रूपी स्त्री के कठ का जुगनू है ।
३. गोपियो के अनुराग की गठरी ।
४. मानो चन्द्रमा शृङ्गार दर्पण या विराट् का नेत्र है ।
५ मानो चन्द्रमा सत्व गुण की गठरी है ।
६. मानो चन्द्रमा आकाश ब्रह्म का कमल हृदय है ।
७ मानो चन्द्रमा अमृत पात्र या भूपण पात्र या सुदर्शन चक्र है ।
८. मानो चन्द्रमा काम चिह्न या ससार वृक्ष का पुष्प है ।
९. मानो चन्द्रमा पृथ्वी के चरण का अनवट है ।
१०. मानो चन्द्रमा मन आकर्षण यन्त्र है ।
११. मानो चन्द्रमा आनन्द सरोवर का कमल है ।
१२. मानो चन्द्रमा वाराह की डाढा या सन्ध्यागना की गेंद है ।
१३ मानो चन्द्रमा तारागण रखने का टिपारा है ।

चन्द्रोदय से अनेक अभिप्राय लिखे हैं(प श्रीवर वन्ना जी सग्रह)—

१. मैं अनेक कान्ताओ द्वारा शोभित हूं वैसे ही तुम भी वनो ।
२ मेरी प्रभा जैसे पृथ्वी स्वर्ग दोनो मे दीप्ति है ऐसे ही तुम्हारी भी होगी ।
३. मुझ से 'बुध' की उत्पत्ति हुई थी, तुमसे बोधोत्पत्ति होगी ।
४ मेरी भांति तुम भी प्रिया मुख का चुम्बन करो ।
५. उड्डराज होने पर भी मेरा पूर्व सिद्धा से अनुराग है, तुम्हारा भी अनुराग बना रहे ।
६. मैं कुल वृद्ध होने पर भी विलासी हूं, तुम तो किशोर हो ।

---

१ से ३. सिद्धान्तार्थ दीपिका १०।२६।१

७ मैं आशा (दिशा) का मनोरथ पूर्ण कर रहा हूँ, तुम भी भक्तो के मनोरथ को पूर्ण करोगे।

८ मैं तो तुम्हारा स्यालक हूँ, अत मुझसे सकोच का प्रश्न ही नही।

धनपति सूरी ने रासलीला का अर्थ भजनानन्द पक्ष मे भी घटित किया है, उनका कथन है कि भगवद्विरह सयोगोत्थ सुख दु ख से प्रारब्ध पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं (गूढार्थ दीपिका १०।२६।१०)।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है-यह व्याख्या वैष्णवो के मत से युक्त नही (सा द १०।२६।१०)--

'भगवद्विरह सयोगोत्थ दु खसुखाभ्या प्रारब्ध पापपुण्यानि नष्टानि तेषा स्वफलभोगैक नाश्यत्वादिति व्याख्यातु वैष्णवाना मतेन युज्यते।'

आचार्य वल्लभ ने 'न चैव विस्मयः कार्यो' की टीका मे भी पुष्टि मार्ग अगीकार करने पर अधिक बल दिया है (सु १०।२६।१६)।

श्लोक ४५--'कृत्वा मुखान्यव शुच ....चरणेन भुव लिखन्त्य०।'
(भागवत १०।१६।२६)

'गोपियाँ कृष्ण की वशी की तान से खिची हुई चली आई उन्हे भगवान ने लौटकर जाने के लिये कहा, तो उन्होने पैरो के अ गुष्ठ से भूमि का स्पर्श किया। काम बाण से प्रविद्धाग होने पर वरागना भूमि का पादागुष्ठ से घषण करती है--

'कामबाण प्रविद्धाग खिन्नयोनिर्वरागना
पादागुष्ठ नखेनाधोपदेनालिखती क्षितिम्।'[१]

सनातन गोस्वामी का कथन है कि भूमि की ओर देखना उसमे समा जाने के हेतु से था[२]--

धनपति सूरि ने 'भुव लिखन्त्य' के अन्य भाव भी लिखे हैं[३]--

१ हमारा ही अपराध है (कृष्ण से) तुम्हारा नही।

२ यहाँ साक्षी वसुन्धरा है क्योंकि सबकी आधारभूता है।

३ किसी भुवनेश सुन्दर ने चित्त ग्रहण कर लिया है, अत अपने मे आरक्ती लक्षण घटित करने के लिये।

४ अब मुख की शोभा अलकारों से नहीं मृत्तिका लेप से करेंगी।

---

१ भावभाव विभाविका १०।२६।२६

२ वृहद् वैष्णव तोषिणी १०।२६।२६

३ गूढार्थ दीपिका १०।२६।३०

५ हम से श्रेष्ठ तो यह भूमि है क्योंकि यह कृष्ण के पाद स्पर्श सुख का अनुभव तो करती है ।
६ इसने हमे कष्ट दिया है वैसे ही भूमि मात्र प्राप्त कर स्वाग सस्पर्श से कृष्ण को पीडित करेंगी ।
७ ब्रजभूमि में ऐसा कठोर चित कोई नही है अत भूमिस्पर्श किया ।
८ क्या हमारे स्तन, भूमि, रज, तृण से भी कठिन हैं मानो इसे सूचित कर रही है ।
९ जो तुमने हमारे साथ व्यवहार किया वह अमिट हो गया, कहते भी हैं कि अमुक बात धरती पर लिख गई ।
१० मिथ्या प्रतिज्ञ को भूमि कब तक धारण करेगी कही विदीर्ण न हो जाय ।
११ अथवा भूमि को सम्बोधित कर रही है—मात वसुन्धरे ! हमारा सहायक यहा कोई नही अत सहायता करो, कृष्ण का बोध कराओ ।
१२ भूमि स्पर्श द्वारा मानो कृष्ण के हृदय की कठोरता का परिचय दे रही है कि वह हमारे प्रेमोद्रेक को देखकर भी द्रवित नही हो रहा है ।
१३ हमारा हृदय ही कठोर है जो विदीर्ण नही हो रहा ।
१४ मात वसुन्धरे ! अब कुछ कर्त्तव्य अवशिष्ट नही तुम मे समा जाने की अभिलाषा है ।
१५. (भामिनी पक्ष में) हमारी पदधूलि भी दुर्लभ है ।
१६ धरती मे समा जाय पर कृष्ण तेरे हाथ न आवेंगी ।
१७ हठ की बात भूमिपति नन्द से कह देंगी ।

गोपियों के नीचे मुख के भाव*—

१८ कृष्ण के नेत्र कमल हैं गोपियो का मुख चन्द्र है, 'कमल' चन्द्रदर्शन से मलिन हो जाता है । अत मुख नीचा किया ।
१९ अथवा मौन ग्रहण करो, इस चेष्टा ज्ञापनार्थ मुख नीचा किया ।
२० अथवा कठोर वाक्य सुनकर भी हम जीवित हैं । अत अपने देखने को मुख नीचा किया ।

---

* शृंगार रस बोधिका, १०।२९।२९ ।

२१ कृष्णवचन से कही हृदय तो विदीर्ण नही हो गये। अत मुख नीचा किया।

२२ कटूक्ति कृष्ण की है या किसी अन्य की क्योंकि ये उन्मत्त प्रलाप कर रहे है। इस कारण की जिज्ञासा मे मुख नीचा किया।

२३ गोपियो की धारणा है कि हमे रूठा देखकर अवश्य ही यह मनायेगा। अत मुख नीचा किया।

२४ गोपियो के नेत्र कुमुद हैं कृष्ण के वचन परुष होने से सूर्य के समान है, इस कारण मुख नीचा किया।

२५ गोपियो ने अपनी चेष्टा द्वारा ही कटु वचन वारण का उपाय ढूँढ निकाला। अत मुख नीचा किया।

२६ कृष्ण हमसे इस प्रकार का व्यवहार नही करते अत हम म कोई अन्य तो प्रविष्ट नही हुआ। इस विचार से मुख नीचा किया।

२७ आत्मा से पूछती है हमने क्या पाप किया? अत मुख नीचा किया।

२८ क्या विधाता ने हमारे माल म यही लिखा था, अत उस वाचन के लिये मुख नीचा किया।

२९ ज्ञात होता है कि अब भी प्रेमोद्रक नही हुआ है अन्यथा कृष्ण एसे वचन न कहते। अत मुख नीचा किया।

३० कृष्ण कथनानुसार हम कही की न रही। इस विचार स मुख नीचा किया।

३१ ये वचन मन्द भाग्य के कारण है अत मुख नीचा किया।

३२ गोपिका कहती हैं कि हमारा जन्म भूमि म व्यर्थ हुआ। अत मुख नीचा किया।

३३ कृष्ण स सम्मान प्राप्त न करने पर मानो लज्जा सागर म डूब गयी। अत मुख नीचा किया।

३४ पति आदि की शका से व्याकुल होकर मुख नीचा किया।

३५ वशीनाद सुनकर अपनी सुध न रखकर आना मूर्खता है इस विचार स मुख नीचा किया।

३६ लौटकर सखियो को मुख कैसे दिखलायेंगी। अत मुख नीचा किया।

३७ हम अनेक शृगार धारण करके आई थी किन्तु कृष्ण को भली नहीं लगी। इस विचार मे मुख नीचा किया।

३८. कुछ ने विचार किया था कि हमे देखकर कृष्ण आनन्दित होंगे किन्तु विपरीत बात हुई, अतः मुख नीचा किया।

३९. हमारा प्रेम कृष्ण ने नहीं पहचाना अतः मुख नीचा किया।

४०. सर्वदा 'नेति नेति' कथन उचित नही। अतः मुख नीचा किया।

४१. मार्ग की स्त्रियों के प्रश्न से लज्जित होने के कारण मुख नीचा किया।

४२. कृष्ण के मुख की अनल से हमारा बदन झुलस न जाय अतः मुख नीचा किया।

४३. हमारे अन्त करण की ज्वाला नेत्र से निकलेगी अतः मुख नीचा किया।

४४. कृष्ण की मोहन शक्ति नेत्र मार्ग से अन्दर चली गई है अब और अधिक न जाय इस भाव से मुख नीचा किया।

४५. कोई गोपी विचार करती है कि मेरा शोकाक्रान्त मुख है, कृष्ण का कोपाक्रान्त अतः अब अधिक औदासीन्य न बढ़े इस भाव से मुख नीचा किया।

४६ कृष्णोक्ति जन्य शोक से 'समुद्र कल्प' अश्रुधारा धारण करना सहज नही। अत. उसके भार न सह सकने के कारण मुख स्वत. नीचा हो गया।

४७ प्रियचित्त मे प्रीति उत्पन्न करने वाले स्त्री चापल्य को धिक्कार है जो प्रीति लेश मात्र से पाषाण हृदय वाले के पास आयी। अत. मुख नीचा किया।

४८. विधात! जब तुम अत्यन्त दुःख देने को प्रवृत्त हो तो जो और भी दारुण दुःख तुम्हारे पास हो दे दो। यह शिर तुम्हारे समक्ष है। (यह कोपावेश की उक्ति है)

४९. परस्पर नेत्र सयोग से परस्पर स्वभाव विपर्यय हो गया है, इस कान्त का दाक्षिण्य रूप हम मे और हमारा अवहित्था लक्षण स्वभाव इसमे चला गया है। अत. अब ऐसा न हो, इस आशय से मुख नीचा किया।

५०. कृष्ण! अच्छे वचन कहे। और भी कहना हो कहो—शिर तुम्हारे आगे है।

५१. नाराच धारा से क्यों मारते हो तीक्ष्ण तलवार से शिर काट दो। अतः मुख नीचा किया।

५२ देव ! ऐसा मुख ही क्यो बनाया जो गोपाल बाल को भी अच्छा न लगा। अत मुख नीचा किया।

५३ देविया कहेगी कि मानरहित स्त्रियो को धिक्कार है। अत मुख नीचा किया।

५४ मानो कोई गोपी यह कह रही है कि हमे क्या उपदेश दे रहे हो, विषसम्पृक्त तुम्हारा मुख भी न देखेंगी। इस आशय से मुख नीचा किया।

५५ प्रभो ! गोवर्द्धन धारण कर इन्द्रकोप स रक्षा इसीलिये की थी क्या कि अपने हाथो ही गोपिकाओ का वध करूँगा ? अत मुख नीचा किया।

५६ अब कृष्ण अधिक न कहो इस आशय से मुख नीचा किया।

५७ किसी पर पुरुष का मुख देखना उचित नही इस आशय से मुख नीचा किया।

५८ हमारा मुखावलोकन भी दुलभ है। अत मुख नीचा किया।

५६ कृष्ण तुम धूत हो। परस्त्रियो को चाहते हुए भी लज्जा लेश शून्य हो हम तो लज्जा समुद्र म निमग्न हो गई।

६० औपपत्य अधोगति सम्पादक है, अत परलोक भय स मुख नीचा किया।

६१ लोकमर्यादा जानकर अजो मुख करन वाल कम नही कर सकती अत अपनी अपकीर्ति भय आदि शापन के लिये ही माना मुख नीचा किया है।

६२ अन्त करण की उत्कण्ठ मुख विकास को देखकर हों न चली जाय— इस आशय से मुख नीचा किया।

६३ हमारे अधर स्वप्न म भी दुलभ हैं इस द्योतित करने हेतु ही मुख नीचा किया।

रास होने के पूर्व भगवान् कृष्ण के अन्तर्द्धान हो जाने पर गोपियो न वृक्षो से भी उनका पता पूछा। आचार्य वल्लभ न वृक्षो की व्युत्पति भी लिखी है। पीपल वृक्ष के हिलत पत्रो को देखकर निषेध की अभिव्यजना व्यक्त कराते हुए विशुद्धरस दीपिकाकार न एक सुन्दर श्लोक उद्धृत किया है—

'रे वृक्ष, तेरी शाखा दश दिशाओ म व्याप्त हैं, मस्तक आकाश म

लगा है, कोई तमाल कोमल रुचि वाला गोप तुमने देखा है क्या ? इस प्रकार गोपियो के पूछने पर उसने अपने पत्र सचालन से मानो निषेध कर दिया ।'

भो भो भूरुह ते दिशा दशगता शाखाशिरश्चाम्बरम्
गोप' कोऽपि तमाल कोमल रुचि कच्चिन्नदृष्टस्त्वया ।
एव ताभि रुद्राहृदे वत मुहुर्वक्तु वचोऽनीश्वर'
पत्रैरेव निसर्ग चचलतरु प्रत्युत्तर दत्तवान् ।।'

गोपियो ने मालती एव जाती पुष्प के वृक्षो से भी पूछा, किन्तु 'मालत्यदर्शि' श्लोक मे भी जाती उल्लेख है, जाति का पर्याय होता तो पुनरुक्ति न होती । वीरराघव को भी इनके भेद का ठीक पता नही था, अत उन्होने स्पष्ट लिख दिया है कि—

'अत्र मालती जात्यो रवान्तर विशेषो द्रष्टव्य ।'[२]

श्रीधर स्वामी ने—'जाति यूथि के' पर्यन्त भाग को सम्बोधन माना है ।[३] आचार्य वल्लभ ने इन चारो को लता माना है, और इनमे सुगन्धि पुष्पो का उद्गम भी माना है ।[४] यह अर्थ विशुद्ध रस दीपिकाकार को भी अभीष्ट है तथा उन्होने इन्हे गोपियो का नाम भी माना है ।[५] आचार्य वल्लभ का पक्ष अधिक उपयुक्त है । ब्रज मे मालती जाति आदि को अब भी 'लता' के नाम से व्यवहृत करते हैं ।

श्लोक ४६—'जयति तेऽधिक जन्मना व्रज' श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ।।'
(भागवत १०।३१।१)

गोपिका गीत मे प्रत्यक श्लोक मे द्वितीयाक्षर की आवृत्ति श्लोक के चारो चरणो मे है । यथा 'य' का अक्षर की आवृत्ति जयति, श्रयत, दयित तथा त्वयि मे है । इस प्रकार अन्य श्लोको मे भी यह क्रम है, तथा प्रथमाक्षर एव सप्तमाक्षर का साम्य चारो चरणो मे है । यथा—'जयति' के प्रथमाक्षर मे 'ज', 'जन्मना व्रज' द्वितीय चरण मे 'जकार' है । यह क्रम कतिपय श्लोको मे पूर्ण घटित है । इस अलकारिक समय सिद्ध क्रम माना है—

'एषु पद्येषु पाद द्वितीयाक्षर हलैक्य, मेषुचित् पादेषु प्रथमा सप्तमाक्षर हलैक्य, आलकारिक समय सिद्ध सावर्ण्यात्, क्वचिदैक्यमिति द्रष्टव्यम् ।'

---

१ विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।५
२. भागवत च च १०।३०।७
३ भावार्थ दीपिका १०।३०।७
४. सुबोधिनी १०।३०।७
५. विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।७

इस गोपिका गीत मे अनेक चित्रकाव्य भी भरे पडे हैं।[1]

३२ वें अध्याय मे रास का वर्णन है ।

श्लोक ४७—'अक्रूर स्तुति' (भागवत १०।४०।८)

श्रीधर स्वामी ने 'अक्रूर स्तुति' के प्रारम्भ के छ श्लोको द्वारा सांख्य योग के मार्ग का निर्देश भी किया है (भा दी १०।३६।५५)। श्रीधर ने जहाँ जहाँ शिव की प्रशसा की है, वीर राघव ने वहाँ शिव की निन्दा की है। आचार्य वल्लभ का कथन है कि शिव रूप मे विष्णु ही आते हैं, किन्तु तामस कल्प मे ही ऐसा होता है, प्रत्येक कल्प मे नही (सु १०।४०।८)। यह विवाद 'अक्रूर स्तुति' के 'बहवाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते' (भा १०।४०।८) श्लोक मे उठाया गया है । श्रीधर स्वामी ने उक्त श्लोक मे शैव तथा पाशुपत आदि मार्गों का उल्लेख किया था। इस पर वीरराघवाचार्य ने खण्डन करते हुए लिखा कि शिवादि देवो की उपासना करने वाले अज्ञ हैं। श्री शुक सुधी ने अपनी टीका मे ऊर्ध्व पुड (तिलक) की प्रशसा की है एव कृष्ण क आयुध धारण करने की विधि भी विस्तारपूर्वक लिखी है—

'धृतोर्ध्व पुड् कृत चक्रधारी विष्णुम्बर ध्यायनियो महात्मा०'[2]

किन्तु यह चिन्ह धारण रामानुज सम्प्रदाय से भिन्न है । शुक सुधी ने गोपीचन्दन के चिन्ह धारण का प्रमाण दिया है, तप्तशलाका से चर्म पर अकित होने का नही—

'कृष्णायुधाकितो देहोगोपीचन्दन मृत्सया
प्रयागादिपुतीर्थेपु स गत्वा किं करिष्यति ॥'

सुदर्शन चक्र स्वय अग्नि है, अत उसका धारण ही पर्याप्त है। निम्बार्क सम्प्रदाय म सुदर्शन का बडा महत्व है। अत यहाँ यह व्याख्या स्पष्टत सम्प्रदाय के आधार पर है तथा मन्त्र मे अष्टादशाक्षर, याग म मन्त्रमूर्ति पूजन एव ध्यान की विधि का वर्णन है और इनके विशेष विवेचन क लिये टीकाकार ने स्वरचित 'स्वधर्मामृत सिन्धु' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। उक्त स्थल पर वीर राघवाचार्य ने विशिष्टाद्वैत पक्ष का प्रबल समर्थन किया है।

श्लोक ४८—'नमस्ते ·· वामनाय नमस्तुभ्य ·' (भा १०।४०।१९)

---

१ रासपचाध्यायी—डा० रसिक विहारी जोशी।

२ सिद्धान्त प्रदीप १०।४०।८।

उक्त श्लोक मे आचार्य वल्लभ ने 'वामन' को अवतार न मानकर इन्द्र का अनुज ही लिखा है—

'यद्यपि वामनोऽपि नावतार रूपं किन्तूपेन्द्र एव तथापि कार्यं तेन रूपेण कृतमिति वामनायेत्युक्तम् ।' (सु. १०।४०।१६)

श्लोक ४६—'अथापराह्णे·········मथुरां प्राविशद्·····' (भा. १०।४१।१६-२०)

मथुरा की शोभा पाँच प्रकार से थी—द्वार, प्राकार, परिखा, फल तथा पुष्प—

द्वार प्राकार परिखा फलपुष्पैः सुशोभिता
पंचधा नगरी रम्या सालकारा च रूपिता ।।

'आपूर्ण कुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः' (भा. टी. १०।४१।२३) का टीका श्रीधर ने जिस प्रकार स्पष्ट लिखी है और उसके लिये 'अत्रेयं रीति' शब्द का प्रयोग किया है, थोड़े-थोड़े अन्तर मे—वीरराघव, विजयध्वज, विश्वनाथ, शुकदेव ने ज्यों की त्यों ग्रहण की है ।

श्लोक ५०—'एवं····· ···रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ।'

(भागवत १०।४०।३७)

उक्त श्लोक की व्याख्या मे जीवगोस्वामी ने तलवार सदृश हाथ से रजक का शिर काटना लिखा है । वल्लभाचार्य ने नखो से रजक का शिरश्छेद माना है । किन्तु कृष्ण के नखो से रजक का शिर पृथक् हो जाय यह अस्पष्ट है । (सुबोधिनी १०।४१।३७)

श्लोक ५१—'दास्यस्म्यहं·········त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।'

(भागवत १०।४२।३)

कुब्जा के ग्रीवा, उर, कटि तीन भाग वक्र थे अत. उसका त्रिवक्रा नाम सार्थक है (भा टी. १०।४२।३) । वीरराघव ने यही माना है (भा. च. च. १० ४२।३) आचार्य विश्वनाथ का कथन है कि कुब्जा भूमि थी, असुरो के भार के कारण अपनी वक्रता का प्रदर्शन किया है । पृथ्वी पर गुणगन्ध है उसने चन्दन के रूप मे वही समर्पित किया था । (सारार्थ दर्शिनी १०।४२।१)

कृष्ण के मथुरा आगमन के पश्चात् कस को स्वप्न दिखलाई दिये । स्वप्न मे स्वर्ण के वृक्ष, प्रेतो के साथ आलिंगन, दक्षिण दिशा की ओर गमन आदि । आचार्य वल्लभ ने इन अपशकुनों के द्वारा उनका कारण भी प्रदर्शित किया है कि इन्हे अपशकुन क्यो माना जाय ? यथा स्वर्ण अग्नि का रेत है, अतः यह नाश का सूचक है (सु १०।४२।२६-३०) । प्राण घोषाश्रवण-प्राण-

क्रिया भाव का सूचक है। छाया मे छिद्रप्रतीति तेज के अभाव की परिचायिका है। भूमि मे अपने ही पद न देखना–भूमि द्वारा परित्याग की सूचना है। दिगम्बर का होना भी अपशकुन है क्योकि वस्त्र देवमय है, उनके चले जाने पर कंस को नग्न स्वरूप दिखलाई पडा।

श्लोक ५२–'मल्लनामशनिर्नृणा नरवरः स्त्रीणा स्मरो मूर्तिमान्
गोपाना स्वजनो सता क्षितिभुजा शास्ता स्वपित्रो. शिशु ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषा तत्व पर योगिना
वृष्णीना परदेवतेति विदितो रग गतः साग्रजः ।।'
(भागवत १०।४३।१७)

'भगवान कृष्ण मल्लो को व्रज के समान कठोर, मनुष्यो को सुन्दर, स्त्रियो को कामदेव, गोपो को बन्धु, दुष्ट राजाओ को शास्ता, माता पिता को बालक, कस को मृत्यु, अज्ञानियो को विराट्, योगियो को परम तत्व दिखलाई पड़ते थे।'

उक्त श्लोक मे दश रस माने गये है, यथा मल्लाना–से रौद्र, क्योकि रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। निम्न तालिका से दश रस स्पष्ट हो जा सकते हैं—(क्र स. १०।४३।१७)

रस	स्थायी भाव	श्लोक के पद
रौद्र	क्रोध	मल्लानाम्
अद्भुत	विस्मय	नृणा
शृङ्गार	रति	स्त्रीणाम्
हास्य	हास	गोपानाम्
वीर	उत्साह	असताक्षितिभुजाम्
करुण	शोक	स्वपित्रो शिशु
भयानक	भय	भोजपते
बीभत्स	जुगुप्सा	अविदुषा
शान्त	शान्ति	योगिनाम्
भक्तिरस	प्रेम	वृष्णीनाम्

इस क्रम को आचार्य वल्लभ ने भी स्वीकार किया था (सु.१०।४३।१७) यह रसक्रम मनुष्यो के दृष्टिक्रम के कारण ही रखा गया है। यहाँ वल्लभ ने यह भी लिखा है कि पुष्टि मार्ग मे स्त्रियो का स्थान सर्वोत्तम है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने नृणाम् का अर्थ माथुर किया है (सा. द १०।४३।१७)—

'द्वैपादिराहित्यादुत्पत्यैव प्रेम सामान्यवता तैं शुद्धसत्वमयान्त करणै-
स्य नरवरत्व स्वरूपेणैवास्वादितम् ।'

उक्त श्लोक की व्याख्या मे जीव गोस्वामी ने श्रीकृष्ण की अवस्था का
चार भी किया है ।

प्रथम वर्ष मे पूतना बध तथा शकटासुर-बध ।

द्वितीय वर्षारम्भ मे तृणावर्त का वध ।

तृतीय वर्षारम्भ मे दामोदर लीला तथा मार्गशीर्ष मास मे वृन्दावन मे
वेश एव माघ मे वत्स चारण आरम्भ ।

चतुर्थ वर्ष के शरद ऋतु मे ब्रह्मा द्वारा वत्स हरण, एक वर्ष पर्यन्त
उसी रूप से व्रज मे निवास ।

पचारम्भ मे (पोगण्डावस्था मे) कार्तिक शुक्लाष्टमी से गौचारण आरम्भ
तथा ग्रीष्म ऋतु मे कालियदमन लीला ।

षष्ठवर्षारम्भ मे गौचारण कौतुक लीला, मजुवन दाह आदि ।

सप्तमवर्षारम्भ मे धेनुकासुर बध । (किशोरावस्थारम्भ)

अष्टम वर्ष के आश्विन मास मे वेणु गीत, कार्तिक मे गोवर्द्धन धारण ।
कार्तिक शुक्ल तृतीया से दशमी पर्यन्त गोवर्द्धन धारण, एकादशी को कृष्ण का
अभिषेक, द्वादशी का वरुण लोक गमन, पूर्णिमा को ब्रह्म हृदावगाहन, तथा
हेमन्तारम्भ (मार्गशीर्ष मे) चीर-हरण लीला, ग्रीष्म मे यज्ञपत्नी प्रसाद ग्रहण
ग्रीष्म मे प्रलम्ब वध ।

नवम वर्षारम्भ मे शरद ऋतु मे रासलीला आरम्भ । फाल्गुन मे शिव
रात्री को अम्बा बन यात्रा । पूर्णिमा को शखचूड वध ।

दशम वर्षारम्भ मे स्वैर लीला ।

एकादश वर्षारम्भ मे चैत्र पूर्णिमा को अरिष्टासुर-बध ।

द्वादश वर्ष की फाल्गुन द्वादशी को केशि बध एव चतुर्दशी को कस
वध ।

कृष्ण सदा किशोरावस्था मे ही रहते थे । विश्वनाथ चक्रवर्ती का
कथन है कि प्रद्युम्न जब किशोर रूप मे शम्बर के चगुल से बचकर आये तब
कृष्ण की पत्नियों ने उन्हे कृष्ण ही समझा ।

कृष्ण नन्द वियोग—कृष्ण ने मथुरा से नन्द को अकेला ही व्रज भेज
दिया और वे बलराम सहित मथुरा ही रहे । सहसा नन्द का परित्याग यह सिद्ध
करता है कि या तो नन्द या कृष्ण को परस्पर स्नेह नाममात्र का था । किन्तु
नन्द द्वारा स्नेह न्यूनता का प्रश्न ही नही उठता । उनका वात्सल्य स्पष्ट वर्णित
है वे कृष्ण को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे । कृष्ण ने भी उनके मनो

रजन के लिए अनेक लीलायें की थी। अत दोनो के स्नेह मे कमी नही थी।

चक्रवर्ती का कथन है कि नन्द और कृष्ण का वियोग नही हुआ। वे एक रूप से नन्द के साथ ही गये थे। प्रकाशाप्रकाश लीला मे नन्द के भी दो रूप है। यदि उनका दर्शन ब्रज मे न होना तो ब्रज मे अवश्य ही गोप-गोपिकाओ की दुर्दशा हो जाती। कतिपय कारणो से उनका ब्रजगमन सिद्ध है।

१ यशोदा का प्राण त्याग न करना।
२ भागकर मथुरा मे न आना।
३ गोपिकाओ का मथुरा मे न आना।
४ नन्दादि अन्य गोपो का मथुरा न आना।

इसके साथ ब्रज की समृद्धि से उनका वियोग पुष्ट नही होना। भागवत के अनुसार जब उद्धव ब्रज म कृष्ण का सन्देश लाये तब वृषभ गायो के मध्य शोभायमान थे। गाया के दुग्ध से परिपूरित स्तन थे। स्वलकृत गोपिया, गोप बालकृष्ण के चरितगान मे व्यस्त थे। गो विप्र अतिथियो का पूजन हो रहा था। हस-चक्रवाक् कमलवो से विराजित सरोवर थे, पुष्पो की समृद्धि से वनो की सुषमा बढ़ रही थी, आदि (भा १०।४६।११-१३)।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि ब्रजवासियो को कोई कष्ट न था, किन्तु कृष्ण क वियोग से यह प्रतिकूल वर्णन है। द्वारका लीला मे कृष्ण एव भवन मे देवकी के द्वारा दत्त भाजन कर रहे हैं, द्वितीय मे देवकी कृष्ण की प्रतीक्षा म अत्यन्त दु खी है। यहाँ भी एक पक्ष वियोग मे एक पक्ष सयोग मे दिखाया गया है, अत इनका वास्तविक वियोग नही है। इस ब्रज के प्रकाशाप्रकाश मे समस्त गोपियाँ, समस्त गोप, एव पशु भी थे। गोप-गोपा, पशु सभी एक दूसरे से लक्षित एव अलक्षित थे। यह सब योगमाया का प्रभाव था।

'वस्तुतस्तु उद्धवेनादृष्टस्तत्रैव ताभ्यालालित सप्रकाशान्तरेण वर्तत एवेत्युद्धव मुखात् मत्यैव वाग्देवी निरगात्—'यदाहूव' समागत्य कृष्ण गत्य करोति मत्। (सारार्थ दर्शिनी १०।४६।३५),

नन्द का कृष्णावलराम मे सयोग अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्तों के आधार पर सिद्ध किया है। अत विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कृष्ण अवश्य नन्द के समीप एक रूप से व्रज मे रहे होंगे।

श्लोक ५३—'अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या सयतौ ··· ।' (भा १०।४५।३६)

कृष्ण का यज्ञोपवीत मथुरा मे हुआ और वे विद्याध्ययन हेतु उज्जयिनी

म सान्दीपन गुरु के समीप गये । सान्दीपन काश्य थे । जीवगोस्वामी ने उन्हे काशी निवासी माना है (वै तो १०।४५।२६)। वीरराघवाचार्य ने उन्हे कश्यप गोत्री लिखा है (भा च च १०।४५।२६)। कृष्ण ने ६४ दिन मे ६४ कला प्राप्त की । श्रीधर स्वामी ने ६४ कलाओ का उल्लेख किया है—

गीत, वाद्य नृत्य, नाट्य, आलेख्य, विशेषकच्छेद्य तिलको म विशेष रचना) तण्डुल कुसुम बलिविकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनांग राग (रगने की कला), मणिभूमिका कर्म शयन रचना, उदक वाद्य, चित्रयोग (अद्भुत दर्शनो पाय), माल्यग्रथन, शेखरापीड, नेपथ्ययोग, कर्णपत्रभग सुगन्ध युक्ति, भूषण-योजन, ऐन्द्रजाल, कौचुमार योग (कुचुमार द्वारा बहुरूपिया–सुबोधिनी), हस्त-लाघव, चित्रशाकापूप क्रिया, पानक रस, सूचीवायकर्म, सूत्रक्रीडा (कठपुतली), वीणावाद्य प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वचक योग (गाली), पुस्तकवाचन नाटका-ख्यायिका दर्शन काव्य समस्या पूरण, पटिटका वेत्र बाण विकल्प तर्क कर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवाद मणिराग ज्ञान, आकर ज्ञान, वृक्षायुर्वेद, मेषादियुद्ध, शुकसारिका प्रलापन उत्सादन (उच्चाटन), केशमार्जन कौशल अक्षर मुष्टिका (मुट्ठी मे क्या है-बतलाना), म्लेच्छितकुतर्कविकल्प दशभाषा ज्ञान, पुष्पशकटिका निर्मिति ज्ञान (यह कोई विद्या है–जीवगोस्वामी विमान बनाने की विद्या-वल्लभाचार्य), यन्त्रमातृका सम्पाट्य (हीरा आदि रत्नो को तोडना), मानसीकाव्य क्रिया (पराये मन की बात जानना) अभिधान छन्दोज्ञान क्रिया विकल्प, छलितक योग, वस्त्र गोपन, द्यूत आकर्ष क्रीडा, बालक्रीडा, वैनायिकी, वैतालिकी क्रिया ।

कृष्ण ने गुरुकुल मे भी अपनी अलौकिकता का परिचय दिया था । एक बार गुरुआनी ने कृष्ण से गोदोहन पात्र लाने के लिय कहा, किन्तु कृष्ण उस समय सन्ध्यावन्दन के लिये बैठ चुके थे, उधर गुरुआनी की अवज्ञा का पाप भी निकट था । अत आसन पर बैठे ही बैठे अपना हाथ लम्बा किया एव उसे उठा कर गुरुआनी जहा मगवा रही थी वहा पहुँचा दिया, गुरुआनी इस घटना को देखकर विस्मित हो गई । (सुबोधिनी १०।४५।४३)

श्लोक ५४—'त वीक्ष्य कृष्णानुचर व्रजस्त्रिय ।' (भा १०।४७।१)

भ्रमरगीत की सर्वोत्कृष्ट टीका सनातन गोस्वामी की है । उनका कथन है कि भ्रमरगीत उपनिषद का सार है, कांचित् पद द्वारा राधा का स्पष्ट उल्लेख

यहाँ भी इन्होने किया है।[1] भ्रमर गीत दिव्योन्माद है। इसके अन्तिम पद को छोड़कर शेष सर्वत्र रोष की अभिव्यक्ति है। वल्लभाचार्य ने 'मधुप कितव बन्धो' आदि की विचित्र व्याख्या की है, उनका कथन है, कि, काल, सम्वत्सरात्मक है और वही मधु की रक्षा करता है। कितव = ग्रीष्म का वचन करके—सर्व सहारक का बन्धु भी बनता है। धनपति ने जिस प्रकार, रासपचाध्यायी की व्याख्या वेदान्तानुसारी की है, वैसे ही भ्रमरगीत की भी। एक श्लोक की वेदान्तानुसारी व्याख्या देखिये—

'मधुप कितव बन्धो मास्पृशांघ्रि सपत्न्या' (भा १०।४७।१२)

मधुप—हे मधु तुल्य विषय रसपान परायण, यद्यपि तुम कृतत्व, भावत्रत्व से मुक्त हो तथापि जिसके सम्पर्क से अनर्थ परम्परा को प्राप्त हुये हो उसे नही जानते हो, अत समझाती हूँ, कितव बन्धु—चित्त बन्धु। इस चित्त ने ही तुम्हे जन्म मरणादि लक्षण वाले ससार की ज्वाल माला मे फेंकने का विचार किया है। 'सपत्नि', तुमने माया का स्पर्श किया है, अत दूर रहो, मैं ही ब्रह्म हूँ, इस प्रकार का प्रसाद धारण करो। उस परब्रह्म का तू अनुकरण-मात्र से दूत है वस्तुत नही। (गूढार्थ दीपिका १०।४७।१२)

बृहत्तोषिणीकार का मत है कि कृष्ण का सर्वत्र प्राबल्य देखकर उद्धव कतिपय दिवस ब्रज म रहे थे (बृहत्तोषिणी १०।४७।५४)

श्लोक ५५—'क्वेमास्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार दुष्टा' (भा १०।४७।५६)

आचार्य वल्लभ ने इस श्लोक की ३०० पंक्ति की व्याख्या म पुष्टिमार्ग की स्थापना की है। अर्जुन भी पुष्टिमार्गीय भक्त था (सु १०।४७।५६)। वल्लभाचार्य ने भेदाभेद सिद्धान्त का खण्डन करते हुए लिखा है—

'भेदाभेदपक्षपरिहाराय—आत्म सृष्टमिति।' (सु १०।४८।१८)

जीवगोस्वामी ने अभिन्नत्व साधन के लिये उक्त श्लोक निर्वचन माना है—

---

१ (क) काचित् क=प्रेममुखे आसमन्तात् चित् विज्ञान यस्या सा राधा।
(ख) क सर्वेषां प्रेम सुखमाचिनोति क्षणे-क्षणे वर्द्धयति या सा राधा जीव गोस्वामी, विश्वनाथ।
(ग) काचित्—तत्वमस्यादिश्रुति—धनपति।

'तादृशतत्कार्यस्यविश्वस्य तदव्यतिरेकेण तदभिन्नत्व साधयन्……… …आत्मेति ।' (वैं. तो १०।४८।१८)

सिद्धान्त प्रदीपकार ने इस श्लोक की व्याख्या मे भेदाभेद की पुष्टि बडे विस्तार से की है—

१. अचेतन से जगत् की उत्पत्ति नही हुई है ।

२. घट-रथादि *की उत्पत्ति चेतन से ही है ।*

३. कारण सदृश कार्य नही भी होता गोमय से विच्छू की उत्पत्ति विसदृश है (सि प्र १०।४८।१८) । कृष्ण स्वरूपत निर्विकार है, *जगत् के अभिन्न निमित्तोपादन हेतु हैं । 'तत्सृष्ट्वा तदेवानु* प्राविशत्' अत भेदाभेद सम्बन्ध युक्त है ।

श्लोक ५६—सत्व प्रमोऽद्य· ·· ···· ··(भागवत १०।४८।२४)

केवल भागवत् चन्द्र चन्द्रिकाकार ने *'सत्व' का अर्थ 'रामादिरूपेणा-वतीर्ण स त्व'* 'रामादिरूप मे अवतीर्ण आप' किया है । अन्य किसी टीकाकार ने ऐसा उल्लेख नही किया, स्पष्ट है कि रामानुज सम्प्रदाय प्रभाव के कारण *यह अर्थ किया गया है ।*

श्लोक ५७—'न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधव ॥' (भा १०।४८।३१)

'जलपूर्ण तीर्थ एव मृत्तिका शिलामय देव भी किंचित् कालान्तर ही पवित्र करते है किन्तु साधु दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ।' श्रीधर स्वामी ने *काकु ध्वनि के द्वारा यह अर्थ किया है—*

'अम्मयानि तीर्थानि मृच्छिलामयाश्च देवा न भवन्ति इति न अपितु भवन्त्येवेत्यर्थ तथापि साधूना तेषा च महदन्तरम् इत्याह ते पुनन्तीति । (भावार्थ दीपिका १०।४८।३१)

वीरराघवाचार्य ने श्रीधर स्वामी का खण्डन किया है, प्रारम्भ मे उनकी पक्तियो को अविकल रखा है और 'चिन्त्य' लिखकर अपना मत दिया है—

'अत्र केचिदेव व्याचक्षते कि देवादयो न सेव्या एवेत्याह । नहीति ।' (वही)

'तच्चिन्त्यम् देवा स्वार्था न साधय इत्तनेनैवासेव्यत्वस्योक्तत्वात् ।' *(भा. च च १०।४८।३१)*

गगादि तीर्थ आपकी भांति शीघ्र पवित्र नही करते तथा देवगण भी स्वार्थ के कारण हित करते है । अत साधु ही वस्तुत परोपकारी है ।

श्लोक ५८—'पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः
आनीताः स्व पुर राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ।'
(भागवत १०।४१।३३)

'पिता की मृत्यु के पश्चात् पाण्डव माता सहित ऋषियो द्वारा धृतराष्ट्र के समीप लाये गये है, यह हमने सुना है ।'

श्रीधर स्वामी ने वसन्ते=निवसन्ति अर्थ किया है, और वीरराघव ने भी इस अर्थ का अनुमोदन किया है, किन्तु विजयध्वज ने 'आत्मने' पद का हेतु भी लिखा है। पाण्डव राजा धृतराष्ट्र के साथ अपनी महिमा को आच्छादित करके रहे हैं (प. र. १०।४८।३३)—

'शतशृंगगिरि निवासिभिः ऋषिभि रानीता राज्ञा सह वसन्ते वसन्ति, स्व महिमानमाच्छादयति शेष. इत्यत आत्मने पदम् ।'

केवल विजयध्वज ने ही सर्वप्रथम शतशृंग गिरि निवासी ऋषियो का उल्लेख किया है। शुक सुधी ने ही विजयध्वजोक्त वाक्य का समर्थन करते हुए यह भी लिखा है कि पाण्डवो का इस पर्वत पर ही जन्म हुआ था और यही पाण्डु का स्वर्गवास हुआ था। (सि. प्र. १०।४८।३३)

उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ मे श्रीकृष्ण-जरासन्ध के युद्ध का वर्णन है। पद रत्नावलीकार ने इसे एक रूपक माना है। कृष्ण धर्म स्वरूप हैं, जरासन्ध असच्छास्त्र तथा कंस अधर्म। जरासन्ध की दो कन्याएं अस्ति और प्राप्ति भी अविद्या के रूप हैं।

श्लोक ५६—'स तदप्रियमाकर्ण्य······ अयादवीं महीं·········।'
(भागवत,१०,५०।१)

'जरासन्ध ने यादव रहित भूमि करने की प्रतिज्ञा की।' यादव वैष्णव हैं। 'य' का अर्थ विष्णु है तथा 'अदो' का अर्थ दुष्ट रक्षक, 'वा' का अर्थ जो उसकी शरण मे जांय।

'य. विष्णुः स एव अदो दुष्ट रक्षकस्त वान्ति शरण गच्छन्तीति यादवा.'

'नृप' का अर्थ शिव शास्त्रोक्त अनुसरण करने वाला माना है, यह एक आश्चर्य की बात है कि विजयध्वज मध्व सम्प्रदाय अनुयायी थे तथापि 'नृप' का अर्थ शिवपरक माना है। (प. र. १०।५०।१)

जरासन्ध ने कृष्ण को गाली प्रदान की। श्रीधर ने उन गालियो का अर्थ अच्छे अर्थ मे किया है, किन्तु वीरराघवाचार्य ने श्रीधर का अर्थ उचित नहीं माना (भा. च. च. १०।५०।१)।

श्लोक ६०—'अष्टादशम यवनं प्रत्यदृश्यत।' (भा १०।५०।४४)

नारद के भेजे हुए कालयवन ने मथुरा को चारों ओर से घेर लिया था। शुक सुधी ने एक अन्तर्कथा लिखी है। 'कालयवन गार्ग्य का पुत्र था। एक बार यादवो ने गार्ग्य से उपहास में षण्ढ कह दिया। गार्ग्य ने रुष्ट होकर शिवजी की आराधना प्रारम्भ की। शिवजी ने उससे यादवनाशक पुत्र होने का वरदान दिया। यवनाधिपति ने जब इस वृत्तान्त को सुना तो उसने गोपाली को गोप स्त्री बनाकर गार्ग्य के समीप भेज दिया। गार्ग्य से तेज धारण कर उसने कालयवन को जन्म दिया एवं इसी कारण यादव उससे भयभीत हुए।' (सि प्र १०।५०।४४)

द्वितीय अन्तर्कथा जीवगोस्वामी ने लिखी है—'वृद्ध गर्ग का पुत्र महा- यवन था, इसके कोई सन्तान नही थी उसने पिता से सन्तानोत्पत्ति के लिए आग्रह किया, और पिता ने उसे पूर्ण किया। गर्ग से कालयवन उत्पन्न हुआ और उसे अजेय होने का वरदान दिया। कालान्तर मे यादवो ने जब वृद्ध गर्ग का उपहास किया था तब उसने कालयवन को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित किया।' (वैं तो तथा सु १०।५०।४०)

श्लोक ६१—'भगवान् भीष्मसुता रुक्मिणीं रुचिराननाम्०'
(भागवत १०।५२।१८)

रुक्मिणी को गोपी मानते हुए जीवगोस्वामी ने लिखा है कि किशोरावस्था मे गोपकन्या यौवन मे राजकन्या द्वारका मे रुक्मिणी वृन्दावन मे राधा —यह सब एक ही हैं (वैं तो १०।५१।५५)—

'कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यका
रुक्मिणी द्वारकायां तु राधा वृन्दावने वने।'

आचार्य वल्लभ तो रामावतार मे सीता, कृष्णावतार मे रुक्मिणी को लक्ष्मी का ही स्वरूप स्वीकार करते है— (सु० १०।५१।५५)

'राघवत्वेऽभवत्सीता कृष्णजन्मनि रुक्मिणी'

रुक्मिणी ने एकान्त मे पत्र लिखकर ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण के समीप पहुँचवाया था—(भा दी १०।५२।३७)

'रुक्मिण्यास्त्वयमेकान्त लिखितां दासपत्रिकाम्
मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमपित्रामदर्शयत्॥'

'रुक्मी' अपनी बहिन का सम्बन्ध कृष्ण से नहीं करना चाहता था,

अत उसने अभिचार कर्म भी करवाये थे (सु. १०।५३।१२)। आचार्य वल्लभ ने यह अभिचार अर्थ भागवत के 'अथर्व वित्' पद से निकाला है। देवीपूजन, रुक्मिणी ने अपने कुलक्रमागत धर्मपालन करते हुए किया था। भगवान के आविर्भाव के लिये देवी का पूजन अत्यन्त आवश्यक है।

श्लोक ६२—'गाण्डीवं धनुरादाय……… …।' (भागवत १०।५८।२४)

उक्त श्लोक मे गाण्डीव धनुप का उल्लेख करना उचित नही क्योंकि गाण्डीव की प्राप्ति खाण्डव दाह के पश्चात् हुई थी। सारार्थ दर्शिनी के अनुसार—नगर रचना, खाण्डवदाह, सभाहरण तथा कालिन्दी लाभ का क्रम उचित माना गया है। (सा. द. १०।५८।२४)

क्रम सन्दर्भ मे प्रथम खाण्डव दाह, कालिन्दीलाभ, नगर निर्माण एव सभा उपहार को उचित *माना गया* है (क्र. स. १०।५८।२४)। *स्पष्ट है कि* यहाँ विश्वनाथ ने जीवगोस्वामी के पक्ष को प्राधान्य नही दिया। आचार्य वल्लभ ने गाण्डीव प्राप्ति अग्नि द्वारा हुई थी यह सिद्ध किया है। विश्वनाथ नगर रचना प्रथम मानते हैं, जीवगोस्वामी खाण्डव दाह को। वल्लभाचार्य का मत स्वीकार करें तो मूल से कोई विरोध आकर नही पडता।

कृष्ण की स्वर्ग यात्रा का वर्णन केवल विजयध्वज ने आधार पाठ मान कर किया है अन्य टीकाकारो ने नही।

श्लोक ६३—'रुक्मिणी परिहासः" (भागवत १०।६०।५४)

एक बार भगवान् ने रुक्मिणी से परिहास किया था। इसे अनिरुद्ध *विवाह के पश्चात् मानना चाहिये। क्योंकि 'भ्रातुर्विरूप करणम्' श्लोक मे* रुक्मिणी के भाई के विरूप होने की वार्ता भी लिखी है। किन्तु मूल में प्रथम परिहास का निरूपण है (भा. १०।६०।५६)। अतः यह व्युत्क्रम है।

भगवान की एक पत्नी का नाम शैव्या था। श्रीधर स्वामी मुद्रा को *ही शैव्या मानते हैं। अन्य टीकाकार शैव्या तथा मित्रवृन्दा को मानते हैं।* विष्णु पुराण मे भी इसकी पुष्टि की गई है—

'शैव्यायां मित्र वृन्दायां…………।' (वि पुराण ८३।६)

अत. श्रीधर वचन चिन्त्य है। ज्वर स्तोत्र की व्याख्या में सम्प्रदाय के दृष्टिकोण की प्रधानता है। ६४ वें अध्याय मे प्रद्युम्न को बालको के साथ क्रीडा करते देखा जाता है, किन्तु प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का भी इसमें उल्लेख प्राप्त है। अत इस लीला को अनिरुद्ध जन्म के पूर्व होना चाहिये था।

उत्तरार्द्ध मे कई कथाओं में व्युत्क्रम है जिनका उचित समाधान नही

मिलता। केवल आचार्य वल्लभ का समाधान उपादेय है, उनका कथन है कि निरोध लीला मे पूर्वापर प्रसग व्युत्क्रम उपयुक्त ही है। (सुबोधिनी १०।६४)

श्लोक ६४—'ददौ.......... अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने।' (भागवत १०।७०।८)

कृष्ण 'बद्व' सख्या गोओ का दान करते थे। बद्व सख्या का प्रमाण श्रीधर के अनुसार तेरह सहस्त्र चौरासी (१३,०८४) सख्या है।

'चतुर्दशाना लक्षाणा सप्ताधिक शता शकः
बद्वं चतुरशीत्यग्र ग्सहस्त्राणि त्रयोदश ॥' (भा. टी. १०।७०।८)

आचार्य वल्लभ इसे समुदायवाची सख्या मानते हैं। (सु. १०।७०।८)

श्लोक ६५—'दन्तवक्त्र..........वध' (भागवत १०।७८।१३)

वैष्णव तोषिणीकार के अनुसार दन्तवक्त्र का वध (आधुनिक दतिया) नामक-स्थान मे हुआ था (वैं. तो १०।७८।१३)। किन्तु पद्मपुराण के अनुसार दन्तवक्त्र मथुरा मे मारा गया था (प. पुराण ३०)। सूर्योपराग तथा दन्तवक्त्र कथा मे भी व्युत्क्रम है। टीकाकारो का कथन है कि शुकदेव जी कथारस मे लीन हो जाते थे अतः कथाओ मे व्युत्क्रम आ गया है—'तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः' यह वाक्य ही प्रमाण है।

श्लोक ६६—'वेद स्तुति' (भागवत १०।८७।१)

भागवत मे स्तुति साहित्य का अपना एक पृथक् महत्व है, स्तुतियाँ यद्यपि विभिन्न देवी देवता आदि की वर्णित की गई हैं तथापि समस्त स्तुतियो मे वेद स्तुति का अपना वैशिष्ट्य, भाषा की प्रौढ़ता, गूढ़ता, तत्वसारता, श्रुति सम्मतता आदि के कारण अत्यधिक है।

श्रीधर स्वामी के अनुसार यह स्तुति निर्गुणपरक है उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि (भा. टी. १०।८७।१)—

'वेदैः स्तुतिर्गुणालम्बा निर्गुणावधि वर्ण्यते।'

चूड़ामणि चक्रवर्ती नामक टीकाकार ने श्रीधर स्वामी की टीका के आधार पर, शंकर भाष्य से अनुमोदित व्याख्या की है। इसमे अद्वैतवाद की थसापना की गई है। इस टीका का क्रम सुन्दर है एवं अन्य टीकाओं से इसकी शैली सर्वथा पृथक् है। टीका के आरम्भ मे श्लोक का आभास, मूल श्लोक, अन्वय, अर्थ, पूर्ण श्रुति का अर्थ एवं सिद्धान्त भी दिया गया है।

श्रीनिवास सूरी ने रामानुज सिद्धान्तों की स्थापना हेतु इस स्थल पर भी टीका लिखी है। इनकी टीका का आधार सुदर्शन सूरी कृत 'शुक-पक्षीय' ग्रन्थ है।

निर्गुण शब्द से प्राकृतोपाधिक गुण का निषेध प्रायः सभी टीकाकारों ने स्वीकार किया है। श्रीधर स्वामी के मत को भी अपने अर्थ मे खीचा गया है। वृन्दावन वास्तव्य श्री रामानुज योगी ने इन स्तुति पर 'सरला' नामक टीका लिखी है। इन्होंने श्रीधर स्वामी के पाठ में दोष भी प्रदर्शित किया है।

'सदसत. परत्वमय' मे 'त्व' अनावश्यक है। 'श्रीधर्यान्तु एतत् वाक्यस्य क्लिष्टान्वय' ।' (सरला १०।८७।१७)

भक्तिशास्त्र के परम रसिक श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस स्तुति द्वारा श्रीकृष्ण के स्वरूप का निर्णय स्वीकार किया है। सिद्धान्त प्रदीपकार ने केशव काश्मीरी भट्ट की व्याख्या ज्यो की त्यों रख दी है। वीर राघव ने 'अत्र केचित्' से श्रीधर स्वामी प्रोक्त—'ब्रह्म पुच्छ प्रतिष्ठा' का खण्डन किया है।

'भक्ति रल्प साधनम्' (भा दी. १०.८७।२१) *मे अल्प शब्द के प्रयोग पर राधारमणदास ने आपत्ति की है किन्तु श्रीधर स्वामी के सम्मान के लिये* लेखक की भ्रान्ति मानी है क्योंकि उक्त वाक्य श्रीधर कृत है। राधारमणदास के अनुसार यहाँ 'महान्' शब्द का प्रयोग होना आवश्यक था। क्योंकि सालोक्यादि मुक्तियो का अन्तर्भाव भी भक्ति मे है (दी दी. १०।८७।२१)।

विजयध्वज ने द्वैतपक्ष के अनुसार *व्याख्या* करते हुए *'चैतन्य विवेक'* ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है (प. र. १०।८७।२७)।

एकादश स्कन्ध

श्लोक १—*'शरच्छतं व्यतीताय पंचविंशाधिकं प्रभो।'* (भा. ११।६।२७)

भगवान् कृष्ण से देवताओ ने *प्रार्थना की कि* आपको भूतल मे पधारे हुए १२५ वर्ष व्यतीत हो गये। विजयध्वज ने १२७ वर्ष ४ माह भूतल निवास माना है—

'सम्वत्सर द्वय चैव पश्चात् स्थित्वा जनार्दन.
अभि पेदे परं स्थान चतुर्मासाधिकं पुन' ॥' (प र. ११।६।२७)

बन्ध मोक्ष के बारे मे श्रीधर स्वामी ने अपना मत देते हुए लिखा है कि—आत्मा न बद्ध है न मुक्त वह भगवान के सत्व, रज, तम आदि गुणो से बद्ध है। *गुण माया के कारण ही प्रतिभासित होते हैं। अतः बन्ध और मोक्ष* कुछ भी नही है। जैसे 'स्वप्न' बुद्धि की ख्याति या विवर्त है, उसी प्रकार कारण (गुणो) से उत्पन्न कार्य भी माया है (भा. दी. ११।११।१)। जब तक अविद्या है तभी तक बन्धन है, जब विद्या देता हूँ तब मोक्ष का स्फुरण होता है। स्कन्दपुराण मे विष्णु ही बन्ध मोक्ष दाता है, यह लिखा है—

'बन्धको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचकः
कैवल्यदः परं ब्रह्म विष्णुरेव न संशयः ॥'

श्लोक २—एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते' (भा. ११।११।४)

बन्ध मोक्ष मेरे अंश जीव के ही हैं। जैसे एक 'चन्द्र' जल उपाधि में प्रतिबिम्बित होकर भेद प्राप्त करता है एवं अलकृत कम्पादि भेद 'प्रतिबिम्ब' के होते हैं। प्रतिबिम्ब भी उपाधिगत भेद से एक कुम्भ के भग्न हो जाने पर तद्गत प्रतिबिम्ब का ही बिम्बैक्य होगा। अन्य घटों में स्थित प्रतिबिम्ब का नहीं। इसी प्रकार अविद्या में प्रतिबिम्ब मेरे अंश 'जीव' का ही है और यह उपाधि भेद से है। श्रीधर स्वामी ने विद्यारण्य की एक कारिका को उद्धृत किया है (भा. दी. ११।११।४)—

'यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते
न सर्वे सम्प्रयुज्यन्ते तथा जीवाः सुखादिभिः ॥'

सुदर्शन सूरी ने बन्ध तो जीव का ही माना है, किन्तु उसे अनादि मानते हुए विद्या द्वारा उसका विनाश मान लिया है। विशिष्टैक देश विशेषण होता है इस न्याय से परमात्मा जीव विशिष्ट है (शु. प. ११।११।१)।

सुदर्शन के न केवल 'भाव' अपितु अक्षर सम्पत्ति भी वीरराघव ने ज्यों की त्यों ग्रहण की है—

शुकसुधी ने मायावादी मत को निर्मूल सिद्ध किया है। आचार्य विश्वनाथ ने जीव को परमात्मा की शक्ति माना है।

श्लोक ३—'सुपर्णावितौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृत नीडौ चवृक्षे
एकस्तयो खादति पिप्पलान्नमन्योनिरन्नोऽपि बलेन भूयात् ।।'
(भागवत ११।११।६)

'जीवात्मा-परमात्मा दो पक्षि की भाँति है इनमे एक भोग करता है द्वितीय नही।'

विजयध्वज ने द्वैतवाद का समर्थन स्पष्ट रूपेण किया है। किन्तु टीकाकारो ने इस श्लोक को भी अपनी सम्प्रदाय की ओर खीचने का प्रयत्न किया है।

श्लोक ४—'.......विकल्प ख्याति वादिनाम्' (भागवत ११।१६।२४)

श्रीकृष्ण ने कहा है कि—अख्याति, अन्यथा ख्याति, असत् ख्यातिवादियो का विकल्प मे हूँ। (भा टी ११।१६।२४)

अख्यातिवादी मीमासक हैं, परस्पर सश्लेप से स्मरणात्मक प्रत्यक्षात्मक जा ज्ञानद्वय वह अख्याति है—

'परस्पर सश्लेषेण स्मरणात्मक प्रत्यक्षात्मक यज्ज्ञानद्वय तदख्याति'

'इद तद्र जतम्' यहा इद के अपरामर्श से प्रत्यक्ष से शुक्त्यादि का बोध हाता है, शुक्तित्वत्तापरामर्श से रजत का स्मरण होना है। अत ज्ञान द्वय सत्य है अभेदपूर्वक ग्रहण मानस दोष से होता है, शुक्त्यादि परम्परा रजतादि परम्परा भी वस्तु है।

अन्यथा ख्याति—वे प्रतिष्ठापक तार्किक है—

'अतद्वतितत्प्रकारकोऽनुभवोऽन्यथा ख्याति'

इनके मतानुसार शुक्ति रजत मे अन्यथाख्याति है अविद्या मे ही सब बुद्ध उत्पन्न है—

'अलीकपदार्थतया भासमानत्व शून्य ख्याति'

शून्यवादियो का मत है कि असत् (शून्य) ही शुक्ति रूप म और वही चादी रूप मे भासित है किन्तु 'रजतादि' जहाँ व्यवहार सम्पादक नही होता वहाँ अलीक व्यवहार है।

असत्ख्याति—यह क्षणिक विज्ञानवादी मत मे प्रयुक्त वाद है। 'यत् सत् तत् क्षणिकम्' जो सत् है वह क्षणिक है, इस व्याप्ति से असत्त्व होने के कारण ही इसे असत् ख्याति या आत्म ख्याति कहते है—

'रजतादि विषयाकारे विज्ञाने सत्यपि अन्ततः स्वप्नवद्रजतापादक वैशिष्ट्याऽग्रहणमात्मख्यातिः ।'

रजतादि विषयाकार ज्ञान हो जाने पर भी अन्ततः स्वप्नवत् रजत प्राप्ति वैशिष्ट्य का अग्रहण आत्मख्याति है।

अद्वैतवादी सर्वत्र अनिर्वचनीय ख्याति ही मानते हैं—सत् और असत् से भिन्न होने पर भी सदसदात्मक अनिर्वचनीय ख्याति है—

'सदसद्भिन्नत्वे सति सदसदनात्मक मनिर्वचन ख्यातिः'

अचिन्त्य ख्याति ही भगवान को अभिप्रेत है—

'भगवन्मते विकल्पस्य स्वस्वरूप विभूतित्वात् सर्वनाचिन्त्यख्यातित्व मेवाभिप्रेतम् ।'

जीवगोस्वामी ने ख्यातियों का उल्लेख क्र. स. ११।१६।२४ मे किया है—

'आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा
तथा निर्वचन ख्यातिरित्येतत् ख्याति पंचकम् ।
विज्ञान-शून्य-मीमासा-तर्काद्वैतविदामतम् ।।'

अन्तर्वृत्ति रूपविज्ञान परम्परा ही तत्तद्विषयाकार रूप मे भासित होती है।

श्लोक ५—'बहिरन्तर्मिदाहेतु.' (भागवत ११।२२।४१)

विजयध्वज ने अभेदवादी मत का स्पष्ट शब्दों मे खण्डन करते हुए लिखा है—देह अनित्य है जीव नित्य है, अनित्य देह नित्य देही को उत्पन्न नही करता है अत. वह जीव से भिन्न है, असाधुजन ही जीवात्मा और परमात्मा का अभेद मानते हैं वस्तुतः उनमे भेद है।

राधारमणदास ने प्राणायाम द्वारा अमृतमय होने की प्रक्रिया लिखी है। प्रत्येक मानव शरीर मे पाप पुरुष का निवास है इसका शोषण वायु द्वारा हो जाता है। टीकाकारो ने पूजाविधि का बडे विस्तार के साथ वर्णन किया है (भा.टी. ११।२७ उपसहार)—

'पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदम्
प्रागेवदि शति प्रीत स कृष्णः शरणं मम ।'

भक्तियोग का वर्णन प्रायः सभी ने मनोयोग के साथ किया है।

द्वादश स्कन्ध

श्लोक १—'कलौ न राजन् जगतां परं गुरु' (भा. १२।३।४३)

उक्त श्लोक में कलियुगी मानवो की वृत्तियों का और उन पर पाखण्ड

के प्रभाव का निरूपण किया गया है, आचार्य विजयध्वज ने अद्वैतवाद को स्पष्टत पाखण्ड वाद की सज्ञा देते हुए लिखा है कि, इससे लोगो का 'चित्त' भ्रम मे पडता है—

'पाखण्ड शास्त्रेण अद्वैत विपयेण विभिन्न चेतस. व्यामोहित चित्ता. ।' (प. र. १२।३।४३)

वहा यह आरोप मात्र है, वैष्णव तथा अद्वैतपरम्परा के विद्वानो ने अनेक शास्त्रार्थ हुआ करते थे, विजयध्वज पर इस काल की परिस्थिति का प्रभाव है अन्यथा उक्त श्लोक मे अद्वैत या द्वैत का कोई प्रश्न ही नही था ।

श्लोक २—'मास व्यत्ययः' (भागवत १२।११।३३)

इस द्वादश स्कन्ध मे शुकदेव जी के चले जाने के उपरान्त सूत जी ने शौनको को द्वादश मास के 'सूर्यों' नाम, गन्धर्व, अप्सरा आदि का वर्णन किया है । मूल मे उपलब्ध मास क्रम वर्तमान मासक्रम से भिन्न है, इस पर टीकाकारो ने अपने विचार प्रकट किए हैं । चैत्र से भाद्रपद पर्यन्त का क्रम दोनो मे समान है शेप निम्न मासो मे भेद है—

भागवतानुसार मास	प्रचलित मास
माघ	आश्विन
फाल्गुन	कार्तिक
मार्गशीर्ष	मार्गशीर्ष
पौष	पौष
आश्विन	माघ
कार्तिक	फाल्गुन

श्रीधर स्वामी भागवत के मासक्रम को कूर्म पुराणेवत क्रम से सम्बन्ध स्वीकार करते हैं (भा दी. १२।११।३३) । 'कूर्मपुराण' के ४२ वें अध्याय मे इस क्रम का निर्देश भी उपलब्ध है ।[1] 'कूर्म' मे केवल आदित्य के नामो के क्रम के कारण भागवत के आदित्यो का क्रम माना जा सकता है ।

श्रीधर का यह कथन कि मास व्यत्यय कूर्मपुराण के आधार पर है अस्पष्ट है और अमान्य भी, क्योकि कूर्म पुराण मे ऐसा निर्देश उपलब्ध नही है । कल्पभेद से मासव्यत्यय माना जा सकता है ।

वीरराघवाचार्य का मत है कि भागवतकार को मासक्रम विवक्षित नही था अत व्युत्क्रम प्रतीत होता है (भा. च. च. १२।११।३३) ।

---

१. कूर्मपुराण, अ० ४२, पृष्ठ १६४, मनसुखराय प्रकाशन, कलकत्ता ।

श्लोक ३—'नमोधर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे' (भा १२।१२।१)

उक्त श्लोक मे समागत कृष्ण से कृष्ण भगवान तथा कृष्ण द्वैपायन अर्थ भी गृहीत है (भा दी १२।११।३३)। सूत को यदि सिद्ध रूप धर्म अभीष्ट है तो उसका तात्पर्य भगवान श्रीकृष्ण से उचित है क्योंकि धर्म फलभूत नही है। यदि यह गुरु के स्मरणार्थ भी किया गया हो तो आपत्तिजनक नही है।

द्वादशाध्याय मे समस्त भागवत की अनुक्रमणिका दी गई है परन्तु इस मे क्रम व्यत्यय है तथा अनेक प्रसिद्ध आख्यान भी छूट गये हैं।

श्रीधर स्वामी इस व्युत्क्रम का समाधान करते हुए लिखते हैं कि यह अव्यवस्था भक्तिरस के प्रवाह के कारण हुई थी। किन्तु श्रीधर स्वामी का यह कथन सर्वथा असगत है क्योंकि कथा की परम्परा शुकदेव जी के चले जाने के उपरान्त एक प्रकार से पूर्ण ही है, तथा सूत शौनको के सम्वाद के उपरान्त व्यास जी ने इसे पुन उपनिबद्ध किया था। ऐसी परिस्थिति मे 'भक्तिरस का प्रवाह' लिखना उचित नही। यदि अनुक्रमणिका मे कुछ भी व्यवस्थित नही तो उसके लिखने का तात्पर्य ही क्या है।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने स्पष्ट लिखा है कि अनुक्रमणिका मे कथाओ का निर्देश परमावश्यक है, इनके विपरीत कथन अयुक्त है (सा द १२।१२।१)।

जन्मगुह्याध्याय, अश्वत्थामा दण्ड, भीष्म निर्वाण, चित्रकेतु, अम्बरीष, अघासुर वध, ब्रह्ममोहन आदि अनेक कथाओ का सकेत नही दिया गया है। सिद्धान्त प्रदीपकार का यह कथन भी अयुक्त है कि यहां स्कन्धो के आधार पर व्युत्क्रम हुआ है (सि प्र १२।१२।१)। एक तो स्कन्धो म व्युत्क्रम है ही नही, द्वितीय यदि स्कन्धोक्त कथानक ही लिखे जाते तो व्युत्क्रम का प्रश्न ही नही था। वस्तुत यह व्युत्क्रम भागवत निर्माण के उपरान्त का माना जा सकता है।

सिद्धान्त प्रदीपकार ने उपसहार म जीव ब्रह्म के द्वैताद्वैत सम्बन्ध को सर्वोत्कृष्ट माना है, तथा अभेदवादी, भेदवादी माध्व मतानुयायी आदि सभी मतवादो की कटु आलोचना की है।

उक्त विवेचन सम्प्रदाय के आधार पर भले ही उचित सिद्ध हो किन्तु मूल से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है।

—०—

अध्याय नवम

भगवत्तत्व

१. श्रीकृष्ण
२. श्रीराधा
३. व्रज
४. गोवर्द्धन
५. वेणु
६. रास
७. भक्ति
८. ज्ञान
९. मुक्ति

भगवत्तत्व

श्री कृष्ण

श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य श्रीकृष्ण चरित वर्णन के कारण ही है, यह कथन विसम्वाद रहित है। श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण म अभिन्न सम्बन्ध है। आचार्य वल्लभ ने भागवत के वाक्य—

'तेनेय वाङ्मयी मूर्ति प्रत्यक्षावर्तते हरे'

की सार्थकता का प्रबल शब्दो का प्रसार किया था। आज भी श्रीमद्भागवत का भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह के तुल्य पूजनीय माना जाता है। कृष्ण का उल्लेख न केवल भागवत मे अपितु अनेक पुराणो मे उपलब्ध होता है। गोपाल सहस्त्र नाम, विष्णु सहस्त्र नाम, पुरुषोतम सहस्त्र नाम, आदि स्तोत्र साहित्य मे कृष्ण के अनेक नाम लिखे गय हैं।

यद्यपि महाभारत मे कृष्ण को नारायण का अश तोना है—

'य स नारायणो नामदेव देव सनातन.
तस्याशो वासुदव स्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह।'[१]

तथापि भागवत (१।३।१) मे नारायण को पुरुषावतार माना है। कृष्ण के नारायणत्व मे सन्देहावसर नही है। ब्रह्मस्तुति मे लिखा है कि आप अवश्य ही नारायण हैं (भा. १०।१४।१४)। इस प्रकार भागवत मे, वैकुण्ठवासी, चतुर्भुज, नारायण, महाविष्णु, श्वेतद्वीपपति विष्णु, वसुदेव नन्दन तथा वृन्दावन विहारी नन्दनन्दन एकरूप मे ही वर्णित हैं।

कुन्ती कृत स्तुति मे उनका स्वरूप तथा उनके येवतार का प्रयोजन भी स्पष्ट लिखा है (भागवत १।८।२१)—

---

१. महाभारत स्वर्गारोहण पर्व। अ० ५ श्लोक २४।

'कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च
नन्द गोप कुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ।'

भागवत मे कृष्ण के निम्नलिखित रूप वर्णित हैं[1]—

१. असुर सहर्ता	२. बालकृष्ण	३. गोपिकारमण
४. राजनीतिज्ञ	५. योगीश्वर	६. परब्रह्म ।

कृष्ण भगवान् के राजनीतिज्ञ रूप का दर्शन महाभारत मे, परब्रह्म रूप [क]ा गीता मे विशेषत. वर्णित है। रसिकेश्वर (गोपिकारमण) रूप का वर्णन [भ]ागवत मे है। भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध मे कृष्ण के राजनीतिज्ञ एव [अ]सुर सहारी रूप का वर्णन भी उपलब्ध होता है। किन्तु असुर सहारी रूप का वर्णन पूर्वार्ध मे विशेषत वर्णित है। रासलीला-गोवर्द्धन लीला आदि मे उनके योगीश्वर रूप की झाँकी है। भागवत मे कृष्णलीला का वर्णन तीन स्कन्धो मे उपलब्ध है। द्वितीय स्कन्ध के सप्तमाध्याय के २६ वें श्लोक मे कृष्ण-बलराम के अवतारो का उल्लेख मात्र है। तृतीय स्कन्ध के द्वितीयाध्याय मे बाललीलाओ की सूची है। तृतीयाध्याय मे अन्य लीलाओ का वर्णन है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण दशम स्कन्ध है। इसमे कृष्ण लीलाओ का जैसा सागोपाग वर्णन हुआ है वैसा अन्यत्र कही उपलब्ध नही होता।

कृष्ण सकल कलापरिपूर्ण है। उज्जयिनी मे विद्याध्ययन के समय उन्होंने चतुर्दश विद्या तथा ६४ कलाओ का स्वाध्याय किया था। वे वेदान्त-ज्ञाता, मुरलीवादक, नृत्यकला प्रवीण है। व्रज का यह पौगण्डावस्था का रूप परम आकर्षक है। ८४ लाख योनि मे ब्रह्म व्याप्त है तथा कृष्ण ब्रह्म ब्रह्म ८४ कोस व्रज मे व्याप्त है। कृष्ण की बाल लीलाओ मे बालचरित का वर्णन भक्तिरस की परिपक्वता के साथ हुआ है। बाल 'लीलाओ मे यशोदा का वात्सल्य कृष्ण का नटवरपन, एव गोपिकाओ के साथ मनोविनोद के वर्णन भी हैं।

भागवतकार ने श्रीकृष्ण का स्वरूप वर्णन बडे कौशल के साथ किया है, उन्हे मानव जन्मा बतलाते हुए, सर्वातिशायी बलशाली, महामानव देव एव ईश्वर के साथ परब्रह्म तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के दो रूप हमारे सम्मुख आते हैं—प्रथम मानव रूप, द्वितीय परब्रह्म रूप। मानव रूप का स्पष्ट वर्णन उनकी तत्तत् लीलाओ में स्पष्ट है,

---

१. भागवतदर्शन—हरवंशलाल—भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़, पृष्ठ ८५।

वे गर्भ मे आते है, जन्म ग्रहण करते हैं, रक्षा के लिये अनेक साधन अपनाते है, आहार, व्यवहार, नित्यकर्म, भोगविलास आदि मे सलग्न पाये जाते हैं। गोपियो के साथ वे रासक्रीडा करते हैं। पुन शत्रुओ का विनाश कर द्वारका मे साधारण राजकन्याओ के साथ विवाह करते हैं और पिता, पितामह, प्रपितामह आदि के नाम से अभिहित होते है तथा अपनी मर्त्यलीला की विविध क्रीडाओ के साथ यादवो के साथ ही अपना शरीर त्याग देते है।

यह कृष्ण का मर्त्य शरीर पक्ष उन्हे ब्रह्मपद से खीचकर धरातल के साधारण पुरुषो के समान बना देता है, और इसमे उनके राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, कलाविद्, पुरुषार्थी आदि के अनेक चित्र भरे पडे है।

दूसरे रूप मे वे अजन्मा है, अवतार नही अवतारी हैं, सृष्टि के पालन-पोषण सहर्ता सभी कुछ है वे अनेक ब्रह्माण्डों के रचयिता एव जगन्नायक देवाधिदेव तथा साक्षात् ब्रह्म है।

भागवत मे उनके इस ब्रह्म रूप का निरूपण अनेक स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है। भागवतकार मानव के साथ सम्बन्ध रखता हुआ भी उसमे ऐसी विचित्र बातें लिखता है जो मानव जन्मा के साथ घटित नही की जा सकती उनम कतिपय के उदाहरण—

१ ब्रह्मा आदि की स्तुति से विष्णु भगवान् देवकी के गर्भ मे आते है देव उनकी स्तुति करते है उन्हे व 'सत्यात्मक' स्वरूप म देखते हैं।[1]

२ प्रकृति रूपी आलवाल मे यह ससार का वृक्ष स्थित है जिसम दो पक्षी हैं, उसके आश्रय कृष्ण ही है।

३ कृष्ण का जन्म चतुर्भुज रूप म हुआ था—(भा १०।३।६)। साधारण बालक न तो चार भुजा युक्त ही होता हैं और न शख चक्र गदा तथा पीताम्बर धारण किये हो। थोडे समय पश्चात् वही शिशु द्विभुज हो जाता है तथा कपाट शृखला स्वत ही टूट जाते हैं एव वसुदेव जी उन्हे गोकुल पहुँचा आते हैं।

४ पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदि का भी वे विनाश कर देते हैं।

---

१ भागवत १०।२।२६।

वृन्दावन मे दावानल पान कर जाते हैं एव सात वर्ष की अवस्था मे गोवर्द्धन पर्वत धारण करते हैं, आदि।

उक्त कर्मों को यदि बुद्धि की कसौटी पर कसा जाय तो साधारण मनुष्य की शक्ति के साथ इन वर्णनो का सामजस्य ठीक नही बैठ सकता। भागवतकार ने सभी अनिमर्त्य स्थलो पर देवगणो को उनके समीप स्थित रखा है वे प्रत्येक लीला के पश्चात् पुष्पवृष्टि करते हैं। कृष्ण द्वारा एक ओर असुरो का दमन प्रारम्भ दिखलाई देता है दूसरी ओर अभिमानी देवगणो का दमन भी वर्णित है। स्वय ब्रह्मा उनके वत्सहरण द्वारा क्रोध का भाजन बनता है एव क्षमा मांगता है (भागवत १०।१२ ब्रह्म स्तुति)

इन्द्र देवता का मान भग गोवर्द्धन पर्वत के पूजन के कारण किया। (भा १०।२४) वरुण देवता का गर्व रात्रि को स्नान करने गये हुए नन्द के पैर पकड कर पाताल पहुँचने के समय किया। कामदेव का गर्व रासलीला करने नष्ट किया आदि। प्रत्येक देव के मुख से उनकी महिमा का गान एवं उन्हे प्रकृति से परे ही सिद्ध किया गया है। ऐसी परिस्थिति मे प्राय सभी उनक रूप का निर्णय नही कर पाते। भागवत धर्म के अभ्युदय के साथ आचार्य अपनी सम्प्रदाय स्थापना मे सलग्न थे। और भागवत पुराण का भी वे प्रामाण्य स्वीकार करते थे, क्योकि भागवत मे नारायण, विष्णु, कृष्ण, राम सभी नामो का माहात्म्य उपलब्ध था।

प्रमुख आचार्यों ने विष्णु स्वामी, शकराचार्य, मध्वाचार्य आदि महानुभावो ने भागवत की समालोचना प्रारम्भ की और उसके वाक्यो को अपनी सम्प्रदाय के लिये प्रमाण रूप म उद्धृत किया तो प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्यों को विवश होकर भागवत का समाश्रय ग्रहण करना पडा। धीरे-धीरे उनके अनुगामी आचार्यों ने अपनी शब्द राशि की शक्ति से भागवत की धारा अपनी ओर आकर्षित की।

प्राप्त टीकाओ म भावार्थ दीपिका टीका सम्पूर्ण भागवत पर उपलब्ध सर्वप्राचीन टीका है इसके रचयिता श्रीधर स्वामी ने भागवतकार के वर्णन के साथ उनकी ध्वनि से ध्वनि मिलाई तथा भागवतकार का आशय सक्षेप मे किन्तु गम्भीर रूप म प्रकाश मे लाये। श्रीकृष्ण पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने मूल के साथ तो उन्हे रखा अर्थात् मर्त्यभाव के स्थल पर मर्त्य एव ब्रह्म-परमात्मा भाव के स्थल पर परमात्मतत्व म निरूपित किया, किन्तु निर्विशेषवाद के स्थलो पर अथवा जहा जहां 'एकरसमेव' आदि के वर्णन मे हैं वहा यथात्

कृष्ण का नाम आरोपित नही किया किन्तु मगलाचरण मे उन्होंने श्रीकृष्ण के सम्बध मे जो अक्षर लिखे हैं केवल उनसे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि वे श्रीकृष्ण को परब्रह्म के रूप मे मानते थे- (भा दी १।१।१ मगला)

'विश्व सर्ग विसर्गादि नवलक्षण लक्षितम्

श्री कृष्णाख्य परधाम जगद्धाम नमामितत् ।।

यहाँ यह कथन आवश्यक है कि रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य श्रीकृष्ण को परव्योमपति नारायण के विलास मानते हैं। सुदर्शन सूरी ने कृष्ण को नारायण का अ ग लिखा है--

अथवैव सम्बन्ध नारायण नरभूजलायनाद्य प्रसिद्धस्तस्य त्वमग मूर्ति रवतार कि नासीत आनन्दस्वरूपस्यरूपत्वात ' (शु प १०।१४।१४)

वीरराघव ने नारायण और कृष्ण मे अभेदत्व सिद्ध किया है—

अवतार भेदेन तत्तदाकृति भेदेऽपि तत्तत्कार्य कार्यकर्मादि चरित्र भेदेऽपि चावतारिणस्तवाभेद अवतारी सदा त्वमेक एव ननु नारति दिक ।'

(भा च च १०।१४।१४)

रूप गोस्वामी ने इनका मत व्यक्त करते हुए खण्डन किया है—

अथ श्रीवैष्णवा प्रत्यवतिष्ठन्ते। ते हि मन्यते परव्यूहविभवान्तर्या म्यर्च्चात्मनापरमात्मा विभाति । तत्र पर —नारायण स्वय प्रभु व्यूहा वासुदेवादयश्च वार विभवा —मत्स्य कूर्मादय विभवपु नृसिंहो रघुनाथ कृष्णश्च श्रेष्ठा हेत्वैश्वर्याधिक्यात् कृष्णो नारायणान्तरो भविष्यति ननु मत्स्यकूर्मादिरिव कृष्णो रप्यवतार इति चेत ? नैवमित्याह जन्मादीति ।[1]

रूप गोस्वामी ने सिद्ध किया है कि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं—

'ईश्वर परम कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रह

अनादिरादिर्गोविन्द सवकारण कारणम् ।। (वही १३२ कारिका)

रूप गोस्वामी ने नारायण को भी श्रीकृष्ण का विलास माना है। यद्यपि श्रीकृष्ण द्वापर मे उत्पन्न हुए थे और नारायण अनादि हैं—यह शका स्वभाव है तथापि श्रीकृष्ण की लीला अनादि है। (वही १२५ कारिका)

जीवगोस्वामी ने वृहत्क्रमसन्दर्भ मे रूपगोस्वामी के आशय को व्यक्त किया है कि नारायण के दो अर्थ है जलों का आश्रय तथा जीवा का आश्रय, किन्तु नारायण कृष्ण के ही अ ग है—(वृ क्र स १०।१४।१४)

---

१ भागवतामृत, पृष्ठ १६८, खेमराज कृष्णदास, बबई १८५८।

'..... तेन सर्वे जीवा नार तदयनात् स्व नारायण जलशायित्वातवाग नारायण इत्येव विशेष ।'

श्रीधर के परवर्ती टीकाकारो मे सुदर्शन वीरराघव एव विजयध्वज विद्वानो के नाम उल्लेखनीय हैं, उक्त विद्वानो ने भागवत की टीका करते हुए अपने मतवाद का प्रदर्शन तो किया, किन्तु श्रीकृष्ण के रूप प्रकाशन के स्थल पर विशेष अभिरुचि नही दिखाई, कृष्ण की माधुर्य लीलाओ का रस इन्हे अपनी ओर आकर्षित नही कर सका, कारण उन पर तत्कालीन सम्प्रदायाचार्यों की सीमा का बन्धन था यह स्पष्ट है।

भागवत मे प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण की भू-भार हरण लीला देखने मे आती है किन्तु उनका परब्रह्म रूप लीलाहरण रूप से कही अधिक मान्य है। आचार्य वल्लभ ने कृष्ण के इन दोनो तथ्यो का निरूपण एक कारिका मे किया है— (पुरुषोत्तम सहस्रनाम) से।

'परब्रह्मावतरण केशव. क्लेशनाशन
भूमि भारावतरणो भक्तार्थाऽखिल मानस ।

पचभूतो पर परब्रह्म की सत्ता है वह श्रीकृष्ण के कार्य द्वारा स्पष्ट है'—

१. कृष्ण की पृथ्वी तत्व पर विजय का निरूपण-मृत्तिका भक्षण, तथा गोवर्धन क्रीडा द्वारा है।

२ जलतत्व के विजय का सकेत कालिय सर्प का यमुना जल मे दमन, नन्द की वरुण दूतो से रक्षा, मूसलाधार वर्षक इन्द्र का मान भग एव समुद्र मे शखचूड, का वध आदि लीलाओ द्वारा स्पष्ट है।

३ तेजतत्व—पर विजय के सकेत, खाण्डव दाह, दावानलपान आदि प्रसगो मे प्राप्त है।

४ वायुतत्व पर विजय की सूचनाऐं तृणावर्त वध, शाल्व वध आदि द्वारा वर्णित हैं।

५ आकाश तत्व—विजय की प्रामाणिकता 'व्योमासुर बध कथा' यशोदा के बाँधने पर न बधना, उलूखल लीला आदि द्वारा स्पष्ट है। केनोपनिषद् में परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् लिखा है। भागवत मे भी सब देवगण कृष्ण की स्तुति करते है। अत आचार्य वल्लभ की सम्प्रदाय मे कृष्ण ही परब्रह्म माने गये है।'

---

१. गुजराती भाषान्तर भागवत, पृष्ठ ६८८ ।
२ १००८ श्री ब्रजभूषणलाल जी महाराज, कॉकरोली ।

वल्लभाचार्य के समकालीन मध्व गौडीय चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तवर टीकाकार—सनातन, जीवगोस्वामी एव विश्वनाथ चक्रवर्ती ने वल्लभाचार्य से भी एक पग आगे बढाया और श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा का उल्लेख व माहात्म्य गान भी तत्परता के साथ किया।

वल्लभाचार्य अपनी टीका मे श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व सिद्ध कर चुके थे राधा के सम्बन्ध मे केवल सकेत प्रस्तुत किये थे। स्पष्ट रूपेण वे राधा की स्थापना मे सकोच कर गये थे। गौडीय वैष्णवाचार्यों ने परब्रह्म का महत्व कम कर दिया और श्रीकृष्ण का पद सर्वोच्च स्थान पर स्थिर किया। भागवत के आधार पर ही शब्दो की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जिससे उनके मर्त्य भाव के साथ ईश्वर भाव का निरुपण अविरुद्ध हो। वस्तुत यह एक क्रान्ति है जिसमे श्रीकृष्ण का इतना उत्कृष्ट रूप वर्णित किया गया है। भागवत मे वर्णित कृष्ण के शरीर त्याग की शका का निराकरण करते हुए जीव गोस्वामी लिखते है कि भागवत प्रथम स्कन्ध मे वर्णित—तनु त्याग ने का अर्थ नष्ट होना नही किन्तु तनु का अर्थ है भू-भार जिहीर्षा लक्षण रूपभाव, इसका परित्याग किया था न कि शरीर का(क्र. स १।१५।३६)—

'त्याग स्वतनुकरणकमेव न तु स्वतन्वामह 'इति व्याख्येयम्।'

यादवो को भी भगवत्लीला दर्शन के अतिरिक्त अन्य कार्य कृष्ण के भौतिक देह से नही था। कृष्ण नित्यतत्व हैं और वे वृन्दावन मे सदा निवास करते है, वृन्दावन धाम भी नित्य है, इस भावना से प्रेरित होकर वे कृष्ण का नन्दराय के साथ मथुरा आगमन भी नही मानते। 'नित्य कृष्ण के अभाव मे नन्द जशोदा जीवित कैसे रह सकते थे ?[१]

भागवत मे उद्धव के व्रजगमन का वर्णन व्रजवासियो की समृद्धि दशा का परिचायक है उनकी कष्टावस्था का नही, जब कि कृष्ण के वियोग में उन्हे दु खित चितित्र करना चाहिये ? अत कृष्ण नित्य है और वे सदा व्रजवास करते है। सबसे बडी विचित्रता यह है कि इस समुदाय के टीकाकारो ने दो कृष्णो का प्राकट्य स्वीकार किया है। एक देवकी के यहा द्वितीय यशोदा के यहा। देवकी के गर्भ से प्रकट श्रीकृष्ण यशोदानन्दन मे समा जाते है। इस प्रकार श्रीकृष्ण अवतार होते हुए भी परात्पर तत्व है नित्य है। राधा उनकी शक्ति है, उनके साथ सदा वे रहते है।[२]

---

१. सारार्थ दर्शिनी १०।४६।११

२ श्रीभक्तिहृदय वनमहाराज, वृन्दावन।

'ब्रह्मेति-परमात्मेति भगवानिति शब्यते' (भा. १।२।११)

इसकी व्याख्या मे 'भगवान' का पद ब्रह्म-परमात्मा से भी बढकर सिद्ध किया है। ब्रह्म सूत्रो का ब्रह्म, गीता का परमात्मा भागवत मे भगवान है यही उसके त्रिविधि नामो का रहस्य है। यही भगवानपद रासारम्भ मे प्राप्त है।

'भगवानपि ता रात्री' (भा १०।२६।१)

भगवान् षडैश्वर्यशाली हैं, वे छ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य। तभी तो कृष्ण का साक्षात् भगवान पद से व्यवहार है—

"एते चांश कला पु श कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भा १।३।२८)

निम्वार्क सम्प्रदाय के टीकाकार शुक सुधी ने भी अपनी टीका मे श्री कृष्ण को परात्पर सिद्ध किया है तथा जगत्प्रसिद्ध नारायण इन्ही श्रीकृष्ण के अ ग है यह लिखा है—

'...... तस्मात् प्रसिद्धोनारायण सतु तवैवाग वपुर्भवति अत सर्वथा परम नारायणस्त्वमेवासीति फलितोऽर्थ...... ।' (सि प्र १०।१४।१४)

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि सभी टीकाकार भगवान कृष्ण का अवतारी होना मानते है तथा वही सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व हैं एव उनकी लीला भी अचिन्त्य हैं।

श्री राधा

भारतीय सस्कृति मे प्रकृति पुरुष का अनादि सम्बन्ध माना जाता है। सांख्य शास्त्र मे प्रकृति पुरुष शैवशास्त्र मे शक्ति शिव एव पांचरात्र आगम मे लक्ष्मी-नारायण वैष्णवो मे सीता-राम, राधाकृष्ण आदि युगल का सम्बन्ध वेद से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित है। राधा के उपासको का कथन है कि राधा का उल्लेख ऋग्वेद मे है—

'अतारिपुर्भरता गव्य व सम
भक्त विप्र सुमति नदीनाम्
प्रपिन्वध्व मिषयन्ती सुराधा
आवक्षणा पृणध्व यात शीमम्।' (ऋ ३।३३।१२)

नीलकण्ठ विद्वान का कथन है कि 'अतारिपुर्भरता' मन्त्र मे विश्वामित्र ऋषि ने नदी समुद्र के परस्पर वार्तालाप द्वारा गोपियो को अभिसार के लिए प्रेरित किया है।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' (शुक्ल यजुर्वेद ३१।३२)

मन्त्र मे समागत 'श्री' शब्द से राधा का ही उल्लेख है ।'[1]

आश्चर्य है कि गत शताब्दी के विद्वानो ने राधा के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते समय स्वय को ही प्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा की अथवा यो कह सकते हैं कि उन्होंने अन्धानुकरण किया, क्योंकि भागवत मे राधा का उल्लेख किस प्रकार गोप्य है एव किस स्थल पर स्पष्ट है यह जानना ही उन्होने अनावश्यक समझा । यदि वे भागवत के मर्मज्ञ टीकाकार जो असाधारण विद्वान एव उच्चकोटि के भक्त हुए हैं उनकी टीकाओ का थोडा भी परिशीलन करते तो मुक्त कण्ठ से राधा का-अस्तित्व असिद्ध करने का असफल यत्न न करते ।

राधा का अस्तित्व मे तब शंका करना उचित होता जब कि भागवत मे अन्य गोपियो के उल्लेख होने पर भी राधा का उल्लेख न होना । किन्तु भागवत मे अन्य गोपियो के उल्लेख होने पर भी राधा का उल्लेख भी प्राप्त नही है तब राधा के स्पष्ट नाम निर्देश न होने पर ही इतना कौतुक क्यो ? टीकाकारो ने रास पचाध्यायी मे सैकडो बार राधा का उल्लेख किया है, क्या यह कम महत्व की बात है ? साथ ही राधा की जन्मकथा भी दिव्य है उससे श्रीराधा की अलौकिकता का ज्ञान सहज मे ही हो जाता है ।

राधा जन्म कथा—पद्मपुराण ब्रह्म खण्ड, अध्याय ७ के अनुसार राधा का जन्म भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी को वृषभानु की यज्ञभूमि मे हुआ था । जिस समय वृषभानु गोप यज्ञ के लिये भूमि का शोधन कर रहे थे उस समय उन्हें एक कन्या (राधा) मिली । वृषभानु ने उसका कन्या के समान ही पालन किया था ।

द्वितीय कथा—ब्रह्मवैवर्त ब्रह्म खण्ड के अनुसार कल्प के आरम्भ में गोलोक मे समस्त देवगण रास में दर्शन के लिये उपस्थित हुये थे । रास के पूर्व श्री कृष्ण के वाम पार्श्व मे एक कम्पन हुआ और श्रीराधा प्रकट हुई । 'राधा' शब्द भी इस कथानक की सूचना देता है क्योंकि 'रा' का अर्थ है 'रास मण्डल मे प्रकट हुई' तथा धा का अर्थ है 'प्रकट होते ही कृष्ण के चरणो मे अर्घ्य समर्पित करने के लिये दौडी'—

'रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ।'

---

१ सिद्धान्त रत्नावली—वेदान्त कामधेनु (हरिव्यास देवाचार्य कृत)।

एक बार श्री राधिका को कृष्ण और विरजा के विहार का पता लगा तो वे मान कर बैठी। कृष्ण के बहुत मनाने पर भी उनका मान कम न हुआ, इस बीच 'सुदामा' नामक कृष्ण का सखा भी आ गया और राधिका को कटु शब्दों मे भर्त्सना करने लगा। उन्होंने सुदामा को असुर होने का शाप दिया तथा सुदामा ने भी कोपावेश मे आकर राधिका को भी कुछ काल के लिये कृष्ण से वियोग होने का शाप दिया। इस प्रकार, रासेश्वरी श्रीराधा के भारत वर्ष मे अवतरित होने की भूमिका बनी, उसके नित्य रास की नित्य निकुंज लीला की एक झाँकी जगत् मे प्रकाशित होने की प्रस्तावना पूर्ण हुई।[1] श्रीराधा वृषभानु पत्नी के गर्भ मे पधारी। तथा भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी को प्रसव के पूर्व एक ज्योति फैल गई, उदर से केवल वायु मात्र ही निकली किन्तु उस दिव्य ज्योति से एक बालिका उनके समीप दिखलाई दी। कीर्तिका ने यही समझा कि मैंने ही इसे उत्पन्न किया है, यह बालिका श्रीराधा बनी। बाल्यावस्था मे ही उन्हे एक बार कृष्ण का साक्षात्कार हुआ। नन्द ने अपनी गोद मे से राधा की गोद मे कृष्ण दिये। वे अन्तर्हित हो गये और एक किशोर कृष्ण प्रकट हुए। राधिका भी किशोर बनी और ब्रह्मा ने उनका एकान्त रास स्थल के निकट पाणिग्रहण कराया, तदुपरान्त वे पुन शिशु बने और राधिका उन्हे नन्द को दे गई।

राधा को वियोग का काल पूर्ण करना पडा। बाह्य रूप से कृष्ण द्वारका गये और राधा वृन्दावन मे रही, उनका कुरुक्षेत्र मे मिलन हुआ—

'प्रिय सोऽयं कृष्ण सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयो सगम सुखम्
तथाप्यन्त खेलन्मधुरमुरली पचम जुषे
मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृह यति।'[2]

तथा— 'राधा माधव भेंट भई
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृग गति ह्वै जु गई।'

उक्त पद्यो मे राधा-कृष्ण मिलाप का स्पष्ट वर्णन है। पद्म पुराण के 'पाताल खण्ड' मे राधा को आद्या प्रकृति भी लिखा है। दुर्गा आदि देवियाँ राधा की कला के करोडवें अश के तुल्य हैं। राधा के समान न कोई अन्य नारी है और न कृष्ण के समान अन्य कोई पुरुष—

---

१ जगज्जननी श्रीराधा, पृष्ठ ४५०।

२ भारतीय वाङ्मय मे राधा, पृष्ठ ४८८।

'न राधिका समा नारी न कृष्ण सदृश पुमान्'[1]

देवी भागवत[2] मे महाविष्णु की उत्पत्ति राधा द्वारा सिद्ध की है। उक्त पुराण मे राधा के मन्त्र का स्वरूप अपविधि आदि का सुन्दर निरूपण है। 'श्रीराधायै स्वाहा राधिका का मन्त्र है तथा इसके आदि मे माया बीज ह्रीं का प्रयोग करने से श्रीराधा वाछा चिन्तामणि मन्त्र बन जाता है जिसका स्वरूप है— ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा'। राधिका की पूजा के बिना कृष्ण की अर्चा म किसी का अधिकार नही है। इसलिये वैष्णवो का परम कर्तव्य है कि वे कृष्ण पूजा से पूर्व राधापूजन करें—

कृष्णार्चाया नाधिकारो यतो राधर्चन विना
वैष्णवै सकलैस्तस्मात कर्तव्य राधिकार्चनम् ॥[3]

श्रीमद्भागवत मे प्रत्यक्ष रूप से राधा का नाम निर्दिष्ट नही हुआ फलत राधा के अस्तित्व पर भी आधुनिक विद्वान् सशकित हुए। सर्वथा नाम का अभाव या राधा शब्द ही भागवतकार को पता नही यह कथन भी अनुचित है क्योकि भागवत मे स्पष्टत उल्लेख भी उपलब्ध है—

'नमो नमस्तेऽस्त्वृषभायसात्वता
विदूर काष्ठाय मुहु कुयोगिना
निरस्त साम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रस्यते नम ॥' (भा २।४।१४)

उक्त श्लोक मे ऐश्वर्यवाचक राधस् शब्द के तृतीया विभक्ति के एक वचन म राधसा बना है। 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार है। वल्लभाचार्य ने इस श्लोक म राधा का सकेत भी माना है। राधस् भगवान् की शक्ति है इसक साथ भगवान् गृह म ही रमण करते हैं—

कांचिद् भगवत सिद्धिरपिराधस् शब्द वाच्या भगवदीयो रस स्तत्रैव प्राप्तव्य। गृह च तत्रैव राधस् शक्ति वष्टितो भगवान् स्वरूपानन्दे विहरति।' (सु २।४।१४)

वीर राघवाचार्य ने 'अनयाराधितोनून की टीका म लिखा है कि

---

१ पद्म पुराण, पाताल खण्ड, अध्याय ७७, श्लोक ५१।
२ देवी भागवत स्कन्ध ६ अध्याय ३।
३ भारतीय वाङ्मय मे श्रीराधा, पृष्ठ १७।

ा के साथ एकान्त स्थल में गई गोपी ने अवश्य ही ईश्वर की आराधना जन्म मे की है—

'अनया कृष्णेन सह यातया भगवान् हरिरीश्वरो नूनमाराधित पूर्व-मनीति शेष । (भा च च १०।३०।२८)

भागवतचन्द्र चन्द्रिकाकार ने कृष्ण के माहात्म्य का ही मुक्त कण्ठ से नही किया फलत राधा के नाम की चर्चा में उनका मन नही रमा, इसमें चर्य नही किन्तु पूर्व जन्म मे इसने हरि का आराधन किया है इससे स्पष्ट ा के गोलोक वास का सकेत दिया है । सनातन गोस्वामी का मत है कि ा का नाम स्पष्ट रूप से भागवत मे नहीं है इसमे आश्चर्य की बात नहीं कि शुकदेव मुनि परम रहस्यमय लीला मे निमग्न हो गये थे । अथवा ाका विरहाग्नि कणिका से दग्ध हृदय श्री 'शुकदेव' देहानुसधान विरहित हो थे (भागवतामृत कारिका)—

गोपीना विततादभुत स्फुटतर प्रेमानलार्चिच्छटा
दग्धाना किल नाम कीर्तन कृतात् तासा विशेषात् स्मृते
तत्तीक्ष्णो ज्जलनच्छिखाग्र कणिकास्पर्शेन सद्यो महा
वैकल्य स भजन् कदापि न मुखे नामानि कर्त्तु प्रभु ।'

निम्बार्क सम्प्रदायानुवर्ती श्री शुकसुधी ने अपनी टीका मे लिखा है राधाकृष्ण विहार अत्यन्त गोप्य है अत केवल 'विहार' शब्द का ही उल्लेख ा है—

'विशेषतस्तयासह विहारोऽतिगोप्यत्वान्नोक्त तस्या स्वरूपादि निर्णय ा ग्रन्थेपु द्रष्टव्य ।' (सि प्र १०।३०।२८)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भी यह माना है कि गोपियो के समक्ष राधा का ा निर्देश शुकदेव जी न जान बूझ कर ही नही किया (सा द १०।३०।२८)। म स्कन्ध मे सर्वाधिक राधा का उल्लेख गौडीय वैष्णव टीकाकारो ने ही ा था ।

'अनया राधितो नून भगवान् हरिरीश्वर । (भा १०।३०।२८)
ालीला मे कृष्ण के अन्तर्धान के समय गोपियाँ रमण रेती मे उनके पद-हो का अन्वेषण कर रही थी किसी गोपी का पद चिन्ह उन्हे दिखलाई और उन्होने कहा कि अवश्य ही इसने भगवान् हरि ईश्वर की आराधना है । सनातन गोस्वामी ने राधा का उल्लेख इसम माना है—

'श्रीराधादेव्यास्तानि पदानि परिचित्याश्वस्ता स्तन्नाम निरुक्ति द्वारा

52864

तस्या भाग्य सद्रूपं माहु । ·······················अनयैवाराधित, आराध्य वशीकृतः नत्वस्माभि । राधयति आराधयतीति श्रीराधा नामकरण च दर्शितम् । (वृ वै. तो १०।३०।२८)

जीवगोस्वामी का भी यही मत है (वै. तो. १०।३०।२८)—

'····· ·····राधयति आराधयतीति राधेति नामकरणचदर्शित·········।'

विशुद्ध रस दीपिकाकार का मत तो यह है कि अभिधाशक्ति की अपेक्षा व्यजना का महत्व है—

'·············अत्र साक्षान्नामानुक्तिश्च विपक्षादि समुदाय गोपनीयत्वाद्रसिकाना मते व्यजनाया एव मुख्यत्वं न तु मुख्याया इति सहचरीणामभिप्राय.।' (विशुद्ध रस दीपिका १०।३०।२८)

कृष्ण ब्रह्म है, राधा उनकी शक्ति है, वह मन वाणी से अगोचर है एव आत्मतत्व अनिर्वचनीय है वाध्व वाल्कल का दृष्टान्त दिया है। आत्मा क्या है? इस प्रश्न पर ऋषि मौन हो गया—

'अवचने नैव प्रोवाच' मौन द्वारा ही उत्तर हो गया कि वह अनिर्वचनीय है। 'परोक्ष प्रिया हि देवा' इस श्रुति को उद्धृत करते हुए धनपति ने लिखा है कि राधा का स्पष्ट नाम निर्देश न करने से भागवत ग्रन्थ गम्भीरार्थक सिद्ध हुआ है (गूढार्थ दीपिका १०।३०।२८)—

'·· ··············अनेन राधयत्याराधयत्याऽऽराध्यते वा राधेत्यर्थात्तन्नाम सूचित तथा च तादृशी राधैवातस्तस्या एव पदानीति·· ··········स्पष्ट नामाक्षर प्रतिपक्षाणा गोपीना राधाया वा सकोचान्मुनिना ब्रह्मवैवर्तादौ तन्नाम्न स्पष्टमुक्तत्वात् तत एव गोपी नामानि ज्ञातव्यानीति वस्या··········· एतद् ग्रन्थस्य गम्भीरार्थकत्वच ध्वनितम् ।।'

धनपति ने राधित. मे 'शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्य' से पर रूप होना लिखा है—

'··· ·········श्री कृष्णो राधित राधामेवेत प्राप्तः शकन्ध्वादित्वात् पररूप ।' (वही)

राधा कृष्ण के वाम भाग मे सर्वदा स्थित है—

'वाम भागे स्थितां तस्य राधिका परदेवताम्'

राधा माधव एक ही रूप हैं—

'तस्माज्ज्योति रभूद्द्वेधा राधामाधव रूपकम्'

बिना राधा के माधव की पूजा भी निष्फल है—

'गौर तेजो बिना यस्तु श्याम तेज समर्चयेत्'

वृन्दा राधा का ही नाम है—

'ब्रह्मवैवर्त्तोक्तेपु श्रीराधिका षोडष नाम सु वृन्देति तन्नाभोक्ते श्रीराधा वनमित्यर्थ. ।' (विशुद्ध रस दीपिका १०।२६।१६)

विशुद्ध रस दीपिकाकार ने कृष्ण के स्वाधीन पति होने का उल्लेख किया है। जीवगोस्वामी ने दाम्पत्य व्यवहार भी राधिका के साथ सिद्ध किया है (वै तो १०।३०)—

'अत्र वक्ष्य माणानुसारेण श्रीराधयैव सहान्तर्द्धान ज्ञेयम्।'

अनेक श्लोक विभिन्न ग्रन्थो से उद्धृत किये हैं, जिनमे राधा का उल्लेख है (विशुद्ध रस दीपिका १०।२६) यथा—राधा ही सर्व मुख्या हैं—

'यथा राधा प्रिया विष्णौस्तस्या कुण्ड, प्रिय तथा
सर्वं गोपीपु सैवैका विष्णोरत्यन्त वल्लभा ॥'

राधा महाभाव रूपा है—

'महाभाव स्वरूपेय नित्यदा वार्षमानवी
सखीप्रणय सद्गन्धवरोद्वर्तन सुप्रभा ॥'

राधा हरि का अर्द्ध भाग है—

'हरेरर्द्ध तनू राधा राधिकार्द्ध तनूर्हरि
अनयोरन्तरादर्शीमूर्त्यवच्छेदकोऽधम ॥'

रासलीला मे विभिन्न लीलाएँ वर्णित हैं उनमे राधिका के साथ अन्तर्द्धान क्रीडा भी है (विशुद्ध र दी १०।३३।१७)—

'वशी सजल्पितमनुरत राधयान्तर्धि केलि
प्रादुर्भूयासनमधिपट प्रश्न कूटोत्तरच ।
नृत्योल्लास पुनरपि रह क्रीडन वारिखेला
काननारण्ये, विहरणमिति, श्रीमती, रासलीला ॥'

राधा का विशेष विवेचन निम्नलिखित स्थलो पर सर्वाधिक है—

'.. ...... योगमाया मुपाश्रित ।' (भागवत १०।२९।१)

योगमाया राधा का नाम है (वृहत्तोषिणी १०।२९।१)—

'योगस्य सम्भोगस्यमायो मान पर्याप्तिर्यस्या सा योगमाया श्रीराधा । अथवा योगस्य=सम्भोगस्य मा लक्ष्मी सम्पत्तिरितियावत् ता याति प्राप्नोतीति योगमाया श्रीराधैव ता मनसा उपाश्रित ....पाद्मे प्रसिद्धमेव ।'

किशोरी प्रसाद ने 'श्री शुक उवाच' के 'श्री' शब्द से राधा का सकेत माना है—

'श्रयते आश्रयते हरिरेनामिति श्री तस्या श्रियः परम रमायाः श्रीराधाया मुखकमलेन उपलक्षित श्री शुक उवाच—श्रीरश्रति योग्यत्वच्छ्रीराधैव।' (विशुद्ध र. दी. १०।२६।१)

इसी अभिप्राय से श्रीधर स्वामी ने—'.....जयति श्रीपति.' कारिका मे 'श्री' शब्द राधा के द्योतनार्थ ही रखा था—

'एतदेवाभिप्रेत्याहुः श्रीधरस्वामिपादा ....श्रीपतिरिति दाम्पत्यरीति श्रीराधा माधवयोरेवेत्यभि प्रायेणोक्तं.......... रासमण्डलस्य श्रीपति रूपेणैव मण्डन इत्यर्थः।' (वही)

योगमाया का अर्थ भी राधा माना है। रामनारायण नामक टीकाकार ने योगमाया के अनेक समास कर राधा अर्थ का ही उल्लेख किया है (भावभाव विभाविका १०।२६।१ से ३) मे—

'...... ....ता राधा मुपाश्रित एव रन्तुं मनश्चक्रे।............श्रीमत्या राधाया कृपाभवतीति.........मा शोभामाययति या राधा।'

रमा का अर्थ राधा है—'नित्यं प्रियाया श्रीमत्या राधाया मुखम् ....रमाननाभम्' (बृ. तो. १०।२६।३)

सनातन गोस्वामी ने 'रमा' शब्द से राधा की ही सिद्धि की है—

'रमतीति रमा श्रीराधा।' (वही)

जीवगोस्वामी ने रमा को महालक्ष्मी रूप भी माना है—

'महालक्ष्मी रूपत्वेन वा रमा अत्र श्रीराधा।' (क्र. स. १०।२६।३)

वल्लभ ने स्वामिनी शब्द का प्रयोग श्रीराधा के लिये किया है—

'.... ....तत्रोपस्तु स्वामिन्यागमनादिनाग्रे भावीति ज्ञापयितुम्।' (सु. १०।२६।३)

विश्वनाथ ने रमा की व्युत्पत्ति भिन्न प्रकार से की है, रमा का अर्थ राधा तथा गोपी माना है—

'रमा=श्रीराधा, रमन्ते रमयन्तीति वा रमा गोप्यश्च तासामाननस्येवाभा यस्य तामिति (सा. द. १०।२६।१)। ....जगौ कल वामदृशा मनोहरम्' मे श्रीराधा का मन्त्र भी गुप्त है। 'कलम' मे ककार, लकार वर्ण से 'कल' 'वामदृशा' ईकार का वाचक है, 'मनोहरम्' से 'मनः' अनुस्वार का, 'हरम्' अर्द्धमात्रा का द्योतक है, अतः (क्लीम्) की सिद्धि की गई है—(वि. र, दी. १०।२६।३) से

'कलमित्यादिना वाक्येन गुप्तबीजमेवोद्धनमिति ज्ञेयम् तथाहि कल

ककार लकार च वामदृक् ईकार मन अनुस्वार हरमर्द्धमात्रात्मकमिति ततश्च श्रीराधिकाया स्वस्य महामन्त्रादिबीजमुभयोरैकीभाव सूचक जगावित्यर्थ ।'

गूढार्थ दीपिकाकार ने (गू दी १०।२९।३) मे रमा का अर्थ 'राधा' तथा 'क्ली' को कामबीज माना है— 'कलम्—कामबीजम् (क्लीम्)'

कृष्ण के अन्तर्हित होने के उपरान्त गोपिया अत्यन्त दुखित हुई, जब कृष्ण का दर्शन हुआ तो उनका प्रश्नोत्तर प्रारम्भ हुआ, सनातन गोस्वामी उस समय राधा की स्थिति वहाँ नही मानते हैं उसके पश्चात् राधा का आना मानते है—

' ·· परमसुन्दरी श्रीराधा तयाद्दताभि प्राप्ताभि एतेन प्रथम युति प्रयुति समये तासा मध्ये श्रीराधा नासीत् किन्तु कृष्णस्यापहिन्दावगमे जात एव सा मिलिनति ताभिर्वृत परितो वेष्टित सन् अच्युत ।' (वृ तो १०।३२।१०) अत राधा का रासलीला मे गहरा सम्बन्ध है। रासलीला को राधा लीला भी कहें तो कोई अयुक्ति नहीं —

'वस्तुतस्तु श्रीराधाया एव रासलीलेति ।'

'धन्यालोके मुमुक्षुर्हरिभजनपरोधन्यधन्यस्ततोऽसौ
धन्योय. कृष्णपादाम्बुज रस परमोरुक्मिगीअप्रियोऽत ।
याशोदेय प्रियोत सुबल सुहृदतोगोप कान्ता प्रियोऽत,
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्यति रस विवशा राधिकासर्वमूर्द्धा ॥' (वही)

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि श्रीराधा का नाम 'रमा' आदि शब्दो द्वारा स्पष्ट उल्लिखित है तथा शतशः प्रमाण टीकाकारो ने राधा के सम्बन्ध मे विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थो से उद्धृत किये हैं जो उक्त टीकाओ के अनुशीलन से और भी अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध होंगे । साथ ही यदि भागवत मे से राधा का अस्तित्व समाप्त किया जाऐ तो भागवत की रसमयता ही लुप्त हो जायगी, परवर्ती साहित्य जो भागवत से अनुप्रमाणित है राधा के वर्णन से ही समृद्ध है, यदि उसका मूल व्यर्थ है तो उसका अस्तित्व भी कपोल कल्पित सिद्ध होगा, इस प्रकार रचयिता सिद्ध महात्माओ की आत्मा को 'जिन्होंने अपनी आत्मिक शक्ति का केन्द्र श्रीराधा को माना था' ठेस पहुँचाने का यत्न भी करेंगे जो अत्यन्त वर्ज्य है ।

व्रज

'व्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरन्द ।
व्रज वनिता सब पुष्प हैं मधुकर श्रीव्रज चन्द्र ॥'

व्रज की महिमा का गान भागवतकार ने मुक्त कण्ठ से किया है। भागवत के प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण और व्रजधाम मे कोई भेद सिद्ध नही किया। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने देवो का मद भग किया उसी प्रकार व्रजधाम ने न केवल भूतल के धामो का अपितु गोलोक वैकुण्ठादि धामो का भी अपकर्ष सिद्ध कर दिया है । यह अलौकिक भूमि है ब्रह्मादि देवो ने उद्धवादि ज्ञानियो न इस धाम मे अपना जन्म सार्थक माना है एव भविष्य मे इसका प्रतिक्षण सयोग वाँछनीय माना है । इस प्रकार की महिमा किसी अन्य धाम की उपलब्ध नहो होती और यदि किसी की उपलब्ध भी हो तो उसे परब्रह्ममय नही कहा जा सकता, व्रज ब्रह्ममय है क्योकि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं ।

व्रज मे तो यह परम्परा प्रचलित है कि व्रज भगवत्स्वरूप हैं, जिसे 'श्रुतियाँ' 'अव्यक्त' कहती हैं, मुनि 'व्रत' कहते हैं, योगी 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' के अनुसार समस्त विश्व को 'ब्रह्म' कहते हैं, दार्शनिक 'सत्ता' को ब्रह्म सिद्ध करते हैं वही साक्षात् व्रजभूमि है जो धेनुपालों को अत्यन्त प्रिय है--

व्यासदेव ने वृंदावन का स्वान होने के लिए प्रार्थना की है—

'हौ हु मन वृन्दावन को स्वान।
जो गति तोकौं देहै ऐसी सोगति लहै न आन।।' (वही)

'युगल शतक' के अनुसार वृंदावन के बाहर हरि मिलें तो नही देखने, क्योंकि हरि इस धाम के बाहर है ही नही—

'रे मन वृन्दाविपिन विहार।
विपिनराज सीमा के बाहर हरिहू कौन निहार।
यद्यपि मिलें कोटि चिन्तामणि तदपि न हाथ पसार।
जैसी श्री मट धूलि धूम रतन यह आसा सरधार।।' (वही)

ब्रजवासिया के टूक मे मेरा जीवन व्यतीत हो। व्यासदेव कहते है—

कर करवा कामरि काधे पर कुजन मांझ बसेरौ
ब्रजवासिन के टूक भूख मे घर घर छाछि महेरौ।
छुधा लगै तब मांग खाउगो गनो न सांझ सवेरौ।' (वही)

ब्रजवासियो म आचार विचार का अभाव है तब भी हरि प्रसन्नतापूवक उनका दिया प्रसाद पाते हैं—

'ब्रजवासिन के पावै टूक। मांग खाइ तब लगै जु भूख।
विनु आचार देत ब्रजवासी। हरि जेंवत तिनकें सुखरासी।।'[1]

सन्तो की इस वाणी मे ब्रज की अपार महिमा है अत यह सम्प्रदायचार्यो क निवासकाल से है यह कथन भी अनुपयुक्त होगा क्योंकि इस धाम का महत्व तो वैदिक युग से देखा जाता है। ऋग्वेद विष्णुसूक्त से—

'ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै यत्र गावो भूरि शृगा अयास।

इस मन्त्र म—राधा सर्वेश्वर के कुजो की प्राप्ति के लिये कामना की है जहाँ लम्ब सीग वाली गायें विचरण करती है। यह मन्त्र यजुर्वेद मे भी उपलब्ध है। प्राय सभी उपनिषदो म वृंदावन धाम की महिमा उपलब्ध होती है। पुरुषाथ बोधिनी मे ब्रज के वनो का भी उल्लेख है—

'ओ कियन्ति वनानि भद्र श्री, लोह ।'[2]

इनमे सात वन श्री यमुना जी से पश्चिम मे हैं पाच वन यमुना जी से पूव म है।

---

१ सर्वेश्वर वृन्दावनांक,' पृष्ठ १७—स्वामी रसिकदेव।

२ पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय २५६।

१२ वन–वृन्दावन, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, काम्यवन, खदिरवन, भद्रवन, भाण्डीरवन, बेलवन, लोहवन, महावन ।

१२ उपवन–राल, राधाकुण्ड, बद्रीनारायण, बरसाना, सकेत, नन्दी, कोकिलावन, कोटवन, खेलावन, माठवन, यावट, विद्रुमवन ।

४ धाम–आदिबद्री, सेतुबन्ध (काम्य वन मे), द्वारकाधाम (कोसी मे), जगन्नाथधाम (दाऊजी मे) ।

३ पर्वत–गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दीश्वर ।

७ सरोवर–मानसरोवर, कुसुमसरोवर, चन्द्रसरोवर, नारायण सरोवर प्रेमसरोवर, पावनसरोवर, मानसरोवर ।

७ गंगा–*कृष्ण गगा, मानसी गगा, अलक गगा, पारल गगा, गोमती गगा, पाचाल गगा, श्याम गगा ।*

८ वट–वशीवट, शृ गारवट, सकेतवट, किशोरीवट, अक्षयवट, भाण्डीर वट, अद्वैतवट, यतनवट ।

ब्रज के अन्तर्गत ८४ कोस के स्थान आते हैं, उनमे गोकुल, गोवर्द्धन, वृन्दावन, नन्दग्राम, बरसाना आदि प्रमुख स्थान हैं ।

भगवत् धाम दो प्रकार का है—प्रकट और अप्रकट । जीवगोस्वामी ने कृष्ण सन्दर्भ मे अप्रकट वृन्दावन को प्रकट वृन्दावन का अप्रकट लीलानुगत प्रकाश कहा है (सर्वेश्वर वृन्दावनाक, पृ० ८८)—

'श्री वृन्दावनस्य अप्रकटलीलानुगत प्रकाश एवगोलोक' ।'

अप्रकट लीला भौम वृन्दावन मे होती हैं । ब्रज को देखते ही ब्रज-चन्द्र की स्मृति नेत्रो के आगे आ जाती हैं । वत्सहरण लीलाप्रसग मे श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का मोह विस्तार दूर करते हुए *ब्रज की गोपिकाओ एव गौओ का स्तन पान कर उन्हे धन्यातिधन्य सिद्ध किया है । भागवत* मे ब्रह्मा द्वारा उनकी स्तुति करायी गयी है—

'अहोऽति धन्या व्रज गोरमण्य स्तन्यामृत पीनमतीव ते मुदा
यासा विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वरा ।
अहो भाग्य महोभाग्य नन्द गोप व्रजौकसाम्
यन्मित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातनम् ॥' (भा १०।१४।३१-३२)

'मथुरा भगवान् यत्र नित्य सन्निहितोहरि' (भा. १०।१।२८)

उक्त श्लोक में जीवगोस्वामी ने भगवान का तिरोधान मानने वाले विद्वानो के मत का खण्डन भी किया है, उन्होंने लिखा है कि—

'नित्यमिति कालादि दोषेण अन्यत्रैवान्तर्धानं निरस्तम् अस्याश्च-नित्यत्व मानीतम्-

'अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
पुरी मदीयां परमा सनातनीम्
सुरेन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र संस्तुताम्
मनोरमा ता मथुरा पराकृतिम् ।।' (वै. तो. १०।१।२८)

आचार्य वल्लभ ने लिखा है कि जो सर्व तत्वो में सन्निविष्ट है एवं भूमि मे भी जहाँ विद्यमान है, वह स्थान मथुरा है-

'सर्वतत्वेषु यो विष्टः स भूमावपि संगतः
स नित्य क्वचिदेवास्ति तत् स्थानं मथुरा स्मृतः ।' (सु. १०।१।२८)

श्रीकृष्ण यही निवास करते है, कभी-कभी आविर्भाव द्वारा ऐसे प्रतीत होते हैं कि वैकुण्ठादि से आये हैं किन्तु यह कथन उचित नही। वैकुण्ठ, श्वेत-द्वीपादि के अ श ही यहाँ आकर नित्य मे विलीन हो जाते हैं एवं पुनः अपने-अपने धाम चले जाते हैं, तृतीय स्कन्ध मे स्पष्ट निर्देश भी है (सा. द. १०।१।२८)--

'परावरेशो महदशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः।
जयति ते धिक जन्मनाव्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि ।।'
(भा. १०।३१।१)

उक्त श्लोक मे ब्रज मे इन्दिरा का शश्वत् निवास माना है।

श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि—

'हे दयित ! तेजन्मना व्रजोऽधिक यथा भवति''' '''इन्दिरा लक्ष्मीरत्रहि श्रयते अजमल कृत्य वर्तते।' (भा. दी. १०।३१।१)

सनातन गोस्वामी ने वैकुण्ठेश्वरी का शरणागत भाव से भी ब्रज मे निवास स्वीकार किया है, यहा 'ब्रज एव तज्जन्मनिश्चयाज्जन्मनाव्रज इत्युक्तम्' इस अंश से श्रीकृष्ण का जन्म भी ब्रज (गोकुल) में सिद्ध किया है। (बृ. तो. १०।३१।१)

जीव गोस्वामी ने 'जयति' पद से ब्रज का भौम, असीम वैकुण्ठ से भी अधिक महत्व माना है एवं 'हि' शब्द का अर्थ 'निश्चयपूर्वक' माना है अतः लक्ष्मी यहाँ ही रहती है यह अर्थ किया है—

'लक्ष्मीः शश्वदेव अत्र हि अत्रैव तिष्ठतीत्यर्थः' (बृहत् क्र.म. १०।३१।१)

आचार्य वल्लभ ने इस श्लोक की टीका मे यह लिखा है कि यद्यपि भगवान का जन्म मथुरा मे हुआ था तथापि व्रज का ही वैशिष्ट्य अधिक है। लक्ष्मी हीनभाव से यहाँ सर्वदा निवास करती है, क्योकि बैकुण्ठ मे तो वह एक ही है यहा हम अनेक (गोपिया) हैं, तो लक्ष्मी विचार करती है कि मेरा भी अवसर कब आये और मैं भगवान की शरण प्राप्त करूँ— '

'"...त्वदवतारेण व्रज सर्वोऽपि कृतार्थ वैकुण्ठादपि उत्कर्ष नहि वैकुण्ठे भगवानेव लीला करोति यद्यपि मथुराया जन्मजात तथापि तेन जन्मना न मथुरा सर्वोत्कर्षेणस्थिता किंतु व्रज एव।" अत्र व्रजे इन्दिरा सर्वदा श्रयते हीन भावेनाश्रय कुरुते वैकुण्ठेतु सैव नियता भार्येति न तस्या सर्वदाश्रयण कर्तव्य भवति, इह तु तादृश्योवयमनेका इतितस्या स्वास्थ्य भावात् कदावा ममावसरो भविष्यतीति निरन्तर सेवते।' (सु० १०।३१।१)

वल्लभाचार्य की उपासना गोकुलवासी कृष्ण की है, अत इस श्लोक की व्याख्या मे अपना मनोयोग प्रकट किया है।

'विश्वनाथ चक्रवर्ती ने व्रज को सम्पूर्ण लोको से उत्कृष्ट सिद्ध किया है। बैकुण्ठ से भी व्रज का अधिक महत्व है क्योकि बैकुण्ठ मे लक्ष्मी की सेवा होती है, व्रज मे यह सेवा के लिए वास करती है (सा द १०।३१।१)। विश्वनाथ ने जयति ते०' श्लोक के 'अत्र' शब्द का अर्थ 'वृन्दावन' किया है गोकुल नही। 'अत्र वृन्दावने हि निश्चित मेव'। स्पष्ट है कि यह उनकी सम्प्रदाय की चिन्तन-धारा का प्रभाव है अन्यथा जब कृष्ण का जन्म गोकुल मे है तो वृन्दावन का उल्लेख अनावश्यक है। आचार्य वल्लभ का मत समीचीन है।

रामनारायण ने लिखा है कि गोपिया भगवत् रूपा हैं, वे भी यदि व्रज की महिमा का गान करती हैं तो इससे बढकर व्रज की महिमा का उदाहरण क्या मिलेगा ? (भावभाव वि १०।३१।१)

'..."तया साक्षाद् भगवद्रूपा गोप्योऽपि तदाविर्भावाय व्रज स्तुवन्तीत्यद्भुतो व्रजमहिमेति भाव।'

बैकुण्ठ से अधिक होने का कारण यह है कि बैकुण्ठ मे भगवान का रमणादि में सकोच होता है यहां नही, अत यह व्रज श्रेष्ठ है।

लक्ष्मी भगवान के अवतार के कारण यहां आ गयी हो यह नही अपितु 'श्रयत' आत्मने पद का प्रयोग इन्दिरा को ही पक्षप्रद है अत वह अपने भाग्य की सराहना करती हुई यहा निवास करती है।

धनपति सूरी ने भी यह सिद्ध किया है कि व्रज समस्त लोको मे श्रेष्ठ है। (भा. सू दी १०।३१।१)

'अपरस्मिन् लये दृष्टमस्माभिः परम पदम्
राजते यत्र तु महान् गोवर्धन गिरीश्वर ॥'[1]

पद्मपुराण मे इसे अनादि कहा है—

'अनादिर्हरिदासोऽय भूधरो नात्र सशय ।'[2]

तथा भागवत मे भी इसे हरिदासवर्य लिखा है—

'हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो ·········।'[3]

व्रजवासियो पर अनुग्रह के लिए ही हरि गिरिराज बने थे—

'·······व्रजवासिन हित कारने आये हरिगिर होय ॥
मोर पखौआ सिर धरें उर राजत वनमाल ।
सब देखत भोजन करें मानों श्री गोपाल ॥'

गोप भोजन करते समय कहते हैं कि गिरिराज तो ऐसे लगते है कि यह मानो गोपाल ही हो। गोपो को निश्चय नही हुआ कि यह नन्दकुमार ही भोजन कर रहे हैं। सूरदास ने भी कहा है—

'राधा ललिता सो कहें तेरे हिरदै समाय ।
गहें अगुरिया नन्द की ढोढा पूजा खाय ॥

केवल राधा को ज्ञान था कि कृष्ण ही गिरिराज रूप मे आये हैं—

'गोप रूप धरोऽह वै गोविन्द इति विश्रुत
गोवर्धनाभिधा रूप द्वितीय मे प्रकाशितम् ।'[4]

उक्त श्लोक मे भगवान ने कहा है कि गोप रूप धारण करने मे गोविन्द तथा गोवर्धन ये दो मेरे ही रूप हैं। पर्वतो का राजा गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्ण का ही रूप है जिसके कि दर्शनमात्र से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है—

'गिरिराजो हरे रूप श्रीमान् गोवर्धनो गिरिः
तस्य दर्शन मात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥'[5]

शाण्डिल्य सहिता मे इसके पूजन का विधान है—

'गोवर्धन शिलाभ्यर्च्य स्नानगन्धस्रगादिभि ।'[6]

---

१ वल्लभप्रकाश, वर्ष ५, ग्रीष्मांक, पृष्ठ ७ ।

२. पद्मपुराण, पातालखण्ड, अध्याय ७३, श्लोक ३६ ।

३. भागवत १०।२१।१८ ।

४. बृहद् ब्रह्म सहिता, पाद ३, अध्याय १, श्लोक १८२ ।

५. गर्ग सहिता, गिरिराज खड, अध्याय १० ।

६ शाण्डिल्य सहिता, भक्ति खण्ड, अंश ६, श्लोक ४५ ।

गिरिराज की सेवा का माहात्म्य भी स्पष्ट है—

> 'गिरिराज शिलासेवा यः करोति द्विजोत्तम'
> सप्तद्वीप महातीर्थाऽवगाह फलमश्नुते ॥''

इसकी वार्षिक पूजा का महत्व भी गर्ग संहिता में लिखा है—

> 'गिरिराज महापूजा वर्षे वर्षे करोतियः
> इह सर्व सुख मुक्त्वाऽमुत्र मोक्षं प्रयाति सः॥'[1]

गोवर्धन की कथा—त्रेता में राम ने लंका पर चढ़ाई की तब समुद्र पार करने के लिए सेतु बनाया गया, वानर अनेक पर्वतों को लाये। हनुमान जब गोवर्धन पर्वत को उत्तर की ओर से ले जा रहे थे तब आकाशवाणी हुई कि सेतु का कार्य समाप्त हो गया है, अतः हनुमान ने इसे व्रज में ही रख दिया। इस पर गोवर्धन पर्वत ने कुपित होकर हनुमान से कहा कि तुमने मुझे मार्ग में ही क्यों डाल दिया। भगवान के चरण स्पर्श से मैं वंचित रह गया। तब हनुमान ने कहा कि द्वापर में भगवान अवतार लेंगे एवं तुम्हारे शिखरों पर विहरण कर तुम्हें आनन्दित करेंगे, सब देवगण भी तुम्हारा पूजन करेंगे, तुम कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोप तथा गायों की रक्षा करोगे।

हनुमान के राम के पास पहुँचने पर राम ने पूछा कि मेरे भक्त गोवर्धन को क्यों नहीं लाये? तब हनुमान ने उत्तर दिया—मैं उसे व्रज में स्थापित कर आया हूँ। राम ने कहा—उसके लिए मैं व्रज में प्रकट होकर उसका मनोरथ पूर्ण करूँगा।'

द्वितीय कथा—एक समय पुलस्त्य ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए उत्तर हिमालय में गये वहाँ पर द्रोणाचल पर्वत की यात्रा कर उसके पुत्र गोवर्धन को देखकर द्रोणाचल से कहा कि मुझे अपने पुत्र गोवर्धन को दे दो। मैं काशी में ले जाना चाहता हूँ। द्रोणाचल ने पुलस्त्य के शापभय से आज्ञा दे दी। गोवर्धन ने पूछा तुम मुझे कैसे ले चलोगे, पुलस्त्य ने हाथ पर ले चलने को कहा। गोवर्धन ने कहा आप जहाँ मुझे रख देंगे वहीं मैं स्थिर हो जाऊँगा। इस शर्त के साथ गोवर्धन चल दिया। मार्ग में व्रज के गौरव से प्रसन्न होकर अपना भार बढ़ा दिया। अतः पुलस्त्य थक गये और इसे व्रज में रखकर लघु-

1. गर्ग संहिता, गिरिराज खण्ड, अध्याय १, श्लोक ३१।
2. व्रज भक्ति विलास, अध्याय ५।

शका करने चले गये फिर स्नान कर शुद्ध होकर आये तब गोवर्धन ने चलने से मना कर दिया। पुलस्त्य ने गोवर्धन को तिल तिल घटने का शाप दिया।[1]

तृतीय कथा—एक गोवर्धन नामक ब्राह्मण था। उसने भगवान की घोर तपस्या की। भगवान ने प्रसन्न हो वर माँगने को कहा, गोवर्धन ने अपने ऊपर बैठने को कहा। भगवान गोवर्धन के स्कन्ध पर बैठ गये। तब उसने कहा कि आप इसी तरह बैठे रहे, भगवान की कृपा से तब से वह गोवर्धन निज रूप छोडकर भगवत् स्वरूप हो गया। अत गिरिराज भगवद् स्वरूप है।[2]

श्रीमद्भागवत म गोवर्द्धन पर्वत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी महिमा का गान भागवतकार ने किया है। इसके पूजन के लिये इन्द्र के पूजन की मर्यादा का उन्मूलन भी किया गया है। गोपगण परम्परा अनुसार इन्द्र का पूजन किया करते थे। कृष्ण ने इस पूजन को देखकर नन्द बाबा से प्रश्न किया कि यह पूजन किस उद्देश्य से किया जा रहा है?—

'किं फल कस्य चोद्देश केन वा साध्यते मख' (भा १०।२४।३)

नन्द ने इस प्रश्न का समाधान करते हुए बतलाया कि—'पर्जन्य इन्द्र है मेघ उसकी ही मूर्ति है, वे प्राणियो के जीवन हैं, क्योंकि वर्षा करके सब भूतो का उपकार करते हैं—

'पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्म मूर्त्तय
तेऽभिवर्षन्ति भूताना प्रीणन जीवन पय ।।' (भा १०।२४।८)

नन्द के उत्तर को सुनकर कृष्ण ने कर्मवाद का प्रश्न किया और उसकी स्थापना की—

'कर्मणा जायते जन्तु कर्मणैव विलीयते
सुख दु ख भय क्षेम कर्मणैवाभिपद्यते ।।' (भा १०।२४।१३)

'कर्म से ही जीव जन्म ग्रहण करता है, कर्म से ही नष्ट होता है तथा सुख, दुःख, भय, क्षेम, कर्म द्वारा ही प्राप्त करता है।' यह कर्मवाद सत्पुरुषों द्वारा हेय दृष्टि से देखा गया है तथापि इन्द्र पूजा लोप के लिये इसका आश्रय लिया गया है।[3]

---

१ गर्ग संहिता, वृन्दावन खण्ड, अध्याय २।

२ नारदीय पुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय ८०।

३. 'सद्भिर्विगीतमपि कर्मवादमाश्रित्य देवता निराकरोति कर्मणेति।'
(सारार्थ दर्शिनी १०।२४।१३)

कृष्ण ने यह स्पष्ट किया कि अनेक प्रकार के पकवान आदि बनाकर गोवर्द्धन पर्वत को वलि दो इन्द्र को नहीं—

'यवस च गवा दत्वा गिरये दीयता वलिः' (भा. १०।२४।२८)

आचार्य वल्लभ ने वलि देने की प्रक्रिया लिखी है—'पर्वत के समीप समस्त पकवान आदि एकत्रित कर रखने चाहिये'—

'............ततोगिरये पर्वताय वलिर्देय. सर्वमेवानुत्तम पर्वत समीपे राशीभूत कर्त्तव्यम् ।' (सु. १०।२४।२८)

आचार्य विश्वनाथ ने बलि का अर्थ गन्ध पुष्पादि उपचार किया है—

'वलि. गन्ध पुष्पाधुपचारः ।' (सा. द १०।२८।२८)

विजयध्वज पर्वत के समीप स्थित हरि को वलि दी जाय—यह अर्थ मानते हैं—

'गिरये गिरि सन्निहिताय तन्नाम्ने हरये ।' (प. र. १०।२४।२८)

स्पष्ट है कि पर्वत जड है उसे वलि किस प्रकार दी जायगी अतः हरि का बोध ही इससे करना उचित है, यह स्वीकार किया गया है । वीर राघवाचार्य ने—

'अयं गोब्राह्मणादीनां मह्‌यचदयितोमख ।' (भा १०।२४।३०)

श्लोक की व्याख्या मे यह संकेत स्पष्ट रूप मे दिया है[1] कि गौ, ब्राह्मण आदि के अन्तर मे भी स्थित हूँ । गोवर्द्धन की अत्यधिक महिमा का कारण कृष्ण द्वारा उस रूप मे प्रवेश ही है—

'गोवर्द्धन भिषेण पृथक् स्वयं तन्मूर्तिराविर्भूय तद् वलि स्वामिनं निजदासयं त गोपाश्च सर्वानानन्दयन् वलिदानानन्तर मेव साक्षाद् तद्वलि बुभुजु ।' (वं तो १०।२४।३५)

श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण कर गोप गोपियो द्वारा प्रदत्त वलि का आस्वादन किया, किन्तु कोई पहिचान नही सका । वस्तुत कृष्ण एक विशाल शरीरधारी बन गये और गिरि पर बैठकर वलि ग्रहण करने लगे—

'कृष्णस्त्वन्यतम रूप गोप विश्रम्भण गत
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमाद् बृहद्वपु ॥' (भा. १०।२४।३५)

---

१. 'अयं मद्‌भक्तोदशो गवादीनां मह्‌यं मम च दयितः प्रियः ममाप्यन्तरात्मनो ममप्रीतिकर इतिगुरोऽभिप्रायः।' (भा चं चं. १०।२४।३०)

मैं ही गोवर्द्धन हूँ यह कहकर कृष्ण ने बलि ग्रहण की एव अन्य रूप से गोपो के साथ पूजा भी की। वस्तुत कृष्ण पर्वत के आकार के बन गये थे तथा गोपो को यह विश्वास था कि पर्वत ही इन्द्रियवान् बनकर स्थित है, कृष्ण ने गोवर्द्धन रूप मे ही अपने विस्तृत करो द्वारा पूजा ग्रहण की। गोपो को यह भी आदेश दिया कि 'आज से तुम लोग मेरा पूजन करो। मैं तुम लोगो की समस्त कामनाओ को पूर्ण करूँगा, मेरे प्रभाव से गायो को अमृत तुल्य तृणादि प्राप्त होगे—

'... बलि दूरस्थैं निकटस्थैं नन्दग्रामादि वर्तिभिर्वा व्रजवासि जनैरपरोक्षत परोक्षतोवाध्यानेन समर्प्यमाण सहस्त्र कोटि हस्तस्ततत्स्थानादति दीर्घानतिदीर्घाकृत पाणिभिरादाय ताम्तानानन्दयन्नादत् भुक्तेस्म।'

'अद्यप्रभृति चेज्योऽह गोपु चेदस्तिवादया
अह व प्रथमो देव सर्वकामकर शुभ'॥' (सा द १०।२४।३५)

इससे गोवर्द्धन का काम रूप होना स्पष्ट है। इन्द्र ने मरुद्गणो के साथ गोवर्द्धन पूजक गोपो का विनाश करने को करका वृष्टि प्रारम्भ की, कृष्ण ने एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर लिया—जैसे बालक छत्र धारण करता है—

'इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम्
दधार लीलया कृष्णश्छत्राक मिव बालक ॥' (भा १०।२५।१९)

गोवर्द्धन को समूल उखाडने से गर्त हो गया था उस गर्त मे ही समस्त गोप वत्स आदि को सुरक्षित रूप मे रखा—

'यथोपजोष विशत गिरिगर्त सगोधना। (भा १०।२५।२०)

जीवगोस्वामी का कथन है कि गोप गोवर्द्धन की पूजा एव परिक्रमा करके राधाकुण्ड के समीप वन मे पहुँच गये थे किन्तु महामेघो का आगमन देखकर सब गोवर्द्धन के निकट एकत्रित हुए।[1] कृष्ण केवल बालक नही थे साक्षात् विष्णु हैं—

'अनिर्देश्य वपु श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्।'[2]

१, 'महामेघारम्भादेव गोवर्द्धन निकटे सर्वानामानयनमवगम्यते।'
(वैष्णव तोषिणी १०।२५।१६)

२ विष्णु सहस्त्रनाम श्लोक ८३ में 'अनिर्देश्य वपु' का उल्लेख है।

आदि सहस्त्रनाम मे समागत नामो से उनकी अचिन्त्य शक्ति का बोध होता है। कृष्ण ने गोपो से कहा कि मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा, आओ मैंने यह स्थान तुम्हारी रक्षा के लिये निर्मित किया है—

'शैलोत्पाटन भूरेषामहती निर्मिता मया
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितु किं पुनर्व्रजम् ॥' (वै. तो. १०।२५।२०)

गोवर्द्धन के गर्त मे समस्त व्रज नही समा सकता ? किन्तु उसकी अचिन्त्य शक्ति से सब कुछ सम्भव है। वीर राघव ने भी 'बालक' पद से शका अपसारण के लिए उन्हे विष्णु लिखा है एव नख पर गिरिवर-धारण करने का भी उल्लेख किया है (मा च च. १०।२५।२०)—

'...... " ... एकेन हस्तेन गोवर्द्धना चल कृत्वा=उत्पाट्य......... .... सप्तवर्ष विष्णु श्रीकृष्ण लीलया... ... ... बामकर कनिष्ठिकानखाग्रेण दधारेत्यर्थ।'

गोवर्द्धन पर्वत वक्र एव विस्तृत है अत उसका धारण एक हाथ मे होना उचित प्रतीत नही होता, इसके समाधान मे आचार्य वल्लभ की उक्ति अधिक सगत प्रतीत होती है उनका कथन है कि प्रथम कृष्ण ने उस पर्वत को अपनी सामर्थ्य से हाथ पर धारण करने योग्य बनाया तदुपरान्त धारण किया था—

'...........गोवर्द्धन लम्बो विकृतश्च समेनैन हस्तेन यादृश उद्धर्तव्य. तादृशं कृत्वा पश्चाद्दधार।' (सु १०।२५।१६)

यहाँ समग्र पर्वत धारण की अपेक्षा मध्य भाग मे से एक शिला या समूह उठाया इसमे एक विशाल गर्त निकला उसके चारो ओर पर्वत की दीवाले बनी थी अत. जल भी नही आ सका, यह उपाय श्रीकृष्ण ने ढूँढ लिया था—

'तथोद्धृतवान् यथामध्ये गर्तो भवति प्रान्त भागश्चोन्नत गर्ताधिक प्रदेशे घनरूपता छाया एव धृत्वा शरणागतानाह...... "।' (सु. १०।२५।२०)

आचार्य विश्वनाथ का मत यह है कि कृष्ण ने सहारिकी शक्ति से वृष्टि तथा आकाश को स्तम्भित कर दिया था। वृष्टि का प्रभाव उन पर नही पड सका और वे गोवर्द्धन के निकट पहुँच गये। विश्वनाथ ने व्रज का विस्तार ४ योजन (१६ कोस) तथा गोवर्द्धन का विस्तार ३ योजन (१२ कोस) माना है और अचिन्त्य शक्ति का ही उल्लेख किया है—

'दिवीर्पासमये योगमायाश भूतया संहारिवया शक्त्या तावत्यपि वृष्टिराकाश एव तथा सजहे यथा स्वगृहा लिन्दादतिवेगेन।'

(सा. द. १०।२५।२०)

वेणु

वेणु मे भगवान के दो रूप उपलब्ध हैं—नामात्मक, रूपात्मक। वेणु में तीन अक्षर हैं— व + इ + अणु। 'व' का अर्थ है ब्रह्मसूत्र, 'इ' का अर्थ कामसुख, 'अणु' का अथ तुच्छ। वेणु उसका नाम है जिसके आगे सासारिक सुख एव आध्यात्मिक सुख भी तुच्छ है। इसमे सात छिद्र हैं। छः छिद्र भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, श्री, वैराग्य के द्योतक हैं, सप्तम छिद्र अप्राकृत भगवान् का ज्ञापक है। यह गीत भागवत मे २० श्लोको मे हैं जो निरोध सिद्धि का साधन है। इस गीत के द्वारा भक्ति मार्ग की स्थापना की गयी है।

'वेणु' शब्द का भागवत से कृष्णलीला वर्णन मे उल्लेख प्राप्त होता है—'क्वचिद् वादयेतो वेणु' (भा. १०।११।२८)। वादयत· प्रयोग से यह भी स्पष्ट है कि कृष्ण-बलराम दोनो ही वेणु वादन करते थे एव 'वेणून्' बहुवचन के प्रयोग द्वारा गोप बालको का भी वेणुवादन सुस्पष्ट है। यह वेणुवादन वृन्दावन मे वत्स चारण लीला से प्रारम्भ हुआ था। वन गमन के समय गोप-ग्वाल भोजनादि सामग्री के साथ अपना वेणु भी ले जाते थे। 'सुशिग्वेत्र विषाणवेणवः'। कृष्ण अपने वेणु को कटि भाग मे सन्नद्ध रखते थे—'विभ्रद्वेणु जठरपटयो' (भा १०।१३।११)। कृष्ण के वत्स एव बालसखाओ का ब्रह्मा ने अपहरण कर लिया तो कृष्ण को उनका वेणु भी बनना पडा। '······वेणु दलशिक्' (भा. १०।१३।१६)। गोपिया अपने पुत्रो के वेणुनाद से भली भाँति परिचित थी (भा. १०।१३।२२)। यद्यपि ब्रह्मा ने अपने नेत्रो से भगवान का चतुर्भुज स्वरूप देखा था तथापि उसमे वेणु नही था किन्तु ब्रह्म स्तुति मे—'कवलवेत्रविषाणवेणु' (भा. १०।१४।१) मे स्पष्टत. द्विभुज एव वेणु का उल्लेख है। अत· द्विभुज कृष्ण का वेणु से नित्य सम्बन्ध है चतुर्भुज का नहीं।

कृष्ण अपने सखाओ को मृत अजगर का कलेवर दिखला रहे हैं किन्तु वेणुवादन उस स्थल पर भी किया गया है—

'प्रोद्दाम वेणु दल शृंगरवोत्सवाढ्यम्.' (भा. १०।२४।४७)

वेणु वादन के साथ गायन भी प्रारम्भ हुआ वे मीठे स्वर से वेणु के साथ गान करने लगे—

'तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो०' (भा १०।१५।२)

तथा कृष्ण अपने गोष्ठ मे वेणुवादन करते हुए प्रविष्ट होते थे—'वेणु विरणयन् गोष्ठ मगाद् (भा १०।१६।१५)।' कृष्ण के वेणुवादन से गोपियो के काम के वशीभूत होने का उल्लेख भी प्राप्त है—वेणु गीत स्मरोदयम्' (भा १०।२१।३)। कृष्ण अपनी अधर सुधा से वेणु के छिद्र पूर्ण करते हैं, गोपियो को इससे ईर्ष्या होती है। यद्यपि वेणु सर्वभूतो को मनोहर लगता है—

इतिवेणु रव राजन् सर्वभूत मनोहरम्।' (भा १०।२०।६)

वेणु का माहात्म्य और भी अधिक हुआ। गोपियो ने स्पष्ट कह दिया कि जिसने वेणु जुष्ट कृष्ण का वदनार विन्द नहीं देखा उसने अपने नत्रो का फल प्राप्त नही किया (भा १०.२१।७)। वेणु ने ऐसा क्या तप किया है जो नन्दनन्दन के मुखारविन्द से नि सृत सुधा का इकला ही पान कर जाता है, हमे तो वह दुर्लभ ही है। वेणु की ध्वनि से मत्त होकर मयूर नृत्य करते हैं, हिरणिया कर्ण उठाकर उस ध्वनि से खिची हुई सी प्रतीत होती हैं तथा वत्स दुग्धपान एव गाय तृण चारण भूल जाती हैं, नदियाँ अपने तरङ्ग रूपी हस्तो द्वारा कमल की भेंट प्रभु के चरणो मे समर्पित करने को चचल हो उठती है, अचल चल हो जाते हैं और चल अचल। यह वेणु की महिमा है। पशुओ की दशा ही क्या, देविया भी वेणुगीत श्रवण कर अपनी दशा भूल जाती हैं।[१] भागवत मे वेणुगीत प्रसङ्ग वस्तुत मूल मे ही पठनीय है। रासलीला मे वेणु

---

१ (क) गैया कान उठाय पान करें पक्षी न बोलें कहूं।
बच्छे दूध न पीवते थन मुंह मुख लाय ठाड़े रहें।
ग्वाले दोहनियाँ लियें दुहतन करसाय थन मों रहें।
यह्वाओ मुरली असो रस भरी टेरी हरी कुंज में।

(ख) नाचे हंस चकोर मोर मुनियाँ कोकिल परेवा अगिन।
बुलबुल तितिर टिट्टभौ चनक की कुदरी गुपट मापली।
मूती सारस चक चातक बया मैना हरैंया घुने न।
यह बाओ मुरली असी रस भरी टेरी हरी कुंज मे॥

—प० बल्लाभो सप्र, मथुरा।

शब्द का उल्लेख नही है। युगल गीत मे भी वेणु का उल्लेख है—'नर्मदो यहि कूजित वेणु (भा १०।२५।२)। मथुरा प्रस्थान के समय भी गोपिकाओ ने वेणु का स्मरण किया है (भा १०।३६।३०)। मथुरावासी भी भगवान की वेणु से परिचित थे (भा १०।४४।१३)। सरिता, शैल, वन आदि वेणुरव से व्याप्त रहते रहते थे (भा १०।४७।४६)।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भागवत मे न मुरली शब्द का उल्लेख है न वशी का। कालान्तर म वेणु, वशी, मुरली मे अभेद समझा गया। परवर्ती हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य सूरदास आदि भक्त कवियो ने मुरली की महिमा का ही अधिक गान किया है—

'मुरली तऊ गोपालहि भावत
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दहि नानाभाँति नचावत ।।'[1]

टीकाकारो म वीरराघवाचार्य ने वेणु का उल्लेख भागवत च च १०।१२।५ मे भी किया है। भगवान् बालको के साथ खेल रहे हैं तथा एक दूसरे के शिक्य आदि का अपहरण कर रहे हैं। टीकाकार का कथन है कि आदि शब्द से वेणु का ग्रहण है—

'आदि शब्देत वेत्र विषाण वेणूना सग्रह'।'

शुकसुधी का भी यही मत है। किन्तु स्पष्ट उल्लेख यहाँ नही है। सप्तम श्लोक मे वेणु का उल्लेख है। शुकसुधी ने सर्वप्रथम वेणु का अर्थ मुरलिका लिखा है (सिद्धान्त प्रदीप १०।१३।११)। वेणु के सात छिद्रो का उल्लेख आचार्य वल्लभ ने किया है (सु १०।२१।५)। पं० रामकृष्ण ने वेणु के स्थान पर वशी को अधिक महत्व दिया है (गण मजरी २०।२१।५) से—

'वेणु रपि वाद्यविशेष रूवेण वशी प्रिय सखीति ब्रह्म सहितोक्ते।'

कृष्णदास ने अपनी टीका मे वेणु के स्थान पर वशी के उल्लेख का महत्व भी लिखा है। वेणु शब्द पुल्लिग मे है, अत उसे अधरपान कराने का कोई महत्व भी नहीं। अत अधरपान वशी की भावना से ही किया गया था। इन्होने 'कृष्णयामल' की एक आख्यायिका भी लिखी है—

'रन्ध्रान्वेणोरिति पुस्त्वनिर्देशात् पु व्यक्तेरप्यधर सुधापूरणादिना चिन्त्य। वशी प्रेमसखी तथेति ब्रह्म सहितोक्ते नित्यसहचारिणीयमात्मनो गोपनायवात्मान पुस्त्वेन ख्यापयति तेन च तस्या अधर पूरण प्रियतमा भावनया अविरुद्धमेवेति ज्ञेयम्।' (गणदीपिका १०।२१।५)

---

१ सूर सागर, का ना प्र, पृष्ठ १२७३।

'एक समय राधा जी के गुणगान में व्यग्र भगवान कृष्ण के वदनारविन्द से स्वयं सरस्वती प्रकट हुई, कन्दर्प कोटि लावण्य श्रीवदन को देखकर उसने रमण की इच्छा की। कृष्ण ने विचार किया कि यह मेरे ही अंग से उत्पन्न हुई और मुझसे रमण की कामना कर रही है, अतः उनकी भर्त्सना से वह जड हो गई। जड़ होकर वह वृन्दावन मे तृण राजवश रूप मे प्राप्त हुई, अतः उसके रन्ध्रो का अधर सुधा से पूरण भावावेश मे वे करते थे—

'श्रीराधानामगानेक व्यग्र गोविन्द वक्त्रतः
सरस्वती समुद्भूता पुनः सावंशिका मता ॥'

वस्तुतः वेणु-मुरली मे एवं बशी मे स्वरूप भेद है। उनकी परिभाषाओ द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट हो सकता है। प्रसिद्ध टीकाकारो मे जीवगोस्वामी का ध्यान इस ओर गया।

जीव गोस्वामी ने वेणु और बशी के भेद पर मनन किया है एव रासलीला मे गोपियो का आह्वान वेणु द्वारा ही माना है (वैष्णव तोषिणी १०।२६।३)—

'कल मधुरमस्फुट च यथास्यात्तथाजगौ वेणुनेति ज्ञेयम्।'

किन्तु 'वेणु गीत' सर्वभूत मनोहर था यह स्पष्ट लिखा जा चुका है, अत. रास के समय वैशिष्ट्य होना आवश्यक है, फलत. रासारम्भ मे वशी का वादन ही कृष्ण ने किया था। वशी के कई विधान हैं—

'अर्द्धा गुलान्तरोन्मान तारादि विवराष्टकम्।
ततो गुलान्तरे यत्र मुख रन्ध्रं तथागुलम् ॥
शिरोवेदागुल पुच्छ भ्यगुल सा तु वशिका।
नव रन्ध्रा स्मृता सप्त दशागुल मिताबुधैः ॥' (वही)

'इति वेणु रव राजन्। सर्वभूत मनोहरम् इति सामान्य विषयकत्वात् स्वभावानु सारेण तासा मोहन मात्रं जात मधुनातु रस विशेषोद्दीपनत्वादाकर्षणमिति तत्र तत्र वश्या अपि वैशिष्ट्य मस्ति।'

इस प्रकार जीवगोस्वामी ने वंशी के वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए नवरध्रं एव सत्रह अंगुल परिमाण का उल्लेख किया है। निम्न श्लोकों मे उसके महानन्दा, सम्मोहनी, आकर्षणी, आनन्दिनी, वंशुली आदि नाम लिखे हैं। 'वंशी' मणि, हैमी तथा वैणवी थी—

'दशागुलान्तरास्याच्वेद् सा तार मुखरन्ध्रयोः
महानन्देति विख्याता तथा सम्मोहनीति च ॥

भवेत्सूर्यान्तरा सा चेत् तत् आकर्षणी मता
आनन्दिनी तथा वशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ॥
गोपाना वल्लभा सेय वशुलीति च विश्रुता
क्रमात् मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ॥'

(वै तो १०।२६।३)

अतो द्वादशागुलान्तरेतारमुखरन्ध्रा है मीय ज्ञेया एव गान वैशिष्ट्य मपि ज्ञेय, नादयुक्त्व तु वेणुनाद स्वाभाव्यादेवेति भाव ।' (वही)

विशुद्ध रस दीपिकाकार का कथन यह है कि कृष्ण न गोपियो को व शी से ही वन से बुलाया था वेणु से नही (विशुद्ध र दी १०।२६।३)। यह व शी सुवर्ण की थी इसमे आकषण एव सम्मोहनशक्ति भरी थी। 'भावभाव विभाविका' (१०।२६।१) म योगमाया द्वारा व शी का आश्रय लेना ही लिखा है।

परवर्ती टीकाकारो मे वैष्णव शरण ने व शी एव मुरली का पर्याय वाचित्व सिद्ध करते हुए लिखा है कि व शी क बिना गोपा ड़नाओ का आकषण नही हो सकता अव्यक्त मधुर वचन व शी के बिना सम्भव नही (सिद्धान्ताथ प्रदीपिका १०।२६।३)—

यद्वा योगमाया निजप्रेयसीना योगायमायारूपामुरलिका नहि विचित्र कायकरी व शी बिना गोपवनिताकषण भवति जगोकल वामदृशा मनोहरम् इत्यव्यक्त मधुर मनोहारि स्वनस्य तद्व्यतिरेकेणासम्भवात्।

व शी और वेणु मे भेद करते हुए रामकृष्ण नामक विद्वान ने एक सुन्दर युक्ति दी है, उनका कथन है कि वेणु एक वाद्य है और व शी प्रिय सखी है। प्रिय सखी होने के कारण ही कृष्ण भावावेश से उसे मुख मारुत् से पूर्ण करते हैं—

वणुरपि वाद्य विशेषरूपेण व शी प्रियसखीति ब्रह्म सहितोक्तेन नित्य सहचरी रूपेण चानवरत प्रेम परतन्त्रस्तमेवानुसरतीति तथा सति तद् र ध्राणा मधुर सुधया पूरणमपि भाववशेनैव।' (प्रम मजरी १०।२६।३)

रासलीला

भागवत मे रासलीला का अपना विशिष्ट स्थान है, भागवत का अनुपम लालित्य, अनूठा साहित्य, भक्ति, ज्ञान, कम की त्रिवेणी दशन सब कुछ इस स्थल पर किये जाते हैं। साथ ही अल्पज्ञ बुद्धियो के द्वारा इसका रहस्य न

समझने के कारण अनेक प्रकार की शकाऐ इस स्थल पर की जाती हैं। वस्तुत रासलीला 'काम विलास' है। इसका निर्णय यो ही नही किया जा सकता। ग्रन्थ तात्पर्य निर्णय ६ वस्तुओ से किया जाता है—उपक्रम, उपसहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ती।

'उपक्रमोपसहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्
अर्थवादोपपत्ती च हेतुस्तात्पर्य निर्णये ॥' (श्रेय, पृष्ठ २१३)

उपक्रम—इसका अर्थ हैं आरम्भ। मृत्यु के समय ग्राम्य कथा की चर्चा साधारण पुरुष क लिये भी असम्भाव्य है तब विष्णुरात जैसे विवेकी पुरुष के साथ घटित-करना अविवेक है। श्रोता के साथ जब वक्ता का विचार करते है तो यह ग्राम्य कथा वाली बात कोसो दूर हट जाती है, भागवत के वक्ता है—परम विरत योगी शुक, जिन्हे वनगमन के समय नग्न दौडते हुए देखकर स्नान करती अप्सराऐ भी लज्जित नही होती। ऐसे तपस्वी 'शुक' मुमूर्षु परीक्षित की कथा सुनाते है और वह भी परमहस मुनि मण्डली के समक्ष जिनमे उनके पिता पितामह भी उपस्थित थे।

वक्ता, श्रोता, देश काल, समाज आदि का विचार करते हुए रासलीला म विषयचर्चा का वर्णन मानना सर्वथा असगत है। इसलिये विद्वान् लोग भागवत म अश्लीनता की चर्चा तो क्या लोकचर्चा की कल्पना भी मानना स्वीकार नही करते।

अट्ठाइसवे अध्याय म नन्द का वरुण लोक स उद्धार का वर्णन है। नन्द ने गोपो से आकर कहा कि मैं कृष्ण का एश्वर्य देखकर आया हूँ गोपो को नन्द क वचन स दृढता प्राप्त हुई तथा विचार हुआ कि कभी वे हमको भी दर्शन करायेगे (भा १०।२८।१७)। कृष्ण न गोपो को अपने धाम का दर्शन कराया। वे परमानन्द म मग्न हो गये। बस यहाँ पुनरुत्थान की चर्चा न करके रासलीला का २६ वे अध्याय से आरम्भ है। इसलिये किन्ही महानुभावो का कथन कि यह लीला इस लोक म नही हुई। वस्तुस्थिति को गुप्त रखत हुए यह भगवान की नित्य लीला का वर्णन है जो कि गोपो ने उनके नित्य धाम मे देखी थी।

इस पक्ष को उपर्युक्त मत पूर्वक मानने से मर्यादा लघन की कल्पना ही नही की जा सकती। यदि यह लीला इस लोक की मानी जाय तब भी कोई दोष नही क्योकि निम्नलिखित श्लोक से यह आरम्भ होती है—

'भगवानपि ता रात्री शरदोत्फुल्लमल्लिका.
वीक्ष्यरन्तु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित ॥'(भा १०।२८।१)

भगवान ने शरद की विकसित मल्लिका वाली रात्रियो को देखकर योग-माया का आश्रय लेकर रमण का मन किया। यहाँ भगवान और योगमाया ये दो पद द्रष्टव्य हैं। भगवान इस लीला के प्राण हैं, जिसके आलम्बन भगवान हैं, उसमे लौकिक *काम की गन्ध भी कैसे मानी जाय ? भगवान के अनन्य* भक्त सामाजिक नियमो की परिधि का उल्लघन कर जाते हैं, स्वय भगवान की तो बात ही क्या है ? शुकदेव ने यह बात रासलीला के उपसहार मे राजा से कही थी (भा १०।२३।३५)—

'यत्पाद पकज पराग निषेक तृप्ता
योग प्रभावविधुताखिल कर्म बन्धा ०।'

अर्थात् जिनके चरण कमलो का सेवन करके सम्पूर्ण कर्मबन्धन मुक्त *मुनिजन भी लोकमर्यादा मे न बँधकर स्वेच्छा विचरण करते हैं। उन हरि के* लिये बन्धन कैसा ? उनकी लीलाएे अनवरत भावुक भक्तो के निमित्त ही हुआ करती हैं। यह रासलीला भी मधुर भाववती व्रजागनाओ की कामना पूर्ति के लिये है। *बडो का आचरण सीखना उपयुक्त है, इस आधार पर भी* अनेक व्यक्तियो को इस लीला पर सन्देह उत्पन्न होता है, पर राजा ने स्वय इस प्रश्न का उत्तर शुकदेव के मुख द्वारा सुनवाया है (भा १०।३३।३०)। *उन्होने इस प्रकार प्रश्नकर्ताओ को एक ही उत्तर ऐसा दिया है जिसमे आगे* कोई शका का अवसर ही नही रह जाता 'कि तेजस्वियो को कोई दोष नही लगता, जैसे अग्नि'। अग्नि म सब प्रकार के पदार्थ भस्म हो जाते हैं परन्तु *उनसे अग्नि की पवित्रता मे कोई बाधा नही आती। सामर्थ्यवानो का उपदेश* ही ग्रहण करना चाहिये, अनुकरण तो क्वचित् ग्राह्य है। यह कथन (तैतरीयो-पनिषद् १।११) मे भी प्राप्त है—

'यान्यस्माक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नेतराणि'

ऋषभ राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के चरित्र विभिन्न हैं परन्तु वे सबके सब प्रत्येक अधिकारी के लिये अनुकरणीय नही हैं। रासलीला द्वारा कृष्ण ने यह स्पष्ट घोषित किया है कि उच्च व्यक्ति विषयो की सन्निधि मे भी निर्विकार रहे। अच्युत नाम का भी यही रहस्य है। कामविजय विधि उन्ही के लिये है तभी उन्हे मन्मथ मन्मथ कहा जाता है।

उपसहार—रास के अन्तिम श्लोक से पूर्व का श्लोक है—

'ब्रह्मरात्र उपावृत वासुदेवानुमोदित
अनिच्छन्त्योययुर्गोप्य स्वगृहान्भगवत्प्रिया ।।' (भा १०।३३।३६)

कृष्ण प्रिया गोपिका उनकी अनुमति से इच्छा न होने पर भी घर चली गई। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि प्रारम्भ भी 'भगवानपि' पद से है और लीला का सहार भी 'भगवत्प्रिया' पद से है। साहित्यिक द्रष्टिकोण से यह लीला उच्चकोटि की है। भगवान रसराज नायक हैं एवं भगवत्प्रिया ही नायिका।

तात्विक दृष्टिकोण से भी सर्वान्तर्यामी पूर्ण परब्रह्म का जीवो के साथ नित्य विलास है। गोपियाँ चित्तवृत्ति हैं उनके ही रूप मे उनका प्रकाशक शुद्ध चेतन कृष्ण के रूप मे स्थित है। रासलीला प्रकृति-पुरुष की जड-चेतन की क्रीडा की आधिदैविकी अभिव्यक्ति है। 'अनिच्छन्त्य' पद से स्पष्ट है कि उनकी तृप्ति नही हुई थी अतृप्ति ही प्रेम का भूषण है। विशुद्ध भगवत् सग होने के कारण किसी भी प्रकार के दोष की कल्पना भी नही की जा सकती। भक्त की भावना को उसके अभीष्ट रूप मे पूर्ण करना कार्य समझ कर इच्छा द्वारा पूर्ण करने मे समर्थ होते हुए भी प्रत्यक्ष मे करते है।

अभ्यास—अनेक बार की आवृत्ति को अभ्यास कहा जाता है। अर्थ मे अन्यथा ग्रहण की आशका के बाघ के लिये शुकदेव जी द्वारा प्रदत्त विशेषण बड़े ही उपयुक्त हैं—

योगेश्वरेण कृष्णेन (भागवत १०।३३।३)
भगवान्देवकी सुत (भागवत १०।-३।७)
सम भगवता ननूलु (भागवत १०।३३।१६)
रेमे रमेशो (भागवत १०।३३। ७)
रेमे स भगवान् (भागवत १०।३३।२०)

प्रत्येक अध्याय मे शुकदेव जी ने कृष्ण की निर्विकारता का वर्णन किया है। ३० वें अध्याय म 'आत्मारामोऽप्यरखण्डित'। ३१ वें अध्याय म नखलु गोपिका नन्दनो भवान्०' म विशेषण मन्तव्य है। भगवान् ईश्वर और योगश्वर, भगवत्ता के अनूठेपन के परिचायक हैं।

अपूर्वता—जिस उक्ति से कोई नवीन वार्ता व्यक्त हो उसे अपूर्वता कहते है। जैसे—जो निष्क्रिय, निष्फल, निरवद्य पूर्ण परब्रह्म है तथा मन इन्द्रियादि से भी परे है वह समस्त प्राणियो की इन्द्रियो का विषय होकर विषयी जीवो का सा व्यवहार कर रहा है। काम की सैन्य वृद्धि करते हुए भी उस पराजित करना कृष्ण की अपूर्वता है।

फल—फल उद्देश्य का परिचायक होता है। रास प्रसंग मे श्रवण कीर्तन आदि का फलनिर्देश करते हुए शुकदेव ने कहा है कि 'श्रद्धा सहित ब्रज सुन्दरियों के साथ भगवान् विष्णु की इस क्रीडा का श्रवण या मनन करने वाला हृदय के रोग रूप काम से मुक्त हो जाता है। यहाँ यह विचारणीय है है कि जिस कथा का उद्देश्य काम को पराजित करना है क्या वही काम को बढाने वाली कही जा सकेगी। सभी लोगो का चित्त कामप्रधान है क्योंकि काम ही सूक्ष्म शरीर एव स्थूल शरीरो का मूल कारण है। यह कामक्रीडा प्रकृत कामोपभोगो से विरत कर भगवदीय काम मे आकृष्ट करने के लिये है। काम एक मनोविकार है, स्वरूपत वह न शुभ है न अशुभ। अनित्य और बन्धनकारी नायक नायिका सम्बन्धी होने के कारण वह त्याज्य है। पर यदि अस्थिपिण्डो के स्थान पर आलम्बन स्वय भगवान हो तो वही परम निश्रेयस का हेतु है। इस प्रकार इस भगवदीय लीला का फल कामविजय ठीक ही है।

अर्थवाद—स्तुति वाक्यो को अर्थवाद कहते हैं। यद्यपि भगवान की भावना मानने वालो को यह रुचिकर नही है, तथापि उनके साथ किये गये क्रोध, काम, स्नेह सभी मे चित्त वृत्ति भगवदाकार हो जाती है। शुकदेव ने कहा है—

'काम क्रोध भय स्नेह मैक्य सौहृदमेव च
नित्य हरौ विदधतो यान्ति तन्मयता हि ते ॥' (भा १०।२९।१५)

उपपत्ति—ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णायक उपपत्ति षष्ठ सख्या मे परिगणित है। इसे युक्ति भी कहते हैं, आधुनिक युग मे सर्वसाधारण मे इसका सर्वाधिक मूल्य है। ६ दिन का बालक पूतना मारण कर सकता है ? पाद प्रहार से सकट भजन एव मुख म माता को विश्वदर्शन करा सकता है ? ७ दिन नख पर गोवर्धन धारण कर सकता है तो यह ८ १० वर्ष की अवस्था म गोपिकाओ के साथ क्रीडा करता हुआ भी अक्षुण्ण बना रह सकता है। जिनका शारीरिक बल ऐसा था उनका मनोबल भी बढा चढा था न कि पामरो जैसा। जो तर्क के आधार पर इस लीला को कसना चाहे उन्हे भगवान् की अन्य लीलाओ को भी उदपत्ति लगाने की आवश्यकता नही। ऐसे व्यक्तियो को भगवान् की लीला समझने से पूर्व भगवान को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

रासलीला भगवान् की रमणीय लीला है। यह भक्तियोग का आरम्भ तथा व्रजरमणियो को उनकी साधना का फल प्रदान करने के हेतु अवतरित

हुई है। इसके श्रवण और कीर्तन के अधिकारी भावुक गण ही हैं। रामलीला की अद्यावधि अनेक व्याख्याएँ की गई जिनमे भगवान के विविध रूपो का प्रदर्शन किया है भागवत के टीकाकारो ने भी अत्यन्त भावविभोर होकर इस स्थल की व्याख्या की है।

श्रीधर स्वामी भागवत के सुप्रसिद्ध टीकाकार हैं उनके अनुसार यह लीला कामदेव का गर्व नष्ट करने के हेतु की गई थी[1], जैसा कि उनके मगल पद्य से स्पष्ट है—

---

१ पौराणिको के अनुसार—एक बार कामदेव भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुचा एव अपनी दिग्विजय के बारे मे निवेदन करते हुए कृष्ण से भी युद्ध की इच्छा प्रकट की। रामावतार मे जब राम सीता के वियोग मे खिन्नावस्था मे थे तब कामदेव ने उन्हें पराजित किया एव उनसे स्वीकृति के लिए कहा, राम ने उसके कथन को अस्वीकार करते हुए कहा कि 'यह मेरी पराजय नहीं यह तो लीला मात्र है, साथ ही मर्यादावतार भी है, अत यदि युद्ध की इच्छा हो तो द्वापर मे मैं कृष्णावतार ग्रहण करू गा, वहां तेरी इच्छा पूर्ण होगी। उसी निर्देश के अनुसार कामदेव ने द्वापर पर्यन्त प्रतीक्षा की और युद्ध हेतु कृष्ण के पास आया। कृष्ण ने काम से कहा कि युद्ध दो प्रकार का होता है, दुर्ग युद्ध, मैदान युद्ध।

यहां दुर्गयुद्ध है प्राणायाम आदि योग धारण।

मैदान युद्ध का तात्पर्य है अनेक स्त्री जनो के साथ रात्री मे रति, विलास, नृत्य आदि।

'काम' ने स्थल युद्ध स्वीकार किया, प्रतिज्ञानुसार श्रीकृष्ण भी अपनी प्रेयसियो के साथ वृन्दावन मे पहुंचे तथा गोपियो के मध्य अन्तर्द्धान हो गये। यह काम की प्रथम पराजय थी, पश्चात् गोपियों के साथ रासलीला की प्रत्येक गोपिकायुगल के मध्य श्रीकृष्ण को देखकर काम भी मोहित हो गया कि इनमे वास्तविक कृष्ण कौन हैं, तब से काम की पराजय और भगवान का नाम 'मदन मोहन' पड गया।'

—प० श्रीधर जी धन्ना जी कृत सग्रह (टिप्पणी)

'ब्रह्मादि जय सरूढि दर्पकन्दर्प दर्पहा
जयति श्री पतिर्गोपी रासमण्डल मण्डन ॥'

(भा. दी १०।२९ मगला०)

श्रीधर स्वामी ने कृष्ण की अवस्था पर विचार नही किया, किन्तु सनातन गोस्वामी इस लीला के समय भगवान् की किशोरावस्था मानत है। उन्होने विष्णु पुराण का उल्लेख करते हुए लिखा है—

सोऽपि कैशोरकवयोमानयन् मधुसूदन
रेमे ताभिरमेयात्माक्षपासु क्षपिताहित ॥' (वृ तो १०।२९।१)

हरिवश मे किशोरावस्था का उल्लेख है—

'युवतीर्गोप कन्याश्च रात्रौसकल्प कालवित्
कैशोरकमानयान सह ताभिर्मुमोद ह ॥' (वही)

रासलीला प्रथम रात्री की क्रीडा है—

'तत्ररासारम्भे तस्य सौन्दर्यादि विशेष स्मरेण परम मोहनत्वात्
कैशोरारम्भे प्रथमैक रात्र क्रीडेयमुच्यते ।' (वही)

सनातन गोस्वामी तो इन लीला का प्रयोजन प्रेम रस विस्तार मानते हैं। जीवगोस्वामी न रासपचाध्यायी के पाच अध्यायो को भगवान क पाच प्राण तुल्य मानते हुए भी इस लीला का प्राकट्य सर्वातिशायी प्रेमवती व्रज-सुन्दरियो को मनोरथ पूर्ति ही माना है। विजयध्वज का कथन तो यह है कि निर्दोष भक्तिजनित ब्रह्म ज्ञान ही मुक्ति साधन है, अत अर्थवाद का निरूपण इसमे किया गया है—

'निर्दोष भक्ति जनित ब्रह्म ज्ञानदेव मुक्ति साधनम्' (प र १०।२९।१)

आचार्य वल्लभ का कथन है कि स्त्रियो मे अपना आनन्द स्थापित करने हेतु कृष्ण ने स्वयं इच्छा की थी। रासलीला का यही प्रयोजन है (सु १०।२९।१)।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है कि कृष्ण की अष्टम वर्ष की अवस्था म यह लीला प्रारम्भ हुई। यह लीला समस्त लीलाओ की मुकुट मणि है। इस लिये कृष्ण ने किशोर अवस्था भी धारण की थी। यदि वे किशोरावस्था धारण न करते तो उस अवस्था का भी अपमान होता। (सा द १०।२९।१)

धनपति ने रासलीला के समय कृष्ण की नव वर्ष की अवस्था एव श्रीधर स्वामी के अनुसार इसे निवृत्तिपरक लिखा है। धनपति ने इस रासलीला की निवृत्तिपरा व्याख्या भी की है (गू दी १०।२९।१)—

'निवृत्ति मार्ग ससक्त चेतसा विदुषा मुदे
व्यक्ती करोम्यह् पक्षमिम कृष्ण प्रसादत. ।।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि रासलीला मे लौकिक विषयो का कोई महत्व नही है तथा ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति का ही निरूपण इस लीला द्वारा हुआ है ।

भक्ति

मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ भगवान की प्राप्ति है और भगवान की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन भक्ति है । भगवान की भक्ति पापराशियो को भस्म करती है—

'यथाग्नि सु समृद्धार्चि. करोत्येधासि भस्मसात्
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनासि कृत्स्नश ।।' (भा. ११।१४।१६)

इस भक्ति के अनेक प्रकार के विश्लेषण श्रीमद्भागवत में प्राप्त हैं, उनमें कतिपय प्रसगो का साकेतिक विवरण ही यहाँ दिया जा रहा है । भागवत मे भक्ति से रहित ज्ञान और कर्म की निन्दा की है (भा १।५।१२)—

'नैकर्म्यमप्यच्युत भाववर्जित न शोभते ज्ञानमल निरजनम् ।'

श्रीधर स्वामी ने 'श्रेय सृति भक्तिमुदस्य ते विभो०' (भा. १०।१४।४) मे स्पष्ट लिखा है कि भक्ति के बिना ज्ञान की सिद्धि नही होती—

'भक्ति बिना ज्ञान तु न सिद्धयेत्'

आचार्य वल्लभ ने भी भक्ति का तिरस्कार कर स्वरूप ज्ञान चाहने वाले व्यक्तियो को सावधान करते हुए लिखा है कि वे क्लेशभागी होगे ।
(सु. १०।१४।४)

श्रीधर स्वामी ने भक्ति मे प्रेम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है—

'..........भक्त्या साधन भक्त्या सजातया प्रेमलक्षणयाभक्त्या ।'
(भा टी. ११।३।३१)

यद्यपि भागवत पुराण भक्ति पुराण है तथापि भक्ति का पृथक् लक्षण भी इसमे दिया गया है —

'सर्वे पु सा परो धर्मो यतोभक्तिरधोक्षजे
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ।।' (भा. १।२।६)

मनुष्यो के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान कृष्ण मे भक्ति

हो, उस भक्ति मे किसी प्रकार की कामना नही होनी चाहिए। उक्त लक्षण को आधार मानकर भक्ति को शास्त्रीय रूप देने वाले दो सम्प्रदाय प्रमुख है—

१. वल्लभ सम्प्रदाय, २ चैतन्य सम्प्रदाय।

वल्लभ सम्प्रदाय मे आचार्य वल्लभ ने भक्ति को पुष्टि मार्गीय रूप देकर उसकी विशद व्याख्या की है, उनका भक्ति का लक्षण निम्न है—

'माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ।।'[1]

चैतन्य सम्प्रदाय मे रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृत सिन्धु तथा 'उज्ज्वल नील मणि' नामक ग्रन्थ लिखकर भक्तिरस की स्थापना की। दोनो सम्प्रदायो मे नवधा भक्ति के अतिरिक्त प्रेमाभक्ति का महत्व सर्वोपरि है।

वल्लभ प्रचारित पुष्टि मार्ग का द्वितीय नाम अनुग्रह मार्ग है। गीता के १२वें अध्याय म कहे गये भक्तो के लक्षण पुष्टिमार्ग की उत्तमता सिद्ध करते है। पुष्टिमार्ग के भक्त मुक्ति की भी इच्छा नही करते। प्रभु की प्राप्ति म होने वाला विलम्ब और उससे होने वाला विरह-ताप इस मार्ग की साधना म मुख्य माने जाते है। इस मार्ग मे प्रभु की तनुजा, वित्तजा, और मानसी सेवा की जाती है। इनमे मानसी सेवा श्रेष्ठ है। पुष्टि भक्ति मे 'नवधा भक्ति' साधन मात्र है। 'आत्म समर्पण' नामक नवमी भक्ति के उपरान्त प्रेमलक्षणा भक्ति का उदय होता है। प्रभु के सुख के सामने अपने कष्टो को न गिनना अहता ममता का त्याग करना, दीनता से सर्वभावों को प्रभु मे केन्द्रित करके उनके ही प्रेम म नित्य नयी सेवा मे तन्मय होकर प्रेम-रस के समुद्र मे डूबे रहना ही पुष्टि भक्ति का सार है।[2]

उक्त प्रकार की भक्ति से सम्पन्न पुरुष चतुर्विध-मुक्ति की इच्छा नही करता।[3] इस प्रकार के भक्त के लिये ही भगवान् ने—'अहं भक्त पराधीनो॰' आदि वाक्यो को कहा है। प्रत्येक को यह भक्ति सुलभ नही है— 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्य'—जिस पर प्रभु कृपा करे, वही उन्हे प्राप्त करता है।'

---

१ तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक २६।

१ गोस्वामि श्री व्रजेशकुमार बाबा, कांकरौली।

३ 'सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत
दीयमान न गृह्णन्ति बिना मत्सेवन जना ।।' (भा ३।२६।१३)

वाक्य ही इसमे प्रमाण है। भागवत म इस भक्ति का उदाहरण गोपिकाओ का सर्वोपरि माना जा सकता है। भागवत म पुष्टि भक्ति की पुष्टि पोषण तदनुग्रह' (भा २।१०।४) वाक्य द्वारा की गई है। पद्ध स्कन्ध की १६ अध्यायो की व्याख्या पुष्टि भक्ति के अनुसार ही है।

चैतन्य मत म प्रेमा भक्ति का अत्यधिक समादर है। इस भक्ति के ११ भेद किये गये हैं, तथा उन भक्ता के नामा का भी उल्लेख है'—

१ गुणमाहात्म्यासक्ति	नारद शुकदेव सूत शौनक परीक्षित, पृथु जनमेजय आदि।
२ रूपासक्ति	ऋषि व्रजगोपिका।
३ पूजासक्ति	पृथु अम्बरीष, भरत।
४ स्मरणासक्ति	प्रह्लाद, ध्रुव, सनकादि।
५ दास्यासक्ति	अक्रूर विदुर।
६ सख्यासक्ति	अर्जुन उद्धव, श्रीदामा।
७ कान्तासक्ति	अष्ट पटरानी।
८ वात्सल्यासक्ति	कश्यप, नन्द, यशोदा, वसुदेव देवकी।
९ निवेदनासक्ति	बलि शिवि, अम्बरीष।
१० तन्मयतासक्ति	शुकदेव नारद।
११ परम विरहासक्ति	अर्जुन उद्धव, व्रजनारी।

जीवगोस्वामी न नाम सकीर्तन पर भी अत्यधिक बल दिया है (भ स ६।३।२० २२)—

अन्योन्यत—श्री भगवन्नामग्रहण यत्नु क्रिया भवति तदनन्तर तदनुकरणम। 'परत च तत्सामीप्यमपि प्रापयति ।'

है। इस प्रसग मे यमराज की उक्ति भी मननीय है, उसने स्पष्ट कहा है कि—'इस जगत् मे जीवो के लिये सबसे बडा कर्त्तव्य यही है कि वे नाम कीर्तन आदि उपायो से भगवान् के चरणो मे भक्ति भाव प्राप्त कर लें।'

'भक्तियोगो भगवति तन्नाम ग्रहणादिभि ।' (भा ६।३।२२)

भावार्थ दीपिकाकार ने हरि भक्ति पर अधिक बल देते हुए एक सुन्दर श्लोक भी उद्धृत किया है (भा दी ६।२।१६)—

'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तस्थितैरपि
अनिच्छयापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पावक ।।'

'दुष्ट के चित्त म स्थित पापा को हरि नाम भस्म कर डालता ह बिना इच्छा के भी स्पर्श किया हुआ पावक दग्ध कर देता है।'

श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका मे 'उत्तम श्लोक जन' आदि शब्दा की व्याख्या म भक्तो को ही मुख्य माना है जबकि—वीरराघवादि ने दास शब्द का प्रयोग किया है (भा दी ६।११।२७)—

'उत्तमश्लोकस्य तवजनेपु भक्तेष्वेव सख्य भूयात् ।'

वीरराघव—'उत्तमश्लोकस्य तवजनेपु दासेपु मेसख्य भूयात् ।

श्रीधर हरि प्रिय वैष्णवो को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट लिखते हैं—वैष्णवो ! भोजन आच्छादन की चिन्ता मत करो। 'विश्वम्भर' अपने भक्तो की कभी उपेक्षा नही करते (भा दी २।२।५)—

भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा
योऽसौ विश्वम्भरो देव कथ भक्तानुपेक्ष्यते ।।'

उक्त व्याख्यानो के आधार पर ही श्रीधर को परम वैष्णव माना जाता है।

वीरराघव ने प्रपत्ति का उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि रामानुज सम्प्रदाय म प्रपत्ति और भक्ति दोनो का विधान है।

प्रपत्ति—सब प्रकार से भगवान् के चरणो मे जाना प्रपत्ति है। उनका भक्ति का लक्षण भी अन्य टीकाकारो से पृथक् है (भा च च ७।५।२३-२४)—

'भक्तिर्नाम ध्यानोपासनादि शब्द वाच्याऽहरहरभ्यासाधेयातिशया-आप्रयाणादनुवर्त्तमानाविवेकादि साधन सप्तकानुगृहीता तैलधारावदविच्छिन्न-स्मृति सन्तानात्मिका प्रीत्यात्मिका प्रत्यक्षतापन्नाध्र ुवानुस्मृति ।'

इस प्रकार की भक्ति मे दास्य का स्थान सर्वोपरि है—

'न नाक पृष्ठ' श्लोक की व्याख्या मे 'वृत्रासुर केवल दास्य चाहता है' इस पर बल दिया गया है—

'त्वद्दास्य विना-अयन्न काक्षामीत्याह ।' (वही ६।११।२५)

निम्बार्क सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण एव राधा के युगल रूप की भक्ति की जाती है स्वय श्री निम्बार्काचार्य का मगलाचरण राधा के वामाग भाग म स्थिति का पोषक है (दश श्लोकी २) से—

अ गे तु वामे वृषभानुजा मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम्
सखी सहस्रै परिसेविता सदा स्मरेम देवी सकलेष्ट कामदाम् "

श्रीकृष्ण अपनी सत्यसकल्प रूपमाया से अन्यान्य पुरुषो की भाति देहवान् जैसे प्रतीत होने है । प्रेमलक्षणा भक्ति का सर्वोत्कृष्ट महत्व इस सम्प्रदाय म है । भागवत के टीकाकार शुक सुधी ने भी इस ओर भक्ति के विवेच्य स्थलो पर सकेत किया है—

आश्रित पद भवति प्रेमविशेष लक्षणा भक्ति प्राप्नुवन्ति तथाह भगवान् पूर्वाचाय —(सि प्र २।७।४२)

कृपास्य दैन्यादियुज प्रजापते यथा भवेत्प्रेमविशेष लक्षणा
भक्तिह्य नन्याधिपतेर्महा न साधात्मसाधनरूपिका परा ।।'

इस प्रकार हम कह सकते है कि भक्तिप्रधान ग्रथ भागवत का भक्ति ही पयवसान है ।

ज्ञान

श्रीमद्भागवत की विचारधारा म ज्ञान का अभाव नही है । भागवत माहात्म्य म भक्ति के साथ उसके दो पुत्रो का भी उल्लख है—ज्ञान और वैराग्य । वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे उनके बोध कराने क लिए नारद ने अनेक प्रयत्न किय किन्तु उन्हें युवा नहीं बनाया जा सका । तब नारद सनत्कुमार की शरण मे गये । उनके उपदेश से श्रीमद्भागवत का सप्ताह यज्ञ प्रारम्भ हुआ फलत ज्ञान वैराग्य प्रबुद्ध होकर उस सत्र म सम्मिलित भी हुए । इस कथानक स इतना तो स्पष्ट है कि भागवत वह शास्त्र है जिस सुनकर ज्ञान का वृद्धत्व भी दूर हुआ अत यह ज्ञान प्रधान ग्रथ है । इसके उपक्रम और उपसहार भी ज्ञान र है—

'वदति तत्तत्वविदस्त त्व यज्ज्ञानमद्वयम्' (भा १।२।११)

तत्ववेत्ता लोग अद्वैत ज्ञान को ही तत्व ही ब्रह्म, परमात्मा या भगवान शब्द से कहा जाता है। उपसहार मे—

'सर्व वेदान्त सार गद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।' (भा १२।१३।१२)

श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषद् रूपवेदान्त का सार है जिसमे ब्रह्म और आत्मा के एकत्व (अभेद) रूप अद्वितीय वस्तु का प्रतिपादन है। इस अद्वैत ज्ञान से कैवल्य मोक्ष रूप प्रयोजन की सिद्धि होती है। पुरजनोपाख्यान मे जीव के अभेद ज्ञान का निरूपण है (भा ४।२८।६२)। आत्मा ही सब कुछ है (भा २।७।३८)। समग्र जगत् स्वप्न की भाँति असत् स्वरूप है, चेतना रहित एव महान् दु ख ही दुखरूप है (भा १०।१४।२२)। यह जगत् अपनी उत्पत्ति से प्रथम नही था और प्रलय के पश्चात् भी न रहेगा, एक रस अद्वितीय परब्रह्म रूप आप मे ही है (भा १०।८७।३७)। भक्ति और ज्ञान श्रेय प्राप्ति के दो प्रमुख मार्ग हैं। ये भगवत् प्राप्ति के साधन ही नही अपितु भगवत् रूप ही हैं। भागवत मे ज्ञान योग, कर्म योग और भक्तियोग का वर्णन है (भा ११।२०।६) से—

'योगास्त्रयो मयाप्रोक्ता नृणा श्रेयोविधित्सया
ज्ञान कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ।।'

गीता मे भी इनका उल्लेख है (गीता ३।३)। भागवत के ज्ञानियो की कथा तो प्रसिद्ध है ही किन्तु गोपियाँ भी ज्ञान शून्य नही थी अन्यथा वे गोपिका गीत मे कृष्ण को अखिल देहधारियो का अन्तरात्मा न कहतीं (भागवत १०।३१।४)।

'अह ब्रह्म पर धाम ब्रह्माह परम पदम्' (भा १२।६।११)

उक्त श्लोक मे श्रीधर स्वामी प्रभृति टीकाकारो ने ज्ञान का महत्व स्वीकार किया है (भा टी १२।६।११)। भक्ति और ज्ञान भागवत मे ओत-प्रोत हैं तथापि ज्ञान को माहात्म्य मे ही भक्ति का पुत्र कह दिया है वस्तुत भागवत नाम ही, भक्त वृन्दो स सम्बन्धित है, अत ज्ञान-वैराग्य के अनेक वृत्तान्त होने पर भी भक्ति का पद सर्वोत्तम है, आदि और अन्त भक्ति मे ही हैं अत भागवत पुराण भक्ति का सर्वोच्च ग्रन्थ है।

मुक्ति

भागवत मे पाँच प्रकार की मुक्तियो का उल्लेख है (भा. २।२।६)—

सालोक्य—भगवान् के नित्य धाम मे रहना सालोक्य है।

सार्ष्टि—भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि है।

सामीप्य—भगवान् के सामीप रहना ही सामीप्य है।

सारूप्य--भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य है।

सायुज्य--भगवान् के चरणो मे समा जाना सायुज्य है।

यह मुक्ति भजन द्वारा ही प्राप्त होती है। साथ ही अज्ञान, कल्पित कर्त्तापन, भोक्तापन आदि भावो के परित्याग द्वारा वास्तविक स्वरूप परमात्मा मे स्थिर होना ही मुक्ति है—

'मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूप स्वरूपेण व्यवस्थिति ।' (भा २।१०)

इसे कैवल्य मुक्ति भी कहा जाता है। भागवतकार ने आत्यन्तिक प्रलय को भी मोक्ष कहा है, किन्तु मुक्ति का स्वरूप अविद्या नाश ही है, और इसका भक्त की दृष्टि म कोई महत्व नही है, भक्त केवल भक्ति ही चाहता है मुक्ति नही—

'अत्रसर्गो विसर्गश्चेत्यादौ नवमपदार्थ रूपया मुक्तेरपि पदे आश्रये दशम पदार्थ रूपे त्वयि स दायभाक् भवति भातृवण्टन इवत्वमेव तस्य दायत्वेन वतस अतो वराकया मुक्तेर्वाकावार्तेत्यर्थ ।' (क्र स १०।१४।८)

सुबोधिनीकार ने मुक्ति का लक्षण यह दिया है—

'निष्प्रपचाना स्वरूप लाभो मुक्ति ।' (सु २।१०।२)

द्वितीय स्कन्ध मे सद्यो मुक्ति और क्रम मुक्ति का भी वर्णन है। श्रीधर स्वामी ने द्वितीयाध्याय के इक्कीसवें श्लोक पर्यन्त सद्यो मुक्ति का निरूपण माना है (भा दी २।२।२१) । वीरराघवाचार्य ने इसका खण्डन किया है (भा च च २।२।२२)—

'सद्योमुक्तिस्तावदप्रामाणिकै ·· · सद्यो मुक्तेरभावात् ।'

आचार्य वल्लभ ने सद्यो मुक्ति के 'उत्तम मध्यम' दो भेद किये है (सु २।२।२२) 'एव सद्योमुक्ति द्विधानिरूपिता—उत्तम–मध्यम भेदात्'। इस विवेचन म श्रीधर स्वामी ने ब्रह्मलोक जाने वाले प्राणियो की तीन गति लिखी है (भा दी २।२।२८)—

१ पुण्योत्कर्ष से गये 'जीव' ब्रह्मलोक मे पुण्य-तारतम्य से अधिकारी बनते है।

२ हिरण्य गर्भादि की उपासना के बल से गये जीव ब्रह्मा के साथ मुक्त होते है।

३ भगवदुपासक स्वच्छा से ब्रह्माण्ड का भेदन कर वैष्णव पद जाते है।

टीकाकारो ने मुक्ति का निरूपण करते हुए भी भक्ति को प्राधान्य दिया है। ज्ञानी पुरुषो की मुक्ति अन्त करण का अत्यन्त विलय होने के बाद आत्मा की केवल रूप मे स्थिति का नाम है, किन्तु भक्तो की मुक्ति इष्ट देवता की नित्य लीला मे प्रवेश होना है, इसी को वल्लभाचार्य परम मुक्ति कहते हैं । विलय रूपा मुक्ति को भक्त नहीं चाहते और नित्यलीला प्रवेश रूपा मुक्ति भक्ति का फल है।[1] मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति को अन्तिम प्राप्य कहा है । वे मुक्ति प्राप्ति को भक्ति का फल नही मानते। भक्ति स्वय फल रूपा है।

श्रीमद्भागवत में एकादश स्कन्ध मे भक्तिज्ञान विवेचन के उपरान्त परीक्षित की मृत्यु का समय आता है, शुकदेव जी उसे कथाओ के जाल से छुडाते हैं एव वास्तविक स्वरूप को पहचानने का आदेश देते हैं । वे राजा परीक्षित को निर्विशेष ब्रह्म मे विलीन करने के लिए भी उपदेश देते हैं, जैसे घटाकाश घडे के फूट जाने पर महाकाश मे विलीन हो जाता है –

'घटे भिन्ने यथा काश आकाश स्याद् यथापुरा
एव देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुन ॥' (भा १२।५।५)

भक्ति के परिणाम स्वरूप स्वत उत्पन्न होने वाले ब्रह्म भाव को प्राप्त होने का भी उपदेश देते हैं, निर्विशेष ब्रह्म मे लीन हो जाने पर परीक्षित को न तो तक्षक के दांत गडाने की पीडा होगी और न ससार ही ब्रह्म से भिन्न दिखलाई देगा (भा १२।५।११–१२)–

'अह ब्रह्म पर धाम ब्रह्माह परम पदम्
एव समीक्षन्नात्मानमात्मन्या धाय निष्कले ॥
दशन्त तक्षक पादे लेलिहान विषाननै
न द्रक्ष्यसि शरीर च विश्व च पृथगात्मन ।'

"जो मैं हूं, वही परमपद रूप ब्रह्म है और जो परमपद रूप ब्रह्म है, वही मैं हूं' यह अर्थ अद्वैत भावना से परिपूर्ण है, श्रीधर स्वामी ने यहा अद्वैत अर्थ की पुष्टि की (भा टी. १२।५।५–६)।

'स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्नि सयोगोयावदीयते
ततो दीपस्य दीपत्वमेव देह कृतो भव ॥

........दीपस्य ज्योतिष दीपत्व ज्वाला रूप परिणाम तत्र तैल-स्थानीय कर्म तदधिष्ठान स्थानीयं मन वर्तिस्थानीयो देह अग्नि सयोगस्थानी-

---

१ कल्याण, भक्ति अंक, पृष्ठ २५५ ।

यश्चैतन्याध्यासः दीपस्थानीयः संसार । इति योज्यम्..................दीपवत्ससार एव नश्यते नत्वात्मा ज्योतिर्वत्........ ।' (भा. दी. तथा भा. च. च. १२।५।७–८)

'ज्वाला का नाम दीप है । दीप मे स्नेह, वर्ति, अग्नि–ये तीन वस्तु होती हैं । मन स्नेह है, देह वर्ति है, चैतन्याध्यास अग्नि सयोग है, ससार दीपस्थानीय है ।'

इस स्थल पर मुक्ति के सम्बन्ध मे प्रत्येक टीकाकार ने अपनी सम्प्रदाय की ओर अर्थ मे खीचातानी की है, जैसे वीरराघव ने उक्त श्लोक की व्याख्या श्रीधर के समान की है तथापि *अग्नि संयोग स्थानीय 'देहात्माभिमान'* को माना है जब कि श्रीधर स्वामी ने 'चेतन्याध्यास' को । विजयध्वज ने चिन्मय मन की उत्पत्ति स्वीकार की है (भा. एव प. र. १२।५।६)–

'.......... ततो जडमनसो जीवस्य ससारो वर्तत इतिशेषः ।'

जीव गोस्वामी ने परमात्म सदृश हो जाना मुक्त लिखा है –

'..........परमात्म सदृशः 'सदृशौ सखायौ' इति श्रुतेः' (क्र. स. १२।५।७–८) । 'सदृशौ सखायौ' यह द्वैतवादी श्रुति है । इसका उद्धरण यहा अप्रासगिक है ।

विश्वनाथ ने श्रीधर का ही अनुकरण किया है। (सा. दा. १२।५। ७–८)–

'एतदेव सदृष्टान्तमाह–सार्द्धेन स्नेहेति । दीपस्य........योज्यम् ।'

यद्यपि जीव गोस्वामी ने भी उक्त श्लोकों पर व्याख्या की है तथापि विश्वनाथ को उसमे कोई चमत्कृति दिखलाई नही दी। शुक सुधी ने माया मोहित जीव का अज्ञान द्वारा जीवन-मरण माना है, मनुष्यादि शरीर मे स्थिति आत्मा न जन्म लेता है न मरता है –

'............माया मोहितोजीवस्त्वज्ञानात् जातोस्मिमरिष्ये इति मन्यते वस्तुतस्तु यः तत्र मनुष्यादि शरीरे आत्मा जीवः स न जायते न विनश्यति मनुष्यादि देहस्तत्प्रकाश्य.' (सि. प्र. १२।५।८) ।

'अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं...............।' यह श्लोक अहम् भाव का परिचायक है । श्रीधर स्वामी ने यहाँ स्पष्ट ही 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' को पुष्ट किया है –

'............योऽहं स ब्रह्मैव यद् ब्रह्म तदहमेवेति समीक्षन् तत्राहं ब्रह्मेति भावनया जीवस्य शोकादिनिवृत्तिः ब्रह्माहमिति भावनया च ब्रह्मणो पारोक्ष्य निवृत्तिर्भवतीति व्यतिहारो दर्शितः ।'

सुदर्शन सूरी ने 'अहं' और 'ब्रह्म' में विशेषण विशेष्य भाव का प्रतिपादन किया है—

'अहं ब्रह्मेति ब्रह्माहमिति च तात्पर्य भेदेन विशेषण प्रधानो विशेष्य प्रधानश्चनिर्देश भेद पर पद परम प्राप्यम् ।' (शुक पक्षीया १२।५।११)

वीर राघव ने इस श्लोक की व्याख्या लगभग ५० पंक्तियों में की है एव प्रारम्भ मे सुदर्शन की टीका भी रक्खी है। 'ब्रह्माहं' मे षष्ठी तत्पुरुष समास किया है ब्रह्मण अहम्', अर्थात् मैं शेष हूँ ब्रह्म शेषी।

' मम च शेषी ब्रह्मैव परमात्मैव नान्य । श्री स्वामिनो दास एवाहमस्मि , ।' (भा च च १२।५।११)

उक्त व्याख्या मे श्री स्वामी (नारायण) एव उनके दासत्व का उल्लेख किया है न कि श्रीधर स्वामी की भाँति ब्रह्म रूप हो जाने का।

विजयध्वज ने अहं' पद की व्याख्या विचित्र की है—

"न हीयत इत्यहं नहीयत इतिवाकदापि न जहातिम्व शक्तिम् एव विधमीश्वर विहाय कदापि न तिष्ठत्यस्वात् त्रयादित्यर्थ । (प र १२।५।११)

विजयध्वज ने अहम्' के एकत्व को स्पष्ट ही उड़ा दिया है और अहं का अर्थ ही शक्ति सहित कर दिया है। द्वैतवादी टीकाकार के लिए यह व्याख्यान उपयुक्त ही है।

विश्वनाथ ने उक्त श्लोक। मे श्रीधर का अनुकरण करते हुय भी 'ब्रह्माहं' मे षष्ठी तत्पुरुष ही किया है तथा वीरराघव से भी आगे एक पद रखा है। उन्होने श्री स्वामी "श्री स्वामिनि आदि पदो का ही प्रयोग किया था।) विश्वनाथ ने यहाँ कृष्ण का। स्पष्ट उल्लेख किया है—

' अतएव ब्रह्माहं ब्रह्मण परमेश्वरस्यैवाहमिति षष्ठी तत्पुरुष एव परम पद ब्रह्म स्वरूप चरणारविन्द वा समीक्ष्य आत्मान स्वम् आत्मनि परमात्मनि कृष्णे निष्कले निस्को वक्षोऽलकारस्तद्वति ।' (सा द १२।५।११)

"निष्कले' का अर्थ वक्षोऽलकार किया है जबकि इसे प्रपञ्च रहित अर्थ म प्राय सभी टीकाकारों ने ग्रहण किया है। शुक सुधी ने यहा द्वैताद्वैत का निरूपण किया है। उन्होने लिखा है कि जीव अणु स्वरूप है एव परमेश्वर का अंश है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन'

यह स्मृति प्रमाण है—

'………………परपूर्ण ब्रह्मैव अंशस्य स्वरूपतोभिन्नत्वेपि अंशि व्यतिरिक्त स्थितिप्रवृत्याद्यभावेनतदभिन्नत्वात्……………एष एव जीव ब्रह्मणोः भिन्नाभिन्न सम्बन्ध ।………………परमानन्दतादात्म्य प्राप्तित्वात् ।' (सि प्र १२।५।११-१२)

परमानन्द कृष्ण की प्राप्ति का नाम ही मुक्ति है, यह इनका मत है ।

'प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाण मभय दर्शित त्वया ।' (भा. १२।६।५)

परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा कि मुझे आपने भय रहित वस्तु दिखादी अतः ब्रह्मनिर्वाण हो गया ।

श्रीधर स्वामी ने 'निर्वाण' का अर्थ कैवल्य किया है (भा दी १२।६।५)। सुदर्शन सूरि ने 'ब्रह्मनिर्वाण आनन्दरूप ब्रह्म' अर्थ किया है (शु प १२।६।५)।

वीरराघव ने सुदर्शन सूरि के अर्थ मे 'अनुभव मग्न इत्यर्थ' इतना अंश और बढा दिया है (भा च च १२।६।५)। विजयध्वज ने प्राकृत शरीर रहित होने का उल्लेख किया है—

'निर्वाणमानन्द प्राकृत शरीर रहित वा । (प र १२।६।५)

जीवगोस्वामी ने ब्रह्मनिर्वाण का अर्थ वृहद् भगवत्तत्व मे प्रविष्ट होना माना है—

'…………निर्वाण परमानन्द स्वरूप ब्रह्म सर्वतो वृहद् भगवत्तत्व प्रविष्टस्तस्मिन्नाविष्ट इत्यर्थ ।' (क्र. स १२।६।५)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने ब्रह्म निर्वाण भय सूचक माना है तथा ईर्ष्या की उक्ति है यह लिखा है। भक्तो को कही से भय नही है यह पंचम स्कन्ध मे स्पष्ट लिखा जा चुका है—

'नारायण परा सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपितुल्यार्थ दर्शिन '

'…………भक्ताना निर्वाण मोक्ष खल्वसह्य एव ।' परीक्षित ने प्रायोपवेश के समय ही यह प्रार्थना की थी मेरी रति भगवान् मे हो—

'पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रति प्रसंगश्च तदाश्रयेषु'

'..........इति प्रायोपवेशारम्भत एव प्रतिज्ञातवन्तं मामपि ब्रह्म-निर्वाण मुपदिशसीति श्रीमुनीन्द्रे ईर्ष्यैवध्वनिता... ....।' (सा. द. १२।६।५)

शुक सुधी ने भी ब्रह्म का अर्थ कृष्ण किया है—

'त्वयादर्शित ब्रह्म श्रीकृष्णाख्य निर्वाणं समानाति शयानन्द रूपम्।'
(सि. प्र. १२।६।५)

वैष्णव टीकाकारों ने कृष्ण प्राप्ति ही मुक्ति का फल माना है, जीव गोस्वामी ने तो उसे 'विचारी' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार स्थूल दृष्टि से अद्वैतवाद की झलक से ओतप्रोत अद्वैत मुक्ति को भी वैष्णव टीकाकारों ने अपने पक्ष के अनुसार लिखा है जो उचित ही है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ

अलंकार कौस्तुभ	कवि कर्णपूर, कलकत्ता
अणुभाष्य	वल्लभाचार्य, निर्णयसागर, मुम्बई
अणुभाष्य रश्मि	गोपेश्वर, निर्णयसागर, मुम्बई
अच्युत (पत्र)	अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
अन्वितार्थ प्रकाशिका	गंगासहाय, गंगा विष्णु लक्ष्मी वेंकटेश्वर, मुम्बई
अष्टाध्यायी	पाणिनि, निर्णयसागर, मुम्बई
आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती	गोपाल गोस्वामी, प्राच्यवाणी, कलकत्ता (बंगाक्षर)
आचार्य शंकर	बलदेव उपाध्याय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग
आचार्य शंकर और रामानुज	मध्वगौडीय परसाहित्य, कलकत्ता (बंगाक्षर)
आद्य पद्य व्याख्या	मधुसूदन सरस्वती, आठ टीका संस्करण, वृन्दावन
इण्डिया आफिस कैटलाग	(अंग्रेजी)
उत्तर गीता	गौडपाद, वाणीविलास, श्रीरंगम् १६१०
ऋग्वेद	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १८६२
ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी	,, ,, ,,
कल्याण–भक्ति अंक	गीताप्रेस, गोरखपुर
कल्याण–सन्त अंक	,, ,,
क्रमसन्दर्भ	जीवगोस्वामी, आठ टीका सं०, वृन्दावन
कांकरोली का इतिहास (द्वितीय भाग)	विद्या विभाग, कांकरोली
काव्यप्रकाश	मम्मट, चौखम्बा०, काशी
कुलतत्वदर्शन	जनमेजय, यशोहर (बंगाक्षर)
कूर्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
गर्ग संहिता	गर्गाचार्य, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा

	(अंग्रेजी)
ग्राउस मथुरा	
गीता–शंकर भाष्य	शंकराचार्य, निर्णयसागर, बम्बई
गीता–सुबोधिनी टीका	श्रीधरस्वामी, " "
गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर
गूढार्थ दीपिका	मधुसूदन सरस्वती, चौखम्बा०, काशी
गौडियारतिन ठाकुर	सुन्दरानन्द, कलकत्ता (बंगाक्षर)
गौडीयदर्शनेर इतिहास	सुन्दरानन्द, " "
गौडीयवैष्णव अभिधान कोश	मध्वगौडीय परसाहित्य, कलकत्ता (बंगाक्षर)
चित्रमय जगत	मई १९१५ ई० (मराठी)
चैतन्य चरितामृत	कलकत्ता (बंगाक्षर)
टिप्पणी	विट्ठलनाथ, चौखम्बा०, काशी
टिप्पणी	नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, आठ टीका स०, वृन्दावन
तत्वदीप निबन्ध	वल्लभाचार्य, निर्णयसागर, मुम्बई
तत्वप्रदीपिका	चित्सुखाचार्य, उदासीन संस्कृत महावि० काशी
तत्वसन्दर्भ	जीवगोस्वामी, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
तात्पर्य टिप्पणी प्रबोधिनी	छलारी नारायण, मध्वगौ० कलकत्ता
तैत्तरीयोपनिषद	निर्णयसागर, मुम्बई
दशश्लोकी	निम्बार्काचाय वृन्दावन
दीपिका दीपनी	राधारमणदास गो०, आठ टीका स०, वृन्दावन
दुघट भाव दीपिका	सत्याभिनव, मध्वगौ० कलकत्ता
देवी भागवत	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
धर्मकल्पद्रुम	स्वामी दयानन्द, भारतधर्म महामण्डल, काशी
धर्मशास्त्र का इतिहास	पी० वी० काने, राजकीय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ
धात्वर्थ संग्रह	जीवगोस्वामी, कलकत्ता
नरोत्तम विलास	कलकत्ता (बंगाक्षर)
निजवार्ता प्रसंग	द्वारकादास पारीख, कलकत्ता

पद्मावलम्बन	निर्णयसागर, बम्बई
पद्म	विद्यामान्यतीर्थ, उडुपी, १९६६ ई०
पदरत्नावली	विजयध्वजतीर्थ, आठ टीका स०, वृन्दावन
पद मुक्तावली	लिबेरी श्रीनिवास, मध्वगौ०, कलकत्ता
प० बन्नाजी कृत 'सग्रह'	मथुरा
प्रवासी पत्रिका	कलकत्ता (बगाक्षर)
पद्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
पद्यावली	रूपगोस्वामी, कलकत्ता
पातजल दर्शन	चौखम्बा० काशी
पी० के० गोभे	भाण्डारकर प्राच्य शोध सस्थान, पूना
पुष्टिप्रवाह मर्यादा	वल्लभाचार्य, गोवर्द्धन ग्रन्थ माला, मथुरा
पुराण तत्व समीक्षा	कृष्णमणि त्रिपाठी, हिन्दी प्रचारक मण्डल, काशी
पुराण विमर्श	बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा०, काशी,
प्रेम मजरी	रामकृष्ण मिश्र, आठ टीका स० वृन्दावन
व्रजधाम और गोस्वामीगन	गोवर्धनदास, वृन्दावन (बगाक्षर)
बाल प्रबोधिनी	गिरधर गोस्वामी, हरिप्रसाद भगीरथ, बवई
बृहत्क्रम सन्दर्भ	जीवगोस्वामी, आठ टीका सस्करण वृन्दावन
बृहदभागवतामृत	सनातन गोस्वामी, रतनलाल बेरी वृन्दावन
बृहद्वैष्णवतोषिणी	सनातन गोस्वामी आठ टीका स० वृन्दावन
बृहत् स्तोत्र सरित्सागर	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
ब्रह्मपुराण	मनसुखरायमोर, कलकत्ता
ब्रह्म मर्वैवत पुराण	,, ,,
ब्रह्म मसूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन	रामकृष्ण आचार्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
भक्तिरत्नावली	कलकत्ता
भक्तमाल	नाभादास, नवलकिशोर, लखनऊ
भक्तरञ्जनी	भगवत्प्रसाद, निर्णयसागर, मुम्बई
भक्ति रसामृत सिन्धु	रूपगोस्वामी, स्वामी बी० एच० वन महाराज, कलकत्ता (अग्रेजी)
भविष्य पुराण	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

भागवत पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
भागवत पुराण	इच्छाराम, बम्बई (गुजराती)
भागवत तात्पर्य दीपिका	अनन्ततीर्थ, मध्वगौ० कलकत्ता
भागवत तात्पर्य टिप्पणी	सत्यधर्म यति ,, ,,
भागवत टिप्पणी प्रबोधिनी	,, ,,
भागवत दर्शन	हरवंशलाल, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
भागवत पत्रिका	गौडीयमठ, मथुरा
भागवतामृत	रूपगोस्वामी
भागवत चन्द्र चन्द्रिका	वीरराघवाचार्य, आठ टीका स०, वृन्दावन
भावभाव विभाविका	रामनारायण, ,, ,,
भावार्थ दीपिका	श्रीधरस्वामी ,, ,
भावार्थ दीपिका प्रकाश	वंशीधर गौड, क्षेमराज, बम्बई
मध्वतात्पर्य निर्णय	गौडीय०, कलकत्ता
मन्दबोधिनी	शेषाचार्य, गौडीय०, कलकत्ता
मन्दनन्दिनी	व्यास तत्त्वज्ञ, गौडीय०, कलकत्ता
महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर
मूल तात्पर्य टिप्पणी	श्रीनिवास मध्वगौ०, कलकत्ता
राधामोहन तर्कवाचस्पतिकृत टिप्पणी	आठ टीका स०, वृन्दावन
राधाकृष्णकुण्ड इतिहास	नवद्वीपदास, राधाकुण्ड
लघुतोषिणी	जीवगोस्वामी, आठ टीका स०, वृन्दावन
लीलोत्सव	सनातन गोस्वामी, कलकत्ता
वल्लभ चरित्र	लल्लूभाई प्राणवल्लभ, अहमदाबाद (गुजराती)
वल्लभ प्रकाश पत्रिका	मदनमोहनजी मंदिर, मथुरा
व्रजविहार काव्य	जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता
वाराह पुराण	क्षेमराज कृष्णदास बम्बई
वादावली	जयतीर्थ, धारवाड
विवरण	व्रजरायजी, निर्णयसागर
विरोधोद्धार	पाधरी श्रीनिवास, मध्वगौ०, कलकत्ता
विशुद्ध रस दीपिका	किशोरीप्रसाद, आठ टीका स०, वृन्दावन

विश्वकोश	अतीन्द्रिय वेदान्त वाचस्पति, गौडीयमध्व०, कलकत्ता
विष्णुपुराण	निर्णयसागर, बम्बई
विष्णुपुराण टीका	चित्सुख, मध्वगौ०, कलकत्ता
विष्णु पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
वेदव्यास का आश्रम	बालमुकुन्द चतुर्वेदी, मथुरा
वेदान्तसार	सदानन्द, चौखम्बा०, काशी
वैदिक कोश	भगवद्दत्त (प्रथम भाग)
वैष्णव अभिधान कोश	हरिदास, नवद्वीप (बंगाक्षर)
वैष्णव ग्रन्थावली	अतीन्द्रिय बन्द्योपाध्याय, कलकत्ता,(बंगाक्षर)
वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म	आर जी भण्डारकर (अंग्रेजी)
वैष्णवानन्दिनी	बलदेव विद्याभूषण, मध्वगौ ,कलकत्ता
षट्चक्रनिरूपण	पूर्णानन्दयति, कालबादेवी, मुम्बई
शपथ पत्र	राधारमणदास, विश्वम्भरनाथ गोस्वामी, वृन्दावन के पास सुरक्षित
शिवपुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
शुकपक्षीया	सुदर्शन सूरी, आठ टीका स०, वृन्दावन
शुक्ल यजुर्वेद	चौखम्बा०, काशी
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड	गिरिधर गो०, 'विद्या विभाग कांकरौली'
	नि० सा० बम्बई
श्रेय-भागवताक	वृन्दावन
सप्तगोस्वामीगा	वृन्दावन (बंगाक्षर)
सज्जनहित	चेट्टी वेंकटाद्रि, मध्वगौ०, कलकत्ता
सज्जनतोषिणी (पत्रि०)	"
सनातनाष्टक	रूपगोस्वामी, कलकत्ता
सरला	रामानुजाचार्य, वृन्दावन
सत्यार्थ प्रकाश	स्वामी दयानन्द
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय, [illegible]
सम्प्रदाय कल्पद्रुम	विट्ठलनाथ [illegible]
सम्प्रदाय प्रदीप	विद्याविनोद [illegible]
सर्वदर्शन संग्रह	माधवाचार्य, [illegible]
सर्वेश्वर वृन्दावनांक	वृन्दावन

स्कन्द पुराण	मनमुखरायमोर, कलकत्ता
स्तयामृत लहरी	विश्वनाथ चक्रवर्ती, वृन्दावन
स्वधर्मामृत सिन्धु	ध्रुवसुधी, वृन्दावन
सिद्धान्तार्थ दीपिका	धनपति सूरी, आठ टीका स०, वृन्दावन
सिद्धान्तरत्नावली	हरिव्यासदेव, वृन्दावन
सिद्धान्तप्रदीप	शुरसुधी, आठ टीका स०, वृन्दावन
सिद्धान्त मुक्तावली	वल्लभाचार्य, गोवर्द्धन पुस्तकालय, मथुरा
सुबोधिनी	वल्लभाचार्य, आठ टीका सम्करण, वृन्दावन
सुबोधिनी प्रकाश	पुरुषोत्तमजी गोस्वामी, तेलीवाला, बम्बई
हरि भक्ति रसायन	मधुसूदन सरस्वती, चौखम्बा०, काशी
हरिराय वचनामृत	राधश्याम रस्तोगी, लखनऊ
हिन्दी टीका भागवत	गीताप्रेस, गोरखपुर
हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी	कैंम्ब्रिज

—:—

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध....शुद्ध
११	कर्त्ता....कर्ता
११	घतमं....घतमं
१२	वैदान्....वेदान्
१५	कालिन्धा....द्या
१७	व्यसि...व्यांस
१६	वर्पे....वर्षे
२०	तदैव....तदेव
२१	तदर्ध....तदर्थ
२३	मूगी....भूः
२५	छ्न्वणान्त....च्छ्वणानो
	न्नेव....न्नेव
	क्लो....क्लौ
२६	माथ... माद्य
२७	अष्टादश....ष्टादश
	तरु तरु
	पुराणर्वो....पुराणार्वोऽ
२८	भिव....मिव
३०	घाथ....घाय
३१	कौमारे....कौमारैं
	गोणीय....गौडीय
	स्वामिमि....स्वामिर्मि
३२	पुन्जी....कुञ्जी
	उद्धहरण....उद्धरण
३३	स्नयन....स्तवन
४१	सिद्धांत....सिद्धान्त
४२	दृशा....मादृशा
४४	नुत्रा....नूत्रा
	मिघः....भिघः

पृष्ठ	अशुद्ध....शुद्ध
११	मैवा....मेवा
१२	घम् ....धम्
१४	मारत....भारत
१६	वसिव्या....र्वासव्या
१७	दारुणो....दारुणो
१६	कोश....कोश
२१	नुत्तंय....नुत्तये
२३	पक्षोक....पक्षोक
२४	गोड....गौड
२५	नमस्ये....नमस्ये
	नवम्या....नवम्या
२६	भगवान...भगवान्
२७	नेमि....नैमि
	उद्धत....उद्धृत
	मिघ....मिघः
२८	शास्त्रार्थो....शास्त्रार्थो
२६	त्रिशत्....त्रिशत्
३०	सर्वज्ञ .. सर्वज्ञ
३१	व्रजे....व्रजे
	विमोन....विमीन
	गगा....वगा
३२	द्राम्या....द्राम्या
	स्यान...स्यात्
३४	शैल:....शैला.
४१	मध्य....मध्व
४२	मर्हे....मर्हें
४४	दत्तो....दत्तो
४५	नियुत्त....नियुंक्त

४५ प्रपत्ति....प्रपत्ति
४६ नचि....मञ्चि
उपयुक्त....उपर्युक्त
४७ तद्रो...तद्र्यो
४८ परवृह्म् परब्रह्म
५३ किमन्द....किमन्य
६० अर्घापति....अर्थापत्ति
६१ वेनादि....फेनादि
६३ प्युमया प्युभया
स्या....रा
चिह्....विह्
६९ नवम्....नवम
सख्ना....संख्या
७३ ध्यान्त....ध्वान्त
८९ पक्षिया ...पक्षीया
विषया....त्रिद्र्या
९० चितं....चित्तं
९१ परशम्....परेशम्
९३ मृण्मपं....मृण्मयं
९४ ब्रह्माभि....ब्रह्माभि
९७ भागयत.... भागवत
९९ गोवर्द्धन....गोवर्द्धन
१०० श्या...श्या
वाधू. . वाधू
ष्तुति....स्तुति [१०।१३]
१०१ शुक्र....शुक
धिनो....धिनी
उसके....उनके
१०२ चरन्तो,.. चरन्ती
१०६ विघाय....विधाय
१०७ वहुपु....वहुपु युगेपु
१०८ विवुघा....विवुधा
वन्थो...वरवन्धौ

वेह्वित....वेष्टित
४६ स्वक....स्मरु
मैंति....मेति
४७ विद्या....ऽविद्या
५१ खण्डन....खण्डन
५६ प्त....क्त
६१ चिट्....चिद्र्
६३ अवि....अनि
पय....पद्य
पाथोधौ....पाथोधौ
६८ वर्ति....वर्ती
६९ आचार्यैण....आचार्यैण
७० शालिता....क्षालिता
८० यत्र....यज्ञ
८९ हृदयैन....हृदयेन
९० अवेदं....ववेदं
९१ संचोथ....सचोद्य
९२ शास्त्र....शास्त्रो
९३ वित्त....चित्त
९५ सह....सह
९८ लम्य....लभ्य
९९ करूणा....करुणा
१०० तेनै....तेने
के....ने
१०१ तयोर्यि....तयोर्निय
करूणा....करुणा
भावुक....भावुका
के....
१०६ गुरू....गुरु
१०७ व्यासवनार....व्यासावतार
१०८ सतरीम्....सत्तरीम्
कटाक्षेक....कटाक्षैक
प्रवञ्चिप....प्रवञ्चिम

११०	दधि....दधि	११०	कंघ....कैघ
	धँ....थँ		न....नु
	रक्तं....रक्ते		वाड....वाद्
	व्यामोहिम....व्यामोहित	१११	मध्य....मद्य
१११	सजजन....मज्जन		तीर्थो....तीर्थों
	धर्म....धर्म		विद्वता....विद्वत्ता
११२	तन्य....तन्	११२	घी....घी
	एव....एप		प्र....व्र
	च....च		इत्य ..इन्य
	देण्या....देव्या	११३	सो...सौ
११३	सुपणवि....सुपर्णावे	११४	श्रुत्यर्घो ...श्रुत्यर्थो
११४	श्रु ..श्रु		सवो....सर्वो
	चार्य...चार्य		मन्दिनी.. .नन्दिनी
११५	शुद्धये . शुद्धये	११५	सप्तम्....मप्तम
११६	द्दी.. .द्दी	११६	रिच. ..रिव
११७	गुरद् ...गुरत्	११८	यपृ ...यदु
१२०	पे... ध्ये	१२०	रथ्या....रथ्या
	मिष्ट....मिष्ट	१२४	वार. . वार्
१२२	मजे ...मजे	१२२	मजामि . . मजामि
१२३	निया... व्या	१२३	विवृत्ति ...निवृत्ति
	मारम्य . मारभ्य		अगुप्र... अगुप्ट
१२४	यतु ...यत्तु	१२४	सवतो....मवतो
	मम मम	१२५	नेव मेव
१२७	दिमि ...दिभि	१२७	मीतामा .. मीनाया
	सनेभ्यो ...स्तेभ्यो		शृगाल....शृगाल
	अविवाक्षित. .अविवक्षित	१२८	गुरुत्व .. गरुत्व
१२९	रद ..रुद्र	१२९	पाद्वामा....तन्वाम
	विन्दे....विन्तय		षेडशमि .. षोडशभि:
	हूग्नाय.. हुन्नाय		त्रिविम. ..त्रिविक्रम
१३०	मार....मार्	१३०	निपोप...निपीय
	मिशो....मिशो	१३२	विरोधा ...विरोधो
१३२	धारा.. धारा		प्रमो... प्रमो
१३३	ममाप... ममाप	१३७	तुर्दुग... तुर्दुंग

१४२	जगगुरु....जगद्गुरु
	दर्म्या....दर्य्यां
	त्वतीर....त्वत्तीर
	स्यान्ये....स्यान्त्रे
१४५	वें....वैं
१४५	रम्मण....रम्भण
१४७	इत्यारम्य....इत्यारम्य
१४८	प्लय....प्लव
	थेय....धेय
१४६	सागर....सामरः
१५०	प्रंकोश....प्रकाश
१५१	सवाणि....मर्वाणि
	सृष्टियादि....सृष्टयादि
	दध....दथ
१५६	शष्ठे ....पष्ठे
१५८	रन्त....रत्न
१६०	ईय....इय
१६१	येस्ते....येन्ये
१६३	गुर्वे....गुर्व
	पायूप....पीयूप
१६५	पश्यत....पश्यन्त
१७१	कुम्म....कुम्भे
१७६	ईसा....ईशा
१८३	पूर्वक....पूर्वमक
१८७	घू....घू
१८६	प्रं....प्र
१६२	क्रत्य....कृत्य
	तुप्ठ....तुष्ट
१६६	निपति....निपीन
१६६	मिय....मिय
१४२	कौस्तुम....कौस्तुभ
	साख्यवा....सांख्यवाद
	मर्हाशि....मर्हानश
१४३	व्रह्मायी....व्राह्ययौप
१४५	याय:....ध्यायः
१४७	तद्धतो....तद्वतो
१४८	स्थियम्...स्थितम्
	ग्रय....ग्य
	तयं....नयं
१४६	अध्र्व....ऊर्ध्व
१५०	भामा....मामा
१५२	पित्रजित....पित्राजित
१५४	योगे....यंगि
१५६	रुक्मिणयु....रुक्मिण्या
१५६	चौद्धव....चोद्धव
१५६	तदशय....तदाशय
१६१	मक्तया....भक्त्या
१६२	त्वां....तवा
१६३	हृद....ह्द
१६४	धीमहिं....धीमहि
१७०	दोप....दीश
१७१	पोडप....पोडश
१८३	पुरुपा....पुरुप
१८४	वच्छ्र....वच्छ्री
१८६	गदा....गदा
१६२	तथै....तथै
	प्राधं....प्रार्थं
१६५	प्रणोमि....प्रणोमि
	मुनिन्द्रि....मुनीन्द्र
१६६	मेन्द्दद्....मंचछन्